बौद्धभारतीग्रन्थमाला–२४

Bauddha Bharati Series–24

सुत्तपिटके

मज्झिमनिकायपालि

(२. मज्झिमपण्णासकं)

[हिन्दीअनुवादसहिता]

प्रधानसम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series–24

The MAJJHIMANIKĀYA
(2. Majjhim Paṇṇāsaka)

[Gahapati-Bhikkhu-Paribbājaka Vagga]

WITH

Hindi Translation

[Third Volume]

Editor & Translattor

SWĀMI DWĀRIKĀDĀS SHĀSTRĪ

BAUDDHA BHARATI

VARANASI

1991

बौद्धभारतीग्रन्थमाला—२४

सुत्तपिटके

मज्झिमनिकायपालि

(२. मज्झिमपण्णासकं)

[गहपति-भिक्खु-परिब्बाजकवग्गा]

[हिन्दीअनुवाद सहिता]

(ततियो भागो)

पधानसम्पादको, अनुवादको च

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

२५३४ [बुद्धाब्द] वाराणसी [१९९१ खिस्टाब्द

प्रकाशक :
© बौद्धभारती
पो० बॉ० १०४९,
वाराणसी-२२१ ००१.

Publisher :
© BAUDDHA BHARATI,
P. B. 1049,
VARANASI-221 001.

प्रथम संस्करण : १९९१

First Edition : 1991

मूल्य : १००/ रु०
(एक सौ रुपया)

Price Rs. 100/=
(One hundred Rs.)

मुद्रक :
साधना प्रेस
जगतगंज, वाराणसी–२

Printer :
SADHANA PRESS
agatgnj, VARANASI—2

प्रकाशकीय वक्तव्य

"अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं" ति।
—विनयपिटके भगवा बुद्धो।

हम हिन्दी-अनुवादसहित समग्र त्रिपिटक के प्रकाशन का संकल्प इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में ले चुके हैं। तदनुसार, मज्झिमनिकाय का यह तृतीय भाग आपके सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

इसमें हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छठ संगायन पर आधृत संस्करण और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालिटेक्स्ट सोसाइटी, लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५६–६१ में 'पालित्रिपिटक प्रकाशन मण्डल' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने बहुत कम परिवर्तन किया है। कहीं-कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी संस्करणों की पृष्ठ-संख्या रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इन अन्य संस्करणों को देखकर, लाभान्वित होंगे।

हिन्दी-अनुवाद में हमने आचार्य श्री बुद्धघोष की अट्ठकथा एवं महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन कृत हिन्दी-अनुवाद का सहारा लेकर, उसे पालिपाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठक को पालि एवं उसकी हिन्दी—दोनों ही अत्यन्त सरलता से हृदयङ्गम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

इस भाग में मज्झिमनिकायान्तर्गत 'मज्झिमपण्णासक' के प्रथम तीन वर्गों के तीस सूत्रों का संग्रह है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय-वैशद्य (बात को समझाने) के लिये पालि में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल या आरोह-अवरोह—दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फँस कर पाठक से मूल विषय दूर-दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों (जहाँ पाठ पुनःपुनः आवृत्त हो) के लिये '···पे०···' की परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के सभी संस्करणों में निर्भयतापूर्वक उपयोग हुआ है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में अपना लिया है; परन्तु '···पे०···' का अनुवाद हमने '···पूर्ववत्···' करके दिया है, या प्रायः '····' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक उस प्रसङ्ग के प्रधान

विषय से दूर न हो जाँय। साथ ही टिप्पणी में उस पूर्ववत् का पीछे ग्रन्थ में आया मूल प्रसङ्ग भी सर्वत्र बता दिया है।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के समग्र ग्रन्थों का प्रकाशन इसी पद्धति से करेंगे।

एक कार्य हमने, इस प्रसङ्ग में, और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप-हिन्दी अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है। (परन्तु इस भाग का हिन्दी-अंग्रेजी संक्षेप आगामी (चतुर्थ) भाग के प्रारम्भ में 'मज्झिमपण्णासक' के अन्य अवशिष्ट सूत्रों के साथ ही दिया जायगा।) जिससे पाठक को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो सकेगा।

इस तरह हम इस ग्रन्थमाला को पालि-हिन्दी-इंग्लिश तीनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना रहे हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रथम वैशाख पूर्णिमा, २०४८ वि०
वाराणसी

अध्यक्ष
बौद्धभारती परिषद्

मज्झिमनिकाये

मज्झिमपण्णासकस्स

गहपति-भिक्खु-परिब्बाजकवग्गानं

विसयानुक्कमो

●

सुत्तपिटके

मज्झिमनिकायो

(२. मज्झिमपण्णासकं)

[हिन्दीरूपान्तरसहितो]

❀ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ❀

मज्झिमनिकायपालि

(२. मज्झिमपण्णासकं)

१. कन्दरकसुत्तं

१. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा चम्पायं विहरति [N. 3, B. 1] गग्गराय पोक्खरणिया तीरे महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं । अथ खो पेस्सो च हत्थारोहपुत्तो कन्दरको च परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पेस्सो हत्थारोहपुत्तो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । कन्दरको पन परिब्बाजको भगवता सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि । एकमन्तं ठितो खो कन्दरको परिब्बाजको तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भगवन्तं एतदवोच—

१. कन्दरकपरिब्बाजकस्स उदानं

"अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम, यावञ्चिदं भोता गोतमेन सम्मा भिक्खुसङ्घो पटिपादितो ! ये पि ते, भो गोतम, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते पि भगवन्तो एतपरमं येव सम्मा भिक्खुसङ्घं पटिपादेसुं—सेय्यथापि एतरहि भोता गोतमेन सम्मा भिक्खुसङ्घो पटिपादितो ।

---

१. कन्दरकसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) गग्गरा-पुष्करिणी के किनारे बहुसङ्ख्य भिक्षुसङ्घ के साथ विहार (= साधना) कर रहे थे । तब एक महावत के पुत्र पेस्स और कन्दरक परिव्राजक भगवान् की सेवा में पहुँचे; पहुँचकर, पेस्स महावतपुत्र तो भगवान् को प्रणाम कर एक बैठ गया । परन्तु कन्दरक परिव्राजक भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछ, एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े, उस कन्दरक परिव्राजक ने, चुपचाप शान्त बैठे उस बहुसङ्ख्य भिक्षुसङ्घ को आश्चर्य से देखते हुए, भगवान् से यों जिज्ञासा प्रकट की—

१. कन्दरक परिव्राजक के उद्‌गार

"आश्चर्य है, भो गौतम ! अद्‌भुत है, भो गौतम ! आपने अपने इस भिक्षुसङ्घ को कितने सही ढंग से शिक्षित किया है । भो गौतम ! आप से पूर्व भी जो ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध हो चुके हैं, उन्होंने भी अपने-अपने भिक्षुसङ्घ को इसी तरह शिक्षित किया था–जैसा आपने अपने इस भिक्षुसङ्घ को कर रखा है । और आगे भी जो ज्ञानी

ये पि ते, भो गोतम, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते पि भगवन्तो एतपरमं येव सम्मा भिक्खुसङ्घं पटिपादेस्सन्ति—सेय्यथापि एतरहि भोता गोतमेन सम्मा भिक्खुसङ्घो पटिपादितो" ति ।

[B. 2] २. "एवमेतं, कन्दरक, एवमेतं, कन्दरक । ये पि ते, कन्दरक, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते पि भगवन्तो एतपरमं येव सम्मा [N. 4] भिक्खुसङ्घं पटिपादेसुं—सेय्यथापि एतरहि मया सम्मा भिक्खुसङ्घो पटिपादितो । ये पि ते, कन्दरक, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते पि भगवन्तो एतपरमं येव सम्मा भिक्खुसङ्घं पटिपादेस्सन्ति—सेय्यथापि एतरहि मया सम्मा भिक्खुसङ्घो पटिपादितो ।

"सन्ति हि, कन्दरक, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे अरहन्तो खीणासवा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीणभवसंयोजना सम्मदञ्ञाविमुत्ता । सन्ति हि, कन्दरक, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे सेक्खा सन्ततसीला सन्ततवुत्तिनो निपका निपकवुत्तिनो; ते चतूसु सतिपट्ठानेसु [R.I 340] सुप्पतिट्ठितचित्ता विहरन्ति । कतमेसु चतूसु ? इध, कन्दरक, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति आतापी

सम्यक्सम्बुद्ध होंगे, वे भी अपने-अपने भिक्षुसङ्घ को इसी तरह भली भाँति शिक्षित करते रहेंगे—जैसा कि आपने अपने इस भिक्षुसङ्घ को कर रखा है ।"

२. "बात ऐसी ही है, कन्दरक ! ऐसी ही है । मुझसे पूर्व जो ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ....जैसा कि मैंने अपने इस भिक्षुसङ्घ को शिक्षित कर रखा है । और कन्दरक ! जो बाद में होने वाले ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध होंगे.....शिक्षित कर रखा है ।

"कन्दरक ! मेरे इस भिक्षुसङ्घ में ऐसे साधक भिक्षु भी हैं, जो ज्ञानी, क्षीणास्रव, अपना ब्रह्मचर्यवास पूरा कर लेने वाले, जिनका अब आगे कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है, अपने कन्धों से सांसारिक भार उतार फेंकने वाले, सदर्थ (निर्वाण) तक पहुँचे हुए, सांसारिक बन्धनों से मुक्त और सम्यग्ज्ञान-प्राप्ति द्वारा मोक्ष तक पहुँच चुके हैं । और कन्दरक ! मेरे इस भिक्षुसङ्घ में ऐसे भी भिक्षु हैं, जो शैक्ष्य, निरन्तर शीलाचार एवं सद्वृत्तियुक्त, सन्तोषी एवं सन्तोषवृत्ति से परिपूर्ण हैं; वे चारों स्मृतिप्रस्थानों में स्थिरचित्त हो साधनारत रहते हैं । किन चारों में ? कन्दरक ! यहाँ कोई भिक्षु काय में कायानुपश्यी होकर...पूर्ववत्[१].....अभ्यास करता है ।"

---

१. द्र०—पूर्वपृष्ठ ११६ (१०. सतिपट्ठानसुत्त) ।

सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं" ति।

२. गहनं हेतं यदिदं मनुस्सा

३. एवं वुत्ते, पेस्सो हत्थारोहपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! याव सुपञ्ञत्ता चिमे, भन्ते, भगवता चत्तारो सतिपट्ठाना सत्तानं विसुद्धिया सोकपरिदेवानं समतिक्कमाय दुक्खदोमनस्सानं अत्थङ्गमाय ञायस्स अधिगमाय निब्बानस्स सच्छिकिरियाय। मयं पि हि, भन्ते, गिही ओदातवसना कालेन कालं इमेसु चतूसु सतिपट्ठानेसु सुपतिट्ठितचित्ता विहराम। इध मयं, भन्ते, काये कायानुपस्सिनो विहराम आतापिनो सम्पजाना सतिमन्तो, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; वेदनासु वेदनानुपस्सिनो विहराम आतापिनो सम्पजाना सतिमन्तो, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; चित्ते चित्तानुपस्सिनो विहराम आतापिनो सम्पजाना सतिमन्तो, विनेय्य लोके अभिज्झा- [B. 3] दोमनस्सं; धम्मेसु धम्मानुपस्सिनो विहराम आतापिनो सम्पजाना [N. 5] सतिमन्तो, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावञ्चिदं, भन्ते, भगवा एवं मनुस्सगहने एवं मनुस्सकसटे एवं मनुस्ससाठेय्ये वत्तमाने सत्तानं हिताहितं जानाति। गहनञ्हेतं, भन्ते, यदिदं मनुस्सा; उत्तानकञ्हेतं, भन्ते, यदिदं पसवो। अहं हि, भन्ते, पहोमि हत्थिदम्मं सारेतुं। यावतकेन अन्तरेन चम्पं गतागतं करिस्सति सब्बानि तानि साठेय्यानि कूटेय्यानि

---

२. मनुष्यों के लिए गहन (=दुरूह) धर्मोपदेश

३. (भगवान् के) ऐसा कहने पर महावतपुत्र पेस्स भगवान् से यों बोला—"आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! आप (भगवान्) ने प्राणियों की चित्त-विशुद्धि के लिये, शोक-पीड़ा-दुःख-दौर्मनस्य के नाशहेतु, परमज्ञान प्राप्त्यर्थ, निर्वाण साक्षात्कार के लिये चार स्मृतिप्रस्थानों को कितने अच्छे ढंग से समझा दिया है। भन्ते! हम श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ भी समय-समय पर इन चार स्मृतिप्रस्थानों में चित प्रतिष्ठित कर साधना करते हैं। भन्ते! यहाँ हम काय में कायानुपश्यी····धर्म में धर्मानुपश्यी होकर, उत्साहपूर्वक साधनाभ्यास करते हैं। आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते कि आप भगवान् मनुष्यों की दुर्बलचित्तता, दोषपरिपूर्णता एवं दुष्टहृदयता समझते हुए भी उनके हिताहित का ध्यान रखते हुए, उनको इतना दुरूह (=गहन) धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते! मनुष्यों के इन दोषों से पशु बहुत दूर होते हैं। भन्ते! मैं (महावतपुत्र होने के कारण) हाथी का स्वभाव भलीभाँति जानता हूँ, चम्पा में आते-जाते समय वह अपने अन्दर रहनेवाली कमजोरियों (शठता आदि) को प्रकट करता चलता है। परन्तु हमारे नौकर-चाकरों में ऐसी बात नहीं है,

वङ्केय्यानि जिम्हेय्यानि पातुकरिस्सति। अम्हाकं पन, भन्ते, दासा ति वा पेस्सा ति वा कम्मकरा ति वा अञ्ञथा व कायेन समुदाचरन्ति अञ्ञथा व वाचाय अञ्ञथा व नेसं चित्तं होति। अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावञ्चिदं, भन्ते, भगवा एवं मनुस्सगहने एवं मनुस्सकसटे एवं मनुस्ससाठेय्ये वत्तमाने सत्तानं हिताहितं जानाति। गहनञ्हेतं, भन्ते, यदिदं मनुस्सा; उत्तानकञ्हेतं, भन्ते, यदिदं पसवो" ति।

३. चत्तारो पुग्गला

[R. 341] ४. "एवमेतं, पेस्स, एवमेतं, पेस्स। गहनञ्हेतं पेस्स, यदिदं मनुस्सा; उत्तानकञ्हेतं पेस्स, यदिदं पसवो। चत्तारो मे, पेस्स, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, पेस्स, एकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो; इध पन, पेस्स, एकच्चो पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो; इध पन, पेस्स, एकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो च होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो;

वे शरीर के हाव-भावों से कुछ और दिखाते हैं, वाणी से कुछ बोलते हैं तथा मन में कुछ दूसरा ही सोचते हैं। भन्ते! कितना आश्चर्य है, कितना अद्भुत है कि आप मनुष्यों की इस दुर्बलता एवं धूर्तता को जानते हुए भी उनके हिताहित का ध्यान रखते हैं और उन्हें ऐसा गहन धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते! मनुष्य को समझना बहुत दुरूह है; जबकि पशु अत्यन्त सरल स्वभाव वाले होते हैं, वे अपनी कमजोरियाँ छिपाने का कोई प्रयास नहीं करते।"

३. चार प्रकार के पुद्गल

४. "पेस्स! ऐसी ही बात है, पेस्स! ऐसी ही बात है। मनुष्य धूर्त होते हैं, दुर्बल चित्त होते हैं; उनकी अपेक्षा पशु सरलस्वभाव होते हैं, वे अपनी कमजोरी नहीं छिपा पाते। पेस्स! इस संसार में चार प्रकार के पुद्गल देखे जाते हैं। कौन से चार? पेस्स! (१) यहाँ पुद्गलों एक ऐसा समूह होता है, जो अपनी प्रत्येक क्रिया से अपने आपको कष्ट देता है, अपने आपको (अपनी ही क्रियाओं से) दुःखी रखता है—ऐसे व्यक्ति 'आत्मंतप' कहलाते हैं; (२) पुद्गलों का दूसरा समूह अपनी क्रियाओं से स्वयं को तो कष्ट नहीं देता, परन्तु उसकी उन क्रियाओं से दूसरे लोग कष्ट पाते हैं—ऐसे व्यक्ति 'परंतप' कहलाते हैं; (३) और पेस्स! यहाँ उनका तीसरा एक ऐसा समूह होता है, जो अपनी क्रियाओं से स्वयं को तो कष्टमय रखता ही है, साथ ही दूसरों को भी उनकी क्रियाओं से कष्ट होता रहता है—यह समूह 'आत्मंतप' के साथ 'परंतप' भी कहलाता है; (४) और फिर पेस्स! इन पुद्गलों का एक चौथा

इध पन, पेस्स, एकच्चो पुग्गलो नेवत्तन्तपो होति नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति। इमेसं, पेस्स, चतुन्नं पुग्गलानं कतमो ते पुग्गलो चित्तं आराधेती" ति ?

"य्वायं, भन्ते, पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, अयं मे पुग्गलो चित्तं नाराधेति। योपायं, भन्ते, पुग्गलो परन्तपो [N. 6, B. 4] परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, अयं पि मे पुग्गलो चित्तं नाराधेति। योपायं, भन्ते, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, अयं पि मे पुग्गलो चित्तं नाराधेति। यो च खो [R. 342] अयं, भन्ते, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति—अयमेव मे पुग्गलो चित्तं आराधेती" ति।

५. "कस्मा पन ते, पेस्स, इमे तयो पुग्गला चित्तं नाराधेन्ती"ति ?

"य्वायं, भन्ते, पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो सो अत्तानं सुखकामं दुक्खपटिकूलं आतापेति परितापेति—इमिना मे अयं पुग्गलो चित्तं नाराधेति। योपायं, भन्ते, पुग्गलो परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो सो परं सुखकामं दुक्खपटिकूलं आतापेति परितापेति—इमिना मे अयं पुग्गलो

समूह ऐसा भी होता है, जो अपनी क्रियाओं से न स्वयं को कष्ट देता है, न उसकी क्रियाओं से दूसरे लोग ही कोई कष्ट अनुभव करते हैं—यह 'न आत्मंतप न परंतप' कहलाता है। यह चतुर्थ प्रकार का पुद्गल इसी जन्म में शान्त, सुखी, शीतल-स्वभाव, सुखानुभवी, एवं ब्रह्मभूत आत्मा से साधनारत रहता है। पेस्स ! इन चारों पुद्गलों में तुम्हें कौन सा पुद्गल भला लगता है ?"

"भन्ते ! मुझे इनमें पहला 'आत्मंतप' पुद्गल समूह भला नहीं लगता, न 'परंतप' ही भला लगता है और न 'आत्मंतप तथा परंतप' ही मुझे अच्छा लगता है। मुझे तो चौथा 'न आत्मंतप न परंतप' पुद्गलसमूह ही भला लगता है, जो···ब्रह्मभूत आत्मा से साधनारत रहता है।"

५. "पेस्स ! वे तीन पुद्गलसमूह तुम्हें क्यों नहीं अच्छे लगते ?"

"क्योंकि भन्ते ! इनमें जो प्रथम प्रकार का पुद्गल है, वह अपने लिये सुख-चाहता हुआ, अपने आप को कष्टप्रद स्थितियों में ढकेलता रहता है—इसलिये मुझे यह पुद्गल मुझे नहीं भाता। और इनमें जो दूसरे प्रकार का पुद्गल है, वह अपने

चित्तं नाराधेति। योपायं, भन्ते, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो सो अत्तानं च परं च सुखकामं दुक्खपटिकूलं आतापेति परितापेति—इमिना मे अयं पुग्गलो चित्तं नाराधेति। यो च खो अयं, भन्ते, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति; सो अत्तानं च परं च सुखकामं दुक्खपटिकूलं नेव आतापेति न परितापेति—इमिना मे अयं पुग्गलो चित्तं आराधेति। हन्द, च दानि मयं, भन्ते, गच्छाम; बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

"यस्सदानि त्वं, पेस्स, कालं मञ्ञसी" ति।

अथ खो पेस्सो हत्थारोहपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा [N. 7] अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

४. चतुन्नं पुग्गलानं वित्थारदेसना

[B. 5] ६. अथ खो भगवा अचिरपक्कन्ते पेस्से हत्थारोहपुत्ते भिक्खू आमन्तेसि—"पण्डितो, भिक्खवे, पेस्सो हत्थारोहपुत्तो; महापञ्ञो, भिक्खवे, पेस्सो हत्थारोहपुत्तो! सचे, भिक्खवे, पेस्सो हत्थारोहपुत्तो मुहुत्तं निसीदेय्य

सुख के लिये दूसरों को दुःख देता रहता है—इसलिये वह मुझे अच्छा नहीं लगता। और भन्ते! इनमें जो तीसरे प्रकार का पुद्गल है, उसके अच्छा लगने की तो बात ही नहीं है; क्योंकि वह आत्मसुख के लिये स्व-पर दोनों को कष्ट देता रहता है। और भन्ते! इनमें चौथे प्रकार का पुद्गल (न आत्मंतप न परंतप) जो कि आत्मसुख के लिए..... मुझे भला लगता है। भन्ते! अब हम चलें; क्योंकि हमें और भी करने के लिये बहुत से कार्य बाकी पड़े हैं, जिन्हें पूरा करना आवश्यक है।"

"ठीक है, पेस्स! जैसा तुम उचित समझो।"

इसके बाद (भगवान् की आज्ञा पाकर) महावतपुत्र पेस्स भगवान् के कथन का अभिनन्दन-अनुमोदन कर, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम व प्रदक्षिणा कर, (अपने घर) चला गया।

४. उक्त चारों पुद्गलों का विस्तृत वर्णन

६. महावतपुत्र पेस्स के जाने कुछ ही देर बाद, भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाया और कहा—भिक्षुओ! यह महावतपुत्र पेस्स बुद्धिमान है, महाप्राज्ञ है। भिक्षुओ! यदि वह महावतपुत्र पेस्स कुछ देर और ठहरता, जबकि मैं उन चार प्रकार के पुद्गलों के विषय में और भी विस्तार से बताने जा रहा था, तो उसका कुछ अधिक

यावस्साहं इमे चत्तारो पुग्गले वित्थारेन विभजिस्सामि; महता अत्थेन संयुत्तो अभविस्स। अपि च, भिक्खवे, एत्तावता पि पेस्सो हत्थारोहपुत्तो महता अत्थेन संयुत्तो" ति।

"एतस्स, भगवा, कालो, एतस्स, सुगत, कालो, यं भगवा इमे चत्तारो पुग्गले वित्थारेन विभजेय्य। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

"तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

(क) अत्तन्तपो पुग्गलो

७. "कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अचेलको होति मुत्ताचारो हत्थापलेखनो नएहिभद्दन्तिको नतिट्ठभद्दन्तिको; नाभिहटं न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं सादियति; सो न कुम्भिमुखा पटिग्गण्हाति न कळोपिमुखा पटिग्गण्हाति न एळकमन्तरं न दण्डमन्तरं न मुसलमन्तरं न द्विन्नं भुञ्जमानानं न गब्भिनिया न पायमानाय न पुरिसन्तरगताय न सङ्कित्तीसु न यत्थ सा उपट्ठितो होति न यत्थ मक्खिका सण्डसण्डचारिनी; न मच्छं न मंसं न सुरं न मेरयं न थुसोदकं पिवति। सो एकागारिको वा होति एकालोपिको, द्वागारिको वा होति द्वालोपिको, सत्तागारिको वा होति सत्तालोपिको; एकिस्सा पि दत्तिया यापेति, द्वीहि [N. 8] पि दत्तीहि यापेति, सत्तहि पि दत्तीहि यापेति; एकाहिकम्पि [R. 343] आहारं आहारेति, द्वीहिकम्पि आहारं आहारेति, सत्ताहिकम्पि आहारं

लाभ होता। तो भी, भिक्षुओ! वह महावतपुत्र पेस्स इतना सा जानकर भी, बहुत अधिक लाभान्वित है।"

"भगवन्! अब भी समय है, सुगत! अब भी समय है, आप इस विषय में विस्तृत उपदेश करें। हम उसे सुनकर वैसा ही अपने हृदय में बैठा लेंगे।"

"तो, भिक्षुओ! सुनो, मन में ठीक से बैठा लो; मैं बताता हूँ।"

"ठीक है, भन्ते!"—कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् यों बोले—

(क) 'आत्मंतप' पुद्गल

"भिक्षुओ! कौन सा पुद्गल आत्मतापी और आत्मताप में ही लगा होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल अचेलक (=नग्न), मुक्ताचारी…पूर्ववत्[1]…

---

१. द्र०—पीछे पृ० ४५३ (३६. महासच्चकसुत्त)।

आहारेति—इति एवरूपं अद्धमासिकं परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। सो साकभक्खो वा होति, सामाकभक्खो वा होति, नीवारभक्खो वा होति, दद्दुलभक्खो वा होति, हटभक्खो वा होति, कणभक्खो वा होति, आचामभक्खो वा होति, पिञ्ञाकभक्खो वा होति, तिणभक्खो वा होति, गोमयभक्खो [B. 6] वा होति; वनमूलफलाहारो यापेति पवत्तफलभोजी। सो साणानि पि धारेति, मसाणानि पि धारेति, छवदुस्सानि पि धारेति, पंसुकूलानि पि धारेति, तिरीटानि पि धारेति, अजिनं पि धारेति, अजिनक्खिपं पि धारेति, कुसचीरं पि धारेति, वाकचीरं पि धारेति, फलकचीरं पि धारेति, केसकम्बलं पि धारेति, वाळकम्बलं पि धारेति, उलूकपक्खं पि धारेति; केसमस्सुलोचको पि होति, केसमस्सुलोचनानुयोगमनुयुत्तो; उब्भट्ठको पि होति आसनपटिक्खित्तो, उक्कुटिको पि होति उक्कुटिकप्पधानमनुयुत्तो; कण्टकापस्सयिको पि होति कण्टकापस्सये सेय्यं कप्पेति; सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयत्तो विहरति—इति एवरूपं अनेकविहितं कायस्स आतापनपरितापनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

(ख) परन्तपो पुग्गलो

८. "कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो ओरब्भिको होति सूकरिको साकुणिको मागविको लुद्दो मच्छघातको चोरो चोरघातको गोघातको बन्धनागारिको ये वा पनञ्ञे पि केचि कुरूरकम्मन्ता। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

इस प्रकार अर्धमासिक या बारी-बारी से भोजन ग्रहण कर जीवयापन करता है। वह केवल शाकाहारी नीवारभोजी.....पूर्ववत्[1].....इस प्रकार से काया को कष्ट देने वाले आताप-संताप के व्यापार में लगा हुआ साधना करता है। भिक्षुओ ! यह पुद्गल 'आत्मंतप' कहलाता है, जो कि अपने को कष्ट देने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं पाता।

(ख) 'परंतप' पुद्गल

८. "भिक्षुओ ! और कौन सा पुद्गल 'परंतप' कहलाता है, जो अपने कार्यों से दूसरों को कष्ट देने में ही लगा रहता है ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल अपने कर्तव्य के रूप में क्रूर कर्म, जैसे—भेड़, सूअर, पक्षी, हिरन आदि मारना,

---

१. द्र०—पीछे पृ० १६५ (१०. महासीहनादसुत्त)।

(ग) अत्तन्तपो च परन्तपो च पुग्गलो

९. "कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो ? इध, भिक्खवे, [N. 9] एकच्चो पुग्गलो राजा वा होति खत्तियो मुद्धावसित्तो ब्राह्मणो वा महासालो। सो पुरत्थिमेन नगरस्स नवं सन्थागारं कारापेत्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा खराजिनं निवासेत्वा सप्पितेलेन कायं अब्भञ्जित्वा मगविसाणेन पिट्ठिं कण्डुवमानो नवं सन्थागारं पविसति सद्धिं महेसिया ब्राह्मणेन च पुरोहितेन। सो तत्थ अनन्तरहिताय भूमिया हरितुपलित्ताय सेय्यं कप्पेति। एकिस्साय गाविया सरूपवच्छाय यं एकस्मिं थने खीरं होति तेन राजा यापेति, यं दुतियस्मिं [R. 344] थने खीरं होति तेन महेसी यापेति, यं ततियस्मिं थने खीरं होति तेन ब्राह्मणो पुरोहितो यापेति, यं चतुत्थस्मिं थने खीरं होति तेन अग्गिं जुहति, [B. 7] अवसेसेन वच्छको यापेति। सो एवमाह—'एत्तका उसभा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका वच्छतरा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका वच्छतरियो हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका अजा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका उरब्भा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका अस्सा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका रुक्खा छिज्जन्तु यूपत्थाय, एत्तका दब्भा लूयन्तु बरिहिसत्थाया' ति। ये पिस्स ते होन्ति दासा ति वा पेस्सा ति वा

व्याध, मछुआरे, चोर-लुटेरे आदि के कर्म करना स्वीकार कर लेता है और इन्हीं में अपना मन लगाये रखता है। भिक्षुओ ! वह पुद्गल 'परंतप' कहलाता है...... ।

(ग) 'आत्मंतप परंतप' पुद्गल

९. "भिक्षुओ ! और वह पुद्गल क्या कहलाता है, जो आत्मताप के साथ-साथ 'परताप' में भी सुख का अनुभव करता हो ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल राजा या धनाढ्य क्षत्रिय या ब्राह्मण हो। वह नगर के पूर्व द्वार पर एक यज्ञशाला बनवा कर, दाढ़ी-मूँछ मुँडवाकर, मृगछाला धारण कर, शरीर पर घी-तेल लगाकर, मृगशृंग से अपनी पीठ खुजलाते हुए, अपनी पटरानी एवं ब्राह्मण-पुरोहित के साथ उस यज्ञशाला में प्रवेश करे। वह वहाँ गोबर से लिपी नंगी भूमि पर शयन करे। समान वर्ण के बछड़े वाली गाय के एक स्तन के दूध से राजा उदरपोषण करे; दूसरे स्तन से उसकी पटरानी; तीसरे स्तन से ब्राह्मण पुरोहित काम चलावे; और चौथे स्तन के दूध से अग्नि में हवन करें और शेष को बछड़ा पीवे। वह (यजमान) आज्ञा देता है—'इस यज्ञ की पूर्ति के लिए इतने बैल, इतने बछड़े, इतनी बछड़ियाँ, इतनी बकरियाँ, इतनी भेड़े, इतने घोड़े मार जाँय, इतने वृक्ष काटे जाँय, बर्हिष (=वेदी) के लिये इतना कुश काटकर लाया जाय'। उसके दास-दासी या कर्मकर उसकी

कम्मकरा ति वा ते पि दण्डतज्जिता भयतज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

(घ) नेवत्तन्तपो न परन्तपो पुग्गलो

१०. "कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति? इध, भिक्खवे, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति [N. 10] आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। तं धम्मं सुणाति गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अञ्ञतरस्मिं वा कुले पच्चाजातो। सो तं धम्मं सुत्वा तथागते सद्धं पटिलभति। सो तेन सद्धापटिलाभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खति— 'सम्बाधो घरावासो रजापथो, अब्भोकासो पब्बज्जा। नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय, महन्तं [R. 345 B. 8] वा भोगक्खन्धं पहाय, अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय, महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति।

११. "सो एवं पब्बजितो समानो भिक्खूनं सिक्खासाजीवसमापन्नो

यह आज्ञा सुनकर, भय से काँपते, रोते-कलपते यह कार्य पूर्ण करते हैं। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'आत्मंतप परंतप' कहलाता है।

(घ) 'न आत्मंतप न परंतप' पुद्गल

१०. "भिक्षुओ! और कौन सा पुद्गल 'न आत्मंतप न परंतप' कहलाता है···? भिक्षुओ! यहाँ (लोक में) तथागत उत्पन्न होते हैं···पूर्ववत्[1]·····काषाय वस्त्र पहन कर, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाता है।

११. इस तरह प्रव्रजित हुआ वह भिक्षु शील, शिक्षा, जीवनचर्या का साहाय्य

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३५४-३५५ (२७. चूळहत्थिपदोपमसुत्त)।

पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो, लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति। अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो होति दिन्नादायी दिन्नपाटिकङ्खी, अथेनेन सुचिभूतेन अत्तना विहरति। अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी होति आराचारी विरतो मेथुना गामधम्मा। मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो पच्चयिको अविसंवादको लोकस्स। पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, इतो सुत्वा न अमुत्र अक्खाता इमेसं भेदाय, अमुत्र वा सुत्वा न इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय—इति भिन्नानं वा सन्धाता सहितानं वा अनुप्पदाता समग्गारामो समग्गरतो समग्गनन्दी समग्गकरणिं वाचं भासिता होति। फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपिं वाचं भासिता होति। सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो होति कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी, निधानवतिं वाचं भासिता कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं। सो बीजगामभूतगामसमारम्भा पटिविरतो होति, एकभत्तिको होति रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना नच्चगीतवादितविसूकदस्सना पटिविरतो होति। मालागन्ध- [N. 11] विलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना पटिविरतो होति। उच्चासयनमहासयना पटिविरतो होति। जातरूपरजतपटिग्गहणा पटिविरतो होति। आमकधञ्ञपटिग्गहणा पटिविरतो होति। आमकमंसपटिग्गहणा पटिविरतो होति। इत्थिकुमारिकपटिग्गहणा पटिविरतो होति। दासिदासपटिग्गहणा पटिविरतो होति। अजेळकपटिग्गहणा पटिविरतो होति। कुक्कुटसूकरपटिग्गहणा पटिविरतो होति। हत्थिगवस्सवळवपटिग्गहणा पटिविरतो होति। खेत्तवत्थुपटिग्गहणा पटिविरतो होति। दूतेय्यपहिणगमनानुयोगा पटिविरतो होति। कयविक्कया पटिविरतो होति। तुलाकूटकंसकूटमानकूटा पटिविरतो होति। उक्कोटनवञ्चननिकतिसाचियोगा पटिविरतो होति। छेदनवधबन्धनविपरा- [B. 9 R.346] मोसआलोपसहसाकारा पटिविरतो होति।

"सो सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति, समादायेव पक्कमति—सेय्यथापि नाम

पाकर''''पूर्ववत्[१]''''लूट-पाटकर ग्राम-नाश आदि दुष्कर्मों से दूर रहता है।

"अपितु वह सन्तुष्ट रहता है शरीर ढकने मात्र के वस्त्र से और पेट भरने '''पूर्ववत्[१]''''आध्यात्मिक शान्ति का आनन्द लेता है।

१-१. द्र०—पीछे पृ० ३५५-५६-५७।

पक्खी सकुणो येन येनेव डेति, सपत्तभारो व डेति। एवमेव भिक्खु सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति, समादायेव पक्कमति। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेति।

१२. "सो चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा… पे०… घानेन गन्धं घायित्वा… पे०… जिव्हाय रसं सायित्वा… पे०… कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा… पे०… मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। सो इमिना अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो अज्झत्तं अब्यासेकसुखं पटिसंवेदेति।

[N. 12] "सो अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति।

[B. 10] १३. "सो इमिना च अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो, इमाय च अरियाय सन्तुट्ठिया समन्नागतो, इमिना च अरियेन इन्द्रियसंवरेन

---

१२. "वह चक्षुरिन्द्रिय से रूपों को देखकर भी उसके विशेष… पूर्ववत्[1]… निर्मल सुख का अनुभव करता है।

"वह गमन-आगमन में, देखने-सुनने की बातों में… पूर्ववत्[1]… चुप रहना आदि शारीरिक क्रियायें भी समझ-बूझ कर करता है।

१३. "वह इस आर्य जनोचित सदाचार पद्धति एवं इन्द्रियसंयम से, बुद्धिपूर्वक कार्य करने के… पूर्ववत्[1]… अभ्यास करता हुआ स्वचित्त को संशयरहित कर लेता है।

१-१-१. द्र०—पीछे पृ० ३५७-५८-५९।

समन्नागतो, इमिना च अरियेन सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके [R. 347] पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झायचित्तं परिसोधेति, ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, ब्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेति; थीनमिद्धं पहाय विगतथीनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो, थीनमिद्धा चित्तं परिसोधेति; उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति; विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति अकथंकथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति।

"सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे, विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा [N. 13] अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

१४. "सो एवं समाहिते चिते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते, पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि [B. 11] जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेके पि संवट्टकप्पे

"वह इन पाँच नीवरणों को चित्त से हटाकर अवशिष्ट चित्त के उपक्लेशों को जानकर ''' प्रथम ध्यान ''''' द्वितीय ध्यान ''' तृतीय ध्यान ''''' पूर्ववत्[१] ''''' चतुर्थ ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है।

१४. "यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध पर्यवदात्, मलरहित, विकाररहित, मृदु, हल्का ''''' एक जन्म ''' पूर्ववत्[२] ''''' अनुस्मरण करता है।

---

१. द्र० —पीछे पृ० ४६–४७ एवं ३५९—६१।

अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुख- [R. 348] दुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

१५. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उप्पज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति—'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उप्पन्ना; इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं [N. 14] सग्गं लोकं उपपन्ना' ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उप्पज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति।

१६. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति; [B. 12] 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं आसवनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि

---

१५. "यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध, पर्यवदात् ... हो जाने पर ... पूर्ववत्[1] ... स्वकर्म प्रारब्धवशीभूत अन्य प्राणियों के विषय में जानकारी पा लेता है।

१६. "यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध, पर्यवदात् ... हो जाने पर रागादिचित्त मलों के क्षयज्ञानहेतु स्वचित्त को झुकाता है। तब वह 'यह दुःख है', यह दुःखसमु-

---

१. द्र०—पीछे पृ० ४७ एवं ३६१।

चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तन्तपो [R. 349] नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरती" ति।

१७. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

दय है' ··· पूर्ववत्[1] ··· इन बातों को यथातथ रूप से जान लेता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'न आत्मंतप न परंतप' कहलाता है। यह पुद्गल इसी जन्म में शान्त, सुखी, शीतल-स्वभाव, सुखानुभवी एवं ब्रह्मभूत आत्मा से साधनारत रहता है।"

१७. भगवान् ने यह कहा। आप्तमनस्क भिक्षुओं ने भगवान् के इस कथन का अभिनन्दन किया॥

कन्दरकसुत्त समाप्त॥

---

१. द्र० —पीछे पृ० ४८ एवं ३६१–६२ (२७. चूलहत्थिपदोपमसुत्त)।

२. अट्ठकनागरसुत्तं

[N. 15] १. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा आनन्दो वेसालियं विहरति बेलुवगामके। तेन खो पन समयेन दसमो गहपति अट्ठकनागरो पाटलिपुत्तं अनुप्पत्तो होति केनचिदेव करणीयेन। अथ खो दसमो गहपति अट्ठकनागरो येन कुक्कुटारामो येन अञ्ञतरो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो दसमो गहपति अट्ठकनागरो तं भिक्खुं एतदवोच—"कहं नु खो, भन्ते, आयस्मा आनन्दो एतरहि विहरति? दस्सनकामा हि मयं तं आयस्मन्तं आनन्दं" ति।

"एसो, गहपति, आयस्मा आनन्दो वेसालियं विहरति बेलुवगामके" ति।

अथ खो दसमो गहपति अट्ठकनागरो पाटलिपुत्ते तं करणीयं तीरेत्वा येन वेसाली येन बेलुवगामको येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

१. दसमस्स गहपतिस्स पञ्हो

२. एकमन्तं निसिन्नो खो दसमो गहपति अट्ठकनागरो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"अत्थि नु खो, भन्ते आनन्द, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता

---

२. अष्टकनागरसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय आयुष्मान् आनन्द वैशाली के बेलुव-(वेणुमान या वेणु) ग्राम में विहार कर रहे थे। उस समय दशम गृहपति अष्टकनागर अपने किसी निजी कार्य से पाटलिपुत्र आया हुआ था। तब वह अष्टकनागर कुक्कुटाराम में विराजमान किसी भिक्षु के पास पहुँचा; वहाँ पहुँच, वह उस भिक्षु को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने उस भिक्षु से पूछा—"भन्ते! आयुष्मान् आनन्द इस समय साधनाहेतु कहाँ विराज रहे हैं? मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ"।

"गृहपति! ये आयुष्मान् आनन्द इस समय वैशाली के वेणुग्राम में साधना-हेतु विराजमान हैं।"

इसके बाद वह दशम गृहपति अष्टकनागर पाटलिपुत्र में अपना कार्य कर, वैशाली के वेणुग्राम में, जहाँ आयुष्मान् आनन्द विराजमान थे, पहुँचा; पहुँचकर आयुष्मान् आनन्द को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया।

१. दशम गृहपति का प्रश्न

२. एक ओर बैठे दशम गृहपति अष्टकनागर ने आयुष्मान् आनन्द से यह पूछा—"भन्ते आनन्द! क्या सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने ऐसा

सम्मासम्बुद्धेन एकधम्मो अक्खातो यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आता-[B.13] पिनो पहितत्तस्स विहरतो अविमुत्तं चेव चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा च आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं च अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाती" ति ?

"अत्थि खो, गहपति. तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन एकधम्मो अक्खातो यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो [R. 350] पहितत्तस्स विहरतो अविमुत्तं चेव चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा [N. 16] च आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं च अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाती" ति।

"कतमो पन, भन्ते आनन्द, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन एकधम्मो अक्खातो यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो अविमुत्तं चेव चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा च आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं च अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाती" ति ?

२. आयस्मतो आनन्दस्स पञ्हविसज्जना

३. "इध, गहपति, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'इदं पि पठमं झानं अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं। यं खो पन किञ्चि अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं तदनिच्चं

कोई एक मार्ग (उपाय) बताया है, जिससे साधना में लगे उद्योगी, उत्साही साधक भिक्षु का अविमुक्त चित्त मुक्त हो जाते हैं। अक्षीण आस्रव (=चित्तमल) क्षीण हो जाते हैं और वह अप्राप्त (भावी) योगक्षेम (=निर्वाण) प्राप्त कर लेता है ?"

"हाँ, गृहपति! उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने ऐसा एक मार्ग (सरल उपाय) बताया है, जिसके सहारे साधना में लगे···· प्राप्त कर लेता है।"

"भन्ते आनन्द! उस सर्वज्ञ···ने वह कौन सा सरल उपाय बताया है, जिससे साधना में लगा····प्राप्त कर लेता है ?"

२. आयुष्मान आनन्द द्वारा प्रश्न का उत्तर

३. "गृहपति! यहाँ कोई साधक कामों से रहित, अकुशल धर्मों से रहित, विवेक से उत्पन्न, वितर्क व विचार सहित प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यान की साधना करता है। फिर वह समीक्षा करता है कि 'यह प्रथमध्यान तो अभिसंस्कृत

निरोधधम्मं' ति पजानाति। सो तत्थ ठितो आसवानं खयं पापुणाति। नो चे आसवानं खयं पापुणाति, तेनेव धम्मरागेन ताय धम्मनन्दिया पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं पि खो, गहपति, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन एकधम्मो अक्खातो यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो अविमुत्तं चेव चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा च आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं च अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

४. "पुन च परं गहपति, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं····पे०····दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—इदं पि खो दुतियं झानं अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं····पे०····अनुत्तरं योगक्खेमं [R. 351] अनुपापुणाति।

[B. 14] "पुन च परं, गहपति, भिक्खु पीतिया च विरागा ···· पे० ···· ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—इदं पि खो ततियं झानं अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं····पे०····अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

या अभिसञ्चेतयित है, वह अनित्य तथा निरोधस्वभाव वाला है।' फिर भी वह उस प्रथम ध्यान की साधना में लगा हुआ अन्त में आस्रवक्षय पा ही लेता है। यदि किसी कारण वह आस्रवक्षय तक न पहुँच सके तो भी उस सरल उपाय में राग और बहुत दूर तक लगाव रखता हुआ, पाँच अवरभागीय संयोजनों का विनाश कर, अयोनिज देवों में उत्पन्न होने के लिये अपने वर्तमान जन्म से परिनिर्वृत हो जाता है और उस देवलोक से वापस नहीं लौटता। इसलिये गृहपति! उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने इस प्रथमध्यान की साधना को भी चित्तविमुक्ति का सरल उपाय बतलाया है, जिससे साधना में लगे साधक भिक्षु के अपरिक्षीण आस्रव क्षीण हो जाते हैं·····निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

४. "और फिर गृहपति! वह साधक भिक्षु अपने वितर्क-विचारों के उपशमानन्तर, आध्यात्मिक प्रीतिसुखदायक·····द्वितीय ध्यान की साधना करता है। यह साधना करते हुए भी उसके ध्यान में आता है—'यह द्वितीय ध्यान भी तो अभिसंस्कृत (अनित्य) धर्म है·····पूर्ववत्··· प्राप्त कर लेता है।

"और फिर गृहपति! वह साधक भिक्षु, आध्यात्मिक सम्प्रसाद के प्रति वैराग्य होने के कारण,·····तृतीय ध्यान की साधना करता है। वह साधक इस ध्यान की भी समीक्षा करते हुए, अन्त में यह निष्कर्ष निकालता है—'यह ध्यान भी तो अनित्य ही है'···पूर्ववत्····· प्राप्त कर लेता है।

"पुन च परं, गहपति, भिक्खु सुखस्स च पहाना····पे०····चतुत्थं झान उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति – इदं पि खो [N. 17] चतुत्थं झानं अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं ···· पे० ···· अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

"पुन च परं, गहपति, भिक्खु मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा च । इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन । विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यावज्झेन फरित्वा विहरति। स। इति पटिसञ्चिक्खति—'अयं पि खो मेत्ताचेतोविमुत्ति अभिसङ्खता अभिसञ्चेतयिता। यं खो पन किञ्चि अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं तदनिच्चं निरोधधम्मं' ति पजानाति। सो तत्थ ठितो··पे०··· अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

"पुन च परं, गहपति, भिक्खु करुणासहगतेन चेतसा···पे०···मुदितासहगतेन चेतसा···उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यावज्झेन फरित्वा विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अयं पि खो उपेक्खाचेतोविमुत्ति अभिसङ्खता अभिसञ्चेतयिता। यं खो पन किञ्चि अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं तदनिच्चं निरोधधम्मं' ति पजानाति। सो तत्थ ठितो····पे०···· अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

"और फिर ग्रहपति! वह साधक भिक्षु सुख-दुःख के प्रहाण से·····चतुर्थ ध्यान की साधना करता है। वहाँ तक पहुँचने पर भी उसके मन में यही आता है—'यह चतुर्थ ध्यान साधना भी तो अनित्य ही है···पूर्ववत्·····निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"और फिर ग्रहपति! वह साधक भिक्षु मैत्रीसहगत चित्त से एक दिशा को परिपूर्ण कर साधना करता है, वैसे ही दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा को। इस प्रकार ऊपर-नीचे, आड़े-तिरछे, सबका मन रखने वाला, सबके लिये, विपुल, महान्, निष्प्रमाण, निर्वैर, निर्व्यापार मैत्रीसहगत चित्त से समग्र लोकों को परिपूर्ण कर साधना करता है। इस मैत्रीसहगत चित्तविमुक्ति की समीक्षा करने पर उसे यह समझ में आता है—'यह साधना भी अभिसंस्कृत (अनित्य) ही है·····पूर्ववत्···· फिर भी वह इस लोकोत्तर साधना में लगा,·····निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"और फिर ग्रहपति! वह साधक भिक्षु करुणासहगत चित्त से···मुदितासहगत चित्त से···उपेक्षासहगत चित्त से एक दिशा को पूर्ण कर···पूर्ववत्·····निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"पुन च परं, गहपति, भिक्खु सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघ-सञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अयं पि खो आकासानञ्चायतनसमापत्ति अभिसङ्खता अभिसञ्चेयिता। यं खो पन [B. 15] किञ्चि अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं तदनिच्चं निरोधधम्मं' ति पजानाति। सो तत्थ ठितो···पे०·····अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

"पुन च परं, गहपति, भिक्खु सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म [N. 18] 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अयं पि खो विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्ति अभिसङ्खता अभिसञ्चेतयिता। यं खो पन किञ्चि अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं तदनिच्चं निरोधधम्मं' ति पजानाति। सो तत्थ ठितो·····पे०·····अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

"पुन च परं, गहपति, भिक्खु सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्चो'ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सा इति पटिसञ्चि-क्खति—'अयं पि खो आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्ति अभिसङ्खता अभिसञ्चेतयिता। यं खो पन किञ्चि अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं तदनिच्चं निरोधधम्मं' ति पजानाति। सो तत्थ ठितो आसवानं खयं पापुणाति; नो चे आसवानं खयं

"और फिर गृहपति ! वह साधक भिक्षु रूप संज्ञाओं के प्रहाण से, प्रतिघ-संज्ञाओं के समाप्त हो जाने से, नानात्व संज्ञाओं के अचिन्तन से 'आकाश अनन्त है'—इस आकाशानन्त्यायतन समाधि में रत होता है। परन्तु इस समाधि साधना के विषय में भी विचार करने पर उसे यही लगता है—'यह आकाशानन्त्यायतन-समापत्ति भी अभिसंस्कृत ही है·····पूर्ववत्·····लोकोत्तर निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"और फिर गृहपति ! वह साधक भिक्षु आकाशानन्त्यायतन को समतिक्रान्त कर, 'विज्ञान अनन्त है'—इस विज्ञानानन्त्यायन समाधि की साधना करता है। परन्तु इस बारे में गहराई से सोचने पर उसे लगता है कि 'यह विज्ञानानन्त्यायतन-समापत्ति भी अभिसंस्कृत (अनित्य) ही है·····निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"और फिर गृहपति ! वह साधक भिक्षु विज्ञानानन्त्यायतन को भी सब तरफ से अतिक्रान्त कर 'कुछ भी नहीं है'—ऐसी आकिञ्चन्यायतन की साधना करता है। इस साधना को पूरा करते-करते इसके बारे में भी उसे विचार होने लगता है—'अरे ! यह आकिञ्चन्यायतनसमापत्ति भी अभिसंस्कृत व अभिसञ्चेतयित ही है और

पापुणाति, तेनेव धम्मरागेन ताय धम्मनन्दिया पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं पि खो, गहपति, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन एकधम्मो अक्खातो यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो अविमुत्तं चेव चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा च आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं च अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाती" ति।

३. दसमस्स गहपतिस्स पसादो

५. एवं वुत्ते, दसमो गहपति अट्ठकनागरो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"सेय्यथापि, भन्ते आनन्द, पुरिसो एकं निधिमुखं गवेसन्तो सकिदेव एकादस निधिमुखानि अधिगच्छेय्य; एवमेव खो अहं, भन्ते, एकं [R. 353] अमतद्वारं गवेसन्तो सकिदेव एकादस अमतद्वारानि अलत्थं भावनाय। सेय्यथापि, भन्ते, पुरिसस्स अगारं एकादसद्वारं, सो तस्मिं अगारे आदित्ते एकमेकेन पि

सभी अभिसंस्कृत धर्म अनित्य व निरोध धर्मा ही होते हैं'। फिर भी वह यह साधना करता हुआ आस्रवक्षय को तो पा ही लेता है; यदि किसी कारण वह आस्रवक्षय को न पा सके तो भी इस साधना में अत्यन्त राग व आसक्ति होने के कारण, इसके सहारे से पाँच अवरभागीय संयोजनों का प्रहाण कर, वह ऐसी औपपातिक (देव-) योनि में उत्पन्न होता है, जहाँ से परिनिर्वृत होने पर उसे दूसरी योनि में जन्म नहीं लेना पड़ता। गृहपति ! यह एक सरल उपाय उस सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने बताया है, जिसके सहारे उद्योगी, साहसी, निर्लस साधक भिक्षु अप्रमाद एवं इन्द्रियसंयम द्वारा अविमुक्त चित्त से विमुक्त हो जाता है, उसके अपरिक्षीण आस्रव क्षीण हो जाते हैं तथा वह अप्राप्त लोकोत्तर योगक्षेम (=निर्वाण) प्राप्त कर लेता है"।

३. दशम गृहपति का मनः प्रसाद

५. ऐसा कहने पर, दशम गृहपति अष्टकनागर आयुष्मान् आनन्द से यों बोला—"भन्ते आनन्द ! जैसे कोई पुरुष अपने लिए सुखदायक एक खजाने (=निधि) की खोज करता हुआ अचानक (एक ही बार) ग्यारह (११) खजानों के मुखों (दरवाजों) पर पहुँच जाये; उसी तरह भन्ते ! मैं भी साधना के एक ही मार्ग (उपाय) को खोजने निकला था कि आप जैसे ज्ञानी पुरुष से उक्त साधना के एक ही साथ ग्यारह उपाय पा लिये। भन्ते आनन्द ! जैसे किसी पुरुष के पास ग्यारह दरवाजों वाला भवन हो, उस भवन में अचानक आग लग जाये तो वह उस भवन के किसी भी एक दरवाजे से निकल आत्मरक्षा कर सकता है; उसी

द्वारेन सक्कुणेय्य अत्तानं सोत्थिं कातुं; एवमेव खो अयं, भन्ते, इमेसं एकादसन्नं अमतद्वारानं एकमेकेन पि अमतद्वारेन सक्कुणिस्सामि अत्तानं सोत्थिं कातुं। इमेहि नाम, भन्ते, अञ्ञतित्थिया आचरियस्स आचरियधनं परियेसिस्सन्ति; [B. 16] किमङ्ग, पनाहं आयस्मतो आनन्दस्स पूजं न करिस्सामी" ति !

[N. 19] अथ खो दसमो गहपति अट्ठकनागरो पाटलिपुत्तकं च वेसालिकं च भिक्खुसङ्घं सन्निपातेत्वा पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि, एकमेकं च भिक्खुं पच्चेकं दुस्सयुगेन अच्छादेसि, आयस्मन्तं च आनन्दं तिचीवरेन अच्छादेसि, आयस्मतो च आनन्दस्स पञ्चसत-विहारं कारापेसी ति ॥

तरह भन्ते ! मैं भी निर्वाण तक पहुँचाने वाले इन ग्यारह उपायों में से किसी एक उपाय के सहारे से ही अपना भला कर सकता हूँ। भन्ते ! दूसरे मत वाले उपासक आचार्य से सदुपदेश प्राप्त कर उसके बदले में गुरुदक्षिणा देने की चाह रखते हैं; तो क्यों न भन्ते ! मैं भी आपको, इस उपाय-बोध के बदले, सम्मानित करूँ !"

इसके बाद दशम गृहपति अष्टकनागर ने पाटलिपुत्र एवं वैशाली के भिक्षु-सङ्घ को सादर एकत्र कर, उसे अपने हाथ से बनाये सुन्दर, स्वादिष्ट भोजन से सन्तृप्त किया और प्रत्येक भिक्षु को एक-एक चीवर-युगल दान किया। साथ ही आयुष्मान् आनन्द को तीनों चीवर (=संघाटि, उत्तरासंग, और अन्तर्वासक) ओढ़ाये और आयुष्मान् आनन्द को, भिक्षुओं की साधना हेतु, पाँच सौ भवन बनवाकर दान में दिये ॥

अट्ठकनागरसुत्त समाप्त ॥

३. सेखसुत्तं

१. सक्यानं नवं सन्थागारं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति [N. 20] कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। तेन खो पन समयेन कापिलवत्थवानं सक्यानं नवं सन्थागारं अचिरकारितं होति अनज्झावुत्थं समणेन वा ब्राह्मणेन वा केनचि वा मनुस्सभूतेन। अथ खो कापिलवत्थवा सक्या येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो कापिलवत्थवा सक्या भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, कापिलवत्थवानं सक्यानं नवं सन्थागारं अचिरकारितं अनज्झावुत्थं समणेन वा ब्राह्मणेन वा केनचि वा मनुस्सभूतेन। तं, भन्ते, भगवा पठमं परिभुञ्जतु। भगवता पठमं परिभुत्तं पच्छा कापिलवत्थवा सक्या परिभुञ्जिस्सन्ति। तदस्स कापिलवत्थवानं सक्यानं दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। [R. 354] अथ खो कापिलवत्थवा सक्या भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन नवं सन्थागारं तेनुपसङ्कमिंसु; उप-

---

३. शैक्ष्यसूत्र

१. शाक्यों का नया पंचायतभवन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्यदेश के कपिलवस्तुनगरस्थित न्यग्रोधाराम में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय कपिलवस्तुनगरी के शाक्यों ने एक नया संस्थागार (=पंचायतभवन) बनवाया था, जिसमें अभी तक कोई भी श्रमण-ब्राह्मण या मनुष्य नहीं ठहरा था। तब वे कपिलवस्तुवासी शाक्यजन जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे; वहाँ पहुँच, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे शाक्यजन भगवान् से यों निवेदन करने लगे—

"भन्ते ! यहाँ हम कपिलवस्तुवासी शाक्यों ने एक नया संस्थागार बनवाया है, जिसमें अभी तक कोई भी श्रमण-ब्राह्मण या मनुष्य नहीं ठहरा है। उसमें आप भगवान् सर्वप्रथम निवास करें। आप के निवास के बाद ही हम कपिलवस्तुवासी शाक्य उसे काम में लेंगे। यह हम कपिलवस्तुवासी शाक्यों के लिये चिरकाल तक मङ्गलमय एवं शुभप्रद होगा।" भगवान् ने उनके इस कथन को मौन रहकर स्वीकार कर लिया। इसके बाद वे कपिलवस्तुवासी शाक्य भगवान् की स्वीकृति जान आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, उस नवनिर्मित पंचायत-

सङ्कमित्वा सब्बसन्थरिं सन्थागारं सन्थरित्वा आसनानि पञ्ञापेत्वा उदकमणिकं पतिट्ठापेत्वा तेलप्पदीपं आरोपेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो कापिलवत्थवा सक्या भगवन्तं एतदवोचुं—"सब्बसन्थरिं सन्थतं, भन्ते, सन्थागारं, आसनानि पञ्ञत्तानि, उदकमणिको पतिट्ठापितो, तेलप्पदीपो आरोपितो। यस्सदानि, [B. 17] भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती" ति। अथ खो भगवा निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन सन्थागारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पादे पक्खालेत्वा सन्थागारं पविसित्वा मज्झिमं थम्भं निस्साय पुरत्थाभिमुखो [N. 21] निसीदि। भिक्खुसङ्घो पि खो पादे पक्खालेत्वा सन्थागारं पविसित्वा पच्छिमं भित्तिं निस्साय पुरत्थाभिमुखो निसीदि, भगवन्तं येव पुरक्खत्वा। कापिलवत्थवा पि खो सक्या पादे पक्खालेत्वा सन्थागारं पविसित्वा पुरत्थिमं भित्तिं निस्साय पच्छिमाभिमुखा निसीदिंसु, भगवन्तं येव पुरक्खत्वा।

२. आनन्दो धम्मदेसनाय अनुञ्ञातो

अथ खो भगवा कापिलवत्थवे सक्ये बहुदेव रत्तिं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—

भवन में पहुँचे; वहाँ पहुँच उस पंचायतभवन को साफ कर, आसन बिछा, जल के मटके (घड़े) यथास्थान रख, तैल का दीपक जला, पुन: भगवान् के पास पहुँचे; वहाँ पहुँच, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हो भगवान् से उन्होंने निवेदन किया—"भन्ते! हमने पंचायतभवन को सब तरह से साफ कर, आसन बिछा, जल के मटके (घड़े) यथास्थान रख, तैल के दीपक जला दिये हैं। अब आप यदि उचित समझें तो वहाँ चलकर विराजें।" तब भगवान् पहन कर, पात्र-चीवर ले, भिक्षुसङ्घ के साथ उक्त पंचायतभवन पहुँचे; वहाँ पहुँच, पैर धो, पंचायतभवन के बीच के खम्भे के सहारे पूर्व की ओर मुँह कर, विराजमान हुए। बाद में भिक्षुसङ्घ भी पैर धोकर, संस्थागार में प्रविष्ट हो, पश्चिम दीवाल का सहारा ले, भगवान् की ओर मुँह करके बैठ गया। कपिलवस्तुवासी शाक्य भी पैर धोकर, संस्थागार में प्रविष्ट हो, पूर्व की तरफ वाली भीत के सहारे, पश्चिम की ओर मुँहकर, भगवान् के सामने बैठ गये।

२. आनन्द को धर्मोपदेश की अनुज्ञा

इसके बाद भगवान् ने बहुत रात बीतने तक, उन कपिलवस्तुवासी शाक्यों को धर्मोपदेश द्वारा आध्यात्मिक चर्चा से समुत्तेजित, सम्प्रहृष्ट तथा सन्तुष्ट कर, अन्त में आयुष्मान् आनन्द को (सम्बोधन कर) कहा—"आनन्द! अब तुम इन कपिलवस्तु-

"पटिभातु तं, आनन्द, कापिलवत्थवानं सक्यानं सेखो पाटिपदो। पिट्ठि मे आगिलायति; तमहं आयमिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञापेत्वा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि, पादे पादं अच्चाधाय, सतो सम्पजानो, उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा।

३. सेखो पाटिपदो

२. अथ खो आयस्मा आनन्दो महानामं सक्यं आमन्तेसि—"इध, महानाम, अरियसावको सीलसम्पन्नो होति, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति, भोजने मत्तञ्ञू होति, जागरियं अनुयुत्तो होति, सत्तहि सद्धम्मेहि समन्नागतो होति, चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी।

(१) सीलसम्पन्नो होति

३. "कथं च, महानाम, अरियसावको सीलसम्पन्नो होति ? [R. 355] इध, महानाम, अरियसावको सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति

वासी शाक्यों से उपासकों के योग्य धर्मचर्चा करो। मेरी पीठ बैठे-बैठे दुख चली है; अब मैं कुछ देर आराम करूँगा"। "भन्ते ! जैसी आपकी आज्ञा"—कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् की आज्ञा स्वीकार कर ली। इसके बाद भगवान् सङ्घाटि चौहरी (=चतुर्गुण) कर, उसे बिछा, दाहिने पार्श्व से सिंहशय्या-आसन लगा, पैर पर पैर (बायें घुटने पर दाहिना पैर) रख, स्मृति सम्प्रजन्ययुक्त हो, व्युत्थान संज्ञा की भावना करते हुए लेट गये।

३. शैक्ष्य मार्गारूढ़ कैसे होता है

२. इसके बाद आयुष्मान् आनन्द ने महानाम शाक्य को (सम्बोधन कर) कहना प्रारम्भ किया—"महानाम ! इस साधनाक्रम में कोई आर्यश्रावक शीलवान्, इन्द्रियसंयमी, भोजन में मात्रा का ध्यान रखने वाला, सदा सावधान रखने वाला, सात धर्मों के आचरण में निरन्तर ध्यान लगाये रखने वाला और तत्काल फलप्रद चारों ध्यानों का चित्त में सदा अभ्यास करने वाला होता है तथा इन ग्यारह धर्मों का अनायास ही यथेच्छ लाभ करता है।

(१) शीलसम्पन्नता

३. "महानाम ! वह आर्यश्रावक 'शीलवान्' कैसे कहलाता है ? महानाम ! यहाँ कोई आर्यश्रावक अपने शील की रक्षा करता हुआ, सदा प्रातिमोक्ष नियमों के

आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एवं खो, महानाम, अरियसावको सीलसम्पन्नो होति।

(२) इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति

[N. 22] "कथं च, महानाम, अरियसावको इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति ? इध, महानाम, अरियसावको चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं [B. 18] अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति चक्खुन्द्रियं; चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा…पे०…घानेन गन्धं घायित्वा …पे०…जिव्हाय रसं सायित्वा …पे०…कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा…पे०… मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्त-ग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटि-पज्जति; रक्खति मनिन्द्रियं; मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। एवं खो, महानाम, अरियसावको इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति।

(३) भोजने मत्तञ्ञू होति

"कथं च, महानाम, अरियसावको भोजने मत्तञ्ञू होति ? इध,

आचरण का ध्यान रख, छोटे से छोटे त्याज्य कर्मों में भी भय मानने वाला होता है और भगवदुक्त शिक्षापदों को ग्रहण करने का संकल्प ले, उनके अभ्यास का निरन्तर ध्यान रखता है। महानाम ! ऐसा आर्यश्रावक 'शीलवान्' कहलाता है।

(२) इन्द्रियसंयम

"महानाम ! और वह आर्यश्रावक 'इन्द्रियसंयमी' कैसे होता है ? महानाम! यहाँ कोई आर्यश्रावक चक्षुरिन्द्रिय से रूप को देखकर उस के आकार या लिङ्ग के विषय में निरपेक्ष रहता है; या कभी चक्षुरिन्द्रिय के विषयों में आकृष्ट हो उनमें यत्किञ्चित् रागादि के हो जाने पर उस (रागादि) के प्रहाण के लिये सतत प्रयत्नशील रहता है; उससे अपनी चक्षुरिन्द्रिय को बचाये रखने को प्रयास करता है। श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द……घ्राणेन्द्रिय से गन्ध……रसनेन्द्रिय से रस…कायेन्द्रिय से स्प्रष्टव्य विषय…मन-इन्द्रिय से धर्म का ग्रहण कर उस के आकार या लिङ्ग के विषय में निरपेक्ष रहता है; या कभी…मन-इन्द्रिय को बचाये रखने का प्रयास करता है। महानाम ! ऐसा आर्यश्रावक 'इन्द्रियसंयमी' कहलाता है।

(३) भोजन में मात्रा का ज्ञान

"महानाम ! और कौन आर्यश्रावक 'भोजन में मात्रा का ज्ञान' रखने वाला

महानाम, अरियसावको पटिसङ्खा योनिसो आहारं आहारेति—'नेव दवाय न मण्डनाय न विभूसनाय; यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय। इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो चा' ति। एवं खो, महानाम, अरियसावको भोजने मत्तञ्ञू होति।

(४) जागरियं अनुयुत्तो होति

"कथं च महानाम, अरियसावको जागरियं अनुयुत्तो होति? इध, महानाम, अरियसावको दिवसं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति; रत्तिया पठमं यामं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति; रत्तिया मज्झिमं यामं दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेति, पादे पादं अच्चाधाय, सतो सम्पजानो, उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा; रत्तिया पच्छिमं यामं पच्चुट्ठाय चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति। एवं खो, महानाम, अरियसावको जागरियं अनुयुत्तो होति।

(५) सत्तहि सद्धम्मेहि समन्नागतो होति

४. "कथं च, महानाम, अरियसावको सत्तहि सद्धम्मेहि [N.23,R.356]

होता है? महानाम! यहाँ कोई आर्यश्रावक भोजन को इस तरह ग्रहण करता है—'जिससे उसका शरीर साधना के लिये सुरक्षित मात्र रहे, परन्तु उससे न पीड़ा हो, न शरीर में चमक-दमक आने पावे, न वह अधिक पुष्ट हो। वह इतना ही भोजन ग्रहण करे जो भूख शान्त करने और ब्रह्मचर्य-साधना में सहायक हो। वह अपने भोजन की मात्रा का हमेशा ध्यान रखता है कि उससे पुरानी वेदनाओं का नाश होता रहे और नई वेदनाएँ उत्पन्न न हो पावे, इससे इतना भर हो कि उसका शरीर-यात्रा ठीक से चलती रहे, किसी प्रकार का रोग न होने पावे तथा धर्मसाधना में भी कोई अन्तर य न आये'। महानाम! ऐसा आर्यश्रावक 'भोजन के विषय में मात्रज्ञ' होता है।

(४) जागरणशीलता

"महानाम! और कौन आर्यश्रावक 'जागरणशील' (सावहितचित्त) कहलाता है? महानाम! यहाँ कोई आर्यश्रावक दिन में चंक्रमण ... पूर्ववत्[1]... आवरणीय धर्मों से स्वचित्त को मुक्त करता है। महानाम! ऐसा आर्यश्रावक 'जागरणशील' कहलाता है।

(५) सप्तधर्मसम्पन्नता

४. "महानाम! और कैसे कोई आर्यश्रावक 'सात सद्धर्मों से युक्त' कहलाता

---

१. द्र०—पीछे पृ० ५१८ (३९. महाअस्सपुरसुत्त)।

समन्नागतो होति ? इध, महानाम, अरियसावको सद्धो होति, सद्दहति तथागतस्स बोधिं—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा'ति। हिरिमा [B. 19] होति, हिरीयति कायदुच्चरितेन वचीदुच्चरितेन मनोदुच्चरितेन, हिरीयति पापकानं अकुसलान धम्मानं समापत्तिया। ओत्तप्पी होति, ओत्तप्पति कायदुच्चरितेन वचीदुच्चरितेन मनोदुच्चरितेन, ओत्तप्पति पापकानं अकुसलानं धम्मानं समापत्तिया। बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो। ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्था सब्यञ्जना केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। सतिमा होति, परमेन सति-नेपक्केन समन्नागतो, चिरकतं पि चिरभासितं पि सरिता अनुस्सरिता। पञ्ञवा होति, उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो, अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया। एवं खो, महानाम, अरियसावको सत्तहि सद्धम्मेहि समन्नागतो होति।

है ? महानाम ! यहाँ कोई साधक (१) तथागत की बोधि (ज्ञान) के प्रति श्रद्धालु होत है, उसके प्रति श्रद्धा भी रखता है—'ये भगवान्… पूर्ववत्[१]…देवमनुष्यों के उपदेष्टा बुद्ध हैं'। (२) वह लज्जालु होता है, कायिक, वाचिक, मानसिक दुष्कर्मों के करने से लज्जा (संकोच) करता है। (३) और उन दुष्कर्मों से घृणा करता है, दूर रहने का प्रयास करता है। (४) अपने से अधिक ज्ञानियों से धर्मचर्चा सुनता है, सुनी हुई को धारण करता है और उसका संग्रह करता है। वह ऐसे धर्मों का जो, आदि, मध्य और अन्त में कल्याणप्रद, सार्थक, सव्यंजन एवं ब्रह्मचर्यसाधना में सहायक हों, अनेक ज्ञानियों से सुनता है, सुने हुए का मनन करता है और उनको निदिध्यासन द्वारा मन में बैठाने का प्रयत्न करता है। (५) वह अपने अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये सतत प्रयत्नशील रहता है, और कुशल धर्मों के ग्रहण में स्थिर-चित्त हो, जूआ न फेंका हुआ सा होकर, दृढ़तया उत्साहित रहता है। (६) वह स्मृति युक्त होता है, अत्यन्त परिपक्व स्मृतियुक्त होता है, वह बहुत समय पूर्व किये और कहे को स्मरण रखने वाला होता है। (७) वह प्रज्ञावान् भी होता है, उत्पत्ति-विनाश को प्राप्त होने वाली, भली भाँति दुःख-क्षय की ओर ले जाने वाली, वस्तु के अन्तस्तल तक पहुँचने वाली प्रज्ञा से युक्त होता है। महानाम ! ऐसा आर्यश्रावक 'सात सद्धर्मों से युक्त' कहलाता है।

---

१. द्र—पीछे पृ० ७१ (७. वत्थसुत्त)।

५. "कथं च, महानाम, अरियसावको चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी ? इध, महानाम, अरियसावको विविच्चेव कामेहि·····पे०·····पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति, वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं···दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, पीतिया च विरागा··· ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, महानाम, अरियसावको [N. 24] चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी।

४. अपुच्चण्डताय समापन्नो

६. "यतो खो, महानाम, अरियसावको एवं सीलसम्पन्नो होति, एवं इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति, एवं भोजने मत्तञ्ञू होति, एवं जागरियं अनुयुत्तो होति, एवं सत्तहि सद्धम्मेहि समन्नागतो होति, एवं चतुन्नं झानानं [R. 357] आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, अयं वुच्चति, महानाम, अरियसावको सेखो पाटिपदो।

"अपुच्चण्डताय समापन्नो, भब्बो अभिनिब्भिदाय, भब्बो [B. 20]

---

५. "महानाम ! और वह साधक कैसे उन सद्य:फलप्रद चारों चैतसिक ध्यानों को बिना किसी विशेष प्रयास के पूर्णत: प्राप्त कर पाता है ? महानाम ! वह आर्यश्रावक कामभोगों एवं अकुशलधर्मों से दूर···· प्रथम ध्यान की साधना करता है, (धीरे-धीरे) उन प्रथमध्यानान्त:पाती वितर्क-विचारों के शमन के बाद आध्यात्मिक सम्प्रसाद (प्रीतिसुख)·····द्वितीय ध्यान की साधना करता है, (धीरे-धीरे) उस प्रीति-सुख के भी समाप्त हो जाने से·····तृतीय ध्यान की साधना करता है, फिर उस सुख-दु:ख के प्रहाण से पूर्व ही सौमनस्य-दौर्मनस्य के विनष्ट हो जाने से···चतुर्थ ध्यान की साधना करता है। महानाम ! इस तरह वह आर्यश्रावक सद्य: फलप्रद···पूर्णत: प्राप्त कर लेता है।

४. स्वस्थ अण्डे के समान

६. "महानाम ! जब आर्यश्रावक इस प्रकार शीलसम्पन्न होता है, इन्द्रियसंयमी होता है, भोजन में मात्रज्ञ होता है, जागरण में तत्पर होता है, सात धर्मों से सम्पन्न होता है, और तत्काल फलप्रद चारों ध्यानों का चित्त में सदा अभ्यास करने वाला होता है, महानाम ! वह आर्यश्रावक मार्गारूढ़ शैक्ष्य कहलाता है।

"वह मार्गारूढ़ शैक्ष्य स्वस्थ अण्डे के समान निर्भेद (=अन्तस्तल तक

सम्बोधाय, भब्बो अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय। सेय्यथापि, महानाम, कुक्कुटिया अण्डानि अट्ठ वा दस वा द्वादस वा तानस्सु कुक्कुटिया सम्मा अधिसयितानि सम्मा परिसेदितानि सम्मा परिभावितानि; किञ्चापि तस्सा कुक्कुटिया न एवं इच्छा उप्पज्जेय्य—'अहो वतिमे कुक्कुटपोतका पादनखसिखाय वा मुखतुण्डकेन वा अण्डकोसं पदालेत्वा सोत्थिना अभिनिब्भिज्जेय्युं' ति, अथ खो भब्बा व ते कुक्कुटपोतका पादनखसिखाय वा मुखतुण्डकेन वा अण्डकोसं पदालेत्वा सोत्थिना अभिनिब्भिज्जितुं। एवमेव खो, महानाम, यतो अरियसावको एवं सीलसम्पन्नो होति, एवं इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति, एवं भोजने मत्तञ्ञू होति, एवं जागरियं अनुयुत्तो होति, एवं सत्तहि सद्धम्मेहि समन्नागतो होति, एवं चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, अयं वुच्चति, महानाम, अरियसावको सेखो पाटिपदो अपुच्चण्डताय समापन्नो, भब्बो अभिनिब्भिदाय, भब्बो सम्बोधाय, भब्बो अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय।

७. "स खो सो, महानाम, अरियसावको इमं येव अनुत्तरं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं आगम्म अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो ... पे ... इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं [N. 25] अनुस्सरति, अयमस्स पठमाभिनिब्भिदा होति कुक्कुटच्छापकस्सेव अण्डकोसम्हा।

पहुँचने योग्य), सम्बोधि एवं निर्वाण प्राप्ति के योग्य है। महानाम! जैसे आठ, दश या बारह मुर्गी के अण्डे हों, वे मुर्गी द्वारा अच्छी तरह से सेये गये हों, स्वेदित (= गर्मी) पहुँचाये गये हों, भावित हों, उस समय उस मुर्गी की यह इच्छा भले ही न हो कि 'मेरे ये बच्चे (चूजे) पाद से, नख से, मुखतुण्ड (चोंच) से अण्डे को फोड़े जाकर, सही ढंग से निकाल आयें' तो भी वे मुर्गी के बच्चे पाद, नख, चोंच से अण्डा फोड़कर सही ढंग से निकल जाने योग्य हैं; इसी तरह, महानाम! यह आर्यश्रावक इस प्रकार शीलसम्पन्न होता है ... सम्बोधि एवं निर्वाण प्राप्ति के योग्य है।

[प्रसङ्गवश त्रिविध अभिनिर्भिधा (= चोंच से फोड़ बाहर निकलना) का उल्लेख कर रहे हैं।]

७. "महानाम! वह आर्यश्रावक इसी उपेक्षा-स्मृतिपरिशुद्धि का सहारा लेकर अपने अनेक पूर्वजन्मों को स्मरण करता है, जैसे—एक जन्म ..... पूर्ववत् ..... इस तरह आकार व उद्देश्य सहित अपने अनेक पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है, यह

"स खो सो, महानाम, अरियसावको इमं येव अनुत्तरं उपेक्खासति-पारिसुद्धिं आगम्म दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति, अयमस्स दुतियाभिनिब्भिदा होति कुक्कुटच्छापकस्सेव अण्डकोसम्हा।

"स खो सो, महानाम, अरियसावको इमं येव अनुत्तरं उपेक्खासति-पारिसुद्धिं आगम्म आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं [R.358] दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति, अयमस्स ततियाभिनिब्भिदा होति कुक्कुटच्छापकस्सेव अण्डकोसम्हा।

५. विज्जाचरणसम्पन्नो

८. "यम्पि, महानाम, अरियसावको सीलसम्पन्नो होति, [B. 21] इदम्पिस्स होति चरणस्मिं; यम्पि, महानाम, अरियसावको इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति, इदम्पिस्स होति चरणस्मिं; यम्पि, महानाम, अरियसावको भोजने मत्तञ्ञू होति, इदम्पिस्स होति चरणस्मिं; यम्पि, महानाम, अरियसावको जागरियं अनुयुत्तो होति, इदम्पिस्स होति चरणस्मिं; यम्पि, महानाम, अरियसावको सत्तहि सद्धम्मेहि समन्नागतो होति, इदम्पिस्स होति चरणस्मिं; यम्पि, महानाम, अरियसावको चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, इदम्पिस्स होति चरणस्मिं।

उस आर्यश्रावक की स्वस्थ कुक्कुटाण्डस्थित चूजे की तरह प्रथम अभिनिर्भिधा होती है। (१)

"महानाम ! वह आर्यश्रावक इसी उपेक्षा-स्मृतिपरिशुद्धि के सहारे, विशुद्ध दिव्यदृष्टि से प्राणियों का नाना योनियों में आना-जाना.....देखता है, यह उसकी..... द्वितीय अभिनिर्भिधा होती है। (२)

"महानाम ! वही आर्यश्रावक इस उपेक्षास्मृतिपरिशुद्धि के सहारे आस्रवों का क्षय हो जाने के कारण, अनास्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति का इसी जन्म में स्वयं साक्षात्कार कर लेता है, यह उसकी.....तृतीय अभिनिर्भिधा कहलाती है। (३)

५. विद्याचरणसम्पन्न

८. "महानाम ! इस आर्यश्रावक की यह शीलसम्पन्नता, इन्द्रियसंयम, भोजन में मात्रज्ञता, कर्त्तव्यों में सावधान रहना, सात धर्मों से युक्त रहना, चारों चैतसिक ध्यानों से सम्पन्न रहना—ये सब उसके आचरण की श्रीवृद्धि में सहायक हैं।

"यं च खो, महानाम, अरियसावको अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो....पे...इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, इदम्पिस्स होति विज्जाय; यम्पि, महानाम, अरियसावको दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति, इदम्पिस्स होति विज्जाय। यम्पि, महानाम, अरियसावको [N. 26] आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति, इदम्पिस्स होति विज्जाय।

अयं वुच्चति, महानाम, अरियसावको विज्जासम्पन्नो इति पि चरणसम्पन्नो इति पि विज्जाचरणसम्पन्नो इति पि।

९. "ब्रह्मुनापेसा, महानाम, सनङ्कुमारेन गाथा भासिता—

'खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं ये गोत्तपटिसारिनो।
विज्जाचरणसम्पन्नो सो सेट्ठो देवमानुसे' ति॥

सा खो पनेसा, महानाम, ब्रह्मुना सनङ्कुमारेन गाथा सुगीता नो दुग्गीता, सुभासिता नो दुब्भासिता, अत्थसंहिता नो अनत्थसंहिता, अनुमता भगवता"ति। [B. 22] अथ खो भगवा उट्ठहित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—

"और महानाम ! वह आर्यश्रावक अपने पूर्वजन्मों की स्मृति, दूसरों के पूर्वजन्मों की स्मृति तथा उसके द्वारा किया गया स्वकीय आस्रवों के क्षय का प्रयत्न—ये सब उसके द्वारा अधिगत विद्या से प्राप्य हैं।

"महानाम ! इन उभयविध गुणों से युक्त वह आर्यश्रावक विद्यासम्पन्न भी कहलाता है और आचरणसम्पन्न भी तथा विद्याचरणसम्पन्न भी।

९. "ब्रह्मा जी ने भी इसी सन्दर्भ में अपने शिष्य सनत्कुमार को यह गाथा (श्लोक) कही थी—

'(भो सनत्कुमार !) गोत्र आदि का ध्यान रखने वाले इस देव-मनुष्य समाज में क्षत्रियश्रेष्ठ माना गया है; परन्तु उससे भी श्रेष्ठ है विद्याचरणसम्पन्न साधक (फिर वह भले ही किसी भी जाति में उत्पन्न हुआ हो)।'

तो महानाम ! ब्रह्मा ने सनत्कुमार को जो इस गाथा द्वारा कहा है, वह उचित ही कहा है, उसमें कुछ भी अनुचित नहीं जान पड़ता, ये सार्थक ही है इसमें निरर्थक कुछ भी नहीं, भगवान् भी इससे सहमत हैं।"

इसके बाद भगवान् आराम करके उठे और आनन्द की प्रशंसा करते हुए

"साधु साधु, आनन्द, साधु खो त्वं, आनन्द, कापिलवत्थवानं सक्यानं सेखं पाटिपदं अभासी" ति।

१०. इदमवोचायस्मा आनन्दो। समनुञ्ञो सत्था अहोसि। [R. 359] अत्तमना कापिलवत्थवा सक्या आयस्मतो आनन्दस्स भासितं अभिनन्दुं ति।

बोले—"बहुत ठीक, आनन्द ! बहुत ठीक, तुमने इन कपिलवस्तुवासी शाक्यों को शैक्ष्यों (मार्गारूढ़ साधकों) द्वारा करणीय धर्मों का बहुत ही उचित एवं सुन्दर उपदेश किया है"।

१०. आयुष्मान् आनन्द ने शाक्यों को यों उपदेश किया। भगवान् उससे प्रसन्न हुए। कपिलवस्तुवासी शाक्यों ने भी आयुष्मान् आनन्द के इस कथन का अभिनन्दन किया॥

सेखसुत्त समाप्त

४. पोतलियसुत्तं

१. गहपतिनो वोहारसमुच्छेदो

[N. 27] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा अङ्गुत्तरापेसु विहरति आपणं नाम अङ्गुत्तरापानं निगमो। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय आपणं पिण्डाय पाविसि। आपणे पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येनञ्ञतरो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। तं वनसण्डं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मि रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। पोतलियो पि खो गहपति सम्पन्ननिवासनपावुरणो छत्तुपाहनाहि जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येन सो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं वनसण्डं अज्झोगाहेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो पोतलियं गहपतिं भगवा एतदवोच—"संविज्जन्ति खो, गहपति, आसनानि; सचे आकङ्खसि निसीदा" ति। एवं वुत्ते, पोतलियो गहपति "गहपतिवादेन मं समणो गोतमो समुदाचरती" ति कुपितो अनत्तमनो तुण्ही अहोसि। दुतियं पि खो भगवा.....पे०..... ततियं पि खो भगवा पोतलियं गहपतिं एतदवोच—

---

४. पोतलियसूत्र

१. व्यवहार समुच्छेद पर गृहपति का भगवान् से संवाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) अंगुत्तराप देश में तद्देशवासी व्यवसायियों के आपण नामक कस्बे में साधना हेतु ठहरे हुए थे। उस समय भगवान् कभी पूर्वाह्न में पात्र-चीवर ले, भिक्षाहेतु आपण गये। आपण में भिक्षाकर्म से निवृत्त हो दिन की साधना के लिये नजदीक के वनप्रदेश में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे किसी वृक्ष के नीचे दिन की साधना के लिये विराजमान हुए। उसी समय पोतलिय नामक गृहपति भी अच्छे वस्त्र धारण किये हुए, जूता पहने, हाथ में छाता लिये, कहीं से पैदल ही चलता हुआ उस वनप्रदेश में पहुँचा; वहाँ पहुँचकर, बनप्रदेश के भीतरी भाग में जा, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा; वहाँ पहुँच, भगवान् से कुशल मङ्गल पूछ, एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े उस पोतलिय गृहपति से भगवान् ने कहा—"गृहपति! आसन मौजूद है; यदि तुम चाहो तो उस पर बैठ सकते हो"। ऐसा कहे जाने पर, पोतलिय गृहपति "अरे! ये श्रमण गौतम मुझे अब भी गृहपति सम्बोधन से सम्बोधित कर रहे हैं"— यों कुपित हो, नाराज हो चुप हीं रह गया। भगवान् ने दुबारा...तिबारा भी

"संविज्जन्ति खो, गहपति, आसनानि; सचे आकङ्खसि निसीदा" ति। एवं वुत्ते, पोतलियो गहपति "गहपतिवादेन मं समणो गोतमो समुदाचरती" ति कुपितो अनत्तमनो भगवन्तं एतदवोच—"तयिदं, भो गोतम, नच्छन्नं, [R. 360] तयिदं नप्पतिरूपं, यं मं त्वं गहपतिवादेन समुदाचरसी" ति।

"ते पि ते, गहपति, आकारा, ते लिङ्गा, ते निमित्ता यथा तं [B. 23] गहपतिस्सा" ति।

"यथा हि पन मे, भो गोतम, सब्बे कम्मन्ता पटिक्खित्ता, [N. 28] सब्बे वोहारा समुच्छिन्ना" ति।

"यथा कथं पन ते, गहपति, सब्बे कम्मन्ता पटिक्खित्ता, सब्बे वोहारा समुच्छिन्ना" ति?

"इध मे, भो गोतम, यं अहोसि धनं वा धञ्ञं वा रजतं वा जातरूपं वा सब्बं तं पुत्तानं दायज्जं निय्यातं, तत्थाहं अनोवादी अनुपवादी घासच्छादनपरमो विहरामि। एव खो मे, भो गोतम, सब्बे कम्मन्ता पटिक्खित्ता, सब्बे वोहारा समुच्छिन्ना" ति।

"अञ्ञथा खो त्वं, गहपति, वोहारसमुच्छेदं वदसि, अञ्ञथा च पन अरियस्स विनये वोहारसमुच्छेदो होती" ति!

उससे यही कहा —"गृहपति ! आसन.....बैठ सकते हो"। परन्तु पोतलिय ग्रहपति ..... नाराज ही खड़ा रहा और बोला—"भो गौतम ! यह उचित नहीं है और मेरे अनुरूप नहीं है कि आप मुझे अब भी 'गृहपति' शब्द से सम्बोधित करें"।

"गृहपति ! तुम्हारा भी इस समय वही रूप है, वही वेशभूषा है, वही छाता आदि चिह्न है, जो किसी गृहपति के हुआ करते हैं।"

"भो गौतम ! (क्या आप नहीं जानते कि) मैंने (अपने गृहस्थ धर्म के) सभी कर्म-व्यवहार या तो पूर्ण कर लिये हैं या उन्हें त्याग दिया है !"

"गृहपति ! कैसे तुमने अपने सभी कर्म-व्यवहार पूर्ण कर लिये हैं या त्याग दिये हैं?"

"भो गोतम ! यहाँ मेरे पास जो कुछ भी धन-धान्य था, चाँदी-सोना था, वह सब कुछ मैंने अपने पुत्रों को उत्तराधिकार के रूप में सौंप दिया। अब मेरा उस गृहस्थी में कोई हस्तक्षेप नहीं है, मेरा केवल खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने भर से सम्ब ध रह गया है। भो गौतम ! इस तरह मैंने अपने सभी कर्म-व्यवहार या तो पूर्ण कर लिये या फिर त्याग दिये हैं।"

"गृहपति ! तुम अपने गृहस्थ-त्याग की बात जैसे सिद्ध कर रहे हो, हमारे आर्यविनय में वैसी मान्यता नहीं है।"

"यथा कथं पन, भन्ते, अरियस्स विनये वोहारसमुच्छेदो होति ? साधु मे, भन्ते, भगवा तथा धम्मं देसेतु यथा अरियस्स विनये वोहारसमुच्छेदो होती" ति ।

"तेन हि, गहपति, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति ।

"एवं, भन्ते" ति खो पोतलियो गहपति भगवतो पच्चस्सोसि ।

२. अरियविनये वोहारसमुच्छेदो

२. भगवा एतदवोच—"अट्ठ खो इमे, गहपति, धम्मा अरियस्स विनये वोहारसमुच्छेदाय संवत्तन्ति । कतमे अट्ठ ? (१) अपाणातिपातं निस्साय पाणातिपातो पहातब्बो; (२) दिन्नादानं निस्साय अदिन्नादानं पहातब्बं; (३) सच्चवाचं निस्साय मुसावादो पहातब्बो; (४) अपिसुणं वाचं निस्साय पिसुणा वाचा पहातब्बा; (५) अगिद्धिलोभं निस्साय गिद्धिलोभो पहातब्बो; (६) अनिन्दादोसं निस्साय निन्दादोसो पहातब्बो; (७) अक्कोधूपायासं निस्साय कोधूपायासो पहातब्बो; (८) अनतिमानं निस्साय अतिमानो पहातब्बो । इमे खो, गहपति, अट्ठ धम्मा सङ्खित्तेन वुत्ता, वित्थारेन अविभत्ता, अरियस्य विनये वोहारसमुच्छेदाय संवत्तन्ती" ति ।

"भन्ते ! आपके आर्यविनय में यह व्यवहार-समुच्छेद किस प्रकार बताया गया है ? अच्छा हो, भन्ते ! यदि आप मुझे वैसा उपदेश करें, जिससे मैं भी आर्यविनय में बताये व्यवहार-समुच्छेद को भलीभाँति जान सकूँ ।"

"तो गृहपति ! सुनो, मेरे कथन पर ध्यान दो; मैं बता रहा हूँ ।"

"पोतलिय गृहपति ने "ठीक है, भन्ते !"—कहकर भगवान् की बात स्वीकार कर ली ।

२. आर्यविनय के अनुसार व्यवहार-समुच्छेद

२. भगवान् यों बोले—"गृहपति ! (हमारे) आर्यविनय में ये आठ बातें 'व्यवहार-समुच्छेद' के रूप में बतायी गयी हैं । कौन-सी आठ ? (१) अप्राणातिपात (=अहिंसा) का सहारा लेकर प्राणातिपात से; (२) दत्तादान का सहारा लेकर अदत्तादान (=चोरी) से; (३) सत्यवाद का सहारा लेकर असत्य (झूठ) से; (४) अपैशुन्य (=चुगली न करना) का सहारा लेकर पैशुन्य (=चुगली) से; (५) अगार्ध्य (=निर्लोभ) का सहारा लेकर गार्ध्य (=लोभ) से; (६) अनिन्दा एवं अकोप का सहारा लेकर निन्दा एवं कोप से; (७) अक्रोध का सहारा लेकर क्रोध से और (८) अनभिमान (=नम्रता) का सहारा लेकर अभिमान से दूर रहना चाहिये । (अर्थात् उक्त गुणों के सहारे से प्रतियोगी दुर्गुणों का त्याग कर देना चाहिये ।) गृहपति ! ये आठ बातें, जिनके विषय में अभी हमने तुमको संक्षेप

"येमे, भन्ते, भगवता अट्ठ धम्मा सङ्खित्तेन वुत्ता, वित्थारेन [N. 29] अविभत्ता, अरियस्स विनये वोहारसमुच्छेदाय संवत्तन्ति, साधु मे, भन्ते, भगवा इमे अट्ठ धम्मे वित्थारेन विभजतु अनुकम्पं उपादाया" ति।

"तेन हि, गहपति, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति।

"एवं भन्ते" ति खो पोतलियो गहपति भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

(१) पाणातिपातो पहातब्बो

३. " 'अपाणातिपातं निस्साय पाणातिपातो [B. 24, R. 361] पहातब्बो' ति इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? इध, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'येसं खो अहं संयोजनानं हेतु पाणातिपाती अस्सं तेसाहं संयोजनानं पहानाय समुच्छेदाय पटिपन्नो। अहं चेव खो पन पाणातिपाती अस्सं, अत्ता पि मं उपवदेय्य पाणातिपातपच्चया, अनुविच्चा पि मं विञ्ञू गरहेय्युं पाणातिपातपच्चया, कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा पाणातिपातपच्चया। एतदेव खो पन संयोजनं एतं नीवरणं यदिदं पाणातिपातो।

में ही बताया, अधिक विस्तार नहीं किया, आर्यविनय में **'व्यवहार-समुच्छेद'** के रूप में कही गयी हैं।"

"भन्ते ! आप भगवान् ने उक्त आठ बातें सक्षेप से कहीं, इनका विस्तार नहीं किया""यदि आप अपने श्रीमुख से इन आठ धर्मों का कुछ और विस्तार कर दें तो मुझ पर आपकी अत्यन्त अनुकम्पा होगी।"

"तो गृहपति ! सुनो, ध्यान दो, मैं तुम्हें बताने जा रहा हूँ।"

"ठीक है, भन्ते !" कहकर पोतलिय गृहपति भगवान् की बात सुनने के लिये सावधान हो गया। भगवान् यों बोले—

(१) प्राणातिपात का त्याग

३. " 'अप्राणातिपात का सहारा लेकर प्राणातिपात से दूर रहना चाहिये'— यह जो अभी हमने ऊपर कहा, वह किस आशय (=अपेक्षा) से कहा ? गृहपति ! यहाँ कोई आर्यश्रावक यों सोचता है—'मैं जिन संयोजनों (=दोषों) के कारण प्राणातिपाती हो गया था, उनके प्रहाण व नाश के लिये प्रयास करूँ। क्योंकि मैं प्राणातिपाती था, इसके लिये मेरी आत्मा भी मुझे धिक्कार रही है और समझदार लोग भी इसी कारण मेरे बारे में कहते फिरते हैं कि यह तो प्राणातिपाती (हिंसक) हो गया है, इसी प्राणातिपात के कारण अपने देहपात के बाद दुर्गति को ही वरण करूँगा। यह हिंसा ही 'संयोजन' है, 'नीवरण' भी है। इस प्राणातिपात दोष

ये च पाणातिपातपच्चया उप्पज्जेय्युं आसवा विघातपरिळाहा, पाणातिपाता पटिविरतस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। अपाणातिपातं निस्साय पाणातिपातो पहातब्बो ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं'।

(२) अदिन्नादानं पहातब्बं

४. " 'दिन्नादानं निस्साय अदिन्नादानं पहातब्बं' ति इति खो पनेतं वुत्तं, किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? इध, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'येसं खो अहं संयोजनानं हेतु अदिन्नादायी अस्सं, तेसाहं संयोजनानं पहानाय समुच्छेदाय पटिपन्नो। अहं चेव खो पन अदिन्नादायी अस्सं, अत्ता पि मं उपवदेय्य [N. 30] अदिन्नादानपच्चया, अनुविच्चा पि मं विञ्ञू गरहेय्युं अदिन्नादानपच्चया, कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा अदिन्नादानपच्चया। एतदेव खो पन संयोजनं एतं नीवरणं यदिदं अदिन्नादानं। ये च अदिन्नादानपच्चया उप्पज्जेय्युं आसवा विघातपरिळाहा अदिन्नादाना पटिविरतस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। दिन्नादानं निस्साय अदिन्नादानं पहातब्बं ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं'।

(३) मुसावादो पहातब्बो

५. " 'सच्चवाचं निस्साय मुसावादो पहातब्बो' ति इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? इध, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'येसं खो अहं संयोजनानं हेतु मुसावादी अस्सं तेसाहं संयोजनानं पहानाय समुच्छेदाय पटिपन्नो। अहं चेव खो पन मुसावादी अस्सं, अत्ता पि मं उपवदेय्य मुसावाद-

---

के कारण जो दुःखदायक चित्तविकार पैदा होते हैं, वे प्राणातिपातरहित (=अहिंसक) को नहीं हो पाते। अतः ऊपर जो कहा है कि अप्राणातिपात के सहारे प्राणातिपात का त्याग करना चाहिये—वह इसी आशय से कहा गया है।'

(२) अदत्तादान का त्याग

४. "और 'दत्तादान के सहारे अदत्तादान (=चोरी) का त्याग करना चाहिये'—यह किस आशय से कहा गया है ? गृहपति ! यहाँ कोई साधक यह सोचता है—'मैं जिन संयोजनों के कारण अदत्तादायी (=चोर) बन गया था, उनके प्रहाण के लिये प्रयास करूँ···पूर्ववत्···वह इसी आशय से कहा गया है।'

(३) मृषावाद (असत्य) का त्याग

५. " 'सत्यवाक् के सहारे मृषावाद का त्याग करना चाहिये'—यह जो कहा है, यह किस आशय से कहा है ? गृहपति ! यहाँ कोई साधक···पूर्ववत्······इसी आशय से कहा गया है।'

पच्चया, अनुविच्चा पि मं विञ्ञू गरहेय्युं मुसावादपच्चया, कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा मुसावादपच्चया। एतदेव खो [B. 25, R. 362] पन संयोजनं एतं नीवरणं यदिदं मुसावादो। ये च मुसावादपच्चया उप्पज्जेय्युं आसवा विघातपरिळाहा, मुसावादा पटिविरतस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। सच्चवाचं निस्साय मुसावादो पहातब्बो ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं'।

(४) पिसुणा वाचा पहातब्बा

६. " 'अपिसुणं वाचं निस्साय पिसुणा वाचा पहातब्बा' ति इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? इध, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'येसं खो अहं संयोजनानं हेतु पिसुणवाचो अस्सं तेसाहं संयोजनानं पहानाय समुच्छेदाय पटिपन्नो। अहं चेव खो पन पिसुणवाचो अस्सं, अत्ता पि मं उपवदेय्य पिसुणवाचापच्चया, अनुविच्चा पि मं विञ्ञू गरहेय्युं पिसुणवाचापच्चया, कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा पिसुणवाचापच्चया। एतदेव खो पन संयोजनं एतं नीवरणं यदिदं पिसुणा वाचा। ये च पिसुणवाचापच्चया उप्पज्जेय्युं आसवा विघातपरिळाहा, पिसुणायवाचाय [N. 31] पटिविरतस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। अपिसुणं वाचं निस्साय पिसुणा वाचा पहातब्बा ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं'।

(५) गिद्धिलोभो पहातब्बो

७. " 'अगिद्धिलोभं निस्साय गिद्धिलोभो पहातब्बो' ति इति खो पनेतं वुत्तं, किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? इध, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'येसं खो अहं संयोजनानं हेतु गिद्धिलोभी अस्सं तेसाहं संयोजनानं पहानाय समुच्छेदाय पटिपन्नो। अहं चेव खो पन गिद्धिलोभी अस्सं, अत्ता पि मं उपवदेय्य गिद्धिलोभपच्चया, अनुविच्चा पि मं विञ्ञू गरहेय्युं गिद्धिलोभपच्चया, कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा गिद्धिलोभपच्चया। एतदेव खो पन संयोजनं एतं नीवरणं यदिदं गिद्धिलोभो। ये च गिद्धिलोभपच्चया

---

(४) पिशुनवचन (चुगलखोरी) का त्याग

६. " 'अपिशुनवचन के सहारे पिशुनवचन का त्याग करना चाहिये' ····· पूर्ववत्·····वह इसी आशय से कहा गया है।'

(५) गार्ध्य (लोभ) का त्याग

७. " 'अगार्ध्य के सहारे गार्ध्य (=लोभ-लालच) का त्याग करना चाहिये' ·····पूर्ववत्···इसी आशय से कहा गया है।"

उप्पज्जेय्युं आसवा विघातपरिळाहा, गिद्धिलोभा पटिविरतस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। अगिद्धिलोभं निस्साय गिद्धिलोभो पहातब्बो ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं'।

(६) निन्दारोसो पहातब्बो

८. " 'अनिन्दारोसं निस्साय निन्दारोसो पहातब्बो' ति इति खो पनेतं वुत्तं, किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? इध, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'येसं खो अहं संयोजनानं हेतु निन्दारोसी अस्सं तेसाहं संयोजनानं पहानाय [B. 26, R. 363] समुच्छेदाय पटिपन्नो। अहं चेव खो पन निन्दारोसी अस्सं, अत्ता पि मं उपवदेय्य निन्दारोसपच्चया, अनुविच्चा पि मं विञ्ञू गरहेय्युं निन्दारोसपच्चया, कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा निन्दारोसपच्चया। एतदेव खो पन संयोजनं एतं नीवरणं यदिदं निन्दारोसो। ये च निन्दारोसपच्चया उप्पज्जेय्युं आसवा विघातपरिळाहा, अनिन्दारोसिस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। अनिन्दारोसं निस्साय निन्दारोसो पहातब्बो ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं'।

(७) कोधूपायासो पहातब्बो

[N. 32] ९. " 'अक्कोधूपायासं निस्साय कोधूपायासो पहातब्बो' ति इति खो पनेतं वुत्तं, किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? इध, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'येसं खो अहं संयोजनानं हेतु कोधूपायासी अस्सं तेसाहं संयोजनानं पहानाय समुच्छेदाय पटिपन्नो। अहं चेव खो पन कोधूपायासी अस्सं, अत्ता पि मं उपवदेय्य कोधूपायासपच्चया, अनुविच्चा पि मं विञ्ञू गरहेय्युं कोधूपायासपच्चया, कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा कोधूपायासपच्चया। एतदेव खो पन संयोजनं एतं नीवरणं यदिदं कोधूपायासो। ये च कोधूपायासपच्चया उप्पज्जेय्युं आसवा विघातपरिळाहा, अक्कोधूपायासिस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। अक्कोधूपायासं निस्साय कोधूपायासो पहातब्बो ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं'।

---

(६) परनिन्दा का त्याग

८. " 'अनिन्दा एवं अक्रोध के सहारे निन्दा एवं क्रोध का त्याग करना चाहिये' ·····पूर्ववत्·····इसी आशय से कहा गया है।'

(७) क्रोध का त्याग

९. " 'अक्रोध के सहारे क्रोध उपायास (=क्रोध से होने वाली परेशानी) का त्याग करना चाहिये' ·····पूर्ववत्·····इसी आशय से कहा गया है।'

(८) अतिमानो पहातब्बो

१०. " 'अनतिमानं निस्साय अतिमानो पहातब्बो' ति इति खो पनेतं वुत्तं, किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? इध, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'येसं खो अहं संयोजनानं हेतु अतिमानी अस्सं तेसाहं संयोजनानं पहानाय समुच्छेदाय पटिपन्नो। अहं चेव खो पन अतिमानी अस्सं, अत्ता पि मं उपवदेय्य अतिमानपच्चया, अनुविच्चा पि मं विञ्ञू गरहेय्युं अतिमानपच्चया, कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा अतिमानपच्चया। एतदेव खो पन संयोजनं एतं नीवरणं यदिदं अतिमानो। ये च अतिमानपच्चया उप्पज्जेय्युं आसवा विघातपरिळाहा, अनतिमानिस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। अनतिमानं निस्साय अतिमानो पहातब्बो ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं'।

११. "इमे खो, गहपति, अट्ठ धम्मा सङ्खित्तेन [B. 27, R. 364] वुत्ता, वित्थारेन विभत्ता, ये अरियस्स विनये वोहारसमुच्छेदाय संवत्तन्ति; न त्वेव ताव अरियस्स विनये सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं वोहारसमुच्छेदो होती" ति।

३. सब्बेन सब्बं वोहारसमुच्छेदो

१२. "यथा कथं पन, भन्ते, अरियस्स विनये सब्बेन सब्बं [N. 33] सब्बथा सब्बं वोहारसमुच्छेदो होति ? साधु मे, भन्ते, भगवा तथा धम्मं देसेतु यथा अरियस्स विनये सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं वोहारसमुच्छेदो होती" ति।

---

(८) वृथाभिमान का त्याग

१०. " 'विनम्रता के सहारे वृथाभिमान का त्याग करना चाहिये' ..... पूर्ववत्...इसी आशय से कहा गया है।"

११. "गृहपति ! ये आठ धर्म जिनका हमने पहले संक्षेप से वर्णन किया था, विस्तार से भी कह दिये, ये ही आठ धर्म हमारे आर्यविनय में व्यवहार-समुच्छेद के हेतु माने जाते हैं; परन्तु इनसे भी उक्त व्यवहार का सर्वथा समुच्छेद नहीं हो पाता।"

३. व्यवहार का सर्वथा समुच्छेद

१२. "भन्ते ! तो फिरआपके आर्यविनय में उक्त व्यवहार का सर्वथा समुच्छेद कैसे होता है ? अच्छा हो भन्ते ! आप मुझे इस तरह उपदेश करें, जिससे मैं इस व्यवहार के सर्वथा समुच्छेद के विषय में भलीभाँति समझ पाऊँ।"

"तेन हि, गहपति, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो पोतलियो गहपति भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

अट्ठिकङ्कलूपमा कामा

१३. "सेय्यथापि, गहपति, कुक्कुरो जिघच्छादुब्बल्यपरेतो गोघातकसूनं पच्चुपट्ठितो अस्स। तमेनं दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा अट्ठिकङ्कलं सुनिक्कन्तं निक्कन्तं निम्मंसं लोहितमक्खितं उपसुम्भेय्य। तं किं मञ्ञसि, गहपति, अपि नु खो सो कुक्कुरो अमुं अट्ठिकङ्कलं सुनिक्कन्तं निक्कन्तं निम्मंसं लोहितमक्खितं पलेहन्तो जिघच्छादुब्बल्यं पटिविनेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु"?

"अदुं हि, भन्ते, अट्ठिकङ्कलं सुनिक्कन्तं निक्कन्तं निम्मंसं लोहितमक्खितं। यावदेव पन सो कुक्कुरो किलमतस्स विघातस्स भागी अस्सा" ति।

"एवमेव खो, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'अट्ठिकङ्कलूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो' ति।

"तो गृहपति! सुनो, मेरी बात पर ध्यान दो, मैं बताता हूँ।"

"ठीक है, भन्ते!" कहकर पोतलिय गृहपति ने भगवान् का आदेश स्वीकार किया।

कामभोग अस्थिकंकाल के समान

१३. "गृहपति! जैसे कोई भूख से दुबला कुत्ता किसी कसाई के मांस काटने के पीढ़े के पास खड़ा हो। वह चतुर कसाई या उसका साथी उस कुत्ते की ओर मांसरहित, रक्त से सना हड्डी का एक टुकड़ा फेंक दे। तो क्या मानते हो, गृहपति! वह कुत्ता उस मांसरहित, रक्त से सने उस हड्डी के टुकड़े को चाटकर अपनी भूख से आयी दुर्बलता को मिटा सकेगा?"

"नहीं, भन्ते! ऐसा नहीं होगा।"

"वह क्यों?"

"भन्ते! इसलिये कि हड्डी का टुकड़ा मांसरहित, थोड़े-बहुत खून से लिपटा हुआ है। उसे चाटकर तो वह कुत्ता केवल परेशानी ही उठायेगा।"

"इसी तरह गृहपति! वह आर्यश्रावक यों सोचता है—'भगवान् ने इन सांसारिक कामभोगों को हड्डी के टुकड़े के समान कहा है, जिनमें परेशानियाँ

एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा यायं उपेक्खा नानत्ता नानत्तसिता तं अभिनिवज्जेत्वा, यायं उपेक्खा एकत्ता एकत्तसिता यत्थ सब्बसो लोकामिसूपादाना अपरिसेसा निरुज्झन्ति तमेवूपेक्खं भावेति।

मंसपेसूपमा कामा

१४. "सेय्यथापि, गहपति, गिज्झो वा कङ्को वा कुललो [N. 34] वा मंसपेसिं आदाय उड्डीयेय्य। तमेनं गिज्झा पि कङ्का पि कुलला पि अनुपतित्वा अनुपतित्वा वितच्छेय्युं विस्सज्जेय्युं। तं किं मञ्ञसि, [B. 28] गहपति, सचे सो गिज्झो वा कङ्को वा कुललो वा तं मंसपेसिं न खिप्पमेव पटिनिस्सज्जेय्य, सो ततोनिदानं मरणं वा निगच्छेय्य मरणमत्तं वा दुक्खं" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"एवमेव खो, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'मंसपेसूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो' ति। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा यायं उपेक्खा नानत्ता [R. 365] नानत्तसिता तं अभिनिवज्जेत्वा, यायं उपेक्खा एकत्ता एकत्तसिता यत्थ सब्बसो लोकामिसूपादाना अपरिसेसा निरुज्झन्ति तमेवूपेक्खं भावेति।

ही परेशानियाँ भरी पड़ी है, बुराइयाँ तो उनसे भी ज्यादा'। अतः इसको यथार्थतया, प्रज्ञा से भलीभाँति जान-समझकर, अनेक में लगी, अनेकता वाली उपेक्षा का त्याग कर, एकान्त में लगी, एकान्तता वाली उपेक्षा, जिसमें सांसारिक बुराइयों के ग्रहण की इच्छा सर्वथा निरुद्ध हो जाती हैं, की भावना करता है।

कामभोग मांस के लोथड़े के समान

१४. "गृहपति ! जैसे कोई गृध्र (=गीध) या कङ्क या चील पक्षी मांस का लोथड़ा लेकर उड़े। उसके साथी पक्षी उससे वह मांस का लोथड़ा छीनने के लिये उस पर हमला करें, उसे चोंच या पंजों से नोंचे-खसोटें। तो क्या मानते हो, गृहपति ! वह पक्षी तत्काल यदि उस मांस के लोथड़े को नहीं छोड़ देगा तो उसके कारण उसको मरण या मरणान्तक दुःख प्राप्त नहीं होगा ?"

"हाँ, भन्ते ! ऐसा ही है।"

"इसी तरह गृहपति ! वह साधक यों सोचता है—'भगवान् ने इन सांसारिक कामभोगों को मांस के लोथड़े के समान कहा है'.....पूर्ववत्.....उपेक्षा की भावना करता है।

तिणुक्कूपमा कामा

१५. "सेय्यथापि, गहपति, पुरिसो आदित्तं तिणुक्कं आदाय पटिवातं गच्छेय्य। तं किं मञ्ञसि, गहपति, सचे सो पुरिसो तं आदित्तं तिणुक्कं न खिप्पमेव पटिनिस्सज्जेय्य तस्स सा आदित्ता तिणुक्का हत्थं वा दहेय्य बाहुं वा दहेय्य अञ्ञतरं वा अञ्ञतरं वा अङ्गपच्चङ्गं दहेय्य, सो ततोनिदानं मरणं वा निगच्छेय्य मरणमत्तं वा दुक्खं" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"एवमेव खो, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'तिणुक्कूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो' ति। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा.....पे०.....तमेवूपेक्खं भावेति।

अङ्गारकासूपमा कामा

[N. 35] १६. "सेय्यथापि, गहपति, अङ्गारकासु साधिकपोरिसा, पूरा अङ्गारानं वीतच्चिकानं वीतधूमानं। अथ पुरिसो आगच्छेय्य जीवितुकामो अमरितुकामो सुखकामो दुक्खप्पटिक्कूलो। तमेनं द्वे बलवन्तो पुरिसा नानाबाहासु गहेत्वा अङ्गारकासुं उपकड्ढेय्युं। तं किं मञ्ञसि, गहपति, अपि नु सो पुरिसो इति चिति चेव कायं सन्नामेय्या" ति ?

कामभोग तृणाग्नि के समान

१५. "गृहपति ! जैसे कोई पुरुष जलते घास (तृणोल्का) को लेकर हवा के विरुद्ध चले। तो क्या मानते हो, गृहपति ! वह पुरुष उस जलते घास को न छोड़ दे तो वह जलता हुआ घास उसके हाथ पैर या किसी न किसी अङ्ग-प्रत्यङ्ग को नहीं जला देगा, वह उसके कारण मृत्यु या मृत्युतुल्य दुःख नहीं पायगा ?"

"हाँ, भन्ते ! ऐसा ही है।"

"गृहपति ! इसी तरह वह आर्यश्रावक यों सोचता है—'भगवान् ने इन सांसारिक कामभोगों को घास की अग्नि के समान बताया है.....पूर्ववत्.....उपेक्षा की भावना करता है।

कामभोग प्रदीप्त अग्निकुण्ड के समान

१६. "गृहपति ! जैसे कहीं कोई निर्धूम व लपटों से रहित प्रदीप्त अग्निकुण्ड हो। वहाँ कोई ऐसा पुरुष आवे जो जीना चाहता हो, मरना नहीं, अपने लिये सुख चाहता तो, दुःख नहीं। उसको दो बलवान पुरुष बाँहों से पकड़ कर उस प्रदीप्त अग्निकुण्ड में फेंक दें। गृहपति ! तो क्या मानते हो कि वह पुरुष अपने शरीर को चिता में पड़े शव की तरह, जला नहीं डालेगा ?"

"एवं, भन्ते"।

" तं किस्स हेतु" ?

"विदितञ्हि, भन्ते, तस्स पुरिसस्स इमं च अहं अङ्गारकासुं पपतिस्सामि, ततोनिदानं मरणं वा निगच्छिस्सामि मरणमत्तं वा दुक्खं" ति।

"एवमेव खो, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'अङ्गारकासूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो' ति। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा.....पे०.....तमेवूपेक्खं भावेति।

सुपिनकूपमा कामा

१७. "सेय्यथापि, गहपति, पुरिसो सुपिनकं पस्सेय्य आराम- [B. 29] रामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणिरामणेय्यकं। सो पटिबुद्धो न किञ्चि पटिपस्सेय्य। एवमेव खो, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'सुपिनकूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो' ति.....पे०.....तमेवूपेक्खं भावेति।

याचितकूपमा कामा

१८. "सेय्यथापि, गहपति, पुरिसो याचितकं भोगं याचित्वा [R. 366] यानं वा पोरिसेय्यं पवरमणिकुण्डलं। सो तेहि याचितकेहि भोगेहि पुरक्खतो

"हाँ, भन्ते ! ऐसा ही है"।

"वह क्यों ?"

"क्योंकि भन्ते ! उस पुरुष को अच्छी तरह ज्ञात है कि वह यदि उस प्रदीप्त अग्निकुण्ड में गिरेगा तो मर जायगा या मरणान्तक दुःख पायगा।"

"गृहपति ! इसी तरह आर्यश्रावक यों सोचता है—'भगवान् ने इन सांसारिक कामभोगों को प्रदीप्त अग्निकुण्ड के समान बताया है.....पूर्ववत्.....उपेक्षा की भावना करता है।

कामभोग स्वप्न के समान

१७. "गृहपति ! जैसे किसी पुरुष को स्वप्न में सुन्दर-सुन्दर वन, उद्यान, भूमि या कोई पुष्करिणी दिखायी दे। परन्तु जगने पर उनमें से कुछ भी न दिखायी दे। गृहपति ! इसी तरह आर्यश्रावक यों सोचता है—'भगवान् ने इन सांसारिक कामभोगों को स्वप्न के समान बताया है.....पूर्ववत्.....उपेक्षा की भावना करता है।

कामभोग उधार माँगी वस्तु के समान

१८. " हपति ! जैसे कोई पुरुष मणि, कुण्डल या सवारी आदि महार्घ वस्तुएँ किसी से उधार माँग कर, उन्हें पहन बाजार में जाय। बाजार के लोग उसे

परिवुतो अन्तरापणं पटिपज्जेय्य। तमेनं जनो दिस्वा एवं वदेय्य—'भोगी वत, [N. 36] भो, पुरिसो; एवं किर भोगिनो भोगानि भुञ्जन्ती' ति। तमेनं सामिका यत्थ यत्थेव पस्सेय्युं तत्थ तत्थेव सानि हरेय्युं। तं किं मञ्ञसि, गहपति, अलं नु खो तस्स पुरिसस्स अञ्ञथत्ताया" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु" ?

"सामिनो हि, भन्ते, सानि हरन्ती" ति।

"एवमेव खो, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'याचितकूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो' ति···पे०···तमेवूपेक्खं भावेति।

रुक्खफलूपमा कामा

१९. "सेय्यथापि, गहपति, गामस्स वा निगमस्स वा अविदूरे तिब्बो वनसण्डो। तत्रस्स रुक्खो सम्पन्नफलो च उप्पन्नफलो च, न चस्सु कानिचि फलानि भूमियं पतितानि। अथ पुरिसो आगच्छेय्य फलत्थिको फलगवेसी

देखकर यों कहें—'ओह! यह आदमी तो बहुत धनवान् है; धनी लोग ही ऐसी चीजों का उपभोग करते हैं'। (परन्तु) उसको उसके स्वामी (उधार देने वाले) बाजार में जहाँ भी देखें, वहीं उस पर प्रतिबन्ध (सानि=आवरण) लगा दें। तो क्या मानते हो, गृहपति! वह उधार माँग कर लाने वाला पुरुष क्या धनी कहला सकता है?"

"नहीं, भन्ते! ऐसा नहीं है, वह धनी नहीं कहला सकता।"

"वह क्यों?"

"क्योंकि भन्ते! उन माँगी हुई वस्तुओं के स्वामी उस पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं। (जिस कारण वह उन वस्तुओं का यथेच्छ उपयोग नहीं कर पाता)।"

"इसी तरह गृहपति! वह साधक भी यों सोचता है—'भगवान् ने इन सांसारिक काम-भोगों को उधार माँगी हुई वस्तु के समान बताया है···पूर्ववत्··· उपेक्षा की भावना करता है।

कामभोग वृक्षफल के समान

१९. "गृहपति! जैसे किसी गाँव या कस्बे के पास ही कोई बड़ा वनप्रदेश हो। उसमें कोई ऐसा वृक्ष हो जो फलों से लदा हो, नये-नये फल लगते जा रहे हों, परन्तु उसका कोई भी फल भूमि पर न गिरा हो। तब वहाँ कोई पुरुष आवे जिसे फलों की चाह हो। वह उस वनप्रदेश में जाकर उस फलों से लदे वृक्ष को देखे।

फलपरियेसनं चरमानो। सो तं वनसण्डं अज्झोगाहेत्वा तं रुक्खं पस्सेय्य सम्पन्नफलं च उप्पन्नफलं च। तस्स एवमस्स—'अयं खो रुक्खो सम्पन्नफलो च उप्पन्नफलो च, नत्थि च कानिचि फलानि भूमियं पतितानि। जानामि खो पनाहं रुक्खं आरोहितुं। यन्नूनाहं इमं रुक्खं आरोहित्वा यावदत्थं च खादेय्यं उच्छङ्गं च पूरेय्यं' ति। सो तं रुक्खं आरोहित्वा यावदत्थं च खादेय्य उच्छङ्गं च पूरेय्य। अथ दुतियो पुरिसो आगच्छेय्य फलत्थिको फलगवेसी फलपरियेसनं चरमानो तिण्हं कुठारिं आदाय। सो तं वनसण्डं अज्झोगाहेत्वा तं रुक्खं पस्सेय्य सम्पन्नफलं च उप्पन्नफलं च। तस्स एवमस्स—'अयं खो [B 30] रुक्खो सम्पन्नफलो च उप्पन्नफलो च, नत्थि च कानिचि फलानि भूमियं पतितानि। न खो पनाहं जानामि रुक्खं आरोहितुं। यन्नूनाहं इमं रुक्खं मूलतो छेत्वा यावदत्थं च खादेय्यं उच्छङ्गं च पूरेय्यं' ति। सो तं रुक्खं मूलतो व छिन्देय्य। तं किं मञ्ञसि, गहपति, अमुको यो सो पुरिसो पठमं रुक्खं [N. 37] आरूळ्हो सचे सो न खिप्पमेव ओरोहेय्य तस्स सा रुक्खो पपतन्तो हत्थं वा भञ्जेय्य पादं वा भञ्जेय्य अञ्ञतरं वा अञ्ञतरं वा अङ्गपच्चङ्गं भञ्जेय्य, सो ततोनिदानं मरणं वा निगच्छेय्य मरणमत्तं वा दुक्खं" ति? [R. 367]

"एवं, भन्ते"।

उसके मन में यह हो—'अरे! यह वृक्ष तो फलों से लदा पड़ा है, साथ ही इसमें नये-नये फल भी लगते जा रहे हैं, फिर भी इसका कोई फल भूमि पर नहीं गिरा है। मैं वृक्ष पर चढ़ना जानता हूँ। तो क्यों न मैं इस वृक्ष पर चढ़कर इन फलों को भरपेट खा लूँ और बाकी को झोली में भर लूँ'। तब वह उस वृक्ष पर चढ़कर भरपेट खा ले और बाकी को झोली में भर ले। इसी समय कोई दूसरा आदमी तीखी कुल्हाड़ी लेकर फलों की इच्छा से उन्हें खोजता हुआ वहाँ आ पहुँचे। वह उस वन-प्रदेश में जाकर उस वृक्ष को देखे जो फलों से.....। उसके मन में यह हो—'अरे! यह वृक्ष तो..... नहीं गिरा है। पर मैं वृक्ष पर चढ़ना नहीं जानता। तो क्यों न मैं इस वृक्ष को जड़से ही काटकर इसके फल खा लूँ और बाकी को झोली में भर लूँ'। वह उस वृक्ष को जड़ से ही काट दे। तो क्या मानते हो, गृहपति! वह पहला आदमी जो वृक्ष पर चढ़ा था, तत्काल वापस न उतर आवे तो वह गिरता हुआ वृक्ष उसके हाथ-पैर या अन्य किसी अङ्ग-प्रत्यङ्ग को नहीं तोड़ देगा, जिससे वह मर सकता है या मरणान्तक दुःख भी पा सकता है?"

"हाँ, भन्ते! ऐसा ही है।"

"एवमेव खो, गहपति, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'रुक्खफलूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो'ति। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा यायं उपेक्खा नानत्ता नानत्तसिता तं अभिनिवज्जेत्वा यायं उपेक्खा एकत्ता एकत्तसिता यत्थ सब्बसो लोकामिसूपादाना अपरिसेसा निरुज्झन्ति तमेवूपेक्खं भावेति।

२०. "स खो सो, गहपति, अरियसावको इमं येव अनुत्तरं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं आगम्म अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो.....पे०.....इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

"स खो सो, गहपति, अरियसावको इमं येव अनुत्तरं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं आगम्म दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते.....पे०.....यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति।

"स खो सो, गहपति, अरियसावको इमं येव अनुत्तरं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं आगम्म आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। एत्तावता खो गहपति, अरियस्स विनये सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं वोहारसमुच्छेदो होति।

"इसी तरह गृहपति ! वह आर्यश्रावक यों सोचता है—'भगवान् ने इन सांसारिक कामभोगों को वृक्षफल के समान...पूर्ववत्'.......उपेक्षा की भावना करता है।

२०. "गृहपति ! फिर वह आर्यश्रावक इसी अनुत्तर (=अद्वितीय) उपेक्षामय स्मृति-परिशुद्धि का सहारा लेकर अपने नानाविध पूर्वजन्मों का स्मरण करता है, जैसे—एक जन्म, दो जन्म...पूर्ववत्[1].....इस तरह आकार और उद्देश सहित अनेक प्रकार के अपने पूर्वजन्मों का स्मरण करता है।

"गृहपति ! फिर वह आर्यश्रावक इसी अनुत्तर उपेक्षामय स्मृतिपरिशुद्धि का सहारा लेते हुए, लोकोत्तर दिव्य दृष्टि से...पूर्ववत्[1]....कर्मानुसार गति पाने वाले प्राणियों को पहचानने लगता है।

"गृहपति ! फिर वह आर्यश्रावक इस अनुत्तर उपेक्षामय स्मृतिपरिशुद्धि का सहारा लेकर, आस्रवों के क्षय से अनास्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात् कर साधना करता है। इस तरह से गृहपति ! हमारे आर्यविनय में 'सर्वथा व्यवहार समुच्छेद' माना जाता है।

१-१-द्र०—पीछे पृ० ४७ (भयभैरवसुत्त)।

४. पोतलिगहपतिस्स उपासकत्तपटिवेदना

२१. "तं किं मञ्ञसि, गहपति, यथा अरियस्स विनये सब्बेन [B. 31] सब्बं सब्बथा सब्बं वोहारसमुच्छेदो होति, अपि नु त्वं एवरूपं वोहारसमुच्छेदं अत्तनि समनुपस्ससी" ति ?

"को चाहं, भन्ते, को च अरियस्स विनये सब्बेन सब्बं [N. 38] सब्बथा सब्बं वोहारसमुच्छेदो ! आरका अहं, भन्ते, अरियस्स विनये सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं वोहारसमुच्छेदा। मयं हि, भन्ते, पुब्बे अञ्ञतित्थिये परिब्बाजके अनाजानीयेव समाने आजानीया ति अमञ्ञिम्ह, अनाजानीयेव समाने आजानीयभोजनं भोजिम्ह, अनाजानीयेव समाने आजानीयठाने ठपिम्ह; भिक्खू पन मयं भन्ते आजानीयेव समाने अनाजानीया ति अमञ्ञिम्ह, आजानीयेव समाने अनाजानीयभोजनं भोजिम्ह, आजानीयेव समाने अनाजानीयठाने ठपिम्ह; इदानि पन मयं, भन्ते, अञ्ञतित्थिये परिब्बाजके [R. 368] अनाजानीयेव समाने अनाजानीया ति जानिस्साम, अनाजानीयेव समाने अनाजानीयभोजनं भोजेस्साम, अनाजानीयेव समाने अनाजानीयठाने ठपेस्साम। भिक्खू पन मयं, भन्ते, आजानीयेव समाने आजानीया ति जानिस्साम, आजानीयेव समाने आजानीयभोजनं भोजेस्साम, आजानीयेव समाने आजानीयठाने ठपेस्साम। आजानेसि वत मे, भन्ते, भगवा समणेसु समणप्पेमं,

---

४. पोतलिय गृहपति का उपासकत्व स्वीकार करना

२१. "तो क्या मानते हो, गृहपति ! कि जैसा यह 'व्यवहार समुच्छेद' हमारे आर्यविनय में बताया गया है, वैसा 'व्यवहार समुच्छेद' क्या तुम पूरा कर चुके हो ?"

"भन्ते ! कहाँ आपका यह लोकोत्तर व्यवहार-समुच्छेद और कहाँ मेरे जैसा गृहस्थ-प्रपंच में फँसा हीनप्राणी ! भन्ते ! मैं तो अपने आपको इस आर्यविनय में बताये व्यवहार समुच्छेद से कोसों दूर मानता हूँ। भन्ते ! हम तो पहले अन्य अपरिशुद्ध (आस्रवयुक्त) तैर्थिक परिव्राजकों को परिशुद्ध मानते हुए उनका सम्मान करते थे उन्हें भोजन कराते थे और पूज्य स्थान पर बिठाते थे; और उधर जो भिक्षु वस्तुतः परिशुद्ध थे उन्हें अपरिशुद्ध मानकर न तो उन्हें सम्मान देते थे, न भोजन कराते थे और न पूज्य स्थान पर बिठाते थे; भन्ते ! अब हम (आपका उपदेश सुनने के बाद) उन अपरिशुद्ध अन्य तैर्थिकों को न वैसा सम्मान देंगे, न सादर भोजन करायेंगे, न पूज्य स्थान पर बैठायेंगे। अपितु आज से हम भिक्षुओं को ही परिशुद्ध मानकर पूर्ण सम्मान देंगे, सादर भोजन करायेंगे और पूज्य स्थान पर बैठायेंगे।

समणेसु समणप्पसादं, समणेसु समणगारवं। अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं खो, भन्ते, भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

भगवन्! आपने यह उपदेश देकर श्रमणों (परिशुद्ध भिक्षुओं) में मेरा प्रेम, सौहार्द्र व गौरव बढ़ा दिया। भन्ते! आपने खूब कहा, बहुत अच्छा कहा। जैसे भन्ते! कोई औंधे को सीधा कर दे···पूर्ववत्·····इसी तरह भन्ते! आपने यह अपूर्व धर्मोपदेश नानाप्रकार से किया। इसके कारण मैं अब आपकी, आपके धर्म और सङ्घ की शरण में आ गया हूँ। आज से आप भगवान् मुझे यावज्जीवन अपना शरणागत उपासक समझें"।

पोतलियसुत्त समाप्त॥

५. जीवकसुत्तं

१. तिकोटिपरिसुद्धं मंसं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति [N. 39] जीवकस्स कोमारभच्चस्स अम्बवने। अथ खो जीवको कोमारभच्चो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं [B. 32] निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जीवको कोमारभच्चो भगवन्तं एतदवोच— "सुतं मेतं, भन्ते—'समणं गोतमं उद्दिस्स पाणं आरभन्ति, तं समणो गोतमो जानं उद्दिस्सकतं मंसं परिभुञ्जति पटिच्चकम्मं' ति। ये ते, भन्ते, एवमाहंसु— 'समणं गोतमं उद्दिस्स पाणं आरभन्ति, तं समणो गोतमो जानं उद्दिस्सकतं मंसं परिभुञ्जति पटिच्चकम्मं' ति, कच्चि ते, भन्ते, भगवतो वुत्तवादिनो, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती"ति ?

२. "ये ते, जीवक, एवमाहंसु—'समणं गोतमं उद्दिस्स [R. 369] पाणं आरभन्ति, तं समणो गोतमो जानं उद्दिस्सकतं मंसं परिभुञ्जति पटिच्च-कम्मं' ति न मे ते वुत्तवादिनो, अब्भाचिक्खन्ति च मं ते असता अभूतेन।

---

५. जीवकसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह स्थित, बालरोग विशेषज्ञ जीवक वैद्य द्वारा निर्मापित, आम्रवन में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय वैद्य जीवक जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे; वहाँ पहुँच, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे वैद्य जीवक भगवान् से यों बोले—"भन्ते ! सुना है—'लोग आपको मांस-भोजन कराने के उद्देश्य से प्राणियों का वध करते हैं और आप जानते-बूझते उस मांस का भोजन कर लेते हैं, उसे स्वीकार कर लेते हैं'। भन्ते ! जो लोग यह कहते हैं—'हमने यह मांसभोजन श्रमण गौतम के लिये बनाया है, वे इस बात को जानते हुए भी उसे स्वीकार कर लेते हैं'। भन्ते ! क्या वे लोग आपके विषय में सत्य कहते हैं, गलत कहकर आप पर झूठा उपालम्भ तो नहीं लगाते, क्या वे धर्मानुसार ही बात करते हैं, इससे किसी धर्मानुसार वचन-अनुवचन की निन्दा तो नहीं होती ?"

२. "जीवक ! जो लोग यह कहते हैं—'श्रमण गौतम.....स्वीकार कर लेते हैं'; वे मुझ पर झूठा आरोप लगाते हैं, वे मेरे बारे में सच्चाई नहीं कहते, अनहुई बात ही कहते हैं। जीवक ! मैं तीन बातों से मांस को 'अभोज्य' मानता हूँ—'(१) अपने

तीहि खो अहं, जीवक, ठानेहि मंसं अपरिभोगं ति वदामि। दिट्ठं, सुतं, परिसङ्कितं—इमेहि खो अहं, जीवक, ठानेहि मंसं परिभोगं ति वदामि। अदिट्ठं असुतं, अपरिसङ्कितं—इमेहि खो अहं, जीवक, तीहि ठानेहि मंसं परिभोगं ति वदामि।

२. मेत्ताविहारी अनवज्जं आहारं आहारेति

३. "इध, जीवक, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरति। सो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, [N. 40] तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। तमेनं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा उपसङ्कमित्वा स्वातनाय भत्तेन निमन्तेति। आकङ्खमानो व, जीवक, भिक्खु अधिवासेति। सो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन तस्स गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा निवेसनं तेनुपसङ्कमति; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदति। तमेनं सो गहपति वा गहपतिपुत्तो वा पणीतेन पिण्डपातेन परिविसति। तस्स न एवं होति—'साधु वत मायं

लिये मांस कटते हुए देखना, (२) सुनना तथा (३) वैसा सन्देह (शङ्का) होना—जीवक! इन तीन बातों से युक्त मांस को मैं 'अभोज्य' (=अग्राह्य) मानता हूँ। और जीवक! इन तीन बातों से युक्त किसी भी मांस को मैं अपने लिये 'भोज्य' मानता हूँ—(१) अपने लिये कटते हुए मांस को न देखना, (२) न सुनना तथा (३) न वैसा (अपने लिये कटने का) संदेह होना। जीवक! इन तीन बातों से युक्त मांस को मैं 'भोज्य' मानता हूँ।

२. मैत्रीभावना वाला अनिन्द्य आहार करता है

३. "जीवक! यहाँ कोई भिक्षु किसी गाँव या कस्बे के पास रहकर साधना करता है। वह मैत्रीसहगतचित्त से एक तरफ जाता है, उसी तरह दूसरी, तीसरी, चौथी तरफ भी जाता है। इस तरह वह ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, आडे-टेढ़े—सब तरफ निर्वैर, दयामय, विपुल मैत्रीयुक्त भावना से समग्र लोक में विचरण करता है। उसको कोई गृहपति या उसका लड़का वहाँ पहुँचकर उसे दूसरे दिन के लिये, भोजन हेतु निमन्त्रित करे। वह भिक्षु यदि चाहे तो निमन्त्रण स्वीकार कर लेता है। वह उस रात्रि के बीतने के बाद, दूसरे दिन पूर्वाह्णकाल में पहनकर, पात्र-चीवर ले, उस गृहपति या गृहपतिपुत्र के घर पहुँचता है; पहुँचकर प्रज्ञप्त आसन पर बैठता है। उसको गृहपति या गृहपतिपुत्र अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ परोसता है। उस समय उस

गहपति वा गहपतिपुत्तो वा पणीतेन पिण्डपातेन परिविसेय्या' ति ! [B. 33] 'अहो वत मायं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा आयतिं पि एवरूपेन पणीतेन पिण्डपातेन परिविसेय्या' ति—एवं पिस्स न होति। सो तं पिण्डपातं अगथितो अमुच्छितो अनज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति। तं किं मञ्ञसि, जीवक, अपि नु सो भिक्खु तस्मिं समये अत्तब्याबाधाय वा चेतेति, परब्याबाधाय वा चेतेति, उभयब्याबाधाय वा चेतेती" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"ननु सो, जीवक, भिक्खु तस्मिं समये अनवज्जं येव आहारं आहारेती" ति ?

"एवं, भन्ते। सुतं मेतं, भन्ते—'ब्रह्मा मेत्ताविहारी' ति। तं मे इदं, भन्ते, भगवा सक्खिदिट्ठो; भगवा हि, भन्ते, मेत्ताविहारी" ति।

"येन खो, जीवक, रागेन येन दोसेन येन मोहेन ब्यापादवा अस्स [R. 370] सो रागो सो दोसो सो मोहो तथागतस्स पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। सचे खो ते, जीवक, इदं सन्धाय भासितं अनुजानामि ते एतं" ति।

भिक्षुको यह नहीं होता—'अच्छा हो कि यह गृहपति या गृहपतिपुत्र मुझे अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ परोसे'! उसे यह भी नहीं होता—'अच्छा हो कि यह गृहपति या गृहपतिपुत्र आगे भी मुझे ऐसे ही अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ परोसा करें'। वह उस खाद्य-पदार्थ (पिण्डपात) को बिना किसी लोभ, लालच या आसक्ति के, शरीरयात्रा-निर्वाह भर के लिये, सावधान हो ग्रहण करता है। तो क्या समझते हो, जीवक! उस समय उस भिक्षु को आत्मपीड़ा, परपीड़ा या उभयपीड़ा का ध्यान आने की बात (उसके) मन में उठेगी ?"

"नहीं, भन्ते!"

"जीवक! तो वह भिक्षु उस समय अनवद्य (=निष्पाप) आहार ही ग्रहण करता है न ?"

"हाँ भन्ते! मैंने सुना था कि 'ब्रह्मा मैत्रीविहार की साधना करते थे'। सो मैंने आपको साक्षात् देख लिया; आप भी मैत्रीबिहार के साधक हैं।"

"जीवक! जिस राग, द्वेष या मोह से साधारणजन हिंसा में व्याप्त होते हैं, वह राग, द्वेष या मोह तथागत का समूल नष्ट हो चुका है, कटे सिर वाले ताड़ जैसा अभावयुक्त और भविष्य में उत्पन्न होने के लिये अयोग्य हो चुका है। जीवक! यदि

"एतदेव खो पन मे, भन्ते, सन्धाय भासितं"।

३. करुणा-मुदिता-उपेक्खाविहारी अनवज्जं आहारं आहारेति

४. "इध, जीवक, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय [N. 41] विहरति। सो करुणासहगतेन चेतसा.....पे०...मुदितासहगतेन चेतसा.....उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। तमेनं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा उपसङ्कमित्वा स्वातनाय भत्तेन निमन्तेति। आकङ्खमानो वा, जीवक, भिक्खु अधिवासेति। सो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन तस्स गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा निवेसनं तेनुपसङ्कमति; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदति। तमेनं सो गहपति वा गहपतिपुत्तो वा पणीतेन पिण्डपातेन परिविसति। तस्स न एवं होति—'साधु वत मायं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा पणीतेन पिण्डपातेन परिविसेय्या' ति! 'अहो वत मायं गहपति वा गहपतिपुत्तो [B. 34] आयतिं पि एवरूपेन पणीतेन पिण्डपातेन परिविसेय्या'ति—एवं पिस्स न होति। सो तं पिण्डपातं अगथितो अमुच्छितो अनज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति। तं किं मञ्ञसि, जीवक, अपि नु सो भिक्खु तस्मिं समये अत्तब्याबाधाय वा चेतेति, परब्याबाधाय वा चेतेति, उभयब्याबाधाय वा चेतेती" ति?

तुमने मेरे लिये उपर्युक्त बातें यही सोचकर कही हैं तो ठीक है, इस विषय में मैंने तुम्हें अपनी वास्तविक स्थिति बता दी।"

"हाँ, भन्ते! यही सोचकर मैंने आपके विषय में उक्त बातें कही थीं।"

३. करुणा आदि के साधक भी अनिन्द्य आहार ही ग्रहण करते हैं

४. "जीवक! यहाँ कोई भिक्षु कोई गाँव या कस्बे के पास जाकर करुणापूर्ण चित्त से..... मुदितापूर्ण चित्त से...उपेक्षापूर्ण चित्त से.....समग्र लोक में विचरण

"नो हेतं, भन्ते"।

"ननु सो, जीवक, भिक्खु तस्मिं समये अनवज्जं येव आहारं आहारेती" ति ?

"एवं, भन्ते। सुतं मेतं, भन्ते—'ब्रह्मा उपेक्खाविहारी' ति। तं मे इदं, भन्ते, भगवा सक्खिदिट्ठो; भगवा हि, भन्ते, उपेक्खाविहारी" ति।

"येन खो, जीवक, रागेन येन दोसेन येन मोहेन विहेसवा अस्स अरतिवा अस्स पटिघवा अस्स सो रागो सो दोसो सो मोहो तथागतस्स पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। सचे खो ते, जीवक, इदं सन्धाय भासितं, अनुजानामि ते एतं" ति। [R. 371]

"एतदेव खो पन मे, भन्ते, सन्धाय भासितं"। [N. 42]

४. पञ्चहि ठानेहि अपुञ्ञं

५. "यो खो, जीवक, तथागतं वा तथागतसावकं वा उद्दिस्स पाणं आरभति सो पञ्चहि ठानेहि बहुं अपुञ्ञं पसवति। यं पि सो, गहपति, एवमाह—'गच्छथ, अमुकं नाम पाणं आनेथा' ति, इमिना पठमेन ठानेन बहुं अपुञ्ञं पसवति। यं पि सो पाणो गलप्पवेठकेन आनीयमानो दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति, इमिना दुतियेन ठानेन बहुं अपुञ्ञं पसवति। यं पि सो एवमाह—'गच्छथ इमं पाणं आरभथा'ति, इमिना ततियेन ठानेन बहुं अपुञ्ञं पसवति। यं पि सो पाणो आरभियमानो दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति, इमिना चतुत्थेन ठानेन बहुं अपुञ्ञं पसवति। यं पि सो तथागतं वा तथागतसावकं वा अकप्पियेन

करता है। उसको कोई गृहपति या गृहपतिपुत्र.....पूर्ववत्[1]...आपके विषय में उक्त बातें कही थीं।"

४. पाँच स्थानों से अपुण्यप्राप्ति

५. "जीवक! जो कोई व्यक्ति तथागत या तथागतश्रावक के उद्देश्य से प्राणिवध करता है, वह पाँच स्थानों से अपुण्य कमाता है। (१) जो वध के लिये प्राणी लाने की आज्ञा देता है, वह इस प्राणिवध की आज्ञा के कारण अपुण्यभाक् होता है। (२) जो इस प्राणी को, गला बाँध कर मारते-पीटते हुए वधस्थान तक लाता है, वह प्राणी को वध स्थान पर लाने के कारण पाप का भागी होता है। (३) और जो प्राणिवध की आज्ञा देता है, वह तीसरा भी पापभागी है। (४) मारे जाते समय प्राणी जिस दुःख या पीड़ा से कराहता है, उसका वह कराहना भी उन लोगों के लिये

---

१. यहाँ ऊपर वाले पैरा के पाठ की आवृत्ति कर लें।

आसादेति, इमिना पञ्चमेन ठानेन बहुं अपुञ्ञं पसवति। यो खो, जीवक, तथागतं वा तथागतसावकं वा उद्दिस्स पाणं आरभति सो इमेहि पञ्चहि ठानेहि बहुं अपुञ्ञं पसवती" ति।

६. एवं वुत्ते, जीवको कोमारभच्चो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! कप्पियं वत, भन्ते, भिक्खू आहारं आहारेन्ति; अनवज्जं [B. 35] वत, भन्ते, भिक्खू आहारं आहारेन्ति। अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते.....पे०.....उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

पाप ही उत्पन्न करता है। (५) वह व्यक्ति भी पाप का ही भागी होता है, जो यह (प्राणिवध द्वारा पकाया) मांस तथागत या तथागतश्रावक को परोसता है। जीवक! इस तरह जो प्राणी तथागत.....पाँच स्थानों से अपुण्य कमाता है।"

६. ऐसा कहने पर वे बालरोग विशेषज्ञ जीवक वैद्य भगवान् से यों बोले—आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! भिक्षु शास्ता से अनुमोदित व अनिन्द्य आहार ही ग्रहण करते हैं। खूब कहा, भन्ते! आपने बहुत अच्छा कहा.....पूर्ववत्.....मुझे आज से यावज्जीवन अपना शरणागत उपासक समझें॥"

जीवकसुत्त समाप्त॥

६. उपालिसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा नाळन्दायं विहरति [N. 43] पावारिकम्बवने। तेन खो पन समयेन निगण्ठो नातपुत्तो नाळन्दायं पटिवसति महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं। अथ खो दीघतपस्सी निगण्ठो नाळन्दायं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन पावारिक-[R. 372] म्बवनं येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो दीघतपस्सिं निगण्ठं भगवा एतदवोच—"संविज्जन्ति खो, तपस्सी, आसनानि; सचे आकङ्खसि निसीदा"ति। एवं वुत्ते, दीघतपस्सी निगण्ठो अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो दीघतपस्सिं निगण्ठं भगवा एतदवोच—"कति पन, तपस्सि, निगण्ठो नातपुत्तो कम्मानि पञ्ञापेति पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया" ति ?

"न खो, आवुसो गोतम, आचिण्णं निगण्ठस्स नातपुत्तस्स 'कम्मं, कम्मं' ति पञ्ञापेतुं; 'दण्डं, दण्डं' ति खो, आवुसो गोतम, आचिण्णं निगण्ठस्स नातपुत्तस्स पञ्ञापेतुं" ति।

---

६. उपालिसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् बुद्ध नालन्दा स्थित प्रावारिक-आम्रवन में विहार कर रहे थे। उस समय निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र (=निगण्ठ नाटपुत्त) भी नालन्दा में ही विशाल निर्ग्रन्थ-परिषद (जैनसाधु-सङ्घ) के साथ ठहरे हुए थे। उस समय कभी दीर्घतपस्वी नामक जैनसाधु नालन्दा में भिक्षा कर, भोजन के बाद, प्रावारिक-आम्रवन में, जहाँ भगवान् विराजमान थे, पहुँचा; पहुँच-कर भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछ, एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े उस दीर्घतपस्वी जैन से भगवान् ने यों कहा—"तपस्विन्! आसन पड़े हुए हैं, यदि चाहो तो बैठ जाओ"। ऐसा कहे जाने पर वह दीर्घतपस्वी आसन लेकर, भगवान् से नीचे की ओर बैठ गया। फिर एक ओर बैठे उस दीर्घतपस्वी से भगवान् ने यों पूछा—"तपस्विन्! तुम्हारे शास्ता निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र ने पापकर्म करने और उनकी प्रवृत्ति के लिये कितने विधान किये हैं ?"

"आयुष्मन् गौतम! हमारे शास्ता निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र 'कर्म' के बारे में कुछ नहीं बोलते; वे तो उसका 'दण्ड-विधान' ही उपदेश करते हैं।"

"कति पन, तपस्सि, निगण्ठो नातपुत्तो दण्डानि पञ्ञापेति पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया" ति ?

"तीणि खो, आवुसो गोतम, निगण्ठो नातपुत्तो दण्डानि पञ्ञापेति पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया ति, सेय्यथीदं—कायदण्डं, वचीदण्डं, मनोदण्डं" ति ।

"किं पन, तपस्सि, अञ्ञदेव कायदण्डं, अञ्ञं वचीदण्डं, अञ्ञं मनोदण्डं" ति ?

[N. 44] "अञ्ञदेव, आवुसो गोतम, कायदण्डं, अञ्ञ वचीदण्डं, अञ्ञं मनोदण्डं" ति ।

"इमेसं पन, तपस्सि, तिण्णं दण्डानं एवं पटिविभत्तानं एवं पटिविसिट्ठानं कतमं दण्डं निगण्ठो नातपुत्तो महासावज्जतरं पञ्ञापेति पापस्स कम्मस्स [B. 36] किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, यदि वा कायदण्डं, यदि वा वचीदण्डं, यदि वा मनोदण्डं" ति ?

"इमेसं खो, आवुसो गोतम, तिण्णं दण्डानं एवं पटिविभत्तानं एवं पटिविसिट्ठानं कायदण्डं निगण्ठो नातपुत्तो महासावज्जतरं पञ्ञापेति पापस्स

"तो फिर, तपस्विन् ! यही बताओ कि तुम्हारे शास्ता ने उन पापकर्मों तथा उनकी प्रवृत्ति के लिये कितने दण्ड विहित किये हैं ?"

"आयुष्मन् गौतम ! हमारे शास्ता ने उक्त पापकर्म व उनकी प्रवृत्ति के के फलस्वरूप तीन दण्डों का विधान किया है, जैसे —(१) कायदण्ड, (२) वाक्दण्ड तथा (३) मनोदण्ड ।"

"तपस्विन् ! तो क्या यह कायदण्ड (उनकी दृष्टि में) भिन्न है, वाक्दण्ड भिन्न है और मनोदण्ड भिन्न ?"

"हाँ, आयुष्मन् गौतम ! (उनकी दृष्टि में) ये तीनों ही.....दण्ड परस्पर भिन्न हैं ।"

"तपस्विन् ! तुम्हारे शास्ता उक्त पापकर्म व उनकी प्रवृत्ति के लिये, उपरिविभाजित इन तीनों दण्डों में से किसको अधिकतम दोषयुक्त (महासावद्यतम) मानते हैं—कायदण्ड को, वाक्दण्ड को या मनोदण्ड को ?"

"आयुष्मन् गौतम ! हमारे शास्ता निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र उपरिविभाजित तीन दण्डों में से, पापकर्म व उसकी प्रवृत्ति के लिये, जितना कायदण्ड को सबसे अधिक दोषयुक्त मानते हैं, उतना वाक्दण्ड या मनोदण्ड को नहीं मानते ।"

कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, नो तथा वचीदण्डं, नो तथा मनोदण्डं" ति।

"कायदण्डं ति, तपस्सि, वदेसि" ?
"कायदण्डं ति, आवुसो गोतम, वदामि"।
"कायदण्डं ति, तपस्सि, वदेसि" ?
"कायदण्डं ति, आवुसो गोतम, वदामि"।
"कायदण्डं ति, तपस्सि, वदेसि" ?
"कायदण्डं ति, आवुसो गोतम, वदामी" ति।

२. इतिह भगवा दीघतपस्सिं निगण्ठं इमस्मिं कथावत्थुस्मिं यावततियकं पतिट्ठापेसि। एवं वुत्ते, दीघतपस्सी निगण्ठो भगवन्तं एतदवाच—[R. 373] "त्वं पनावुसो गोतम, कति दण्डानि पञ्ञपेसि पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया" ति ?

"न खो, तपस्सि, आचिण्णं तथागतस्स 'दण्डं, दण्डं' ति पञ्ञापेतुं; 'कम्मं, कम्मं' ति खो, तपस्सि, आचिण्णं तथागतस्स पञ्ञापेतुं" ति।

"त्वं पनावुसो गोतम, कति कम्मानि पञ्ञपेसि पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया" ति ?

"तपस्विन् ! तुम 'कायदण्ड' कह रहे हो ?"
"हाँ, आयुष्मन् गौतम ! मैं 'कायदण्ड' कह रहा हूँ।"
"तपस्विन् ! तुम 'कायदण्ड' ही कह रहे हो न ?"
"हाँ, आयुष्मन् गौतम ! मैं 'कायदण्ड' ही कह रहा हूँ।"
"तपस्विन् ! (फिर सोच लो अपने शास्ता का सिद्धान्त) 'कायदण्ड' ही बता रहे हो न ?"
"हाँ, आयुष्मन् गौतम ! मैं 'कायदण्ड' ही बता रहा हूँ।"

२. इस तरह भगवान् ने उस दीर्घतपस्वी को इस कथावाद में तीन बार वचनबद्ध कर लिया। ऐसा कहने पर दीर्घतपस्वी ने भगवान् से (उलटकर) पूछा — "आयुष्मन् गौतम ! आप पापकर्म एवं उसकी प्रवृत्ति के लिये कितने दण्डों का विधान करते हैं ?"

"तपस्विन् ! इस पापकर्म व उसकी प्रवृत्ति के लिये, तथागत के मत में 'दण्ड' का कोई महत्त्व नहीं है; तथागत तो इसके बदले में 'कर्म' को ही महत्त्व देते हैं।"

"तो फिर आयुष्मन् गौतम ! आप उक्त प्रवृत्ति के लिये कितने 'कर्म' बताते हैं ?"

"तीणि खो अहं, तपस्सि, कम्मानि पञ्ञपेमि पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया; सेय्यथीदं - कायकम्मं, वचीकम्मं, मनोकम्मं" ति ।

"किं पनावुसो गोतम, अञ्ञदेव कायकम्मं, अञ्ञं वचीकम्मं, अञ्ञं मनोकम्मं" ति ?

[N. 45] "अञ्ञदेव, तपस्सि, कायकम्मं, अञ्ञं वचीकम्मं, अञ्ञं मनोकम्मं" ति ।

"इमेसं पनावुसो गोतम, तिण्णं कम्मानं एवं पटिविभत्तानं एवं पटिविसिट्ठानं कतमं कम्मं महासावज्जतरं पञ्ञपेसि पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, यदि वा कायकम्मं, यदि वा वचीकम्मं, यदि वा मनोकम्मं" ति ?

"इमेसं खो अहं, तपस्सि, तिण्णं कम्मानं एवं पटिविभत्तानं एवं पटिविसिट्ठानं मनोकम्मं महासावज्जतरं पञ्ञपेमि पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, नो तथा कायकम्मं, नो तथा वचीकम्मं" ति ।

"मनोकम्मं ति, आवुसो गोतम, वदेसि" ?

"मनोकम्मं ति, तपस्सि, वदामि" ।

"तपस्विन् ! मैं तो उक्त प्रवृत्ति के लिये तीन कर्मों को ही (प्रधानतया) बताता हूँ; जैसे—(१) कायकर्म, (२) वाक्कर्म तथा (३) मनःकर्म ।"

"आयुष्मन् गौतम ! क्या (आपकी दृष्टि में) कायकर्म भिन्न है, वाक्कर्म भिन्न है और मनःकर्म भिन्न ?"

"हाँ तपस्विन् ! (मेरी दृष्टि में) कायकर्म दूसरा है, वाक्कर्म दूसरा और मनःकर्म दूसरा ।"

"आयुष्मन् गौतम ! आप उक्त पापकर्म व उसकी प्रवृत्ति के लिये, उपरिविभाजित इन तीनों कर्मों में किसको अधिकतम दोषयुक्त मानते हैं—कायकर्म को, वाक्कर्म को या मनःकर्म को ?"

"तपस्विन् ! उक्त पापकर्म......तीन कर्मों में मनःकर्म को अधिक दोषयुक्त मानता हूँ, (मेरी दृष्टि में उतना अधिक दोषयुक्त) न कायकर्म है, न वाक्कर्म ।"

"आयुष्मन् गौतम ! आप 'मनःकर्म' कह रहे हैं ?"

"हाँ, तपस्विन् ! मैं 'मनःकर्म' कह रहा हूँ ।"

"आयुष्मन् गौतम ! आप 'मनःकर्म' ही कह रहे हैं न ?"

"मनोकम्मं ति, आवुसो गोतम, वदेसि" ?

"मनोकम्मं ति, तपस्सि, वदामि" ।

"मनोकम्मं ति, आवुसो गोतम, वदेसि" ?

"मनोकम्मं ति, तपस्सि, वदामी" ति ।

इतिह दीघतपस्सी निगण्ठो भगवन्तं इमस्मिं कथावत्थुस्मिं यावततियकं पतिट्ठापेत्वा उट्ठायासना येन निगण्ठो नातपुत्तो तेनुपसङ्कमि ।

३. तेन खो पन समयेन निगण्ठो नातपुत्तो महतिया [B. 37] गिहिपरिसाय सद्धिं निसिन्नो होति बालकिनिया परिसाय उपालिपमुखाय । अद्दसा खो निगण्ठो नातपुत्तो दीघतपस्सिं निगण्ठं दूरतो व आगच्छन्तं; दिस्वान दीघतपस्सिं निगण्ठं एतदवोच—"हन्द, कुतो नु त्वं, तपस्सि, आगच्छसि दिवा दिवस्सा" ति ?

"इतो हि खो अहं, भन्ते, आगच्छामि समणस्स गोतमस्स सन्तिका" ति ।

"अहु पन ते, तपस्सि, समणेन गोतमेन सद्धिं कोचिदेव कथा-सल्लापो" ति ? [R. 374]

"अहु खो मे, भन्ते, समणेन गोतमेन सद्धिं कोचिदेव कथा- [N. 46] सल्लापो" ति ।

"हाँ, तपस्विन् ! मैं 'मनःकर्म' ही कह रहा हूँ ।"

"आयुष्मन् गौतम ! (फिर सोच लें आपका अपना सिद्धान्त) मनःकर्म ही बता रहे हैं न ?"

"हाँ, तपस्विन् ! मैं 'मनःकर्म' हीं बता रहा हूँ ।"

इस तरह वह दीर्घतपस्वी निर्ग्रन्थ, भगवान् को इस कथावाद में तीन बार वचनबद्ध कर आसन से उठ, अपने शास्ता निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र के पास चला गया ।

३. उस समय निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र लोणकारनिवासी उपालि आदि प्रमुख गृहस्थों की भरी सभा में बैठे थे । उस समय उन्होंने दीर्घतपस्वी को, दूर से ही, आते देखा; देखकर दीर्घतपस्वी से यों पूछा—"अरे तपस्विन् ! इस भरी दुपहरी में कहाँ से चले आ रहे हो ?"

"भन्ते ! यहीं श्रमण गौतम के पास से चला आ रहा हूँ !"

"तपस्विन् ! क्या तुम्हारी उस श्रमण गौतम से कोई धर्मचर्चा भी हुई ?"

"हाँ भन्ते ! उस श्रमण गौतम से कुछ धर्मचर्चा हुई तो ।"

"यथा कथं पन ते, तपस्सि, अहु समणेन गोतमेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो" ति ?

अथ खो दीघतपस्सी निगण्ठो यावतको अहोसि भगवता सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं निगण्ठस्स नातपुत्तस्स आरोचेसि। एवं वुत्ते, निगण्ठो नातपुत्तो दीघतपस्सिं निगण्ठं एतदवोच—"साधु साधु, तपस्सि ! यथा तं सुतवता सावकेन सम्मदेव सत्थुसासनं आजानन्तेन एवमेवं दीघतपस्सिना निगण्ठेन समणस्स गोतमस्स ब्याकतं। किं हि सोभति छवो मनोदण्डो इमस्स एवं ओळारिकस्स कायदण्डस्स उपनिधाय ! अथ खो कायदण्डो व महासावज्जतरो पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, नो तथा वचीदण्डो, नो तथा मनोदण्डो" ति।

४. एवं वुत्ते, उपालि गहपति निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—"साधु साधु, भन्ते, दीघतपस्सि ! यथा तं सुतवता सावकेन सम्मदेव सत्थुसासनं आजानन्तेन एवमेवं भदन्तेन तपस्सिना समणस्स गोतमस्स ब्याकतं। किं हि सोभति छवो मनोदण्डो इमस्स एवं ओळारिकस्स कायदण्डस्स उपनिधाय ! अथ खो कायदण्डो व महासावज्जतरो पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, नो तथा वचीदण्डो, नो तथा मनोदण्डो। हन्द चाहं, भन्ते, गच्छामि समणस्स गोतमस्स इमं पि कथावत्थुस्मिं वादं आरोपेस्सामि। सचे मे समणो गोतमो

"तपस्विन् ! तुम्हारी उस श्रमण गौतम से क्या कुछ धर्मचर्चा हुई ?"

तब उस दीर्घतपस्वी ने भगवान् के साथ (अभी थोड़ी देर पहले) हुआ कथावाद (सम्प्रदाय सिद्धान्तचर्चा) विस्तार से निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र को कह सुनाया। ऐसा कहे जाने पर निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र ने दीर्घतपस्वी जैन को साधुवाद देते हुए कहा—"ठीक है तपस्विन् ! ठीक है। तुम्हारे जैसे समझदार शिष्य से यही आशा थी कि वह अपने शास्ता के सिद्धान्तों की व्याख्या इसी तरह करे जैसी कि तुमने श्रमण गौतम के सम्मुख की है। वह शव-(मृत) तुल्य मनोदण्ड इस स्पष्ट एवं सब के समझ में आने योग्य कायदण्ड के सामने क्या महत्त्व रखता है। पापकर्म की प्रवृत्ति में जितना कायदण्ड का महत्त्व है, उतना वाक्दण्ड या मनोदण्ड का नहीं।"

४. ऐसा कहे जाने पर उपालि गृहपति (अपने शास्ता) निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र से यों बोला—"धन्य है, यह दीर्घतपस्वी ! धन्य है। इस जैसे समझदार श्रावक से यही आशा थी ····· उतना वाग्दण्ड या मनोदण्ड का नहीं। भन्ते ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं श्रमण गौतम के पास जाऊँ और उससे इस विषय पर अधिक विस्तार से चर्चा करूँ। यदि भन्ते ! वह श्रमण गौतम उसी तरह ठहरा जैसा कि

तथा पतिट्ठहिस्सति यथा भदन्तेन तपस्सिना पतिट्ठापितं; सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो दीघलोमिकं एळकं लोमेसु गहेत्वा आकड्ढेय्य परिकड्ढेय्य सम्परिकड्ढेय्य, एवमेवाहं समणं गोतमं वादेन वादं आकड्ढिस्सामि परिकड्ढिस्सामि सम्परिकड्ढिस्सामि। सेय्यथापि नाम बलवा सोण्डिकाकम्मकारो [B. 38] महन्तं सोण्डिकाकिलञ्जं गम्भीरे उदकरहदे पक्खिपित्वा कण्णे गहेत्वा आकड्ढेय्य परिकड्ढेय्य सम्परिकड्ढेय्य, एवमेवाहं समणं गोतमं वादेन वादं आकड्ढिस्सामि परिकड्ढिस्सामि सम्परिकड्ढिस्सामि। सेय्यथापि नाम [N. 47] बलवा सोण्डिकाधुत्तो वालं कण्णे गहेत्वा ओधुनेय्य निद्धुनेय्य निप्फोटेय्य, एवमेवाहं समणं गोतमं वादेन वादं ओधुनिस्सामि निद्धुनिस्सामि [R. 375] निप्फोटेस्सामि। सेय्यथापि नाम कुञ्जरो सट्ठिहायनो गम्भीरं पोक्खरणिं ओगाहेत्वा साणधोविकं नामकीळितजातं कीळति, एवमेवाहं समणं गोतमं साणधोविकं मञ्ञे कीळितजातं कीळिस्सामि। हन्द चाहं, भन्ते, गच्छामि समणस्स गोतमस्स इमस्मिं कथावत्थुस्मिं वादं आरोपेस्सामी" ति ?

"गच्छ त्वं, गहपति, समणस्स गोतमस्स इमस्मिं कथावत्थुस्मिं वादं आरोपेहि। अहं वा हि, गहपति, समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेय्यं, दीघतपस्सी वा निगण्ठो, त्वं वा" ति।

५. एवं वुत्ते, दीघतपस्सी निगण्ठो निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—"न खो

दीर्घतपस्वी के सामने ठहरा रहा; तो मैं उसे इस बाद में ऐसा हिला-डुला दूँगा, जैसे कोई बलवान् पुरुष लम्बे बालों वाली भेड़ को बालों से पकड़कर हिला-डुला देता है; या जैसे बलवान् मद्यनिर्माता मद्यनिर्माण के काम में आने वाली लम्बी-भारी कड़छी को, किनारे से पकड़ कर, पानी के कुण्ड में बार-बार डालता-निकालता है; या फिर जैसे कोई बलवान् शराबी (प्रमादावस्था में) किसी बच्चे को, कान पकड़कर, अनायास ही हिला-डुला देता है; या फिर जैसे कोई साठ वर्ष का, अवस्थाप्राप्त, बलवान् हाथी गहरी पुष्करिणी में घुसकर सणधोवन नामक खेल खेलता है। तो भन्ते ! मैं उस श्रमण गौतम के पास एतद्विषयक चर्चा के लिये जाऊँ ?"

"ठीक है, गृहपति ! तुम जाओ और उस श्रमण गौतम से इस विषय में वाद (शास्त्रार्थ) करो। भले ही मैं या दीर्घतपस्वी या तुम (कोई भी) उस श्रमण गौतम से वाद करे (क्योंकि हम तीनों ही स्वशास्त्रसिद्धान्तों के पूर्ण ज्ञाता हैं)।"

५. ऐसा कहने पर दीर्घतपस्वी ने निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र से यों निवेदन किया—"भन्ते ! आपकी कही यह बात मुझे नहीं जँची कि उपालि गृहपति उस श्रमण

मेतं, भन्ते, रुच्चति यं उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेय्य। समणो हि, भन्ते, गोतमो मायावी आवट्टनिं मायं जानाति याय अञ्ञतित्थियानं सावके आवट्टेती" ति।

"अट्ठानं खो एतं, तपस्सि, अनवकासो यं उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगच्छेय्य। ठानं च खो एतं विज्जति यं समणो गोतमो उपालिस्स गहपतिस्स सावकत्तं उपगच्छेय्य। गच्छ, त्वं, गहपति, समणस्स गोतमस्स इमस्मिं कथावत्थुस्मिं वादं आरोपेहि। अहं वा हि, गहपति, समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेय्यं, दीघतपस्सी वा निगण्ठो, त्वं वा" ति।

दुतियं पि खो दीघतपस्सी....पे०....ततियं पि खो दीघतपस्सी निगण्ठो निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—"न खो मेतं, भन्ते, रुच्चति यं उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेय्य। समणो हि, भन्ते, गोतमो मायावी आवट्टनिं मायं जानाति याय अञ्ञतित्थियानं सावके आवट्टेती" ति।

"अट्ठानं खो एतं, तपस्सि, अनवकासो यं उपालि गहपति समणस्स [B. 39] गोतमस्स सावकत्तं उपगच्छेय्य। ठानं च खो एतं विज्जति यं समणो गोतमो उपालिस्स गहपतिस्स सावकत्तं उपगच्छेय्य। गच्छ त्वं,

---

गौतम से शास्त्रार्थ करने जाय; क्योंकि वह श्रमण गौतम बहुत बड़ा मायावी (=धूर्त) है, वह दूसरों को अपने वश में करने की माया जानता है, जिससे वह अन्य सम्प्रदायों के श्रावकों को अपनी ओर खींच लेता है।"

"तपस्विन्! यह असम्भव है कि उपालि गृहपति उसकी ओर खिंच जाय और उसका शिष्यत्व स्वीकार ले। बल्कि यही अधिक सम्भव है कि श्रमण गौतम उपालि गृहपति की ओर खिंचा चला आवे और उसका शिष्यत्व स्वीकार ले। इसलिये उपालि गृहपति तुम जाओ और उस श्रमण गौतम से शास्त्रार्थ करो। इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता कि उससे मैं स्वयं जाकर शास्त्रार्थ करूँ या दीर्घतपस्वी या फिर तुम।"

दीर्घतपस्वी ने दूसरी बार....तीसरी बार भी यह कहा—"........खींच लेता है।"

"तपस्विन्! यह सम्भव नहीं है.... या फिर तुम।"

गहपति, समणस्स गोतमस्स इमस्मिं कथावत्थुस्मिं वादं आरोपेहि। [N. 48] अहं वा हि, गहपति, समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेय्यं, दीघतपस्सी वा निगण्ठो, त्वं वा" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो उपालि गहपति निगण्ठस्स नातपुत्तस्स पटिस्सुत्वा उट्ठायासना निगण्ठं नातपुत्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन पावारिकम्बवनं येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा [R. 376] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो उपालि गहपति भगवन्तं एतदवोच— "आगमा नु ख्विध, भन्ते, दीघतपस्सी निगण्ठो" ति ?

"आगमा ख्विध, गहपति, दीघतपस्सी निगण्ठो" ति।

"अहु खो पन ते, भन्ते, दीघतपस्सिना निगण्ठेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो" ति ?

"अहु खो मे, गहपति, दीघतपस्सिना निगण्ठेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो" ति।

"यथा कथं पन ते, भन्ते, अहु दीघतपस्सिना निगण्ठेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो" ति ?

अथ खो भगवा यावतको अहोसि दीघतपस्सिना निगण्ठेन सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं उपालिस्स गहपतिस्स आरोचेसि।

६. एवं वुत्ते, उपालि गहपति भगवन्तं एतदवोच—"साधु साधु, भन्ते तपस्सी ! यथा तं सुतवता सावकेन सम्मदेव सत्थुसासनं आजानन्तेन एवमेवं

"यही बात है, भन्ते !"—कहते हुए निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र को उत्तर दे, आसन से उठ, अपने शास्ता को प्रणाम-प्रदक्षिणादि कर, उपालि गृहपति प्रावारिक आम्रवन में, जहाँ भगवान् (बुद्ध) विराजमान् थे, पहुचा; पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उपालि गृहपति ने भगवान् से यों पूछा— "भन्ते ! क्या यहाँ दीर्घतपस्वी नामक जैनसाधु आया था ?"

"हाँ, गृहपति ! वह आया था"।

"भन्ते ! उस दीर्घतपस्वी ने आपके साथ कोई धर्मचर्चा की थी ?"

"हाँ, गृहपति ! उस दीर्घतपस्वी ने कुछ धर्मचर्चा की तो जरूर थी।"

"भन्ते ! वह धर्मचर्चा क्या और कैसे हुई ?"

तब भगवान् ने दीर्घतपस्वी के साथ जितनी भी धर्मचर्चा हुई थी, वह सब उपालि गृहपति को कह सुनायी।

६. ऐसा कहने पर उपालि गृहपति ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! वह दीर्घतपस्वी धर्मचर्चा में बहुत कुशल है, उसने अपने सम्प्रदायानुमत सिद्धान्तों का आपके

दीघतपस्सिना निगण्ठेन भगवतो ब्याकतं। किं हि सोभति छवो मनोदण्डो इमस्स एवं ओळारिकस्स कायदण्डस्स उपनिधाय? अथ खो कायदण्डो व महासावज्जतरो पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, नो तथा वचीदण्डो, नो तथा मनोदण्डो" ति।

"सचे खो त्वं, गहपति, सच्चे पतिट्ठाय मन्तेय्यासि सिया नो एत्थ कथासल्लापो" ति।

"सच्चे अहं, भन्ते, पतिट्ठाय मन्तेस्सामि; होतु नो एत्थ कथा-सल्लापो" ति।

[N. 49] ७. "तं किं मञ्ञसि, गहपति, इधस्स निगण्ठो आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो सीतोदकपटिक्खित्तो उण्होदकपटिसेवी। सो सीतोदकं अलभमानो कालङ्करेय्य। इमस्स पन, गहपति, निगण्ठो नातपुत्तो कत्थूपपत्तिं पञ्ञापेती" ति?

"अत्थि, भन्ते, मनोसत्ता नाम देवा तत्थ सो उपपज्जति। "तं किस्स [B. 40] हेतु"? "असु हि, भन्ते, मनोपटिबद्धो कालङ्करोती" ति।

"मनसि करोहि, गहपति, मनसि करित्वा खो, गहपति, ब्याकरोहि। न खो ते सन्धियति पुरिमेन वा पच्छिमं, पच्छिमेन वा पुरिमं। भासिता खो पन ते,

---

सामने वैसा ही विश्लेषण किया, जैसा कि उसने अपने शास्ता से सुना था। इस मृततुल्य तुच्छ मनोदण्ड की कायदण्ड के सामने क्या विसात है? जितना पापकर्म करने या उसकी प्रवृत्ति में कायदण्ड दोषमय है, उतना वाग्दण्ड या मनोदण्ड का महत्त्व नहीं"।

"गृहपति! यदि तुम सत्य का आश्रयण लेकर (इस विषय पर) मंत्रणा करना चाहते हो तो कर सकते हो।"

"भन्ते! मैं सत्य का आश्रयण लेकर ही मंत्रणा करूँगा, अतः इस विषय पर चर्चा हो ही जाय।"

७. "तो क्या मानते हो, गृहपति! यदि कोई जैन रोगी, जिसने ठण्डा जल पीना छोड़ रखा हो, गरम जल ही पीता हो। उसे यदि ठण्डा जल न मिले और वह मर जाय। तो गृहपति! तुम्हारे शास्ता इस रोगी की उत्पत्ति कहाँ बतायेंगे?"

"भन्ते! वह मनःसत्त्व नामक देवों में उत्पन्न होगा।" "वह क्यों।" "भन्ते! क्योंकि वह मन:प्रतिबद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।"

"गृहपति! सोच लो, सोचकर ही उत्तर दो। तुम्हारी अगली बात पीछे की बात से मेल नहीं खाती और पिछली बात आगे की बात से। जबकि गृहपति!

गहपति, एसा वाचा—'सच्चे अहं, भन्ते, पतिट्ठाय मन्तेस्सामि, होतु नो एत्थ कथासल्लापो' " ति।

"किञ्चापि, भन्ते, भगवा एवमाह, अथ खो कायदण्डो व महासावज्जतरो पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, नो तथा वचीदण्डो, नो तथा मनोदण्डो" ति।

८. "तं किं मञ्ञसि, गहपति, इधस्स निगण्ठो नातपुत्तो [R. 377] चातुयामसंवरसंवुतो सब्बवारिवारितो सब्बवारियुतो सब्बवारिधुतो सब्बवारिफुटो। सो अभिक्कमन्तो पटिक्कमन्तो बहु खुद्दके पाणे सङ्घातं आपादेति। इमस्स पन, गहपति, निगण्ठो नातपुत्तो कं विपाकं पञ्ञापेती" ति ?

"असञ्चेतनिकं, भन्ते, निगण्ठो नातपुत्तो नो महासावज्जं पञ्ञापेती" ति।

"सचे पन, गहपति, चेतेती" ति ?

'महासावज्जं, भन्ते, होती" ति।

"चेतनं पन, गहपति, निगण्ठो नातपुत्तो किस्मिं पञ्ञापेती" ति ?

तुम अभी वचनबद्ध हुए थे कि 'भन्ते ! मैं सत्य का आश्रयण लेकर ही मन्त्रणा करूँगा'।"

"भन्ते ! भगवान् (आप) ने भी तो ऐसा ही कहा—पापकर्म की क्रिया और प्रवृत्ति के लिये कायदण्ड ही अधिक दोषयुक्त है, न कि वाग्दण्ड या मनोदण्ड।"

८. "तो क्या मानते हो गृहपति ! कोई जैन साधु चातुर्याम-नियमों[1] से आबद्ध, सब प्रकार के त्याज्य दोषों से मुक्त, सब प्रकार के पापों से धुला हुआ और सब दुष्कर्मों से दूर हो। वह चलते-फिरते छोटे-मोटे नानाविध प्राणियों की हत्या करता चले। गृहपति ! तुम्हारे शास्ता इस कर्म का क्या फल बताते हैं ?"

"भन्ते ! हमारे शास्ता अज्ञान में किये कर्म को दोषयुक्त नहीं मानते।"

"और गृहपति ! यदि जान-बूझकर ऐसा कर्म किया जाय तो ?"

"तब तो भन्ते ! वह दोषयुक्त होगा ही।"

"गृहपति ! तुम्हारे शास्ता इस चेतना (जानना) को किस (दण्ड) में प्रज्ञप्त करते हैं ?"

---

१. चातुर्याम—(१) प्राणहिंसा न करना, न कराना, न अनुमोदन करना, (२) चोरी न करना....., (३) झूठ न बोलना..... (४) भावित (=विषयभोग) न चाहना..... न करना।

"मनोदण्डस्मिं, भन्ते" ति ।

"मनसि करोहि, गहपति, मनसि करित्वा खो, गहपति, ब्याकरोहि । न खो ते सन्धियति पुरिमेन वा पच्छिमं, पच्छिमेन वा पुरिमं । भासिता खो पन [N. 50] ते, गहपति, एसा वाचा—'सच्चे अहं, भन्ते पतिट्ठाय मन्तेस्सामि; होतु नो एत्थ कथासल्लापो' " ति ।

"किञ्चापि, भन्ते, भगवा एवमाह, अथ खो कायदण्डो व महासावज्ज-तरो पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, नो तथा वचीदण्डो नो तथा मनोदण्डो" ति ।

९. "तं किं मञ्ञसि, गहपति, अयं नाळन्दा इद्धा चेव फीता च बहुजना आकिण्णमनुस्सा" ति ?

"एवं, भन्ते, अयं नाळन्दा इद्धा चेव फीता च बहुजना आकिण्ण-मनुस्सा" ति ।

"तं किं मञ्ञसि, गहपति, इध पुरिसो आगच्छेय्य उक्खित्तासिको । सो एवं वदेय्य—'अहं यावतिका इमिस्सा नाळन्दाय पाणा ते एकेन खणेन एकेन मुहुत्तेन एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं करिस्सामी' ति । तं किं मञ्ञसि, गहपति, पहोति नु खो सो पुरिसो यावतिका इमिस्सा नाळन्दाय पाणा ते एकेन [B. 41] खणेन एकेन मुहुत्तेन एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं कातुं" ति ?

"दस पि, भन्ते, पुरिसा, वीसं पि, भन्ते, पुरिसा तिसं पि भन्ते, पुरिसा,

---

"भन्ते ! मनोदण्ड में।"

"गृहपति ! सोच लो, सोचकर बोलो···पूर्ववत्·····मन्त्रणा करूँगा ।"'

भन्ते ! भगवान् (आप) ने भी तो कहा है कि पापकर्म की क्रिया···पूर्ववत् ·····न कि मनोदण्ड ।

९. "तो क्या मानते हो गृहपति ! यह नालन्दा नगरी सुखसम्पत्तियुक्त, सर्वसाधनसम्पन्न एवं बहुजनाकुल है ?"

"हाँ, भन्ते ! यह नालन्दा नगरी ऐसी ही है ।"

"गृहपति ! तो यहाँ कोई व्यक्ति हाथ में नंगी तलवार लिये आवे । और यह करे—'मैं इस नालन्दा नगरी के सभी प्राणियों को एक क्षण में, एक मुहूर्त्त में मार डालूँगा और उससे बहुत बड़ा मांस का ढेर (राशि) बना डालूँगा' । तो क्या मानते हो गृहपति ! वह व्यक्ति इस नालन्दा नगरी के सभी प्राणियों की··· हत्या कर इसे मांस का ढेर बना सकेगा ।

"भन्ते ! एक की तो बात ही क्या ! दस, बीस, तीस, चालीस, पचास

चत्ताळीसं पि, भन्ते, पुरिसा, पञ्ञासं पि, भन्ते, पुरिसा नप्पहोन्ति यावतिका इमिस्सा नाळन्दाय पाणा ते एकेन खणेन एकेन मुहुत्तेन एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं कातुं। किं हि सोभति एको छवो पुरिसो" ति!

"तं किं मञ्ञसि, गहपति, इध आगच्छेय्य समणो वा ब्राह्मणो वा इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो। सो एवं वदेय्य—'अहं इमं नाळन्दं एकेन मनोपदोसेन भस्मं करिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञसि, गहपति, पहोति नु खो सो समणो वा ब्राह्मणो वा इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो इमं नाळन्दं एकेन मनोपदोसेन भस्मं [R. 378] कातुं" ति?

"दस पि, भन्ते, नाळन्दा, वीसं पि नाळन्दा, तिंसं पि नाळन्दा, चत्ताळीसं पि नाळन्दा, पञ्ञासं पि नाळन्दा पहोति सो समणो वा ब्राह्मणो वा इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो एकेन मनोपदोसेन भस्मं कातुं। किं हि सोभति एका छवा नाळन्दा" ति!

"मनसि करोहि, गहपति, मनसि करित्वा खो, गहपति, [N. 51] ब्याकरोहि। न खो ते सन्धियति पुरिमेन वा पच्छिमं, पच्छिमेन वा पुरिमं। भासिता खो पन ते, गहपति, एसा वाचा—'सच्चे अहं, भन्ते, पतिट्ठाय मन्तेस्सामि; होतु नो एत्थ कथासल्लापो" ति।

"किञ्चापि, भन्ते, भगवा एवमाह, अथ खो कायदण्डो व महासावज्जतरो पापस्स कम्मस्स किरियाय पापस्स कम्मस्स पवत्तिया, नो तथा वचीदण्डो, नो तथा मनोदण्डो" ति।

व्यक्ति भी एक साथ मिलकर इस नालन्दा नगरी के सभी प्राणियों.....मांस का ढेर नहीं बना सकते।"

"तो क्या मानते हो, गृहपति! यहाँ कोई ऋद्धिमान्, इन्द्रियनिग्रही, श्रमण या ब्राह्मण आवे। वह यह कहे—'मैं इस समग्र नालन्दा नगरी को एक ही क्षण के मानसिक क्रोध से भस्म कर दूँगा'। तो क्या मानते हो, गृहपति! वह ऋद्धिमान्, इन्द्रियनिग्रही श्रमण या ब्राह्मण इस नालन्दा नगरी को एक ही क्षण के मानसिक क्रोध से भस्म कर देगा?"

"भन्ते! एक नालन्दा की तो बात ही क्या! वैसा ऋद्धिमान्, इन्द्रियनिग्रही श्रमण या ब्राह्मण दस, बीस, तीस, चालीस, नालन्दा नगरियों को भी एक ही क्षण के मानसिक क्रोध से भस्म कर सकता है।"

"गृहपति! सोच लो, सोचकर कहो.....पूर्ववत्.....मन्त्रणा करूँगा।"

"भन्ते! भगवान् (आप) ने भी तो कहा है कि पापकर्म की क्रिया..... पूर्ववत्.....न कि मनोदण्ड।

१०. "तं किं मञ्ञसि, गहपति सुतं ते दण्डकारञ्ञं कालिङ्गारञ्ञं मेज्झारञ्ञं मातङ्गारञ्ञं अरञ्ञं अरञ्ञभूतं" ति ?

"एवं, भन्ते, सुतं मे दण्डकारञ्ञं कालिङ्गारञ्ञं मेज्झारञ्ञं मातङ्गारञ्ञं अरञ्ञं अरञ्ञभूतं" ति।

"तं किं मञ्ञसि, गहपति, किन्ति ते सुतं केन तं दण्डकारञ्ञं कालिङ्गारञ्ञं मेज्झारञ्ञं मातङ्गारञ्ञं अरञ्ञं अरञ्ञभूतं" ति ?

"सुतं मेतं, भन्ते, इसीनं मनोपदोसेन तं दण्डकारञ्ञं कालिङ्गारञ्ञं मेज्झारञ्ञं मातङ्गारञ्ञं अरञ्ञं अरञ्ञभूतं ति"।

"मनसि करोहि, गहपति, मनसि करित्वा खो, गहपति, ब्याकरोहि। न खो ते सन्धियति पुरिमेन वा पच्छिमं, पच्छिमेन वा पुरिमं। भासिता खो पन ते, गहपति, एसा वाचा--'सच्चे अहं, भन्ते पतिट्ठाय मन्तेस्सामि; होतु नो एत्थ कथासल्लापो' " ति।

११. "पुरिमेनेवाहं, भन्ते, ओपम्मेन भगवतो अत्तमनो अभिरद्धो। [B. 42] अपि चाहं इमानि भगवतो विचित्रानि पञ्हपटिभानानि सोतुकामो एवाहं भगवन्तं पच्चनीकं कातब्बं अमञ्ञिस्सं। अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति, एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो।

---

१०. "तो क्या मानते हो गृहपति ! तुमने दण्डकारण्य, कलिंगारण्य, मेध्यारण्य, मातङ्गारण्य का अरण्य होना सुना है ?"

"हाँ, भन्ते ! सुना है····।"

"गृहपति ! क्या तुमने सुना है कि ये सभी अरण्य 'अरण्य' कैसे कहलाये ?"

"हाँ भन्ते ! मैंने सुना है कि ये सभी अरण्य ऋषियों के क्षणिक क्रोध के कारण 'अरण्य' बन गये।"

"गृहपति ! ध्यान दो, ध्यान देकर बात करो···पूर्ववत्·····मंत्रणा करूँगा।"

११. "भन्ते ! मैं आपके इस व्याख्यान के तरीके से प्रारम्भ में ही सन्तुष्ट, प्रसन्नमन एवं आपके प्रति श्रद्धालु हो गया था। मैंने तो आपके इस व्याख्यान की विचित्र पद्धति को और अधिक सुनने के लिये ही मंत्रणा को आगे बढ़ाया और आपसे धर्मचर्चा करने की धृष्टता की। आपने बात को बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया भन्ते ! बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया। जैसे कोई औंधे को सीधा करदे····· पूर्ववत्·····मुझे आज से यावज्जीवन अपना उपासक (शिष्य) समझें।"

एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खु- [N. 52, R. 379] सङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

१२. "अनुविच्चकारं खो, गहपति, करोहि, अनुविच्चकारो तुम्हादिसानं ञातमनुस्सानं साधु होती" ति।

"इमिनापाहं, भन्ते, भगवतो भिय्योसो मत्ताय अत्तमनो अभिरद्धो यं मं भगवा एवमाह—'अनुविच्चकारं खो, गहपति, करोहि, अनुविच्चकारो तुम्हादिसानं ञातमनुस्सानं साधु होती' ति। मं हि भन्ते, अञ्ञतित्थिया सावकं लभित्वा केवलकप्पं नाळन्दं पटाकं परिहरेय्युं—'उपालि अम्हाकं गहपति सावकत्तं उपगतो' ति। अथ च पन मं भगवा एवमाह—'अनुविच्चकारं खो, गहपति, करोहि, अनुविच्चकारो तुम्हादिसानं ञातमनुस्सानं साधु होती' ति। एसाहं, भन्ते, दुतियं पि भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

१३. "दीघरत्तं खो ते, गहपति, निगण्ठानं ओपानभूतं कुलं येन नेसं उपगतानं पिण्डकं दातब्बं मञ्ञेय्यासी" ति।

"इमिनापाहं, भन्ते, भगवतो भिय्योसो मत्ताय अत्तमनो अभिरद्धो यं मं

---

१२. गृहपति ! सोच-समझकर काम करना सीखो, तुम्हारे ऐसे समझदार गृहपति के लिये सोच-समझकर काम करना ही अच्छा होता है।"

"भन्ते भगवान् ! आपके 'गृहपति ! सोच-समझकर काम करना सीखो ·····होता है'— इस कथन से मैं और भी अधिक प्रसन्नमन हो गया। भन्ते ! अपर सम्प्रदायों के शास्ताजन मुझ जैसे गृहपति को शिष्य पाकर इस समग्र नालन्दा नगरी में अभिमानपूर्वक जगह-जगह, पताका फहराते हुए, यह कहते-फिरते—'उपालि जैसा समझदार, योग्य गृहपति भी हमारा शिष्य है'। परन्तु आप हैं कि मुझसे कह रहे हैं—'सोच-समझकर काम करना सीखो, गृहपति ! तुम जैसे योग्य पुरुषों के लिये सोच-समझकर काम करना ही उचित है।' भन्ते ! इस कारण मैं पुनः आपकी, आपके धर्म और सङ्घ की शरण में आने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मुझे आज से यावज्जीवन अपना शिष्य समझकर व्यवहार करें।"

१३. "गृहपति ! (मेरा शिष्य बनने के बाद) क्योंकि तुम्हारा कुल बहुत समय से जैन-सम्प्रदाय के साधुओं के लिये प्याऊ की तरह रहा है, अतः अब यह निश्चय न कर लेना कि तुम्हारे दरवाजे पर आने वाले जैन साधुओं को भिक्षा नहीं देनी है।"

"भन्ते ! इससे तो मुझे और भी सौमनस्य हुआ कि आप मुझे यह उपदेश

भगवा एवमाह—'दीघरत्तं खो ते, गहपति, निगण्ठानं ओपानभूतं कुलं येन नेसं उपगतानं पिण्डकं दातब्बं मञ्ञेय्यासी' ति। सुतं मेतं, भन्ते, समणो गोतमो एवमाह—'मय्हमेव दानं दातब्बं, नाञ्ञेसं दानं दातब्बं; मय्हमेव सावकानं दानं दातब्बं, नाञ्ञेसं सावकानं दानं दातब्बं; मय्हमेव दिन्नं महप्फलं, नाञ्ञेसं दिन्नं महप्फलं; मय्हमेव सावकानं दिन्नं महप्फलं, नाञ्ञेसं सावकानं दिन्नं महप्फलं' ति। अथ च पन मं भगवा निगण्ठेसु पि दाने समादपेति। अपि च, भन्ते, मयमेत्थ कालं जानिस्साम। एसाहं, भन्ते, ततियं पि भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

[B. 43] १४. अथ खो भगवा उपालिस्स गहपतिस्स अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं सीलकथं सग्गकथं, कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, [N. 53] नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा भगवा अञ्ञासि उपालिं [R. 380] गहपतिं कल्लचित्तं मुदुचित्तं विनीवरणचित्तं उदग्गचित्तं पसन्नचित्तं,

---

कर रहे हैं—'क्योंकि तुम्हारा कुल बहुत समय से""भिक्षा नहीं देनी है।' मैंने सुना था कि आप (अपने उपासकों को) यह उपदेश करते हैं—'मुझे ही दान देना चाहिये, दूसरों को नहीं; मेरे शिष्यों को ही दान देना चाहिये, दूसरों के शिष्यों को नहीं; मेरे लिए दिया हुआ दान ही अत्यन्त फलदायी होता है, दूसरों के लिए दिया हुआ नहीं; मेरे शिष्यों के लिये दिया हुआ दान ही फलदायी होता है; दूसरों के शिष्यों के लिये दिया हुआ नहीं'। और आप तो मुझे निर्ग्रन्थों (जैनों) के लिये भी दान का उपदेश कर रहे हैं। भन्ते! मैं भी इसे ही उचित समझूँगा। भन्ते! इस तीसरे कारण से भी मेरा मन आपका शिष्य बनने के लिये दृढ़ हो रहा है, अतः मैं आपकी, आपके धर्म की और सङ्घ की शरण में जाता हूँ। आज से यावज्जीवन आप मुझे अपना उपासक समझें।"

१४. इसके बाद भगवान् ने क्रमशः (आनुपूर्वी) दान, शील, स्वर्ग आदि विषयों पर धार्मिकचर्चा की, साथ ही कामभोगों के दोष, विकार, क्लेश, निष्काम कर्मों का माहात्म्य भी बताया। जब भगवान् ने उपालि गृहपति के बारे में समझ लिया कि इसका चित्त प्रसन्न, सही बात समझने योग्य, विकाररहित अतएव शुद्ध हो चुका है, तब उन्होंने उसको बुद्धों द्वारा दिया जाने वाला उत्कृष्ट उपदेश, जिससे कि शिष्य सरलता से समाधि (=ध्यानभावना) द्वारा निर्वाण की ओर बढ़ने लगता है, करना प्रारम्भ किया। जिसमें दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःख-

अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना तं पकासेसि—दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य; एवमेव उपालिस्स गहपतिस्स तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खु उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं' ति। अथ खो उपालि गहपति दिट्ठधम्मो पत्तधम्मो विदितधम्मो परियोगाळ्हधम्मो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—"हन्द च दानि मयं, भन्ते, गच्छाम, बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

"यस्सदानि त्वं, गहपति, कालं मञ्ञसी" ति।

१५. अथ खो उपालि गहपति भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन सकं निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा दोवारिकं आमन्तेसि—"अज्जतग्गे, सम्म दोवारिक, आवरामि द्वारं निगण्ठानं निगण्ठीनं, अनावटं द्वारं भगवतो भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं। सचे कोचि निगण्ठो आगच्छति तमेनं त्वं एवं वदेय्यासि—'तिट्ठ, भन्ते, मा पाविसि। अज्जतग्गे उपालि गहपति समणस्स

निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग का विस्तृत वर्णन था। जैसे साफ सुथरा निर्मल वस्त्र शीघ्र ही अच्छा और पक्का रंग पकड़ लेता है; वैसे ही उपालि गृहपति को उसी आसन पर बैठे-बैठे निर्मल, निर्विकार धर्मज्ञान उत्पन्न हुआ कि 'इस दृश्यमान जगत् में सभी कुछ दुःखमय है, परन्तु उसके निरोध का उपाय भी है'। ऐसा ज्ञान हो जाने पर, उपालि गृहपति, जिसको कि धर्म की गुत्थियाँ साफ-साफ समझ में आने लगी थीं, इस तर उस धर्मप्राप्ति के साक्षात्कार हेतु नजदीक सा पहुँच चुका था, धर्म की गुत्थियों को समझने में अपने बुद्धिविवेक का प्रयोग करने लगा था, निःसंशयहोकर, भ्रान्त धारणाओं और ऊहापोह से दूर, कौशलयुक्त, अन्य सिद्धान्तों पर श्रद्धा-विश्वास को त्याग, भगवान् के उपदेशों में ही पूर्ण निष्ठा रखता हुआ, भगवान् से यों बोला—"भन्ते! हम तो गृहस्थ हैं, अब हमें जाने की आज्ञा दीजिये, हम गृहस्थ बहुत से काम-धन्धों में उलझे रहते हैं।"

"गृहपति! जैसा तुम उचित समझो।"

१५. इसके बाद उपालि गृहपति आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणादि कर, अपने घर की ओर चल पड़ा। घर पहुँचकर उसने अपने द्वारपाल से कहा—"सौम्य द्वारपाल! आज से मैं जैनसाधुओं और भिक्षुणियों के लिये अपने घर के दरवाजे बन्द करता हूँ, (अब उन्हें इस घर में न घुसने देना) और भगवान् (बुद्ध) के श्रावकों और भिक्षुणियों के लिये इस घर के दरवाजे खोलता हूँ।

गोतमस्स सावकत्तं उपगतो। आवटं द्वारं निगण्ठानं निगण्ठीनं, अनावटं द्वारं भगवतो भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं। सचे ते, भन्ते, पिण्डकेन अत्थो, एत्थेव तिट्ठ, एत्थेव ते आहरिस्सन्ती" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो दोवारिको उपालिस्स गहपतिस्स पच्चस्सोसि।

१६. अस्सोसि खो दीघतपस्सी निगण्ठो—"उपालि किर गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगतो" ति। अथ खो दीघतपस्सी निगण्ठो येन निगण्ठो नातपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भन्ते, उपालि किर गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगतो" ति।
[N. 54, B. 44] "अट्ठानं खो एतं, तपस्सि, अनवकासो यं उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगच्छेय्य। ठानं च खो एतं विज्जति यं समणो गोतमो उपालिस्स गहपतिस्स सावकत्तं उपगच्छेय्या" ति।
[R. 38] दुतियं पि खो दीघतपस्सी निगण्ठो.....पे०.....ततियं पि खो दीघतपस्सी निगण्ठो निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—सुतं मेतं, भन्ते ....उपालिस्स गहपतिस्स सावकत्तं उपगच्छेय्या ति।

अब, यदि कोई जैनसाधु आवे उससे तुम यही कहना—'रुको, भन्ते! अन्दर न आओ। आज से (हमारे मालिक) उपालि गृहपति श्रमण गौतम के श्रावक हो गये हैं। अतः अब इस घर के दरवाजे जैनसाधुओं और भिक्षुणियों के लिये बन्द कर दिये गये हैं और भगवान् के शिष्यों और शिष्याओं के लिये खोल दिये हैं। यदि भन्ते! आपको भिक्षा चाहिये, तो आप यहीं ठहरें, वह आपको यहीं ला दी जायगी'।"

"ठीक है, श्रीमन्!" कहकर द्वारपाल ने उपालि गृहपति की आज्ञा को शिरोधार्य किया।

१६. (उधर जब) दीर्घतपस्वी ने सुना कि "उपालि गृहपति श्रमण गौतम का शिष्य बन गया"। तब दीर्घतपस्वी जहाँ निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र थे, वहाँ पहुँचा; पहुँचकर निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र से यों बोला—"भन्ते! मैंने सुना है कि उपालि गृहपति श्रमण गौतम का शिष्य बन गया है"।

"तपस्विन्! यह सम्भव नहीं है कि उपालि गृहपति श्रमण गौतम का शिष्य बन जाय, अपितु सम्भव यह है कि वह श्रमण गौतम ही उपालि गृहपति का शिष्यत्व स्वीकार कर ले।"

दूसरी बार दीर्घतपस्वी ने.....तीसरी बार भी दीर्घतपस्वी ने निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र से यों कहा—"भन्ते! सुना है.....उपालि गृहपति का श्रमण गौतम ही शिष्यत्व स्वीकार कर ले।"

"हन्दाहं, भन्ते, गच्छामि याव जानामि यदि वा उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगतो यदि वा नो" ति।

"गच्छ त्वं, तपस्सि, जानाहि यदि वा उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगतो यदि वा नो" ति।

१७. अथ खो दीघतपस्सी निगण्ठो येन उपालिस्स गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो दोवारिको दीघतपस्सिं निगण्ठं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान दीघतपस्सिं निगण्ठं एतदवोच—"तिट्ठ, भन्ते, मा पाविसि। अज्जतग्गे उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगतो। आवटं द्वारं निगण्ठानं निगण्ठीनं, अनावटं द्वारं भगवतो भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं। सचे ते, भन्ते, पिण्डकेन अत्थो, एत्थेव तिट्ठ, एत्थेव ते आहरिस्सन्ती" ति।

"न मे, आवुसो, पिण्डकेन अत्थो" ति वत्वा ततो पटिनिवत्तित्वा येन निगण्ठो नातपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—"सच्चं येव खो, भन्ते, यं उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगतो। एतं खो ते अहं, भन्ते, नालत्थं न खो मे, भन्ते, रुच्चति यं उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेय्य। समणो हि, भन्ते गोतमो मायावी आवट्टनिं

"भन्ते ! मैं स्वयं वहाँ जाता हूँ और पता लगाता हूँ कि क्या उपालि गृहपति ने सचमुच श्रमण गौतम का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया है या नहीं।"

"ठीक है, तपस्विन् ! तुम जाओ और पता लगाओ कि क्या उपालि गृहपति ने श्रमण गौतम का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया है या नहीं।"

१७. एतदनन्तर, दीर्घतपस्वी जैन साधु उपालि गृहपति के घर पहुँचा। द्वारपाल ने दीर्घतपस्वी को दूर से ही आते देखा। देखकर वह दीर्घतपस्वी से यों बोला—"भन्ते ! यहीं रुको अन्दर न आओ। आज से उपालि गृहपति श्रमण गौतम के शिष्य बन गये हैं ....पूर्ववत्...यदि आपको भिक्षा चाहिये तो आप यहीं ठहरें, वह आपको यहीं ला देंगे।"

"आयुष्मन् ! मुझे भिक्षा की आवश्यकता नहीं"—यह कहकर, उलटे पैरों लौट, निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र के पास पहुँचा और यों बोला—"यह बात तो सच ही निकली कि उपालि गृहपति श्रमण गौतम का शिष्य (उपासक) बन गया। भन्ते ! मैंने तो आपसे पहले ही निवेदन किया था कि यह मुझे उचित नहीं लगता कि उपालि गृहपति श्रमण गौतम से वाद करने जाय। भन्ते ! श्रमण गौतम तो मायावी (सम्मोहक) है, वह दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को अपनी ओर खींचने की माया (=तिकड़म) जानता है, जिससे कि वह दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को

मायं जानाति याय अञ्ञतित्थियानं सावके आवट्टेती ति। आवट्टो खो ते, भन्ते, उपालि गहपति समणेन गोतमेन आवट्टनिया मायाया" ति।

"अट्ठानं खो एतं, तपस्सि, अनवकासो यं उपालि गहपति समणस्स [N. 55] गोतमस्स सावकत्तं उपगच्छेय्य। ठानं च खो एतं विज्जति यं समणो गोतमो उपालिस्स गहपतिस्स सावकत्तं उपगच्छेय्या" ति। दुतियं पि खो दीघ-तपस्सी निगण्ठो निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—सच्चं येव, भन्ते···पे०····· उपालिस्स गहपतिस्स सावकत्तं उपगच्छेय्या ति। ततियं पि खो दीघतपस्सी [R. 382] निगण्ठो निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—सच्चं येव खो, भन्ते ··· पे०··· [B. 45] उपालिस्स गहपतिस्स सावकत्तं उपगच्छेय्या ति। हन्द चाहं, तपस्सि, गच्छामि याव चाहं सामं येव जानामि यदि वा उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगतो यदि वा नो ति।

अथ खो निगण्ठो नातपुत्तो महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं येन उपालिस्स गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो दोवारिको निगण्ठं नातपुत्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—"तिट्ठ, भन्ते, मा पाविसि। अज्जतग्गे उपालि गहपति समणस्स गोतमस्स सावकत्तं उपगतो। आवटं द्वारं निगण्ठानं निगण्ठीनं, अनावटं द्वारं भगवतो भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं। सचे ते, भन्ते, पिण्डकेन अत्थो, एत्थेव तिट्ठ, एत्थेव ते आहरिस्सन्ती" ति।

अपनी ओर खींच लेता है। भन्ते ! उपालि गृहपति भी उसके मायाजाल में फँस गया।"

"तपस्विन् ! यह सम्भव ही नहीं कि उपालि गृहपति···शिष्य बन जाय।" दूसरी बार भी·····तीसरी बार भी दीर्घतपस्वी ने निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र से यों कहा—भन्ते ! सचमुच ही उपालि गृहपति ····शिष्य बन जाय। अच्छा तो, तपस्विन् ! मैं स्वयं जाता हूँ और पता लगाता हूँ कि क्या सचमुच उपालि गृहपति···शिष्य बन गया है या नहीं ?"

तब निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र अपने विशाल जैनसाधुसङ्घ के साथ उपालि गृहपति के घर पहुँचे। वहाँ के द्वारपाल ने निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र को दूर से ही आते देख लिया। देखकर वह उनसे यों बोला—"भन्ते ! ठहरिये, अन्दर न आइये। आज से उपालि गृहपति ने श्रमण गौतम का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया है·····पूर्ववत्·····आप यहीं ठहरें, वह आपको यहीं ला देंगे।"

"तेन हि, सम्म दोवारिक, येन उपालि गहपति तेनुपसङ्काम; उपसङ्कमित्वा उपालिं गहपतिं एवं वदेहि—'निगण्ठो, भन्ते, नातपुत्तो महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं बहिद्वारकोट्ठके ठितो; सो ते दस्सनकामो' " ति।

"एवं, भन्ते" ति खो दोवारिको निगण्ठस्स नातपुत्तस्स पटिस्सुत्वा येन उपालि गहपति तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा उपालिं गहपतिं एतदवोच—"निगण्ठो, भन्ते, नातपुत्तो महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं बहिद्वारकोट्ठके ठितो; सो ते दस्सनकामो" ति।

"तेन हि, सम्म दोवारिक, मज्झिमाय द्वारसालाय आसनानि पञ्ञापेही" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो दोवारिको उपालिस्स गहपतिस्स पटिस्सुत्वा मज्झिमाय द्वारसालाय आसनानि पञ्ञापेत्वा येन उपालि गहपति [N. 56] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा उपालिं गहपतिं एतदवोच—"पञ्ञत्तानि खो, भन्ते, मज्झिमाय द्वारसालाय आसनानि। यस्सदानि कालं मञ्ञसी" 'ति।

१८. अथ खो उपालि गहपति येन मज्झिमा द्वारसाला तेनुप- [R. 383] सङ्कमि; उपसङ्कमित्वा यं तत्थ आसनं अग्गं च सेट्ठं च उत्तमं च पणीतं च तत्थ सामं निसीदित्वा दोवारिकं आमन्तेसि—"तेन हि, सम्म दोवारिक, येन

"तो, सौम्य द्वारपाल ! तुम जहाँ उपालि गृहपति हो, वहाँ जाओ; जाकर उपालि गृहपति से यह कहो—'श्रीमन् ! निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र अपने विशाल जैनसाधुसङ्घ के साथ द्वार पर खड़े हैं और आपसे मिलना चाहते हैं'।"

"ठीक है, भन्ते"—कहकर वह द्वारपाल जहाँ उपालि गृहपति थे, वहाँ पहुँचा; और बोला—"श्रीमन् ! विशाल जैनसाधुसङ्घ को साथ लिये निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र बाहर द्वार पर खड़े हैं और आपसे मिलना चाहते हैं।"

"तो सौम्य द्वारपाल ! घर के मध्यमद्वार पर (बनी) अतिथिशाला में आसन बिछा दो।"

"ठीक है, श्रीमन् !"—यों उपालि गृहपति को उत्तर दे, मध्यमद्वार की अतिथिशाला में आसन बिछाकर वापस वह उपालि गृहपति के पास पहुँचा; पहुँचकर उपालि गृहपति से यों बोला—"श्रीमन् ! मध्यमद्वार की अतिथिशाला में आसन बिछा दिये गये हैं। अब आप जैसा उचित समझें।"

१८. इसके बाद उपालि गृहपति मध्यमद्वार की अतिथिशाला में पहुँचा; वहाँ पहुँचकर, जो सर्वोच्च, श्रेष्ठ, उत्तम और सुन्दर आसन बिछा था, उस पर वह स्वयं बैठ, द्वारपाल से बोला—"सौम्य द्वारपाल ! अब तुम निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र

निगण्ठो नातपुत्तो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा निगण्ठं नातपुत्तं एवं वदेहि—'उपालि, भन्ते, गहपति एवमाह—पविस किर, भन्ते, सचे आकङ्खसी" ति ।

"एवं, भन्ते" ति खो दोवारिको उपालिस्स गहपतिस्स पटिस्सुत्वा येन निगण्ठो नातपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—"उपालि, भन्ते, गहपति एवमाह—'पविस किर, भन्ते, सचे आकङ्खसी' " ति ।

[B. 46] अथ खो निगण्ठो नातपुत्तो महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं येन मज्झिमा द्वारसाला तेनुपसङ्कमि । अथ खो उपालि गहपति—यं सुदं पुब्बे यतो पस्सति निगण्ठं नातपुत्तं दूरतो व आगच्छन्तं दिस्वान ततो पच्चुग्गन्त्वा यं तत्थ आसनं अग्गं च सेट्ठं च उत्तमं च पणीतं च तं उत्तरासङ्गेन सम्मज्जित्वा परिग्गहेत्वा निसीदापेति सो—दानि यं तत्थ आसनं अग्गं च सेट्ठं च उत्तमं च पणीतं च तत्थ सामं निसीदित्वा निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—"संविज्जति खो, भन्ते, आसनानि; सचे आकङ्खसि, निसीदा" ति । एवं वुत्ते, निगण्ठो नातपुत्तो उपालिं गहपतिं एतदवोच—"उम्मत्तोसि त्वं, गहपति, दत्तोसि त्वं, गहपति ! 'गच्छामहं, भन्ते, समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेस्सामी' ति गन्त्वा महतासि वादसङ्घाटेन पटिमुक्को आगतो ! सेय्यथापि, गहपति, पुरिसो अण्डहारको

के पास जाओ; जाकर उनसे यों कहो—'भन्ते ! उपालि गृहपति ने यह कहा है—यदि आप चाहें तो अन्दर आवें' ।"

"ठीक है, श्रीमन् ! कहकर वह द्वारपाल जहाँ निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र थे, वहाँ पहुँचा; पहुँचकर निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र से यों बोला—"भन्ते ! उपालि गृहपति ने (आपसे) यह कहा है—'यदि आप चाहते हो तो अन्दर आवें' ।"

तब निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र मध्यमद्वार की अतिथिशाला पर पहुँचे । पहले जहाँ उपालि गृहपति निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र को दूर से ही आते देखता तो दौड़कर, उन्हें लाकर, उच्चतम आसन को अपने महार्घ उत्तरासङ्ग से पोंछकर, उस पर उन्हें ससम्मान बैठाता था; परन्तु आज वहीं वह पहले से ही उस अतिथिशाला में आकर, सर्वोच्च आसन स्वयं ग्रहण कर, निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र से यों बोला—"भन्ते ! आसन बिछे हैं, यदि आप चाहें तो बैठें ।" ऐसा कहे जाने पर निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र ने उपालि गृहपति से कहा—"अरे गृहपति ! तू पागल हो गया है क्या ! तेरा सिर फिर गया है क्या ! तूँ तो मुझसे 'श्रमण गौतम के साथ वाद करूँगा'—कहकर चला था, और अब तूँ उस वाद के जंजाल में फँसकर इस स्थिति में आ पहुँचा ! गृहपति ! जैसे कोई अण्डा लानेवाला सड़े-गले, दूर फेंके, बेकार अण्डे ले आय या जैसे कोई

गन्त्वा उभतेहि अण्डेहि आगच्छेय्य; सेय्यथा वा पन गहपति पुरिसो अक्खिक-हारको गन्त्वा उभतेहि अक्खीहि आगच्छेय्य; एवमेव खो त्वं, गहपति, 'गच्छामहं, भन्ते, समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेस्सामी' ति गन्त्वा महतासि वादसङ्घाटेन पटिमुक्को आगतो। आवट्टोसि खो त्वं, गहपति, समणेन [N. 57] गोतमेन आवट्टनिया मायाया" ति।

१९. "भद्दिका, भन्ते, आवट्टनी माया; कल्याणी, भन्ते, आवट्टनी माया; पिया मे, भन्ते, ञातिसालोहिता इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं; पियानं पि मे अस्स ञातिसालोहितानं दीघरत्तं हिताय सुखाय; सब्बे चे पि, भन्ते, खत्तिया इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं सब्बेसानं पिस्स खत्तियानं दीघरत्तं [R. 384] हिताय सुखाय; सब्बे चे पि, भन्ते, ब्राह्मणा...पे०.....वेस्सा.....पे०....सुद्दा इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं सब्बेसानं पिस्स सुद्दानं दीघरत्तं हिताय सुखाय; सदेवको चे पि, भन्ते, लोको समारको सब्रह्मको सस्समणब्राह्मणी पजा सदेवमनुस्सा इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं सदेवकस्स पिस्स लोकस्स समारकस्स सब्रह्मकस्स सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय दीघरत्तं हिताय सुखाया ति। तेन हि, भन्ते, उपमं ते करिस्सामि। उपमाय पिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति।

आँख निकालने वाला फूटी, बेकार (ज्योतिहीन) आँख लेकर चला आवे; उसी तरह तूँ मुझसे 'जाता हूँ, भन्ते ! मैं श्रमण गौतम के साथ वाद करूँगा'—कहकर, श्रमण गौतम के पास गया और तूँ स्वयं ही उसके भारी वाक्जाल में फँस, वापस आ गया। गृहपति ! श्रमण गौतम ने अपने सम्मोहक-मायाजाल से तेरी बुद्धि पलट दी।"

१९. "भन्ते ! उनका यह सम्मोहक मायाजाल भद्र (अच्छा) है, कल्याण-कारक है; भन्ते ! (मैं तो चाहता हूँ कि) मेरे सभी प्यारे नाते-रिश्तेदार इस सम्मोहक मायाजाल में फँस जाय; उन प्यारे नाते-रिश्तेदारों के लिये भी यह (सम्मोहक मायाजाल) चिरकाल तक हितकर एवं सुखप्रद होगा; सभी क्षत्रिय इस मायाजाल से आबद्ध हो जाँय, उनके लिये भी यह चिरकाल तक हितकर एवं सुखप्रद होगा; भन्ते ! सभी ब्राह्मण······वैश्य······शूद्र भी इस मायाजाल से आबद्ध हो जाँय, उनके लिये भी यह चिरकाल तक हितकर एवं सुखप्रद होगा; भन्ते ! देव-ताओं एवं मार सहित, ब्रह्मा के साथ इस संसार के समग्र श्रमण-ब्राह्मणों सहित देव-मनुष्यों वाली यह सारी प्रजा भी इस सम्मोहक मायाजाल में फँस जाय तो उसके लिये भी यह चिरकाल तक हितकर एवं सुखप्रद होगा। भन्ते ! इस पर मैं

[B. 47] २०. "भूतपुब्बं, भन्ते, अञ्ञतरस्स ब्राह्मणस्स जिण्णस्स वुड्ढस्स महल्लकस्स दहरा माणविका पजापती अहोसि गब्भिनी उपविजञ्ञा। अथ खो, भन्ते, सा माणविका तं ब्राह्मणं एतदवोच—'गच्छ त्वं, ब्राह्मण, आपणा मक्कटच्छापकं किणित्वा आनेहि, यो मे कुमारकस्स कीळापनको भविस्सती' ति। एवं वुत्ते, भन्ते, सो ब्राह्मणो तं माणविकं एतदवोच—'आगमेहि ताव, भोति, याव विजायति। सचे त्वं, भोति, कुमारकं विजायिस्ससि, तस्सा ते अहं आपणा मक्कटच्छापकं किणित्वा आनेस्सामि, यो ते कुमारकस्स कीळापनको भविस्सति। सचे पन त्वं, भोति, कुमारिकं विजायिस्ससि, तस्सा ते अहं आपणा मक्कटच्छापिकं किणित्वा आनेस्सामि, या ते कुमारिकाय कीळापनिका भविस्सती' ति। दुतियं पि खो, भन्ते, सा माणविका ·····पे०···ततियं पि खो, भन्ते, सा माणविका तं ब्राह्मणं एतदवोच—'गच्छ त्वं, ब्राह्मण, आपणा मक्कटच्छापकं किणित्वा आनेहि, यो मे कुमारकस्स कीळापनको [N. 58] भविस्सती' ति। अथ खो, भन्ते, सो ब्राह्मणो तस्सा माणविकाय सारत्तो पटिबद्धचित्तो आपणा मक्कटच्छापकं किणित्वा आनेत्वा तं माणविकं [R. 385] एतदवोच—'अयं ते, भोति, आपणा मक्कटच्छापको किणित्वा

आपको एक दृष्टान्त सुनाता हूँ; क्योंकि कभी-कभी दृष्टान्त के सहारे से भी विद्वान् लोग दुरूह बातों का तत्त्व समझ लेते हैं।

२०. "भन्ते ! बहुत पहले कभी किसी बड़े-बूढ़े ब्राह्मण की एक विवाहिता नवयुवती पत्नी गर्भवती थी, जिसे कि निकट भविष्य में ही बच्चा पैदा होने वाला था। भन्ते! उस समय उस नवयुवती ने ब्राह्मण से कहा—'ब्राह्मण ! जाओ, और बाजार से एक बन्दर का बच्चा (खिलौना) खरीद लाओ, जो कि मेरे नवनवजात शिशु को खेलने का काम देगा'। भन्ते ! यह सुनकर उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से कहा—"सौभाग्यवति ! तुम तब तक तो प्रतीक्षा करो, जब तक कि बच्चा पैदा हो। यदि तुम्हें लड़का पैदा होगा, तो मैं तुम्हें उसको खिलाने के लिये बन्दर का बच्चा (खिलौना) ला दूँगा। और यदि तुम्हें लड़की पैदा होगी तो उस स्थिति में मैं बाजार से बन्दर की बच्ची (खिलौना) ला दूँगा, जो कि तुम्हारी नबजात·····काम देगा'। भन्ते ! दूसरी बार भी उस ब्राह्मणी ने·····तीसरी बार भी उस ब्राह्मणी ने ब्राह्मण से कहा—'ब्राह्मण ! जाओ···खेलने का काम देगा'। भन्ते ! तब ब्राह्मण, जो कि ब्राह्मणी में अत्यन्त अनुरक्त व प्रेमासक्त था, उस ब्राह्मणी के लिये बाजार से बन्दर का बच्चा (खिलौना) ले आया और उस ब्राह्मणी से यों बोला—'यह लो, तुम्हारे लिये बाजार से बन्दर का बच्चा खरीद

आनीतो, यो ते कुमारकस्स कीळापनको भविस्सती' ति। एवं वुत्ते, भन्ते, सा माणविका तं ब्राह्मणं एतदवोच—'गच्छ त्वं, ब्राह्मण, इमं मक्कटच्छापकं आदाय येन रत्तपाणि रजकपुत्तो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा रत्तपाणिं रजकपुत्तं एवं वदेहि—इच्छामहं सम्म, रत्तपाणि, इमं मक्कटच्छापकं पीतावलेपनं नाम रङ्गजातं रजितं आकोटितपच्चाकोटितं उभतोभागविमट्ठं'ति।

"अथ खो, भन्ते, सो ब्राह्मणो तस्सा माणविकाय सारत्तो पटिबद्धचित्तो तं मक्कटच्छापकं आदाय येन रत्तपाणि रजकपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा रत्तपाणिं रजकपुत्तं एतदवोच—'इच्छामहं, रत्तपाणि, इमं मक्कटच्छापकं पीतावलेवनं नाम रङ्गजातं रजितं आकोटितपच्चाकोटितं उभतोभागविमट्ठं' ति। एवं वुत्ते, भन्ते, रत्तपाणि रजकपुत्तो तं ब्राह्मणं एतदवोच—'अयं खो ते, भन्ते, मक्कटच्छापको रङ्गक्खमो हि खो, नो आकोटनक्खमो, नो विमज्जन-क्खमो' ति। एवमेव खो, भन्ते, बालानं निगण्ठानं वादो रङ्गक्खमो हि खो बालानं नो पण्डितानं, नो अनुयोगक्खमो नो विमज्जनक्खमो। अथ [B. 48] खो, भन्ते, सो ब्राह्मणो अपरेन समयेन नवं दुस्सयुगं आदाय येन रत्तपाणि रजकपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा रत्तपाणिं रजकपुत्तं एतदवोच—'इच्छामहं सम्म, रत्तपाणि, इमं नवं दुस्सयुगं पीतावलेपनं नाम रङ्गजातं

लाया हूँ, जो कि तुम्हारे नवजात···· काम देगा'। ऐसा कहे जाने पर उस ब्राह्मणी ने ब्राह्मण से कहा—'ब्राह्मण! अब तुम इस खिलौने को लेकर फिर बाजार में किसी रंगे हाथों वाले रंगरेज या उस के पुत्र के पास जाओ; जाकर उससे कहो—ओ रंगे हाथों वाले रंगरेज! मैं चाहता हूँ कि तुम इस खिलौने को पीले रंग में ऐसा रंग दो, जो देखने में सब तरफ से अच्छा लगे और चिकना भी हो जाय'।

"भन्ते! तब वह ब्राह्मण, अत्यन्त अनुराग होने के कारण, उस ब्राह्मणी की बात मान, उस खिलौने को लेकर किसी रंगरेज के पास पहुँचा; और उस रंगरेज से यों बोला—'ओ रंगे हाथों वाले·····चिकना भी हो जाय'। तब वह रंगरेज उस ब्राह्मण से बोला—'माननीय! आपका यह खिलौना न रँगने लायक है, न छीलकर माँजने लायक है, न चिकना करने लायक है'। भन्ते! इसी तरह, आप (जैनों) का मत भी बच्चों (अविद्वानों) को बहकाने भर के लिये है, पण्डितों (समझ-दारों) के लिये नहीं, यह विद्वानों के बीच में न परीक्षा के लायक है, न मीमांसा के लायक है। भन्ते! फिर वही ब्राह्मण किसी और समय नया दुशाला लेकर उसी रंगे हाथों वाले रंगरेज के पास पहुँचा; और उससे बोला—'अरे ओ रंगरेज! मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे इस नये दुशाले को धो-साफ कर पीले रंग में ऐसा रंग

रजितं आकोटितपच्चाकोटितं उभतोभागविमट्ठं' ति। एवं वुत्ते, भन्ते, रत्तपाणि रजकपुत्तो तं ब्राह्मणं एतदवोच—'इदं खो ते, भन्ते, नवं दुस्सयुगं रङ्गक्खमं चेव आकोटनक्खमं च विमज्जनक्खमं चा' ति। एवमेव खो, भन्ते, तस्स भगवतो वादो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स रङ्गक्खमो चेव पण्डितानं नो बालानं, अनुयोगक्खमो च विमज्जनक्खमो चा ति।

"सराजिका खो, गहपति, परिसा एवं जानाति— 'उपालि गहपति [N. 59] निगण्ठस्स नातपुत्तस्स सावको' ति। कस्स तं, गहपति, सावकं धारेमा" ति?

एवं वुत्ते, उपालि गहपति उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोच—"तेन हि, [R. 386] भन्ते सुणोहि यस्साहं सावको ति —

२१. 'धीरस्स विगतमोहस्स, पभिन्नखीलस्स विजितविजयस्स।
अनीघस्स सुसमचित्तस्स, बुद्धसीलस्स साधुपञ्ञस्स।
वेसमन्तरस्स विमलस्स भगवतो तस्स सावकोहमस्मि॥

दो कि यह देखने में अच्छा लगे और चिकना (मसृण) भी हो जाय'। ऐसा कहे जाने पर वह रंगरेज उस ब्राह्मण से यों बोला—'हाँ, माननीय! आपका यह नया दुशाला रंगा जा सकता है, धोकर साफ किया जा सकता है और चिकना भी बनाया जा सकता है'। इसी तरह, भन्ते! उस भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध का साम्प्रदायिक मत (सिद्धान्त) पण्डितों को रुचने योग्य है, परीक्षा और मीमांसा के योग्य है, भले ही बालकों (मूर्खों) को यह न जंचे।"

"गृहपति! आज तक राजा सहित यह समग्र परिषद् (जनसमाज) यही जानती थी—'उपालि गृहपति निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र का श्रावक (शिष्य) है।' गृहपति! अब तुम्हें हम किसका श्रावक समझें?"

ऐसा पूछे जाने पर, उपालि गृहपति, आसन से उठ, उत्तरासङ्ग (दुपट्टा) को एक कन्धे पर कर, जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़, प्रणाम कर, निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र से यों बोला—"तो, भन्ते! सुनिये मैं जिसका श्रावक हूँ—

२१. 'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो अत्यन्त धैर्यवान् हैं, मोह से दूर हैं, जिनके सभी कील (दोषकण्टक) नष्ट हो चुके हैं, विजयी को भी जीत लेने वाले हैं। जो दुःखरहित हैं, शान्तचित्त हैं, जिनके शील (सदाचार) अतिवृद्ध हैं, जिनकी प्रज्ञा श्रेष्ठ (सम्यक्) है। और जो अपने उपदेशों से विश्व के तारक हैं, निर्मल बुद्धि हैं।

'अकथङ्कथिस्स तुसितस्स, वन्तलोकामिसस्स मुदितस्स।
कतसमणस्स मनुजस्स, अन्तिमसारीरस्स नरस्स।
अनोपमस्स विरजस्स, भगवतो तस्स सावकोहमस्मि॥

'असंसयस्स कुसलस्स, वेनयिकस्स सारथिवरस्स।
अनुत्तरस्स रुचिरधम्मस्स, निक्कङ्खस्स पभासकस्स।
मानच्छिदस्स वीरस्स, भगवतो तस्स सावकोहमस्मि॥

'निसभस्स अप्पमेय्यस्स, गम्भीरस्स मोनपत्तस्स।
खेमङ्करस्स वेदस्स, धम्मट्ठस्स संवुतत्तस्स।
सङ्गातिगस्स मुत्तस्स, भगवतो तस्स सावकोहमस्मि॥

'नागस्स पन्तसेनस्स, खीणसंयोजनस्स मुत्तस्स। [B. 49]
पटिमन्तकस्स धोनस्स, पन्नधजस्स वीतरागस्स।
दन्तस्स निप्पपञ्चस्स, भगवतो तस्स सावकोहमस्मि॥

'इसिसत्तमस्स अकुहस्स, तेविज्जस्स ब्रह्मपत्तस्स।

'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो अपूर्वोपदेशक हैं, सर्वथा सन्तुष्ट हैं, जिन्होंने लौकिक विषयभोगों का सर्वथा वमन (त्याग) कर दिया है, सदा प्रसन्नचित्त रहने वाले हैं। जिन्होंने श्रामण्य-भाव सर्वथा प्राप्त कर लिया, अतएव जो पूर्ण मानव हो चुके हैं, और जिनका यह अन्तिम मनुष्यजन्म है। जो निरुपम एवं निर्विकार हैं।

'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो संशयरहित, कुशल, विनय की ओर ले जाने वाले, अनुशासन में रहने वाले, लोकोत्तर एवं निराकांक्ष, बुद्धिप्रकाशक, मनोरम धर्म के उपदेशक हैं। और जो वृथाभिमान को नष्ट करने वाले, पराक्रमी हैं।

'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो उत्तम, अप्रमेय, गम्भीर, मुनित्व भाव के प्रापक, समग्र प्रजा का हित करने वाले, विज्ञ, सदा धर्माचरण में स्थित, तथा इन्द्रियसंयमी हैं। और जो सब प्रकार का संग त्याग चुके हैं अतएव मुक्त हैं।

'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो अत्यन्त बलशाली, एकान्तसेवी हैं, जिनके संयोजन (भवबन्धन) क्षीण हो चुके हैं, अतएव मुक्त हैं, जो सभाओं में उत्तर-प्रत्युत्तर क्रिया में कुशल हैं, निर्मलप्रज्ञ हैं, जिनकी यश: पताका दिगन्त तक फैली हुई है, जो वीतराग हैं, जो इन्द्रियदमन में समर्थ हो चुके हैं अतएव प्रपंचरहित हैं।

'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो (अपने समय के) ऋषियों में श्रेष्ठ हैं, क्रोधविजयी, तीनों विद्याओं में पारंगत, ब्रह्मभाव (निर्वाण) को प्राप्त, स्नातक

न्हातकस्स पदकस्स, पस्सद्धस्स विदितवेदस्स।
पुरिन्ददस्स सक्कस्स, भगवतो तस्स सावकोहमस्मि॥

'अरियस्स भाविततत्तस्स, पत्तिपत्तस्स वेय्याकरणस्स।
[N. 60] सतिमतो विपस्सिस्स, अनभिनतस्स नो अपनतस्स।
अनेजस्स वसिप्पत्तस्स, भगवतो तस्स सावकोहमस्मि॥

'समुग्गतस्स झायिस्स, अननुगतन्तरस्स सुद्धस्स।
असितस्स हितस्स, पविवित्तस्स अग्गप्पत्तस्स।
तिण्णस्स तारयन्तस्स, भगवतो तस्स सावकोहमस्मि॥

'सन्तस्स भूरिपञ्ञस्स, महापञ्ञस्स वीतलोभस्स।
तथागतस्स सुगतस्स, अप्पटिपुग्गलस्स असमस्स।
विसारदस्स निपुणस्स, भगवतो तस्स सावकोहमस्मि॥

'तण्हच्छिदस्स बुद्धस्स, वीतधूमस्स अनुपलित्तस्स।
आहुनेय्यस्स यक्खस्स, उत्तमपुग्गलस्स अतुलस्स।
महतो यसग्गपत्तस्स, भगवतो तस्स सावकोहमस्मी' ति॥

(विद्वान्), कवि प्रश्रब्ध (गंभीर), तथा वेदमर्मज्ञ हैं। जो प्रभाव में पुरन्दर, और शक्र (इन्द्र) के समान है।

'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो आर्य, शुद्ध आत्मा, लक्ष्य तक पहुँचे हुए, शब्दार्थ के प्रखर वाचक, स्मृतिमान्, सत्य के साक्षात्कारी, निरभिमान, परन्तु किसी के सामने खुशामद के लिये न झुकने वाले, निश्चल बुद्धि और इन्द्रिय-संयमी हैं।

'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो सही लक्ष्य पर पहुँचे हुए, उच्चतम पद प्राप्त, परमध्यानी, किसी के पीछे न चलने वाले, शुद्ध हैं। निष्कलंक, अप्रहीण तथा सर्वभूतहित में रत, प्रकृष्ट विवेकयुक्त, सर्वश्रेष्ठ, स्वयं पार पहुँचे हुए और दूसरों को पार लगाने वाले हैं।

'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो शांत, भूरिप्रज्ञ और महाप्राज्ञ हैं, निर्लोभ हैं। जो सम्यक्-मार्गगामी तथागत हैं, जिनके समान कोई नहीं और जिनका प्रतिद्वन्दी कोई नहीं तथा जो कुशल एवं चतुर हैं।

'मैं उन भगवान् का श्रावक हूँ, जो तृष्णातीत, सम्यक्सम्बुद्ध, निर्दोष एवं निर्लिप्त हैं, जो सर्वप्रथम पूजनीय, देवतास्वरूप हैं अतएव जो पुरुषोत्तम तथा अतुलनीय हैं, और जो अत्यन्त यशस्वी अग्रपूजा प्राप्त करने वाले हैं।'

२२. "कदा सञ्ञूळ्हा पन ते, गहपति, इमे समणस्स [R. 387] गोतमस्स वण्णा" ति ?

"सेय्यथापि, भन्ते, नानापुप्फानं महापुप्फरासि, तमेनं दक्खो मालाकारो वा मालाकारन्तेवासी वा विचित्तं मालं गन्थेय्य; एवमेव खो, भन्ते, सो भगवा अनेकवण्णो अनेकसतवण्णो। को हि, भन्ते, वण्णारहस्स वण्णं करिस्सती" ति !

२३. अथ खो निगण्ठस्स नातपुत्तस्स भगवतो सक्कारं असहमानस्स तत्थेव उण्हं लोहितं मुखतो उग्गच्छी ति।

---

२२. "गृहपति ! तुम्हें ये श्रमण गौतम में कीर्तनीय गुण कब से दिखाई देने लगे ?"

"भन्ते ! जैसे किसी चतुर मालाकार या उसके शिष्य को कहीं बहुत बड़ा फूलों का ढेर मिले, वह उन फूलों से बहुत अच्छी, दर्शनीय एवं विधि रंगों वाली माला बनावे; इसी तरह भन्ते ! उन भगवान् में सैकड़ों गुण एवं अच्छाइयाँ हैं। तो भन्ते ! प्रशंसायोग्य की कौन प्रशंसा नहीं करना चाहेगा !"

२३. तब वह निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र, भगवान् का यह यशोवर्णन न सह सकने के कारण, वहीं का वहीं, मुख से खून फेंकने लगा ॥

उपालिसुत्त समाप्त ॥

७. कुक्कुरवतिकसुत्तं

[N. 61, B. 50] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोलियेसु विहरति हलिद्दवसनं नाम कोलियानं निगमो। अथ खो पुण्णो च कोलियपुत्तो गोवतिको अचेलो च सेनियो कुक्कुरवतिको येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा पुण्णो कोलियपुत्तो गोवतिको भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। अचेलो पन सेनियो कुक्कुरवतिको भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा कुक्कुरो व पलिकुज्जित्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पुण्णो कोलियपुत्तो गोवतिको भगवन्तं एतदवोच—

१. कुक्कुरव्रतिकानं गतियो

"अयं, भन्ते, अचेलो सेनियो कुक्कुरवतिको दुक्करकारको छमानिक्खित्तं भोजनं भुञ्जति। तस्स तं कुक्कुरवतं दीघरत्तं समत्तं समादिन्नं। तस्स का गति, को अभिसम्परायो" ति?

"अलं, पुण्ण, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी" ति।

दुतियं पि खो पुण्णो कोलियपुत्तो गोवतिको....पे०....ततियं पि खो पुण्णो कोलियपुत्तो गोवतिको भगवन्तं एतदवोच—"अयं, भन्ते, अचेलो सेनियो

---

७. कुक्कुरव्रतिकसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कौलियप्रदेश के हारिद्रवसन नामक कौलियों के कस्बे में साधना हेतु निवास कर रहे थे। तब गोव्रतिक (गाय की भाँति रहन-सहन रखने का व्रत लिये हुए) कौलियपुत्र पूर्ण एवं कुक्कुरव्रतिक (कुत्ते की भाँति रहन-सहन रखने का व्रत लिये हुए) अचेलक (निर्वस्त्र, नग्न) सेनिय नामक साधु जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे; वहाँ पहुँचकर, गोव्रतिक कौलियपुत्र पूर्ण भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। परन्तु कुक्कुरव्रतिक अचेलक सेनिय ने भगवान् से बातचीत करना शुरू किया। वह (भगवान् का) कुशल-मङ्गल पूछ, कुत्ते की तरह सिकुड़ कर बैठ गया। (उधर) एक ओर बैठे गोव्रतिक पूर्ण ने भगवान से यों पूछा—

१. कुक्कुरव्रत से रहने वालों की गति

"भन्ते! यह कुक्कुरव्रतिक अचेलक सेनिय अपनी दैनिक क्रियाओं में कुत्ते की तरह रहने का व्रत लेकर, दुष्कर कर्म करता हुआ, जमीन पर फेंका भोजन ही करता है। इसको यह कुक्कुरव्रत लिये हुए बहुत समय बीत चुका। इसकी मरणानन्तर क्या गति होगी?"

"पूर्ण! इस बात को रहने दे; यह मुझसे न पूछ।"

कुक्कुरवतिको दुक्करकारको छमानिक्खित्तं भोजनं भुञ्जति। तस्स तं कुक्कुरवतं दीघरत्तं समत्तं समादिन्नं। तस्स का गति, को अभिसम्परायो" ति ?

२. "अद्धा खो ते अहं, पुण्ण, न लभामि। अलं, पुण्ण, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी ति; अपि च त्याहं ब्याकरिस्सामि। इध, पुण्ण, एकच्चो कुक्कुरवतं भावेति परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, कुक्कुरसीलं भावेति परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, कुक्कुरचित्तं भावेति परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, कुक्कुराकप्पं भावेति परिपुण्णं अब्बोकिण्णं। सो कुक्कुरवतं भावेत्वा परिपुण्णं [N. 62, R. 388] अब्बोकिण्णं, कुक्कुरसीलं भावेत्वा परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, कुक्कुरचित्तं भावेत्वा परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, कुक्कुराकप्पं भावेत्वा परिपुण्णं अब्बोकिण्णं कायस्स भेदा परं मरणा कुक्कुरानं सहब्यतं उपपज्जति। सचे खो पनस्स एवंदिट्ठि होति—'इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन वा देवो वा भविस्सामि देवञ्ञतरो वा' ति, सास्स होति मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिस्स खो अहं, पुण्ण, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं वदामि—निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा। [B. 51] इति खो, पुण्ण, सम्पज्जमानं कुक्कुरवतं कुक्कुरानं सहब्यतं उपनेति, विपज्जमानं निरयं" ति।

दूसरी बार भी····· तीसरी बार भी गोव्रतिक पूर्ण ने भगवान् से यों पूछा—"भन्ते ! यह कुक्कुरव्रतिक अचेलक सेनिय···क्या गति होगी ?"

२. "हो सकता है, पूर्ण ! मैं तुम्हें अपनी बात तक न पहुँचा पाऊँ। अतः अच्छा होता कि तुम मुझसे यह बात न पूछते; फिर भी, (तुमने पूछ ही लिया है, इसलिये) मैं तुम्हें बताता हूँ। पूर्ण ! यहाँ कोई साधक कुक्कुरव्रत की पूर्णतया साधना करे, उसी में रमा रहे, कुक्कुर के शील (रहन-सहन) की·····, कुक्कुर के चित्त (मन) की·····, कुक्कुर की चेष्टाओं (आदतों) की·····रमा रहे ! वह कुक्कुर के इन नियमों, शीलों, चित्त और चेष्टाओं की ही साधना (अभ्यास) करता हुआ, इस देहपात के बाद अगले जन्म में कुत्ते की योनि में पैदा होता है। यदि उसकी यह धारणा (=दृष्टि) बन जाय कि 'इस शील, व्रत, तप या साधना से मरणानन्तर या तो कोई देवता बनूँगा या फिर कोई उससे भी ऊँचा पद पाऊँगा', तो यह उसकी मिथ्याधारणा ही होगी। और पूर्ण ! ऐसे मैं मिथ्याधारणा वालों की इन दो गतियों में से कोई एक गति (योनि) मानता हूँ कि वह या तो नरक में जाय या फिर पशुयोनि में। पूर्ण ! इस तरह निरन्तर साधना किया हुआ यह कुक्कुरव्रत अन्त में उसे कुत्तों के साथ रहने को बाध्य कर देता है या घोर जलते नरक में।"

एवं वुत्ते, अचेलो सेनियो कुक्कुरवतिको परोदि, अस्सूनि पवत्तेसि। अथ खो भगवा पुण्णं कोलियपुत्तं गोवतिकं एतदवोच—"एतं खो ते अहं, पुण्ण, नालत्थं। अलं, पुण्ण, तिट्ठतेतं ; मा मं एतं पुच्छी" ति।

"नाहं, भन्ते, एतं रोदामि यं मं भगवा एवमाहं; अपि च मे इदं, भन्ते, कुक्कुरवतं दीघरत्तं समत्तं समादिन्नं।

२. गोवतिकानं गतियो

"अयं, भन्ते, पुण्णो कोलियपुत्तो गोवतिको। तस्स तं गोवतं दीघरत्तं समत्तं समादिन्नं। तस्स का गति, को अभिसम्परायो" ति ?

"अलं, सेनिय, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी" ति।

दुतियं पि खो अचेलो सेनियो···पे०···ततियं पि खो अचेलो सेनियो कुक्कुरवतिको भगवन्तं एतदवोच—"अयं, भन्ते, पुण्णो कोलियपुत्तो गोवतिको। तस्स तं गोवतं दीघरत्तं समत्तं समादिन्नं। तस्स का गति, को अभिसम्परायो" ति ?

३. "अद्धा खो ते अहं, सेनिय, न लभामि। अलं, सेनिय, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी ति ; अपि च त्याहं ब्याकरिस्सामि। इध, सेनिय, एकच्चो गोवतं

(भगवान् के) ऐसा कहने पर कुक्कुरव्रतिक अचेलक सेनिय रो पड़ा, उसके आँखों से आँसू बहने लगे। तब भगवान् ने गोव्रतिक कौलियपुत्र पूर्ण से यों कहा—'पूर्ण ! मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि मैं तुम्हें यह बात स्वीकार नहीं करा पाऊँगा। अतः इसे रहने दे, मुझसे मत पूछ।"

(यह सुन अचेलक सेनिय बोला–) "भन्ते ! मैं इसलिये नहीं रो रहा हूँ कि भगवान् ने मुझसे यह कह दिया; अपितु मुझे इसलिये रोना आ गया कि मैं इस कुक्कुरव्रत का इतने लम्बे समय से पालन करता आ रहा था (यह व्यर्थ हो गया)।

२. गोव्रत से रहने वालों की गति

(अब मेरा पूछना यह है कि) "भन्ते ! यह कौलियपुत्र पूर्ण भी तो गोव्रतिक है, गायों की रहता-सहता है। इसको भी यह गोव्रत लिये हुए बहुत समय बीत चुका। इसकी मरणानन्तर क्या गति होगी ?"

"सेनिय ! रहने दे, मुझसे यह मत पूछ !"

दूसरी बार भी ··· तीसरी बार भी अचेलक सेनिय ने भगवान् से यों पूछा—'भन्ते ! यह कौलियपुत्र पूर्ण भी ··· क्या गति होगी ?"

३. "हो सकता है, सेनिय ! मैं तुम्हें अपनी बात स्वीकार न करा पाऊँ। अतः अच्छा होता कि तुम यह बात मुझसे न पूछते; परन्तु (तुम्हारा आग्रह ही

भावेति परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, गोसीलं भावेति परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, गोचित्तं भावेति परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, गवाकप्पं भावेति परिपुण्णं अब्बोकिण्णं। सो गोवतं भावेत्वा परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, गोसीलं भावेत्वा परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, गोचित्तं भावेत्वा परिपुण्णं अब्बोकिण्णं, गवाकप्पं भावेत्वा परिपुण्णं [N. 63] अब्बोकिण्णं कायस्स भेदा परं मरणा गुन्नं सहब्यतं उपपज्जति। सचे खो पनस्स एवंदिट्ठि होति–'इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन [R. 389] वा देवो वा भविस्सामि देवञ्ञतरो वा' ति, सास्स होति मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिस्स खो अहं, सेनिय, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं वदामि—निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा। इति खो, सेनिय, सम्पज्जमानं गोवतं गुन्नं सहब्यतं उपनेति विपज्जमानं निरयं" ति।

एवं वुत्ते, पुण्णो कोलियपुत्तो गोवतिको परोदि, अस्सूनि पवत्तेसि। अथ खो भगवा अचेलं सेनियं कुक्कुरवतिकं एतदवोच—"एतं खो ते अहं, सेनिय, नालत्थं। अलं, सेनिय, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी" ति। [B. 52]

"नाहं, भन्ते, एतं रोदामि यं मं भगवा एवमाह; अपि च मे इदं, भन्ते, गोवतं दीघरत्तं समत्तं समादिन्नं। एवं पसन्नो अहं, भन्ते, भगवति ; पहोति

है तो) मैं बता देता हूँ। सेनिय ! यहाँ कोई साधक गोव्रत का पूर्णतया अभ्यास करता है, गो-शील का ''', गो-चित्त का ''''', गो-चेष्टाओं का अभ्यास करता है। वह इन गोव्रतों, गो-शीलों, गो-चित्तों और गोचेष्टाओं की निरन्तर साधना करता हुआ, इस देहपात के बाद, गायों की योनि में उत्पन्न होकर उनके साथ रहने को बाध्य होता है। यदि उसकी यह धारणा हो कि 'इस शील, व्रत, तप और साधना से मरणानन्तर या तो कोई देवता बनूँगा या फिर कोई उससे भी ऊँचा पद प्राप्त करूंगा' तो यह धारणा उसकी मिथ्या ही है। सेनिय ! ऐसे मिथ्याधारणा वालों ''''' घोर जलते नरक में।"

(भगवान् के) ऐसा कहने पर पूर्ण कौलियपुत्र रो पड़ा, उसकी आँखों से आँसू बहने लगे ! तब (यह देखकर) कुक्कुरव्रतिक अचेलक सेनिय से भगवान् ने यों कहा—"देखो, सेनिय ! मैं पहले ही कह रहा था कि मैं तुमसे अपनी स्वीकार नहीं करा पाऊंगा। अतः अच्छा होता कि तुम मुझसे यह बात न पूछते (परन्तु तुमने पूछा तो मैंने बता दिया)।"

(यह सुन, गोव्रतिक पूर्ण यों बोला–)"भन्ते ! मैं इसलिये नहीं रो रहा हूँ कि मुझे लक्ष्यकर आपने यह कह दिया; अपितु मुझे यह विचार हो रहा है कि इतने दीर्घकाल तक अभ्यस्त यह गोव्रत व्यर्थ चला गया। दूसरी तरफ मैं तो आप से प्रसन्न

भगवा तथा धम्मं देसेतुं यथा अहं चेविमं गोवतं पजहेय्यं, अयं चेव अचेलो सेनियो कुक्कुरवतिको तं कुक्कुरवतं पजहेय्या" ति।

"तेन हि, पुण्ण, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो पुण्णो कोलियपुत्तो गोवतिको भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

३. भगवता पवेदितानि चत्तारि कम्मानि

४. "चत्तारिमानि, पुण्ण, कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानि। कतमानि चत्तारि? अत्थि, पुण्ण, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं; अत्थि, पुण्ण, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं; अत्थि, पुण्ण, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं; अत्थि, पुण्ण, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति।

(१) कण्हं कम्मं

[N. 64] "कतमं च, पुण्ण, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं? इध, पुण्ण, एकच्चो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभि-

---

हूँ कि आपने मुझे सही मार्ग दिखा दिया, मेरी आँखें खोल दी; अच्छा हो, भन्ते! कि आप हमें ऐसा उपदेश करें, जिससे मैं इस गोव्रत का अभ्यास छोड़ दूँ और अचेलक सेनिय अपने कुक्कुरव्रत का अभ्यास (मिथ्याभ्रम) छोड़ दे!"

"तो पूर्ण! सुनो। मेरी बात पर ध्यान दो, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

तब कोलियपुत्र पूर्ण ने "ठीक है, भन्ते!"—यह उत्तर दिया। भगवान् यों बोले—

३. भगवदुक्त चार (आराधनीय) कर्म

४. "पूर्ण! मैंने इन चार कर्मों को स्वयं जानकर, साक्षात् कर अनुभव किया है। कौन से चार? (१) पूर्ण! यहाँ कोई कर्म कृष्ण (पापमय, बुरा) होता है तथा उसका फल भी कृष्ण ही होता है; (२) यहाँ कोई कर्म शुक्ल (शुभ, अच्छा) होता है तथा उसका फल भी शुक्ल ही होता है; (३) कोई कर्म कृष्ण-शुक्लमिश्रित (पाप-पुण्य मिश्रित) होते हैं तथा उनका फल भी वैसा ही होता है और (४) और एक कर्म वह होता है, जिसे न कृष्ण कहा जा सकता है न शुक्ल, इसके फल की भी यही स्थिति है, यह चौथे प्रकार का कर्म ही कर्म क्षय में सहायक हो सकता है।

(१) कृष्ण कर्म

"पूर्ण! वह कौन सा कर्म है, जो स्वयं कृष्ण हो और कृष्णफल ही देने

सङ्खरोति, सब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं लोकं उपपज्जति। तमेनं सब्याबज्झं लोकं उपपन्नं समानं सब्याबज्झं फस्सा फुसन्ति। सो सब्याबज्झेहि फस्सेहि फुट्ठो समानो सब्याबज्झं वेदनं वेदेति एकन्तदुक्खं, सेय्यथापि सत्ता नेरयिका। [R. 390] इति खो, पुण्ण, भूता भूतस्स उपपत्ति होति; यं करोति तेन उपपज्जति, उपपन्नमेनं फस्सा फुसन्ति। एवंपाहं, पुण्ण, 'कम्मदायादा सत्ता' ति वदामि। इदं वुच्चति, पुण्ण, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं।

(२) सुक्कं कम्मं

"कतमं च, पुण्ण, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं? इध, पुण्ण, एकच्चो अब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, अब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, अब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो अब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, अब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, अब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, अब्याबज्झं लोकं उपपज्जति। तमेनं अब्याबज्झं लोकं [B. 53]

वाला हो? पूर्ण! यहाँ कोई पुरुष अपनी समग्र शारीरिक चेष्टाएँ दूसरों को पीड़ा देने के लिये करता रहता है, वाणी की चेष्टाएँ ....., मन की चेष्टाएँ दूसरों को पीड़ा देने के लिए करता रहता है। वह ऐसी दूसरों को पीड़ादायक शारीरिक, वाचसिक एवं मानसिक चेष्टाएँ करने के कारण, अन्त में, पीड़ादायक लोक में ही उत्पन्न होता है। इस पीड़ादायक लोक में उत्पन्न हुए उसको अत्यन्त कष्टकारक (शूल, भाला, तप्तलौह आदि का) स्पर्श भोगना पड़ता है। वह इन स्पर्शों से वैसा ही कष्ट अनुभव करता है, जैसा कि नरक में गिरे दूसरे पापी प्राणी। इस तरह पूर्ण! जैसे से तैसे की ही उत्पत्ति होगी; क्योंकि जो करोगे, उसका वैसा ही फल मिलेगा। पूर्ण! इसलिए मैं सभी प्राणियों को 'स्वकर्म-फलभोक्ता' कहता हूँ। पूर्ण! ऐसा (पापमय) कर्म 'कृष्ण एवं कृष्णफलदायक' कहलाता है।

(२) शुक्ल कर्म

"पूर्ण! और कौन सा कर्म 'शुक्ल एवं शुक्लविपाक' (शुभफलदायक) कहलाता है? पूर्ण! यहाँ कोई सज्जन पुरुष दूसरों को सुखदायक शारीरिक चेष्टाएँ.....वाणी.....मन की चेष्टाएँ दूसरों को सुख देने के लिए करता रहता है। वह, इन दूसरों को सुखदायक शारीरिक, वाचसिक एवं मानसिक चेष्टाएँ करने के कारण, (इस देहपात के बाद) सुखमय लोक में उत्पन्न होता है। उसे इस सुखमय

उपपन्नं समानं अब्याबज्झा फस्सा फुसन्ति। सो अब्याबज्झेहि फस्सेहि फुट्ठो समानो अब्याबज्झं वेदनं वेदेति एकन्तसुखं, सेय्यथापि देवा सुभकिण्हा। इति खो, पुण्ण, भूता भूतस्स उपपत्ति होति; यं करोति तेन उपपज्जति, उपपन्नमेनं फस्सा फुसन्ति। एवंपाहं, पुण्ण, 'कम्मदायादा सत्ता' ति वदामि। इदं वुच्चति, पुण्ण, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं।

(३) कण्हसुक्कं कम्मं

"कतमं च, पुण्ण, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं ? इध, पुण्ण, एकच्चो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि [N.65] मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि लोकं उपपज्जति। तमेनं सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि लोकं उपपन्नं समानं सब्याबज्झा पि अब्याबज्झा पि फस्सा फुसन्ति। सो सब्याबज्झेहि पि अब्याबज्झेहि पि फस्सेहि फुट्ठो समानो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वेदनं वेदेति वोकिण्णसुखदुक्खं, सेय्यथापि मनुस्सा एकच्चे च देवा एकच्चे

लोक में अत्यन्त सुखद स्पर्श अनुभव करने को मिलता है। वह इन सुखमय स्पर्शों से शुभकृत्स्न देवों की तरह, अत्यन्त सुख अनुभव करता है। पूर्ण ! इसे कहते हैं—जैसे को तैसा मिलना; जो किया जाता है उसी के फलस्वरूप अन्य योनि में जन्म होता है और वहाँ उत्पन्न होकर वैसा ही फल भोगता है। पूर्ण ! इसीलिये भी मैं कहता हूँ कि सभी प्राणी 'स्वकर्मफल' भोगने के लिए ही उन-उन योनियों में जन्म लेते हैं। पूर्ण ! ऐसा (कुशल) कर्म 'शुक्ल एवं शुक्लफलदायक' कहलाता है।

(३) कृष्ण शुक्ल (पाप-पुण्य) मिश्रित कर्म

"पूर्ण ! और कौन सा कर्म 'कृष्ण-शुक्ल एवं कृष्ण-शुक्लफलदायक' होता है। पूर्ण ! यहाँ कोई पुरुष दूसरों को दुःख देने के लिये भी और सुख देने के लिये भी अपनी शारीरिक, वाचसिक एवं मानसिक चेष्टाएँ करता रहता है। वह ऐसी दूसरों के लिये दुःख-सुखमिश्रित अपनी शारीरिक, वाचसिक एवं मानसिक चेष्टाएँ करने के कारण, मरणानन्तर, दुःख-सुखमिश्रित फलदायक लोक में उत्पन्न होता है। ऐसे दुःख-सुखमिश्रित लोक में उत्पन्न हुआ वह वहाँ दुःख-सुखमिश्रित फल का ही अनुभव करता है। जैसे कि मनुष्य योनि, देवयोनि या नरक में उत्पन्न प्राणी। पूर्ण ! इसे कहते हैं—वैसे से वैसे की ही उत्पत्ति; क्योंकि जो किया जाता है, उसका

च विनिपातिका। इति खो, पुण्ण, भूता भूतस्स उपपत्ति होति; यं करोति तेन उपपज्जति। उपपन्नमेनं फस्सा फुसन्ति। एवंपाहं, पुण्ण, 'कम्मदायादा सत्ता' ति वदामि। इदं वुच्चति, पुण्ण, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं।

(४) अकण्हअसुक्कं कम्मं

"कतमं च, पुण्ण, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं, [R.391] कम्मक्खयाय संवत्तति? तत्र, पुण्ण, यमिदं कम्मं कण्हं कण्हविपाकं तस्स पहानाय या चेतना, यमिदं कम्मं सुक्कविपाकं तस्स पहानाय या चेतना, यमिदं कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं तस्स पहानाय या चेतना—इदं वुच्चति, पुण्ण, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं, कम्मक्खयाय संवत्तती ति। इमानि खो, पुण्ण, चत्तारि कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानी"ति।

३. गोवतिकस्स उपासकत्तपटिजानना

५. एवं वुत्ते, पुण्णो कोलियपुत्तो गोवतिको भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते····पे०····उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं"ति।

फल भी भोगना पड़ता है। पूर्ण! इसलिये भी मैं कहता हूँ कि सभी प्राणी 'स्वस्व-कर्माधीन' हैं। पूर्ण! यह कहलाता है–'कृष्ण-शुक्लमिश्रित कर्म एवं उसका कृष्ण-शुक्लमिश्रित फल'।

(४) न कृष्ण न शुक्ल कर्म

"और फिर पूर्ण! वह कर्म कौन सा कहलाता है, जिसकी गिनती न कृष्ण कर्म में हो न शुक्लकर्म में एवं उसका फल भी ऐसा ही हो और जो कि प्राणियों के कर्मक्षय के लिए उपयोगी होता हो? पूर्ण! पूर्वोक्त कृष्णकर्म एवं उसके फल का नाश करने के लिये किया गया मानसिक उद्योग तथा शुक्लकर्म एवं उसके फल का नाश करने के लिये, और इसी तरह न कृष्ण न शुक्ल कर्मों एवं उनके फलों का नाश करने के लिये किया गया मानसिक उद्योग ही 'न कृष्ण न शुक्ल कर्म एवं न कृष्ण न शुक्ल फलविपाक' कहलाता है और ऐसा मानसिक उद्योग ही प्राणियों के स्वकर्मक्षय के लिये उपयोगी होता है। पूर्ण! ये चारों ही प्रकार के कर्म मैंने स्वयं साक्षात् कर अनुभव किये हैं।"

३. गोव्रतिक उपासक की प्रतिज्ञा

५. (भगवान् द्वारा किये गये) इस उपदेश के बाद गोव्रतिक पूर्ण कौलिय-पुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—"आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! जैसे

४. कुक्कुरवतिकस्स उपसम्पदा

[B. 54] ६. अचेलो पन सेनियो कुक्कुरवतिको भगवन्तं एतदवोच— "अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते। सेय्यथापि भन्ते....पे०....पकासितो। [N. 66] एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं" ति।

"यो खो, सेनिय, अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति पब्बज्जं, आकङ्खति उपसम्पदं सो चत्तारो मासे परिवसति। चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय। अपि च मेत्थ पुग्गलवेमत्तता विदिता" ति।

"सचे, भन्ते, अञ्ञतित्थियपुब्बा इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खन्ता पब्बज्जं आकङ्खन्ता उपसम्पदं ते चत्तारो मासे परिवसन्ति चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय, अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि। चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु, उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावाया" ति।

कोई औंधे को सीधा कर दे.....पूर्ववत्...मुझे आज से जीवनपर्यन्त अपना शिष्य समझें।"

४. कुक्कुरव्रतिक को दीक्षा

६. परन्तु कुक्कुरव्रतिक अचेलक सेनिय ने भगवान् से यों निवेदन किया— "आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे.....पूर्ववत्... प्रकाशित किया। भन्ते! यह मैं....सङ्घ की शरण में जाता हूँ। भन्ते! मेरी इच्छा है कि मैं आपसे प्रव्रज्या व उपसम्पदा ग्रहण करूँ।"

"सेनिय! दूसरे सम्प्रदाय का कोई साधु मेरे इस धर्म में प्रव्रज्या या दीक्षा लेना चाहता है तो उसे पहले चार मास तक परिवास व्रत रखना पड़ता है। चार मास बीतने के बाद ही उसकी क्रियाओं से सन्तुष्ट भिक्षु उसे प्रव्रज्या व उपसम्पदा देते हैं और उसे 'भिक्षु' बनाते हैं। किन्तु मुझे यहाँ व्यक्ति-व्यक्ति का भेद भी ज्ञात है।"

"यदि भन्ते! ऐसी ही बात है तो मैं आपकी आज्ञा के अनुसार चार वर्ष भी परिवास-व्रत कर लूंगा। चार वर्ष बीतने के बाद मुझसे सन्तुष्ट भिक्षु मुझे भिक्षुभाव के लिये प्रव्रज्या दें व उपसम्पदा दें।"

७. अलत्थ खो अचेलो सेनियो कुक्कुरवतिको भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा सेनियो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय [R. 392] कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा सेनियो अरहतं अहोसी ति॥

---

७. उस अचेलक सेनिय ने भगवान् को अपने इस नम्र निवेदन से सन्तुष्ट कर लिया और भगवान् से वह प्रव्रज्या व उपसम्पदा पा गया। आयुष्मान सेनिय उपसम्पदा पाने के थोड़े ही समय बाद एकाकी, एकान्तवासी, प्रमादरहित, उद्योगी और आत्मसंयमी हो साधना करते हुये शीघ्र ही —जिसके लिये कुलपुत्र भलीभाँति घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस ब्रह्मचर्य (साधना) के फल को इसी जन्म में जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरने लगा। ' मेरा जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य पूर्ण हुआ, करना था सो कर लिया, और कुछ यहाँ करने को शेष नहीं रहा'—यह पूर्णतः जान गया। वह आयुष्मान् सेनिय साधना करते-करते एक दिन पहुँचे हुए अर्हतों (ज्ञानियों) में से एक हो गया॥

कुक्कुरवतिकसुत्त समाप्त॥

८. अभयराजकुमारसुत्तं

[N. 67] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो अभयो राजकुमारो येन निगण्ठो नातपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा निगण्ठं नातपुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अभयं राजकुमारं निगण्ठो नातपुत्तो एतदवोच—"एहि [B. 55] त्वं, राजकुमार, समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेहि। एवं ते कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छिस्सति—'अभयेन राजकुमारेन समणस्स गोतमस्स एवं महिद्धिकस्स एवं महानुभावस्स वादो आरोपितो' " ति।

"यथा कथं पनाहं, भन्ते, समणस्स गोतमस्स एवं महिद्धिकस्स एवं महानुभावस्स वादं आरोपेस्सामी" ति ?

"एहि त्वं, राजकुमार, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं एवं वदेहि—'भासेय्य नु खो, भन्ते, तथागतो तं वाचं या सा वाचा परेसं अप्पिया अमनापा' ति ? सचे ते समणो गोतमो एवं पुट्ठो एवं ब्याकरोति—'भासेय्य, राजकुमार, तथागतो तं वाचं या सा वाचा परेसं अप्पिया अमनापा' ति, तमेनं त्वं एवं वदेय्यासि—'अथ किं चरहि ते, भन्ते, पुथुज्जनेन नाना-

---

८. अभयराजकुमारसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह स्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब कोई अभय नामक राजकुमार जहाँ निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र थे वहाँ पहुँचा; वहाँ पहुँचकर, निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अभय राजकुमार से निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र यों बोले "जाओ, तुम राजकुमार! श्रमण गौतम से शास्त्रार्थ करो। ऐसा करने से तुम्हारी लोक में प्रशंसा फैलेगी, तुम्हारा नाम भी ऊँचा होगा कि 'राजकुमार अभय ने श्रमण गौतम जैसे पहुँचे हुए ज्ञानी महानुभाव सन्त से शास्त्रार्थ किया।"

"भन्ते ! मैं ऐसे पहुँचे हुए ज्ञानी, महानुभाव सन्त से कैसे शास्त्रार्थ कर पाऊँगा ?"

"राजकुमार ! तुम श्रमण गौतम के पास जाओ तो; जाकर उनसे यों बोलना (पूछना)—'भन्ते ! क्या आप ऐसी वाणी भी बोलते हैं, जो दूसरों को कष्टकर हो या उन्हें अप्रिय लगे ?' ऐसा पूछे जाने पर यदि वह श्रमण गौतम यह कहे—'हाँ, राजकुमार ! मैं ऐसी वाणी भी बोलता हूँ' तो तुम उनसे फिर यों कहना—

करणं ? पुथुज्जनो पि हि तं वाचं भासेय्य या सा वाचा परेसं अप्पिया अमनापा' ति। सचे पन ते समणो गोतमो एवं पुट्ठो एवं ब्याकरोति—'न, राजकुमार, तथागतो तं वाचं भासेय्य या सा वाचा परेसं अप्पिया अमनापा' [R. 393] ति, तमेनं त्वं एवं वदेय्यासि—'अथ किं चरहि ते, भन्ते, देवदत्तो ब्याकतो—आपायिको देवदत्तो, नेरयिको देवदत्तो, कप्पट्ठो देवदत्तो, अतेकिच्छो देवदत्तो ति ? ताय च पन ते वाचाय देवदत्तो कुपितो अहोसि अनत्तमनो' ति। इमं खो ते, राजकुमार, समणो गोतमो उभतोकोटिकं पञ्हं पुट्ठो समानो नेव [N. 68] सक्खिति उग्गिलितुं न सक्खिति ओगिलितुं। सेय्यथापि नाम पुरिसस्स अयोसिङ्घाटकं कण्ठे विलग्गं, सो नेव सक्कुणेय्य उग्गिलितुं न सक्कुणेय्य ओगिलितुं; एवमेव खो ते, राजकुमार, समणो गोतमो इमं उभतोकोटिकं पञ्हं पुट्ठो समानो नेव सक्खिति उग्गिलितुं न सक्खिति ओगिलितुं" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो अभयो राजकुमारो निगण्ठस्स नातपुत्तस्स पटिस्सुत्वा उट्ठायासना निगण्ठं नातपुत्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

'तब भन्ते ! आप में और किसी साधारण (=पृथग्जन) में क्या भेद है, क्योंकि पृथग्जन भी वैसी ही वाणी बोलता रहता है, जो दूसरों को कष्टकर या अप्रिय हो।' और यदि वह श्रमण गौतम तुमसे यह कहे—'नहीं, राजकुमार ! तथागत ऐसी वाणी का प्रयोग नहीं करते, जो दूसरों को कष्टकर एवं अप्रिय हो'। तो तुम यह कहना—'तो, भन्ते ! देवदत्त के बारे में आप ऐसा क्यों कहते रहते हैं—देवदत्त की दुर्गति होगी, वह नरक में पड़ेगा और वहाँ कल्प भर कष्ट भोगेगा, अब उसके पापरोग की कोई ओषधि नहीं है ? क्योंकि इस तरह की बात कहने से वह देवदत्त दुःखी होता है, क्रुद्ध होता है'। राजकुमार! इस तरह तुम्हारी इन दोनों ओर की बातों में फँसा हुआ, वह श्रमण गौतम न तो उगल सकेगा (सही उत्तर दे सकेगा) और न निगल सकेगा (न तुम्हारी बात को मान सकेगा)। जैसे किसी पुरुष के गले में कोई लोहे की कील जाकर अटक जाय, उसे वह न उगल सके और न निगल सके; उसी तरह, राजकुमार ! तुम्हारी इन दोनों ओर की बातों में फँसा हुआ वह श्रमण गौतम न तो उगल सकेगा और न निगल सकेगा।"

"ठीक है, भन्ते !"—कहकर अभय राजकुमार, निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र को अपनी स्वीकृति दे, आसन से उठ, उन्हें प्रणाम-प्रदक्षिणादि कर, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा; पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया।

२. एकमन्तं निसिन्नस्स खो अभयस्स राजकुमारस्स सुरियं उल्लोकेत्वा एतदहोसि—"अकालो खो अज्ज भगवतो वादं आरोपेतुं। स्वे दानाहं सके [B. 56] निवेसने भगवतो वादं आरोपेस्सामी" ति भगवन्तं एतदवोच—"अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय अत्तचतुत्थो भत्तं" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो अभयो राजकुमारो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन अभयस्स राजकुमारस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो अभयो राजकुमारो भगवन्तं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो अभयो राजकुमारो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं, अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि।

१. न नु तथागतो अप्पियं भासेय्य

३. एकमन्तं निसिन्नो खो अभयो राजकुमारो भगवन्तं एतदवोच—"भासेय्य नु खो, भन्ते, तथागतो तं वाचं या सा वाचा परेसं अप्पिया अमनापा" ति ?

---

३. एक ओर बैठे राजकुमार के मन में उस समय के सूर्य की स्थिति देखकर (समय का अनुमान लगाते हुए), यह विचार आया—"अब आज भगवान् से वाद करना उचित नहीं होगा। क्यों न मैं कल अपने घर पर (भोजन के समय) भगवान् से यह वाद करूँ"—यह सोच, उसने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते ! आप कल अपने सहित चार भिक्षुओं के साथ मेरे घर भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करें"। भगवान् ने चुप रहकर (यह निमन्त्रण) स्वीकार कर लिया। इसके बाद अभय राजकुमार भगवान् की स्वीकृति जान, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणादि कर अपने घर चला गया। इसके बाद भगवान्, उस रात्रि के बीत जाने पर, प्रातःकाल पहन कर, पात्र-चीवर ले, अभय राजकुमार के घर पहुँचे. पहुँचकर बिछे आसन पर विराज गये। तब अभय राजकुमार ने अच्छा-अच्छा स्वादिष्ट एवं मनोनुकूल भोजन भगवान् को अपने हाथ से परोसा। इसके बाद, अभय राजकुमार, भगवान् को भोजन पूर्ण कर, पात्र से हाथ हटाया हुआ जान, एक नीचा आसन ले एक ओर बैठ गया।

१. तथागत अप्रिय नहीं बोलते

३. एक ओर बैठे अभय राजकुमार ने भगवान् से यों पूछा—"भन्ते ! (कभी) आप ऐसी वाणी भी बोलते हैं, जो दूसरों को दुःखद एवं अप्रिय लगे ?"

"न ख्वेत्थ, राजकुमार, एकंसेना" ति।

"एत्थ, भन्ते, अनस्सुं निगण्ठा" ति।

"किं पन त्वं, राजकुमार, एवं वदेसि—'एत्थ, [N. 69, R. 394] भन्ते, अनस्सुं निगण्ठा' " ति ?

"इधाहं, भन्ते, येन निगण्ठो नातपुत्तो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा निगण्ठं नातपुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसन्नं खो मं, भन्ते, निगण्ठो नातपुत्तो एतदवोच—'एहि त्वं राजकुमार, समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेहि। एवं ते कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छिस्सति—अभयेन राजकुमारेन समणस्स गोतमस्स एवं महिद्धिकस्स एवं महानुभावस्स वादो आरोपितो' ति। एवं वुत्ते, अहं, भन्ते, निगण्ठं नातपुत्तं एतदवोचं—'यथा कथं पनाहं, भन्ते, समणस्स गोतमस्स एवं महिद्धिकस्स एवं महानुभावस्स वादं आरोपेस्सामी' ति ?

'एहि त्वं, राजकुमार, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं एवं वदेहि—भासेय्य नु खो, भन्ते, तथागतो तं वाचं या सा वाचा परेसं अप्पिया अमनापा ति ? सचे ते समणो गोतमो एवं पुट्ठो एवं ब्याकरोति—भासेय्य, राजकुमार, तथागतो तं वाचं या सा वाचा परेसं अप्पिया अमनापा ति, तमेनं त्वं एवं वदेय्यासि—अथ किं चरहि ते, भन्ते, पुथुज्जनेन नानाकरणं ? पुथुज्जनो पि हि तं वाचं भासेय्य या सा वाचा परेसं अप्पिया अमनापा [P. 57] ति। सचे पन ते समणो गोतमो एवं पुट्ठो एवं ब्याकरोति—न, राजकुमार, तथागतो तं वाचं भासेय्य या सा वाचा परेसं अप्पिया अमनापा ति, तमेनं त्वं एवं वदेय्यासि—अथ किं चरहि ते, भन्ते, देवदत्तो ब्याकतो—आपायिको देवदत्तो, नेरयिको देवदत्तो, कप्पट्ठो देवदत्तो, अतेकिच्छो देवदत्तो ति ? ताय च पन ते वाचाय देवदत्तो कुपितो अहोसि अनत्तमनो ति। इमं खो ते, राजकुमार, समणो गोतमो उभतोकोटिकं पञ्हं पुट्ठो समानो नेव सक्खिति उग्गिलितुं न सक्खिति ओगिलितुं। सेय्यथापि नाम पुरिसस्स अयोसिङ्घाटकं

"राजकुमार ! यह बात बिना अपवाद के सर्वथा, एकान्ततः (इकतरफा) नहीं कही जा सकती।"

"भन्ते ! इस पर तो निर्ग्रन्थ मारे गये !"

"अरे, राजकुमार ! यह क्या कह रहे हो कि 'भन्ते ! निर्ग्रन्थ मारे गये ?" '

"भन्ते ! (कल) मैं निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र के पास गया था......पूर्ववत्[१]...... और न निगल सकेगा।"

---

१. द्र०—इसी सूत्र का पहला पैरा (पृ० ७३४-३५)।

कण्ठे विलग्गं, सो नेव सक्कुणेय्य उग्गिलितुं न सक्कुणेय्य ओगिलितुं; एवमेव खो ते राजकुमार, समणो गोतमो इमं उभतोकोटिकं पञ्हं पुट्ठो समानो नेव सक्खिति उग्गिलितुं न सक्खिति ओगिलितुं" ' ति।

२. अनुकम्पाय अप्पियं पि भासेय्य

[N. 70] ४. तेन खो पन समयेन दहरो कुमारो मन्दो उत्तानसेय्यको अभयस्स राजकुमारस्स अङ्के निसिन्नो होति। अथ खो भगवा अभयं राजकुमारं [R. 395] एतदवोच—"तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, सचायं कुमारो तुय्हं वा पमादमन्वाय धातिया वा पमादमन्वाय वा कट्ठं वा कठलं वा मुखे आहरेय्य, किन्ति नं करेय्यासी" ति ?

"आहरेय्यस्साहं, भन्ते। सचे, भन्ते, न सक्कुणेय्यं आदिकेनेव आहत्तुं, वामेन हत्थेन सीसं परिग्गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन वङ्कङ्गुलिं करित्वा सलोहितं पि आहरेय्यं। तं किस्स हेतु ? अत्थि मे, भन्ते, कुमारे अनुकम्पा" ति।

"एवमेव खो, राजकुमार, यं तथागतो वाचं जानाति अभूतं अतच्छं अनत्थसंहितं सा च परेसं अप्पिया अमनापा, न तं तथागतो वाचं भासति। यं च खो तथागतो वाचं जानाति भूतं तच्छं अनत्थसंहितं सा च परेसं अप्पिया अमनापा, तं पि तथागतो वाचं न भासति। यं च खो तथागतो वाचं जानाति

---

२. कृपा के कारण दोषो को अप्रिय भी कहना पड़ता है

४. उस समय एक छोटा बच्चा अभय राजकुमार की गोद में बैठा था। तब भगवान् ने अभय राजकुमार से यह पूछा—"तो क्या मानते हो, राजकुमार! यदि यह छोटा बच्चा तुम्हारी या धातृ (धाय, दाई) की गलत से कोई काठ या काठ का टुकड़ा मुँह मे डाल ले तो तुम क्या करोगे ?"

"भन्ते ! मैं उसे वापस निकाल लूँगा। भन्ते ! यदि मैं उसे शुरु में सरलता से न निकाल पाया तो बायें हाथ से इस (बच्चे) का सिर पकड़ कर, दायें हाथ की अँगुली टेढ़ी कर उसे निकाल लूँगा, भले ही ऐसा करते समय उसके मुख से खून ही क्यों न बहने लगे। वह क्यों ? वह इसलिये कि भन्ते ! कुमार से मुझे प्यार (=अनुकम्पा) है।"

"इसी तरह राजकुमार ! (१) तथागत जिस बात के बारे में जानते हैं कि यह हुई ही नहीं है, अतथ्य है, कहने पर अनर्थ (हानि) युक्त है, जो बोले जाने पर दूसरों को कष्टकर एवं अप्रिय लग सकती है, ऐसी बात (वाणी) तथागत नहीं बोलते। (२) तथागत जिस बात के बारे में जानते हैं कि यह हुई है, तथ्य (सत्य) है, अनर्थयुक्त है और जो बोलने पर दूसरों को कष्टकर या अप्रिय लगे, तथागत ऐसी वाणी भी नहीं बोलते। (३) हाँ, जिस बात के बारे में तथागत

भूतं तच्छं अत्थसंहितं सा च परेसं अप्पिया अमनापा, तत्र कालञ्ञू तथागतो होति तस्सा वाचाय वेय्याकरणाय। यं तथागतो वाचं जानाति [B. 58] अभूतं अतच्छं अनत्थसंहितं सा च परेसं पिया मनापा, न तं तथागतो वाचं भासति। यं पि तथागतो वाचं जानाति भूतं तच्छं अनत्थसंहितं सा च परेसं पिया मनापा, तं पि तथागतो वाचं न भासति। यं च तथागतो वाचं जानाति भूतं तच्छं अत्थसंहितं सा च परेसं पिया मनापा, तत्र कालञ्ञू तथागतो होति तस्सा वाचाय वेय्याकरणाय। तं किस्स हेतु? अत्थि, राजकुमार, तथागतस्स सत्तेसु अनुकम्पा" ति।

३. ननु ठानसोवेतं तथागतं पटिभाति

५. "ये मे, भन्ते खत्तियपण्डिता पि ब्राह्मणपण्डिता पि गहपतिपण्डिता पि समणपण्डिता पि पञ्हं अभिसङ्खरित्वा तथागतं उपसङ्कमित्वा पुच्छन्ति, पुब्बेव नु खो, भन्ते, भगवतो चेतसो परिवितक्कितं होति—'ये मं उपसङ्कमित्वा एवं पुच्छिस्सन्ति तेसाहं एवं पुट्ठो एवं ब्याकरिस्सामी' ति, उदाहु [N. 71] ठानसोवेतं तथागतं पटिभाती" ति?

जानते हैं कि यह हुई है, तथ्य है, कहने पर अर्थ (लाभ) युक्त ही होगी, भले ही वह दूसरों को कष्टकर या अप्रिय लगे, समय पड़ने पर तथागत ऐसी वाणी बोल ही देते हैं। (४) परन्तु जिस वाणी के बारे में तथागत जानते हैं कि जो हुई ही न हो, अतथ्य हो, अनर्थयुक्त हो, भले ही वह दूसरों को सुखद या प्रिय लगे, ऐसी वाणी तथागत नहीं बोलते। (५) और जिस बात के बारे में तथागत जानते हैं कि यह हुई तो अवश्य है, सत्य भी है, परन्तु कहने पर सामने वाले का अनर्थ (हानि) कर सकती है, अतः, दूसरों को सुनने में भले ही वह सुखकर या प्रिय लगे तो भी तथागत ऐसी वाणी नहीं बोलते। (६) और जिस वाणी के बारे में तथागत जानते हैं कि यह हुई भी है, तथ्य भी है, कहने पर सामने वाले का लाभ ही करेगी और दूसरों को सुखद या प्रिय ही लगेगी, उसे तथागत अवसर आने पर बोल ही देते हैं। वह क्यों? राजकुमार वह इसलिये कि तथागत के मन में प्राणियों के प्रति अत्यन्त अनुकम्पा रहती है।"

३. तथागत अवसर आने पर ही सोचकर बोलते हैं

५. "भन्ते! ये जो क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति व श्रमण विद्वान् अपना-अपना प्रश्न सोचकर, आपके पास आकर पूछते हैं, तब क्या आपके मन में पहले से यह बात आ जाती है कि 'जो मुझसे ऐसा आकर पूछेंगे, उन्हें मैं ऐसा पूछे जाने पर ऐसा उत्तर दूँगा', अथवा अवसर आने पर ही आप वैसा उत्तर सोच लेते हैं?"

"तेन हि, राजकुमार, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि, यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, कुसलो त्वं रथस्स अङ्गपच्चङ्गानं" ति ?

"एवं, भन्ते, कुसलो अहं रथस्स अङ्गपच्चङ्गानं" ति।

"तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, ये तं उपसङ्कमित्वा एवं पुच्छेय्युं—'किं नामिदं रथस्स अङ्गपच्चङ्गं' ति ? पुब्बेव नु खो ते एतं चेतसो परिवितक्कितं [R. 396] अस्स–'ये मं उपसङ्कमित्वा एवं पुच्छिस्सन्ति तेसाहं एवं पुट्ठो एवं ब्याकरिस्सामी' ति, उदाहु ठानसोवेतं पटिभासेय्या" ति ?

"अहं हि, भन्ते, रथिको सञ्ञातो कुसलो रथस्स अङ्गपच्चङ्गानं। सब्बानि मे रथस्स अङ्गपच्चङ्गानि सुविदितानि। ठानसोवेतं मं पटिभासेय्या" ति।

"एवमेव खो, राजकुमार, ये ते खत्तियपण्डिता पि ब्राह्मणपण्डिता पि गहपतिपण्डिता पि समणपण्डिता पि पञ्हं अभिसङ्खरित्वा तथागतं उपसङ्कमित्वा पुच्छन्ति, ठानसोवेतं तथागतं पटिभाति। तं किस्स हेतु ? सा हि, राजकुमार, तथागतस्स धम्मधातु सुप्पटिविद्धा यस्सा धम्मधातुया सुप्पटिविद्धत्ता ठानसोवेतं तथागतं पटिभाती" ति।

"तो राजकुमार ! मैं तुमसे ही पूछना चाहता हूँ, तुम जैसा उचित समझो, वैसा उत्तर दो। तो क्या मानते हो, राजकुमार ! तुम रथ-संचालन की छोटी-बड़ी सभी बातें भलीभाँति जानते हो ?"

"हाँ, भन्ते ! मैं रथ-संचालन की छोटी–बड़ी सभी बातें भलीभाँति जानता हूँ।"

"तो क्या मानते हो, राजकुमार ! कोई तुम्हें आकर यह पूछे—'ये रथ की छोटी-बड़ी बातें क्या हैं ?' ऐसे अवसर पर क्या तुम पहले से सोचे रहते हो कि 'कोई मुझसे आकर ऐसा पूछेगा तो ऐसा पूछने पर उसे ऐसा उत्तर दूँगा' या प्रश्नकाल के बाद ही तुम्हें जैसा उचित लगता है, वैसा उत्तर दे देते हो ?"

"भन्ते ! मैं रथिक हूँ, रथ-संचालन में चतुर हूँ। मैं रथ के बारे में उसकी सभी छोटी-बड़ी बारीकियाँ भलीभाँति जानता हूँ। अतः प्रश्नकाल के तुरन्त बाद ही उसका उचित उत्तर मेरे मन में आता है, पहले से नहीं।"

"इसी तरह, राजकुमार ! ये जो क्षत्रिय, ब्राह्मण......पूछते हैं, पूछने के तत्काल बाद ही मेरे मन में आता है कि मैं इसका ऐसा उत्तर दूँ। वह क्यों ? राजकुमार ! वह इसलिये कि तथागत का मन में सोचने का तरीका बिल्कुल सधा हुआ है, जिसके कारण तथागत अवसर आते ही उचित उत्तर दे बैठते हैं।"

६. एवं वुत्ते, अभयो राजकुमारो भगवन्तं एतदवोच, "अभिक्कन्तं–भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते....पे०.....अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

---

६. ऐसा कहे जाने पर, अभय राजकुमार ने भगवान् से यों निवेदन किया— "आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते.....पूर्ववत्[1]....आज से जीवनपर्यन्त मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।"

अभयराजकुमारसुत्त समाप्त ॥

---

[1] द्र०—पृ० ४९ (इसी ग्रन्थ का प्रथम भाग)।

९. बहुवेदनियसुत्तं

[N. 72, B. 59] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो पञ्चकङ्गो थपति येनायस्मा उदायी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं उदायिं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—

१. कति वेदना–तिस्सो वा द्वे वा ?

"कति नु खो, भन्ते उदायि, वेदना वुत्ता भगवता" ति ?

"तिस्सो खो, थपति, वेदना वुत्ता भगवता। सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, [R. 397] अदुक्खमसुखा वेदना—इमा खो, थपति, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता" ति।

एवं वुत्ते, पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"न खो, भन्ते उदायि, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता; द्वे वेदना वुत्ता भगवता—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना। यायं, भन्ते, अदुक्खमसुखा वेदना सन्तस्मिं एसा पणीते सुखे वुत्ता भगवता" ति। दुतियं पि खो आयस्मा उदायी पञ्चकङ्गं थपतिं एतदवोच—"न खो, थपति, द्वे वेदना वुत्ता भगवता; तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता। सुखा वेदना,

---

९. बहुवेदनीयसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय पञ्चकाङ्ग नामक स्थपति, (प्रधान या शिल्पकार) जहाँ आयुष्मान् उदायी थे, वहाँ पहुँचा; पहुँचकर, आयुष्मान् उदायी को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठा वह पञ्चकाङ्ग स्थपति आयुष्मान् उदायी से यों बोला—

१. वेदनाएँ कितनी होती हैं—तीन या दो ?

"भन्ते उदायि ! भगवान् ने वेदनाएँ कितनी बतायी हैं ?"

"स्थपति ! भगवान् ने तीन वेदनाएँ बतायी हैं। (१) सुखा वेदना, (२) दुःखा वेदना एवं (३) अदुःखा सुखा वेदना—स्थपति ! ये तीन वेदनाएँ भगवान् ने बतायी हैं।"

ऐसा कहे जाने पर पञ्चकाङ्ग स्थपति ने आयुष्मान् उदायि से फिर कहा—"भन्ते उदायि ! भगवान् ने तीन वेदनायें तो नहीं बतायीं, दो ही बतायी हैं—सुखा वेदना तथा दुःखा वेदना। भन्ते ! यह जो अदुःखा-असुखा वेदना है, इसे भगवान् ने शान्त एवं प्रणीत सुख के विषय में कहा है।" दूसरी बार भी आयुष्मान् उदायी ने पञ्चकाङ्ग स्थपति से कहा—"स्थपति ! भगवान् ने दो वेदनाएँ नहीं कहीं; तीन ही कही हैं—सुखा वेदना, दुःखा वेदना, अदुःखा-असुखा वेदना।"

दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा खो, थपति, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता" ति। दुतियं पि खो पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच— "न खो, भन्ते उदायि, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता; द्वे वेदना वुत्ता भगवता— सुखा वेदना, दुक्खा वेदना। यायं, भन्ते, अदुक्खमसुखा वेदना सन्तस्मिं एसा पणीते सुखे वुत्ता भगवता" ति। ततियं पि खो आयस्मा उदायी पञ्चकङ्गं थपतिं एतदवोच—"न खो, थपति, द्वे वेदना वुत्ता भगवता; तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता। सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा खो, थपति, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता" ति। ततियं पि खो पञ्चकङ्गो थपति [N. 73] आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"न खो, भन्ते उदायि, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता, द्वे वेदना वुत्ता भगवता—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना। यायं, भन्ते, अदुक्खमसुखा वेदना सन्तस्मिं एसा पणीते सुखे वुत्ता भगवता" ति।

नेव खो सक्खि आयस्मा उदायी पञ्चकङ्गं थपतिं सञ्ञापेतुं न पनासक्खि पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं उदायिं सञ्ञापेतुं।

२. परियायदेसिता वेदना

२. अस्सोसि खो आयस्मा आनन्दो आयस्मतो उदायिस्स पञ्चकङ्गेन थपतिना सद्धिं इमं कथासल्लापं। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। [B. 60] एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो यावतको अहोसि आयस्मतो उदायिस्स

दूसरी बार फिर पञ्चकाङ्ग स्थपति ने आयुष्मान् उदायी से कहा—"भन्ते उदायि! भगवान् ने तीन वेदनाएँ तो नहीं.....कहा है।" तीसरी बार भी आयुष्मान् उदायी ने पञ्चकाङ्ग स्थपति से कहा—"स्थपति! भगवान् ने दो वेदनाएँ नहीं...अदुःखा-असुखा वेदना"। तीसरी बार फिर पञ्चकाङ्ग स्थपति ने आयुष्मान् उदायी से कहा—"भन्ते उदायि! भगवान् ने तीन वेदनाएँ तो नहीं...कहा है।"

इस तरह न तो आयुष्मान् उदायी पञ्चकाङ्ग को अपनी बात समझा सके और न पञ्चकाङ्ग स्थपति ही आयुष्मान् उदायी को अपनी बात के समर्थन में ला सका।

२. प्रसङ्गानुसार वेदनाओं की देशना

आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् उदायी एवं पञ्चकाङ्ग स्थपति में हो रहे इस कथा-संवाद को सुन लिया। सुनकर आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पास पहुँचे; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् उदायी एवं पञ्चकाङ्ग स्थपति में अभी-अभी जो कथा-संवाद हुआ था, वह सब भगवान् से पूरा का पूरा कह सुनाया। ऐसा कहे जाने पर

पञ्चकङ्गेन थपतिना सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि। एवं वुत्ते, भगवा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"सन्तञ्ञेव खो, आनन्द, परियायं पञ्चकङ्गो थपति उदायिस्स नाब्भनुमोदि, सन्तञ्ञेव च पन परियायं उदायी पञ्चकङ्गस्स थपतिस्स नाब्भनुमोदि। द्वेपानन्द, वेदना वुत्ता मया परियायेन, [R. 398] तिस्सो पि वेदना वुत्ता मया परियायेन, पञ्च पि वेदना वुत्ता मया परियायेन, छ पि वेदना वुत्ता मया परियायेन, अट्ठारस पि वेदना वुत्ता मया परियायेन, छत्तिंस पि वेदना वुत्ता मया परियायेन, अट्ठसतं पि वेदना वुत्ता मया परियायेन। एवं परियायदेसितो खो, आनन्द, मया धम्मो। एवं परियायदेसिते खो, आनन्द, मया धम्मे ये अञ्ञमञ्ञस्स सुभासितं सुलपितं न समनुजानिस्सन्ति न समनुमञ्ञिस्सन्ति न समनुमोदिस्सन्ति तेसमेतं पाटिकङ्खं—भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरिस्सन्ति। एवं परियायदेसितो खो, आनन्द, मया धम्मो। एवं परियाय- [N. 74] देसिते खो, आनन्द, मया धम्मे ये अञ्ञमञ्ञस्स सुभासितं सुलपितं समनुजानिस्सन्ति समनुमञ्ञिस्सन्ति समनुमोदिस्सन्ति तेसमेतं पाटिकङ्खं—

भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को यह बताया—"आनन्द ! किसी एक प्रसङ्ग का आश्रय लेकर पञ्चकाङ्ग स्थपति ने उदायी की बात का समर्थन नहीं किया, और इसी तरह, उदायी ने भी, किसी दूसरे प्रसङ्ग का सहारा लेकर पञ्चकाङ्ग स्थपति की बात का अनुमोदन नहीं किया। आनन्द ! मैंने प्रसङ्गवश कभी दो वेदनाओं का उपदेश किया है, कभी तीन···कभी पाँच···कभी छह···कभी अट्ठारह···कभी छत्तीस··· एवं प्रसङ्गवश कभी-कभी तो एक सौ आठ वेदनाओं का भी उपदेश किया। इस प्रकार, आनन्द ! मैंने अपने धर्म का जहाँ जैसा प्रसङ्ग देखा, वहाँ वैसा ही उपदेश किया है। आनन्द ! यों इस मेरे द्वारा प्रसङ्गानुसार उपदिष्ट धर्म को किसी के द्वारा सुभाषित-सुलपित किये जाने पर, दूसरे लोग यदि उसका समर्थन, अनुमोदन या स्वीकरण नहीं करते तो मैं उनके बारे में यही कहूँगा वे धर्मचर्चा के बहाने बैठकर सङ्घ में कलह कराना चाहते हैं, विवाद कराना चाहते हैं या फूट डालना चाहते हैं और यों वे आपस में अपशब्दों से एक-दूसरे को घायल करते हैं। आनन्द ! मैंने तो अपने इस धर्म का प्रसङ्गानुसार ही वर्णन किया है। आनन्द ! जो मेरे द्वारा इस प्रसङ्गानुसार उपदिष्ट धर्म को किसी के द्वारा सुभाषित-सुलपित किये जाने पर, दूसरे लोग यदि उसका समर्थन, अनुमोदन या स्वीकरण करते हैं तो मैं उनके बारे में यही कहूँगा कि वे इकट्ठे हुए, प्रसन्नता से भरे, और दूध-जल की तरह मिलजुल कर बैठे, सौहार्द से एक-दूसरे को स्नेहभरी आँखों से देखते हुए, धर्मवृद्धि में ही सहयोग करते हैं।

समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरिस्सन्ति।

३. पणीतपणीततरानि सुखानि

३. "पञ्च खो इमे, आनन्द, कामगुणा। कतमे पञ्च? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया, सोतविञ्ञेय्या सद्दा…पे०…घानविञ्ञेय्या गन्धा…पे०…जिव्हाविञ्ञेय्या रसा…पे०…कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया—इमे खो, आनन्द, पञ्च कामगुणा। यं खो, आनन्द, इमे पञ्च कामगुणे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं इदं वुच्चति कामसुखं।

"यो खो, आनन्द, एवं वदेय्य—'एतपरमं सत्ता सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति, इदमस्स नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। कतमञ्चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? इधानन्द, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि…पे०…पठमं झानं उपसम्पज्ज [B. 61] विहरति। इदं खो आनन्द एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

---

३. अच्छे से अच्छे उत्कृष्ट सुख

३. "आनन्द! ये पाँच प्रकार के कामभोग हैं। कौन से पाँच? (१) आँखों से दिखाई देने वाले (चक्षुविज्ञेय) इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोहर, सुरम्य, कामभोगोपयोगी, रागमय रूप, (२) कानों से सुनाई पड़ने वाले (श्रोत्रविज्ञेय)…शब्द, (३) नाक से सूँघे जाने वाले (घ्राणविज्ञेय) …गन्ध, (४) जीभ से चखे जाने वाले (जिह्वा-विज्ञेय) … रस, (५) शरीर से स्पर्श किये जाने वाले (कायविज्ञेय)…स्पर्श योग्य धर्म—आनन्द! ये पाँच कामभोग हैं। आनन्द! इन पाँच कामभोगों के सहारे से उत्पन्न मन को प्रसन्नता देने वाला सुख ही 'कामभोग' कहलाता है।

आनन्द! यहाँ यदि कोई यह कहे—'इससे बढ़कर कोई सुख नहीं है' तो मैं उसके इस कथन को स्वीकार नहीं कर सकता। वह क्यों? वह इसलिये कि आनन्द! इस सुख से भी बढ़कर एक अन्य सुख है, जो इससे भी अच्छा और उत्कृष्ट है। आनन्द! इस सुख से भी बढ़कर कौन सा एक अन्य सुख है, जो इससे भी अच्छा और उत्कृष्ट है? आनन्द! यहाँ कोई भिक्षु वितर्क-विचारों को…

"यो खो, आनन्द, एवं वदेय्य—'एतपरमं सत्ता सुखं सोमनस्सं पटि- [R. 399] संवेदेन्ती' ति, इदमस्स नानुजानामि। तं किस्स हेतु ? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। कतमञ्चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च ? इधानन्द, भिक्खु वितक्क-विचारानं वूपसमा''' पे०''''' दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"यो खो, आनन्द, एवं वदेय्य '' पे०''''' । कतमञ्चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च ? इधानन्द, भिक्खु पीतिया च विरागा'''पे०'''ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"यो खो, आनन्द, एवं वदेय्य''''पे०''''' । कतमञ्चानन्द, एतम्हा सुखा [N. 75] अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च ? इधानन्द, भिक्खु सुखस्स च पहाना''''पे०''''' चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

पूर्ववत्[1] '''''प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। आनन्द ! यह (प्रथम-ध्यान की साधना का) सुख उस लौकिक सुख से अच्छा और उत्कृष्ट है।

"आनन्द ! यहाँ यदि कोई यह कहे '''' अच्छा और उत्कृष्ट है ? आनन्द ! यहाँ कोई भिक्षु वितर्क-विचारों के उपशमानन्तर'''''पूर्ववत्[2]''''' द्वितीयध्यान की साधना करता है। आनन्द ! यह (द्वितीयध्यान की साधना का) सुख उस (प्रथम-ध्यान के साधना-) सुख से अच्छा और उत्कृष्ट है।

"आनन्द ! यहाँ यदि कोई यह कहे'''''अच्छा और उत्कृष्ट सुख है ? आनन्द ! यहाँ कोई भिक्षु प्रीति से विरक्त हो'''''पूर्ववत्[3]''''' तृतीयध्यान की साधना करता है। आनन्द ! यह (तृतीयध्यान की साधना का) सुख उस (द्वितीयध्यान की साधना के) सुख से अच्छा और उत्कृष्ट है।

"आनन्द ! यहाँ यदि कोई यह कहे'''अच्छा और उत्कृष्ट है ? आनन्द ! यहाँ कोई भिक्षु सुख-दुःख के प्रहाण से'''''पूर्ववत्[4]'''''चतुर्थ ध्यान की साधना करता है। आनन्द ! यह (चतुर्थध्यान की साधना का) सुख उस (तृतीयध्यान की साधना के) सुख से भी अच्छा और उत्कृष्ट है।

---

१. २. ३. ४. द्र०—पृ० ४५. (भरभैरवसुत्त)।

"यो खो, आनन्द, एवं वदेय्य....पे०....कतमञ्चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च ? इधानन्द, भिक्खु सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा, पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा, नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"यो खो, आनन्द, एवं वदेय्य....पे०.... कतमञ्चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च ? इधानन्द, भिक्खु सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"यो खो, आनन्द, एवं वदेय्य....पे०....कतमञ्चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च ? इधानन्द, भिक्खु सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"यो खो, आनन्द, एवं वदेय्य....पे०.... कतमञ्चानन्द, [B. 62 R. 400] एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च ? इधानन्द, भिक्खु सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"आनन्द ! यहाँ कोई यह कहे....अच्छा और उत्कृष्ट है ? आनन्द ! यहाँ कोई भिक्षु रूपसंज्ञाओं का सर्वथा अतिक्रमण कर....पूर्ववत्[1]....आकाशानन्त्यायतन की साधना करता है। आनन्द ! यह सुख भी....उत्कृष्ट है।

"आनन्द ! यहाँ यदि कोई यह कहे....अच्छा और उत्कृष्ट है ? आनन्द ! यहाँ कोई भिक्षु...पूर्ववत्[2].... विज्ञानानन्त्यायतन की साधना करता है। आनन्द ! यह साधना-सुख....उत्कृष्ट है।

"आनन्द ! परन्तु यहाँ यदि कोई यह कहे....अच्छा और उत्कृष्ट है ? आनन्द ! यहाँ कोई भिक्षु विज्ञानानन्त्यायतनसे भी आगे बढ़कर....पूर्ववत्[3].... आकिञ्चन्यायतन की साधना करता है। आनन्द ! यह साधना सुख...उत्कृष्ट है।

"आनन्द ! यहाँ यदि कोई यह कहे ....अच्छा और उत्कृष्ट है ? आनन्द ! यहाँ कोई भिक्षु आकिञ्चन्यायतनसे भी आगे बढ़कर ....पूर्ववत्[4].... नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की साधना करता है। आनन्द ! यह साधना सुख....उत्कृष्ट है।

---

१. द्र०–पृ० ३९३। २. द्र०–पृ० ३९४। ३. द्र०–पृ० ३९४। ४. द्र०–पृ० ३९४।

"यो खो, आनन्द, एवं वदेय्य—'एतपरमं सत्ता सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति इदमस्स नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। कतमञ्चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? इधानन्द, भिक्खु सब्बसो नेव-[N. 76] सञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

४. "ठानं खो पनेतं, आनन्द, विज्जति यं अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—'सञ्ञावेदयितनिरोधं समणो गोतमो आह; तं च सुखस्मिं पञ्ञापेति। तयिदं किंसु, तयिदं कथंसू' ति? एवंवादिनो, आनन्द, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'न खो, आवुसो, भगवा सुखं येव वेदनं सन्धाय सुखस्मिं पञ्ञापेति; अपि च, आवुसो, यत्थ यत्थ सुखं उपलब्भति; यहिं यहिं तं तं तथागतो सुखस्मिं पञ्ञापेती" ति।

५. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति ॥

"आनन्द! यहाँ यदि कोई यह कहे—'इससे बढ़कर कोई सुख नहीं है' तो मैं उसके इस कथन को भी स्वीकार नहीं कर सकता। वह क्यों? वह इसलिये कि आनन्द! इस सुख से भी बढ़कर एक अन्य सुख है, जो इससे भी अच्छा और सर्वोत्कृष्ट है। आनन्द! इस सुख से बढ़कर कौन सा एक अन्य सुख है, जो इससे भी अच्छा और सर्वोत्कृष्ट है? आनन्द! यहाँ कोई भिक्षु नैवसंज्ञानासंज्ञायतन से भी आगे बढ़कर संज्ञावेदयितनिरोध की साधना करता है। आनन्द! यह (नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के साधना-) सुख से अच्छा, अतएव सर्वोत्कृष्ट है।

४. "आनन्द! यह सम्भव है कि दूसरे सम्प्रदाय के साधु (परिव्राजक) यह आरोप लगावें—'श्रमण गौतम संज्ञावेदयित-निरोध की साधना करने को कहता है; और उसे सुखमय बतलाता है। वह (सुख) क्या है, और कैसे होता है?' आनन्द ऐसा आरोप लगाने वाले उन अपरसम्प्रदाय के साधुओं से कहना चाहिये—'आयुष्मानो! भगवान् सुखा वेदना का ही ध्यान (विचार) कर उसे सुख में नहीं बताते; अपितु, आयुष्मानो! तथागत जहाँ-जहाँ सुख मिल सकता है, वहाँ-वहाँ उस-उस को सुख में बतलाते हैं।"

५. भगवान् ने यह उपदेश किया। प्रसन्नमन हो, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया ॥

बहुवेदनियसुत्त समाप्त ॥

१०. अपण्णकसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो महता [N.77] भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन साला नाम कोसलानं ब्राह्मणगामो तदवसरि। अस्सोसुं खो सालेय्यका ब्राह्मणगहपतिका —"समणो खलु गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं [R.401,B. 63] सालं अनुप्पत्तो। तं खो पन गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो — 'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती" ति। अथ खो सालेय्यका ब्राह्मणगहपतिका येन भगवा तेनुपसङ्कमिसु; उपसङ्कमित्वा अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु; सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अप्पेकच्चे येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु।

---

१०. अपर्णकसूत्र

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) बहुत बड़े भिक्षुसङ्घ के साथ कौशल देश में चारिका करते हुए, जहाँ शाला नामक ग्राम था वहाँ, पहुँचे। शालाग्रामवासी ब्राह्मणगृहस्थों ने सुना—"शाक्यकुल से प्रव्रजित (राजा शुद्धोदन) शाक्य के पुत्र श्रमण गौतम कौशल देश में चारिका करते हुए, बहुत बड़े भिक्षुसङ्घ के साथ, शाला ग्राम में पधारे हैं। उन श्रीमान् गौतम की सर्वत्र यह कीर्ति फैली हुई है 'वे भगवान् ज्ञानी, सम्यक्सम्बुद्ध, विद्या और आचरण से युक्त, सुगत, लोकज्ञ, अनुशासक, देवता और मनुष्यों के शास्ता हैं, वे भगवान् 'बुद्ध' हो चुके हैं।' वे इस लोक में देवता, मार एवं ब्रह्मा सहित समग्र श्रमण-ब्राह्मणयुक्त प्रजा को स्वयं जान कर, साक्षात् कर धर्मोपदेश करते हैं। वे आदि, मध्य और अन्त में सर्वथा कल्याणप्रद, अर्थव्यञ्जनसहित, सर्वथा परिपूर्ण एवं परिशुद्ध धर्म का उपदेश करते हैं। ऐसे महापुरुषों का दर्शन बहुत ही मङ्गलप्रद होता है।" (यह सुनकर) तब वे शालाग्रामवासी ब्राह्मणगृहस्थ, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, पहुँचे; पहुँचकर उनमें से कुछ लोग भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। कुछ लोग भगवान् से कुशल मङ्गल पूछ, एक ओर बैठ गये। कुछ लोग दूर से ही भगवान् की तरफ हाथ जोड़कर, एक

अप्पेकच्चे भगवतो सन्तिके नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु । अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु ।

१. अपण्णको धम्मो

२. एकमन्तं निसिन्ने खो सालेय्यके ब्राह्मणगहपतिके भगवा एतदवोच— "अत्थि पन वो, गहपतयो, कोचि मनापो सत्था यस्मिं वो आकारवती सद्धा पटिलद्धा" ति ?

"नत्थि खो नो, भन्ते, कोचि मनापो सत्था यस्मिं नो आकारवती सद्धा पटिलद्धा" ति ।

[N.78] "मनापं वो, गहपतयो, सत्थारं अलभन्तेहि अयं अपण्णको धम्मो समादाय वत्तितब्बो । अपण्णको हि, गहपतयो, धम्मो समत्तो समादिन्नो, सो वो भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाय । कतमो च, गहपतयो, अपण्णको धम्मो ?"

३. "सन्ति, गहपतयो, एके समणब्राह्मणानं एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकटदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका; नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मा पटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं

ओर बैठ गये । कुछ लोग भगवान् के पास जाकर उन्हें अपना नाम-गोत्र बताते हुए, एक ओर बैठे और कुछ लोग चुपचाप ही एक तरफ जा बैठे ।

१. अपर्णक (संशयरहित) धर्म

२. एक ओर बैठे शालाग्रामवासी ब्राह्मणों से भगवान् यों बोले--"गृहपतियो ! तुम्हारा ऐसा कोई शास्ता है, जो तुम्हें धर्म के विषय में सन्तोष दिला सका हो और इस कारण उसमें तुम्हारी आकारवती (प्रत्यक्ष) श्रद्धा उत्पन्न हो सकी हो ?"

"नहीं, भन्ते ! ऐसा कोई हमारा शास्ता······श्रद्धा उत्पन्न हो सकी हो ।"

"गृहपतियो ! ऐसा सन्तोषदायक शास्ता न मिलने पर यह अपर्णक धर्म ग्रहण करना चाहिये । गृहपतियो ! यह पूर्णतः अभ्यस्त किया हुआ अपर्णक धर्म तुम्हारे लिये दीर्घकाल तक सुखकर एवं हितकर होगा । गृहपतियो ! यह अपर्णक धर्म क्या है ?"

३. "गृहपतियो ! कुछ ऐसे मत और धारणा वाले विद्वान् श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो यह कहते हैं--'यहाँ दान करना निष्फल है, यज्ञ-हवन एवं सुकृत-दुष्कृत कर्मों का भी कोई फल नहीं होता, इसी तरह यह लोक या परलोक मानना भी बेकार है, न कोई माता-पिता या देवता कर्मों का फल दे पाने में समर्थ हैं; इस लोक में ऐसे कोई ज्ञानी

सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। तेसं येव खो, गहपतयो, [B.64,R.402] समणब्राह्मणानं एके समणब्राह्मणा उजुविपच्चनीकवादा। ते एवमाहंसु— 'अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतं, अत्थि सुकटदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अत्थि अय लोको, अत्थि परो लोको, अत्थि माता, अत्थि पिता, अत्थि सत्ता ओपपातिका; अत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मा पटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। तं किं मञ्ञथ, गहपतयो— 'ननुमे समणब्राह्मणा अञ्ञमञ्ञस्स उजुविपच्चनीकवादा' " ति?

"एवं, भन्ते"।

४. "तत्र, गहपतयो, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं.. पे०...ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति तेसमेतं पाटिकङ्खं यमिदं कायसुचरितं, वचीसुचरितं, मनोसुचरितं। इमे तयो कुसले धम्मे अभिनिवज्जेत्वा यमिदं कायदुच्चरितं, वचीदुच्चरितं, मनोदुच्चरितं—इमे तयो अकुसले धम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति। तं किस्स हेतु? न हि ते भोन्तो समणब्राह्मणा पस्सन्ति अकुसलानं धम्मानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, कुसलानं धम्मानं नेक्खम्मे आनिसंसं वोदानपक्खं। सन्तं येव खो पन परं लोकं

श्रमण-ब्राह्मण भी नहीं हैं, जो इस लोक या परलोक को स्वयं जानकर, साक्षात् कर इनके बारे में कुछ भी बता पाये हों'। गृहपतियो! वहीं कुछ ज्ञानी श्रमण ब्राह्मण, जो कि उपर्युक्त से विरुद्ध मत रखने वाले हैं, कहते हैं—'दान का फल है, यज्ञ-हवन का भी फल है, किये गये अच्छे या बुरे कर्मों का भी फल है, यह लोक या परलोक, माता-पिता, देवता—सभी कर्मफल में उपयोगी हैं; इस लोक में ऐसे भी ज्ञानी श्रमण ब्राह्मण हैं, जो इस लोक या परलोक के बारे में स्वयं जानकर, साक्षात् कर दूसरों को बता सकते हैं'। तो क्या समझते हो, गृहपतियो! कि यह दोनों ही प्रकार के ज्ञानी श्रमण-ब्राह्मण एक दूसरे के विरुद्ध मत नहीं रखते?"

"हाँ, भन्ते! अवश्य रखते हैं।"

४. "गृहपतियो! उपर्युक्त ज्ञानी श्रमण-ब्राह्मणों में जो यह कहते हैं—'दान निष्फल है, यज्ञ...पूर्ववत्...बता पाये हों'; उनसे यह आशा रखनी चाहिये—वे काय, वाक् और मन से किये जाने वाले सत्कर्मों को छोड़ कर, काय-वाक्-मन द्वारा कृत दुष्कर्मों (= अकुशल धर्मों) को अपनाने लगेंगे। वह क्यों? वह इसलिये कि वे श्रमण-ब्राह्मण इन दुष्कर्मों में किसी प्रकार का दोष, अपकार या कष्ट नहीं देखते, और कुशल धर्मों में नैष्कर्म्यकृत शुद्धता या उनका महत्त्व नहीं देखते। और परलोक होते हुए भी उसके बारे में 'परलोक नहीं है'—उनकी ऐसी धारणा बन जाती है; यह

[N.79] 'नत्थि परो लोको' तिस्स दिट्ठि होति; सास्स होति मिच्छादिट्ठि। सन्तं येव खो पन परं लोकं 'नत्थि परो लोको' ति सङ्कप्पेति; स्वास्स होति मिच्छासङ्कप्पो। सन्तं येव खो पन परं लोकं 'नत्थि परो लोको' ति वाचं भासति; सास्स होति मिच्छावाचा। सन्तं येव खो पन परं लोकं 'नत्थि परो लोको' ति आह; ये ते अरहन्तो परलोकविदुनो तेसमयं पच्चनीकं करोति। सन्तं येव खो पन परं लोकं 'नत्थि परो लोको' ति परं सञ्ञापेति; सास्स होति असद्धम्मसञ्ञत्ति। ताय च पन असद्धम्मसञ्ञत्तिया अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। इति पुब्बेव खो पनस्स सुसील्यं पहीनं होति, दुस्सील्यं पच्चुपट्ठितं—अयं च मिच्छादिट्ठि मिच्छासङ्कप्पो मिच्छावाचा अरियानं पच्चनीकता असद्धम्मसञ्ञत्ति अत्तुक्कंसना परवम्भना। एवमस्सिमे अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति मिच्छादिट्ठिपच्चया।

[B. 65, R. 403] "तत्र, गहपतयो, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति—'सचे खो नत्थि परो लोको एवमयं भवं पुरिसपुग्गलो कायस्स भेदा सोत्थिमत्तानं करिस्सति; सचे खो अत्थि परो लोको एवमयं भवं पुरिसपुग्गलो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जिस्सति। कामं खो पन माहु परो लोको, होतु नेसं भवतं

धारणा मिथ्याधारणा होती है। तब वे परलोक के रहते हुए भी 'परलोक नहीं है'—ऐसा संकल्प करते हैं; उनका यह संकल्प मिथ्यासङ्कल्प है। फिर वे ''परलोक नहीं है'—ऐसा कहते हैं; उनका यह कहना भी मिथ्यावाक् कहलाता है।'''जबकि यह कथन परलोकवेदी ज्ञानियों के कथन से विरुद्ध है। वे लोग, परलोक के होते हुए भी, 'परलोक नहीं है'—ऐसा दूसरों को बताते हैं; यह उनका 'असद्धर्म बतलाना' है। इस असद्धर्म के बताने से वे स्वय का तो उत्कर्ष चाहते हैं और दूसरों की निन्दा करते हैं। इस तरह उनका सदाचार तो पहले ही नष्ट हुआ रहता है, अब इस कर्म से उनकी दुःशीलता भी बढ़ने लगती है—यों वे अपने इन मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासङ्कल्प, मिथ्यावाक्, आर्यों का विरोध, असद्धर्म का उपदेश से अपना उत्कर्ष चाहते हैं और दूसरे की निन्दा करते हैं। इस तरह उनके, इन मिथ्यादृष्टियों में विश्वास रखने के कारण, अनेक पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं।

"गृहपतियो! वहाँ कोई समझदार आदमी (उन लोगों के बारे में) यह सोचता है—'यदि परलोक नहीं है तो इस प्रकार यह विशिष्ट पुरुष, इस देहपात के बाद, अपने कल्याण (स्वस्ति) की रक्षा कर लेगा; और यदि परलोक है तो यह उपयुक्त प्रकार से चिन्तन करने वाला विशिष्ट पुरुष इस देहपात के बाद हीन, दुर्गतिमय नरकयोनि में उत्पन्न होगा। भले ही इस परलोक के बारे में विशिष्ट श्रमण-ब्राह्मणों का

समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं; अथ च पनायं भवं पुरिसपुग्गलो दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं गारय्हो—दुस्सीलो पुरिसपुग्गलो मिच्छादिट्ठि नत्थिकवादो'ति। सचे खो अत्थेव परो लोको, एवं इमस्स भोतो पुरिसपुग्गलस्स उभयत्थ कलिग्गहो—यं च दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं गारय्हो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जिस्सति। एवमस्सायं अपण्णको धम्मो दुस्समत्तो समादिन्नो, एकंसं फरित्वा तिट्ठति, रिञ्चति कुसलं ठानं।

५. "तत्र, गहपतयो, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'अत्थि दिन्नं'...पे०...'ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती'ति तेसमेतं पाटिकङ्खं यमिदं कायदुच्चरितं, वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं। इमे तयो अकुसले धम्मे अभिनिवज्जेत्वा यमिदं कायसुचरितं, वचीसुचरितं, [N. 80] मनोसुचरितं--इमे तयो कुसले धम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति। तं किस्स हेतु? पस्सन्ति हि ते भोन्तो समणब्राह्मणा अकुसलानं धम्मानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, कुसलानं धम्मानं नेक्खम्मे आनिसंसं वोदानपक्खं। सन्तं येव खो पन

का कथन सत्य ही हो; तो भी यह उपर्युक्त प्रकार का चिन्तक पुरुष इस जन्म में विद्वानों द्वारा निन्दा का ही भागी होगा—यह दुःशील पुरुष मिथ्याधारणाओं से घिरा हुआ एवं नास्तिकवादी है'। यदि परलोक है तो यह उक्त पुरुष दोनों ओर से पकड़ (=कलिग्गह) में आ जायगा—इस लोक में तो विद्वान् लोग उसकी निन्दा करेंगे, और देहपात के बाद वह हीन, दुर्गतिमय नरकयोनि में गिरेगा। इस तरह इस व्यक्ति के द्वारा अभ्यस्त यह अपर्णक धर्म गलत ढंग से पूरा किया गया है, यों गलत ढंग से पूरा होने के कारण वह इकतरफा ही कहलायगा, उसमें कुशल धर्मों की पूर्त्ति का कोई स्थान नहीं रहेगा।

५. "गृहपतियो! वहीं कुछ श्रमण-ब्राह्मण ऐसा मानने वाले और ऐसी धारणा वाले भी होते हैं--'दान का फल होता है, यज्ञ-हवन...पूर्ववत्...स्वयं जानकर, साक्षात् कर दूसरों को बता सकते हैं'; उनसे यह आशा रखनी चाहिये--वे काय, वाक् और मन से किये जाने वाले दुष्कर्मों (अकुशल धर्मों) को छोड़, काय-वाक्-मन द्वारा कृत सत्कर्मों (कुशल धर्मों) को अपनाने लगेंगे। वह क्यों? वह इसलिये कि वे श्रमण-ब्राह्मण इन दुष्कर्मों में आदीनव (दोष), अपकार एवं कष्ट देखते हैं और कुशल धर्मों में नैष्कर्म्यकृत शुद्धता एवं उनका महत्त्व देखते हैं। परलोक होने के कारण इसकी 'परलोक है'--ऐसी दृष्टि (धारणा)बन जाती है; उनकी यह दृष्टि सम्यग्दृष्टि होती है। वे...'परलोक है'—ऐसा सङ्कल्प करते हैं; उनका यह सङ्कल्प सम्यक्सङ्कल्प कहलाता है। फिर वे...'परलोक है'—ऐसा बोलते हैं; उनका यह बोलना सम्यक्वाक् कहलाता

परं लोकं 'अत्थि परो लोको' तिस्स दिट्ठि होति; सास्स होति सम्मादिट्ठि। सन्तं येव खो पन परं लोकं 'अत्थि परो लोको' ति सङ्कप्पेति; स्वास्स होति सम्मासङ्कप्पो। सन्तं येव खो पन परं लोकं 'अत्थि परो लोको' ति वाचं भासति; सास्स होति सम्मावाचा। सन्तं येव खो पन परं लोकं 'अत्थि परो लोको' ति आह; ये ते अरहन्तो परलोकविदुनो तेसमयं न पच्चनीकं [R. 404] करोति। सन्तं येव खो पन परं लोकं 'अत्थि परो लोको'ति परं सञ्ञापेति; सास्स होति सद्धम्मसञ्ञत्ति। ताय च पन सद्धम्मसञ्ञत्तिया नेवत्तानुक्कंसेति न परं वम्भेति। इति पुब्बेव खो पनस्स दुस्सील्यं पहीनं होति, सुसील्यं पच्चुपट्ठितं—अयं च सम्मादिट्ठि सम्मासङ्कप्पो सम्मावाचा अरियानं अपच्चनीकता सद्धम्मसञ्ञत्ति अनत्तुक्कंसना अपरवम्भना। [B. 66] एवमस्सिमे अनेके कुसला धम्मा सम्भवन्ति सम्मादिट्ठिपच्चया।

"तत्र, गहपतयो, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति--'सचे खो अत्थि परो लोको, एवमयं भवं पुरिसपुग्गलो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सति। कामं खो पन माहु परो लोको, होतु नेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं; अथ च पनायं भवं पुरिसपुग्गलो दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं पासंसो—सीलवा पुरिसपुग्गलो सम्मादिट्ठि अत्थिकवादो' ति। सचे खो अत्थेव परो लोको,

---

है। ...उनका यह कथन परलोकवेदी ज्ञानियों के अनुकूल ही है। वे लोग परलोक के होते हुए ही 'परलोक है'--ऐसा दूसरों को बताते हैं; उनका यह बताना 'सद्धर्मबोधक' है। इस सद्धर्म के बोधन से वे स्वय का उत्कर्ष नहीं चाहते और विरोधियों की निन्दा भी नहीं करते। इस तरह उनका दुराचार तो पहले ही नष्ट हुआ रहता है, अब इस कर्म से उनकी सुशीलता बढ़ने लगती है--यों वे अपने इन सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, आर्यों से अनुकूलता, सद्धर्म के बोधन से न अपना उत्कर्ष चाहते हैं, न दूसरों की निन्दा करते हैं। इस तरह उनके, इन सम्यग्दृष्टियों में विश्वास रखने के कारण, अनेक पुण्यमय कुशल धर्म उत्पन्न होते हैं।

"गृहपतियो! वहाँ समझदार आदमी यह सोचता है--'यदि परलोक है तो इस प्रकार यह विशिष्ट पुरुष, इस देहपात के बाद, सुगतिमय स्वर्ग में उत्पन्न होगा। भले ही इस परलोक के बारे में विशिष्ट श्रमण-ब्राह्मणों का कथन सत्य ही हो; तो भी यह उपर्युक्त प्रकार का चिन्तक पुरुष इस जन्म में विद्वानों द्वारा प्रशंसा का भागी होगा--यह सुशील पुरुष सम्यग्दृष्टि से आबद्ध एवं आस्तिक है'। यदि परलोक है तो यह विशिष्ट पुरुष दोनों तरफ से अपना कर्तव्यपालन (कटग्गह = कृतग्रह) ही करता

एवं इमस्स भोतो पुरिसपुग्गलस्स उभयत्थ कटग्गहो—यं च दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं पासंसो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सति। एवमस्सायं अपण्णको धम्मो सुसमत्तो समादिन्नो, उभयंसं फरित्वा तिट्ठति, रिञ्चति अकुसलं ठानं।

६. "सन्ति, गहपतयो, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'करोतो कारयतो, छिन्दतो छेदापयतो, पचतो पाचापयतो, सोचयतो सोचापयतो,[N. 81] किलमतो किलमापयतो, फन्दतो फन्दापयतो, पाणमतिपातयतो, अदिन्नं आदियतो, सन्धिं छिन्दतो, निल्लोपं हरतो, एकागारिकं करोतो, परिपन्थे तिट्ठतो, परदारं गच्छतो, मुसा भणतो; करोतो न करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा पठविया पाणे एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं करेय्य, नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमो। दक्खिणं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य हनन्तो घातेन्तो, छिन्दन्तो छेदापेन्तो, पचन्तो पाचेन्तो;

है—इस लोक में विद्वान् लोग उसकी प्रशंसा करेंगे और वह इस देहपात के बाद उच्च, सुगतिमय स्वर्ग में उत्पन्न होगा। इस तरह इस विशिष्ट व्यक्ति के द्वारा अभ्यस्त यह अपर्णक धर्म अच्छे ढंग से पूरा किया गया है, यों अच्छे ढंग से पूरा होने के कारण वह दोनों तरफ से पकड़ रखता है, उसमें अकुशल धर्मों की पूर्ति का कोई स्थान नहीं रहता।

६. "गृहपतियो! इस संसार में ऐसे भी विद्वान् श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो ऐसा मत और ऐसी धारणाएँ रखने वाले हैं—'(हिंसा) करते या कराते हुए, काटते हुए या काटने की प्रेरणा देते हुए, पकाते हुए या पकवाते हुए, शोक करते या शोक कराते हुए, कष्ट देते या दिलाते हुए, किसी से उलझते हुए या उलझाते हुए, किसी की हत्या करते या करवाते हुए, चोरी करते या करवाते, सेंध लगाते या लगवाते, लूटपाट करते या करवाते, छीना-झपटी (रहजनी) करते या करवाते, दूसरों का द्वेषवश रास्ता रोकते या रुकवाते, व्यभिचार करते और झूठ बोलते हुए; वह कोई पाप नहीं करता। यदि कोई धार वाले छुरों से युक्त चक्र से पृथ्वीवासी समग्र प्राणियों को मारकर, उनके मांस का ढेर लगा दे, तो भी उस के कारण, उसे कोई पाप नहीं लगता, उसे कोई पाप छू नहीं पाता। (वे मानते हैं कि) भले ही कोई गङ्गा के दक्षिण किनारे पर जाय और वहाँ लोगों को मारता-मरवाता हुआ, काटता-कटवाता हुआ, तकलीफ देता दिलवाता हुआ जो काम करे, उससे न उसे कोई पाप लगता है, न पाप का स्पर्श ही हो पाता है। और (दूसरी तरफ) कोई आदमी उत्तर किनारे पर जाय और वहाँ

नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमो। उत्तरं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य ददन्तो दापेन्तो, यजन्तो यजापेन्तो; नत्थि ततोनिदानं पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो। दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन नत्थि पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो'ति।

[R. 405] "तेस येव खो, गहपतयो, समणब्राह्मणानं एके समणब्राह्मणा उजुविपच्चनीकवादा ते एवमाहंसु--'करोतो कारयतो, छिन्दतो छेदापयतो, पचतो [B. 67] पाचापयतो, सोचयतो सोचापयतो, किलमतो किलमापयतो, फन्दतो फन्दापयतो, पाणमतिपातयतो, अदिन्नं आदियतो, सन्धिं छिन्दतो, निल्लोपं हरतो, एकागारिकं करोतो, परिपन्थे तिट्ठतो, परदारं गच्छतो, मुसा भणतो; करोतो करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा पठविया पाणे एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं करेय्य, अत्थि ततोनिदानं पापं, अत्थि पापस्स आगमो। दक्खिणं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य हनन्तो घातेन्तो, छिन्दन्तो छेदापेन्तो, पचन्तो पाचेन्तो; अत्थि ततोनिदानं पापं, अत्थि पापस्स आगमो। उत्तरं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य ददन्तो दापेन्तो, यजन्तो यजापेन्तो; अत्थि ततोनिदानं पुञ्ञं, अत्थि पुञ्ञस्स आगमो। दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन अत्थि पुञ्ञं अत्थि पुञ्ञस्स आगमो'ति। तं किं मञ्ञथ, गहपतयो, ननुमे समणब्राह्मणा अञ्ञमञ्ञस्स उजुविपच्चनीकवादा" ति?

कदम-कदम पर दूसरों को दान दे या दिलवावे, यज्ञ करे या करवावे; उसके कारण भी, उसे न कोई पुण्य होता है, न किसी पुण्य का स्पर्शमात्र भी हो पाता है। दान, इन्द्रियनिग्रह, इन्द्रियसंयम, सत्य बोलने से न कोई पुण्य होता है, न कोई पुण्य का स्पर्श होता है।'

"और गृहपतियो! इन उपर्युक्त श्रमण-ब्राह्मणों के विरुद्धमत या धारणा रखने वालों का यह मानना है (वे ऐसा कहते हैं) — '(हिंसा) करते-कराते, काटते-कटवाते, कष्ट देते-दिलवाते, शोक करते-करवाते, तकलीफ देते-दिलवाते, किसी से उलझते-उलझाते, किसी की हत्या की चेष्टा करते-कराते, चोरी करते-कराते, सेंध लगाते लगवाते, लूट-पाट करते-कराते, छीना झपटी करते-कराते, दूसरों का रास्ता रोकते-रुकवाते, व्यभिचार करते और झूठ बोलते या और कुछ दुष्कर्म करते हुए को पाप लगता ही है। कोई तीक्ष्ण धार वाले छुरों से युक्त चक्र से पृथ्वीवासी प्राणियों को मारकर मांस का ढेर बना दे तो उसे भी पाप लगता ही है, पाप का स्पर्श होता ही है। कोई गङ्गा के दक्षिण किनारे ... पूर्ववत् ... पाप का स्पर्श होता ही है। और इसी तरह कोई गङ्गा के उत्तर किनारे ... पूर्ववत् ... उसे पुण्य होगा ही या पुण्य का स्पर्श होगा ही। दान, इन्द्रियनिग्रह ... पुण्य का स्पर्श होगा ही। तो

"एवं, भन्ते"।

७. "तत्र, गहपतयो, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवं- [N. 82] दिट्ठिनो--'करोतो कारयतो, छिन्दतो छेदापयतो, पचतो पाचापयतो, सोचयतो सोचापयतो, किलमतो किलमापयतो, फन्दतो फन्दापयतो, पाणमतिपातयतो, अदिन्नं आदियतो, सन्धिं छिन्दतो, निल्लोपं हरतो, एकागारिकं करोतो, परिपन्थे तिट्ठतो, परदारं गच्छतो, मुसा भणतो; करोतो न करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा पठविया पाणे एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं करेय्य, नत्थि ततोनिदानं पाप, नत्थि पापस्स आगमो। दक्खिणं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य हनन्तो घातेन्तो···पे०···दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन नत्थि पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो'ति तेसमेतं पाटिकङ्खं यमिदं कायसुचरितं, वचीसुचरितं, मनोसुचरितं। इमे तयो कुसले धम्मे अभिनिवज्जेत्वा यमिदं कायदुच्चरितं, वचीदुच्चरितं, मनोदुच्चरितं--इमे तयो अकुसले धम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति। तं किस्स हेतु? न हि ते भोन्तो समणब्राह्मणा पस्सन्ति अकुसलानं धम्मानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, कुसलानं धम्मानं नेक्खम्मे आनिसंसं वोदानपक्खं। सन्तं येव खो पन किरियं 'नत्थि किरिया' तिस्स दिट्ठि होति; सास्स होति मिच्छादिट्ठि। [B. 68] सन्तं येव खो पन किरियं 'नत्थि किरिया' ति सङ्कप्पेति; स्वास्स होति मिच्छासङ्कप्पो। सन्तं येव खो पन किरियं 'नत्थि किरिया' ति वाचं भासति; सास्स होति मिच्छावाचा। सन्तं येव खो पन किरियं 'नत्थि किरिया' ति आह, ये ते अरहन्तो किरियवादा तेसमयं पच्चनीकं करोति। सन्तं येव खो पन किरियं 'नत्थि किरिया'

क्या मानते हो, गृहपतियो! ये उपर्युक्त दोनों प्रकार के श्रमण-ब्राह्मण परस्पर विरुद्धमत रखने वाले नहीं है?"

"हाँ, भन्ते! ऐसा ही है।"

७. "गृहपतियो! उन दोनों प्रकार के श्रमण-ब्राह्मणों में, जो यह मानते हैं कि '(हिंसा) करते-कराते, काटते-कटाते···पूर्ववत्···पाप का स्पर्श नहीं होता। कोई गङ्गा के दक्षिण किनारे···गङ्गा के उत्तर किनारे पूर्ववत्···दान, इन्द्रिय-निग्रह, इन्द्रिय-संयम और सत्य बोलने से न कोई पुण्य होता है, न पुण्य का स्पर्श होता है'--ऐसा मानने वालों से यह सम्भावना हो सकती है कि वे काय, वाक् और मन से सुचरित (सत्कर्म) को छोड़कर, इनके विरुद्ध काय-वाक्-मन के दुश्चरित (दुष्कर्म) का सहारा लेकर काम करेंगे। वह क्यों? वह इसलिये कि वे उक्त पापमय दुष्कर्मों में किसी प्रकार का दोष, अपकार या कष्ट नहीं देखते और कुशल धर्मों में नैष्कर्म्यकृत शुद्धता

ति परं सञ्ञापेति; सास्स होति असद्धम्मसञ्ञत्ति। ताय च पन असद्धम्मसञ्ञत्तिया अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। इति पुब्बेव खो पनस्स सुसील्यं [R. 406] पहीनं होति, दुस्सील्यं पच्चुपट्ठितं--अयं च मिच्छादिट्ठि मिच्छासङ्कप्पो मिच्छावाचा अरियानं पच्चनीकता असद्धम्मसञ्ञत्ति अत्तुक्कंसना परवम्भना। एवमस्सिमे अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति मिच्छादिट्ठिपच्चया।

"तत्र, गहपतयो, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति--'सचे खो नत्थि किरिया, एवमयं भवं पुरिसपुग्गलो कायस्स भेदा सोत्थिमत्तानं करिस्सति; सचे [N. 83] खो अत्थि किरिया एवमयं भवं पुरिसपुग्गलो कायस्स भेदा परं मरणा अपाय दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जिस्सति। कामं खो पन माहु किरिया, होतु नेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं; अथ च पनायं भवं पुरिसपुग्गलो दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं गारय्हो--दुस्सीलो पुरिसपुग्गलो मिच्छादिट्ठि अकिरियवादो'ति। सचे खो अत्थेव किरिया एवं, इमस्स भोतो पुरिसपुग्गलस्स उभयत्थ कलिग्गहो–यं च दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं गारय्हो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जिस्सति। एवमस्सायं अपण्णको धम्मो दुस्समत्तो समादिन्नो, एकंसं फरित्वा तिट्ठति, रिञ्चति कुसलं ठानं।

८. "तत्र, गहपतयो, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो--'करोतो कारयतो, छिन्दतो छेदापयतो, पचतो पाचापयतो, सोचयतो सोचापयतो, किलमतो किलमापयतो, फन्दतो फन्दापयतो, पाणमतिपातयतो, अदिन्नं आदियतो,

---

या उनका महत्त्व नहीं देखते। क्रिया (=कर्म) के होते हुए 'क्रिया नहीं है'--ऐसी उनकी दृष्टि बन जाती है; उनकी यह दृष्टि मिथ्यादृष्टि कहलाती है... पूर्ववत्[1]... मिथ्यादृष्टियों में विश्वास रखने के कारण, अनेक पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं।

"गृहपतियो! वहाँ कोई समझदार आदमी यह सोचता है--'यदि क्रिया नहीं है तो इस प्रकार यह विशिष्ट पुरुष इस देहपात के बाद... पूर्ववत्[2]... यह अपर्णक धर्म गलत ढंग से पूरा किया गया है, यों गलत ढंग से पूरा होने के कारण, वह इकतरफा ही कहलायगा, उसमें कुशल धर्मों की पूर्ति का कोई स्थान नहीं रहेगा।

८. "गृहपतियो! और जो उन दोनों प्रकार के श्रमण-ब्राह्मणों में कुछ यह मानते हैं --'(हिंसा) करते-कराते, काटते-कटवाते... पूर्ववत्[3]... पाप का स्पर्श होता ही है। कोई

१-२ द्र०--पृ० ७५१-५२ (वहाँ लिखे 'परलोक नहीं है' के स्थान पर 'क्रिया नहीं है' ऐसा पाठ बना कर पढ़े)। ३. द्र०--पीछे पृ० ७५६

सन्धिं छिन्दन्तो, निल्लोपं हरतो, एकागारिकं करोतो, परिपन्थे तिट्ठतो, परदारं गच्छतो, मुसा भणतो; करोतो करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा पठविया पाणे एकं मंसखलं एकं मसपुञ्ज करेय्य, अत्थि ततोनिदानं पापं, अत्थि पापस्स आगमो। दक्खिणं चे पि गङ्गाय तीर गच्छेय्य [B. 69] हनन्तो घातेन्तो, छिन्दन्तो छेदापेन्तो, पचन्तो पाचेन्तो, अत्थि ततोनिदानं पापं, अत्थि पापस्स आगमो। उत्तरं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य ददन्तो दापेन्तो, यजन्तो यजापेन्तो, अत्थि ततोनिदानं पुञ्ञं, अत्थि पुञ्ञस्स आगमो। दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन अत्थि पुञ्ञं, अत्थि पुञ्ञस्स आगमो'ति तेसमेतं पाटिकङ्खं यमिदं कायदुच्चरितं, वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं। इमे तयो अकुसले धम्मे अभिनिवज्जेत्वा यमिदं कायसुचरितं, वचीसुचरित, मनोसुचरित--इमेतयो कुसले धम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति। तं किस्स हेतु? पस्सन्ति हि ते भोन्तो समणब्राह्मणा अकुसलानं धम्मानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, कुसलानं धम्मानं नेक्खम्मे आनिसंसं वोदानपक्खं। सन्तं येव खो पन किरिय 'अत्थि किरिया' तिस्स दिट्ठि होति; सास्स होति सम्मादिट्ठि। सन्तं येव खो पन किरियं 'अत्थि किरिया' ति सङ्कप्पेति; स्वास्स होति सम्मासङ्कप्पो। सन्तं येव खो पन किरिय 'अत्थि [N. 84] किरिया' ति वाचं भासति; सास्स होति सम्मावाचा। सन्तं येव खो पन किरियं 'अत्थि किरिया' ति आह; ये ते अरहन्तो किरियवादा तेसमय न पच्चनीकं करोति। सन्तं येव खो पन किरियं 'अत्थि किरिया' ति [R.407] परं सञ्ञापेति; सास्स होति सद्धम्मसञ्ञत्ति। ताय च पन सद्धम्मसञ्ञत्तिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। इति पुब्बेव खो पनस्स दुस्सील्यं पहीनं होति, सुसील्यं पच्चुपट्ठितं--अयं च सम्मादिट्ठि सम्मासङ्कप्पो सम्मावाचा अरियानं

गङ्गा के दक्षिण किनारे'''गङ्गा के उत्तर किनारे''' पूर्ववत्[1]''' दान, इन्द्रियनिग्रह, इन्द्रियसंयम, और सत्य बोलने से पुण्य होता ही है, पुण्य का स्पर्श होता ही है'। ऐसा मानने वालों के प्रति यह सम्भावना हो सकती है कि वे काय, वाक् और मन से दुष्चरित (दुष्कर्मों) को छोड़कर, इनके विरुद्ध काय-वाक्-मन से सुचरित कर्मों (सत्कर्म) को अपनाने लगेंगे। वह क्यों? वह इसलिये कि वे उक्त पापमय दुष्कर्मों में आदीनव (दोष), अपकार एवं कष्ट देखते हैं और कुशल धर्मों में नैष्कर्म्यकृत शुद्धता एवं उनका महत्त्व देखते हैं। क्रिया होने के कारण 'क्रिया है' उनकी ऐसी दृष्टि बन जाती

---

१. द्र०-पीछे पृ० ७५६।

अपच्चनीकता सद्धम्मसञ्ञत्ति अनत्तुक्कंसना अपरवम्भना। एवमस्सिमे अनेके कुसला धम्मा सम्भवन्ति सम्मादिट्ठि पच्चया।

"तत्र, गहपतयो, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति--'सचे खो अत्थि किरिया, एवमयं भवं पुरिसपुग्गलो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सति। कामं खो पन माहु किरिया, होतु नेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं; अथ च पनायं भवं पुरिसपुग्गलो दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं पासंसो-सीलवा पुरिसपुग्गलो सम्मादिट्ठि किरियवादो' ति। सचे खो अत्थेव किरिया, एवं इमस्स भोतो पुरिसपुग्गलस्स उभयत्थ कटग्गहो--यं च दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं पासंसो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सति। एवमस्सायं अपण्णको धम्मो सुसमत्तो समादिन्नो, उभयंसं फरित्वा तिट्ठति, रिञ्चति अकुसलं ठानं।

[B. 70] ९. "सन्ति, गहपतयो, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय; अहेतू अप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति। नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; अहेतू अप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ति। नत्थि बलं, नत्थि विरियं, नत्थि पुरिसथामो, नत्थि पुरिसपरक्कमो;

है; उनकी यह दृष्टि सम्यक्दृष्टि कहलाती है...पूर्ववत्[2]...सम्यक्दृष्टियों में विश्वास रखने के कारण उनके अनेक पुण्यमय कुशलधर्म उत्पन्न होते रहते हैं।

"गृहपतियो! वहाँ कोई समझदार आदमी यह सोचता है--'यदि क्रिया है तो इस प्रकार यह विशिष्ट पुरुष, इस देहपात के बाद, सुगतिमय स्वर्ग में...पूर्ववत्...यह अपर्णक धर्म अच्छे ढंग से पूरा किया गया है, यों अच्छे ढंग से पूरा होने के कारण वह दोनों तरफ से पकड़ रखता है, उसमें अकुशल धर्मों की पूर्ति का कोई स्थान नहीं रहेगा।

९. "गृहपतियो! इस संसार में ऐसे भी विद्वान् श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो ऐसा मत और ऐसी धारणा रखने वाले हैं--'प्राणियों के कष्ट (चित्तमल) के उत्पाद का न कोई हेतु है, न कोई निमित्त; बिना हेतु और निमित्त के ही ये चित्तमल उत्पन्न होते रहते हैं। इसी तरह प्राणियों की चित्तविशुद्धि के लिये न कोई हेतु है, भी न कोई निमित्त; वह चित्तविशुद्धि तो प्राणियों को अहेतुक या अनिमित्तक ही होती रहती है। इसी तरह पुरुषों को न बल, न वीर्य, न दृढ़ता, न पराक्रम की ही आवश्यकता है; ये सभी प्राणी, सभी

---

२. द्र० पीछे पृ० ७५१-५२।

सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता सब्बे जीवा अवसा अबला अविरिया नियतिसङ्गतिभावपरिणता छस्वेवाभिजातीसु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती'ति।

"तेसं येव खो, गहपतयो, समणब्राह्मणानं एके समणब्राह्मणा उजुविपच्चनीकवादा। ते एवमाहंसु--'अत्थि हेतु, अत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय; [N. 85] सहेतू सपच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति। अत्थि हेतु, अत्थि पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; सहेतू सप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ति। अत्थि बलं, अत्थि विरियं, अत्थि पुरिसथामो, अत्थि पुरिसपरक्कमो; न सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता सब्बे जीवा अवसा अबला अविरिया नियतिसङ्गतिभावपरिणता छस्वेवाभिजातीसु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती'ति। तं किं मञ्ञथ, गहपतयो, ननुमे समण ब्राह्मणा अञ्ञमञ्ञस्स उजुविपच्चनीकवादा" ति? [R.408]

"एवं भन्ते"।

१०. "तत्र, गहपतयो, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो--'नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय; अहेतू अप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति। नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; अहेतू अप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ति। नत्थि बलं, नत्थि विरियं, नत्थि पुरिसथामो, नत्थि पुरिसपरक्कमो; सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता सब्बे जीवा अवसा अबला अविरिया नियतिसङ्गतिभावपरिणता छस्वेवाभिजातीसु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती'ति तेसमेतं पाटिकङ्खं--यमिदं

सत्त्व, सभी भूत, सभी जीव विवश, निर्बल, सामर्थ्यरहित हो, अपने प्रारब्धवश छहों योनियों (अभिजातयों) में उत्पन्न होते हुए, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं।'

"गृहपतियो! ऐसा मत रखने वाले उन श्रमण-ब्राह्मणों के कुछ विरोधी भी हैं, वे यह कहते हैं--'प्राणियों के चित्तविकार का हेतु भी होता है और निमित्त भी; हेतु या निमित्त के बिना उनको कोई चित्तविकार उत्पन्न नहीं हो पाता। इसी से प्राणियों की चित्तविशुद्धि भी हो पाती है। पुरुषों को बल, वीर्य, दृढ़ता, पराक्रम के सहारे की भी आवश्यकता होती है; वे सभी प्राणी, सभी सत्त्व, सभी भूत, सभी जीव विवश, निर्बल, सामर्थ्यरहित न हो स्वस्वप्रारब्धानुसार छह योनियों में जन्म लेते हुए, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं।' तो क्या मानते हो, गृहपतियो! यह दोनों प्रकार के श्रमण-ब्राह्मण परस्पर विरुद्धमत वाले नहीं हैं?"

"हाँ, भन्ते! ऐसा ही है।"

१०. "गृहपतियो! वहाँ जो श्रमण-ब्राह्मण ऐसे मत तथा ऐसी धारणा वाले हैं--'प्राणियों के चित्तमल के लिये कोई हेतु या निमित्त नहीं है... पूर्ववत्... सुख-दुःख का अनुभव करते हैं'; उनके प्रति यह सम्भावना करनी चाहिये--वे काय, वाक् और

कायसुचरित, वचीसुचरितं, मनोसुचरितं। इमे तयो कुसले धम्मे अभिनिवज्जेत्वा यमिद कायदुच्चरित, वचीदुच्चरितं, मनोदुच्चरितं--इमे तयो अकुसले धम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति। तं किस्स हेतु ? न हि ते भोन्तो समणब्राह्मणा पस्सन्ति अकुसलानं धम्मानं आदीनव ओकारं सङ्किलेसं, कुसलानं धम्मानं नेक्खम्मे आनिसंसं वोदानपक्ख। सन्तं येव खो पन हेतुं 'नत्थि हेतू' तिस्स दिट्ठि होति; सास्स [B. 71] होति मिच्छादिट्ठि। सन्तं येव खो पन हेतुं 'नत्थि हेतू' ति सङ्कप्पेति; स्वास्स होति मिच्छासङ्कप्पो। सन्तं येव खो पन हेतुं 'नत्थि हेतू' ति वाचं भासति; सास्स होति मिच्छावाचा। सन्तं येव खो पन हेतुं 'नत्थि हेतू' ति आह; ये ते अरहन्तो हेतुवादा तेसमयं पच्चनीकं करोति। सन्तं येव खो पन हेतुं 'नत्थि हेतू' ति परं सञ्ञापेति; सास्स होति असद्धम्मसञ्ञत्ति। ताय च पन असद्धम्मसञ्ञत्तिया अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। इति पुब्बेव खो पनस्स सुसील्यं पहीनं [N. 86] होति दुस्सील्यं पच्चुपट्ठितं--अयं च मिच्छादिट्ठि मिच्छासङ्कप्पो मिच्छावाचा अरियानं पच्चनीकता असद्धम्मसञ्ञत्ति अत्तानुक्कंसना परवम्भना। एवमस्सिमे अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति मिच्छादिट्ठिपच्चया।

"तत्र, गहपतयो, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति--'सचे खो नत्थि हेतु, एवमयं भवं पुरिसपुग्गलो कायस्स भेदा परं मरणा सोत्थिमत्तानं करिस्सति; सचे खो अत्थि हेतु, एवमयं भवं पुरिसपुग्गलो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जिस्सति। कामं खो पन माहु हेतु, होतु नेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं; अथ च पनायं भवं पुरिसपुग्गलो

मन से कृत सत्कर्मों (कुशल धर्मों) को छोड़कर, काय-वाक्-मन द्वारा कृत दुष्कर्मों (अकुशल धर्मों) को अपनाने लगेंगे। वह क्यों ? वह इसलिये कि वे श्रमण-ब्राह्मण इन में किसी प्रकार का दोष, अपकार या कष्ट नहीं देखते और कुशल धर्मों में नैष्कर्म्यकृत शुद्धता या उनका महत्त्व नहीं देखते। और हेतु के होते हुए 'हेतु नहीं है'--उनकी ऐसी दृष्टि बन जाती है; उनकी यह दृष्टि मिथ्यादृष्टि होती है ...पूर्ववत्[1]... इन मिथ्यादृष्टियों में विश्वास रखने के कारण, अनेक पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं।

"वहाँ कोई समझदार आदमी यह सोचता है--'यदि हेतु नहीं है तो इस प्रकार यह विशिष्ट पुरुष, इस देहपात के बाद ...पूर्ववत्[2]... कुशल धर्मों की पूर्त्ति का कोई स्थान नहीं रहेगा।

१. द्र० पीछे पृ० ७५१-५२। (वहाँ लिखे 'परलोक नहीं है' के स्थान पर 'हेतु नहीं है'-- ऐसा पाठ बनाकर पढ़े।)

२. द्र० पीछे पृ० ७५२-५३।

दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं गारय्हो--दुस्सीलो पुरिसपुग्गलो मिच्छादिट्ठि अहेतुक- [R. 409]वादो'ति। सचे खो अत्थेव हेतु, एवं इमस्स भोतो पुरिसपुग्गलस्स उभयत्थ कलिग्गहो--यं च दिट्ठेव धम्मे विञ्ञूनं गारय्हो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा अपाय दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जिस्सति। एवमस्सायं अपण्णको धम्मो दुस्समत्तो समादिन्नो, एकंसं फरित्वा तिट्ठति, रिञ्चति कुसल ठानं।

११. "तत्र गहपतयो, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो--'अत्थि हेतु, अत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय; सहेतू सप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति। अत्थि हेतु, अत्थि पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; सहेतू सप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ति। अत्थि बलं, अत्थि विरियं, अत्थि पुरिसथामो, अत्थि पुरिसपरक्कमो; न सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता सब्बे जीवा अवसा अबला अविरिया नियतिसङ्गतिभावपरिणता छस्वेवाभिजातीसु सुखदुक्ख पटिससंवेदेन्ती' ति तेसमेतं पाटिकङ्खं यमिदं कायदुच्चरितं, वचीदुच्चरितं, मनोदुच्चरितं। इमे तयो[B. 72] अकुसले धम्मे अभिनिवज्जेत्वा यमिदं कायसुचरितं, वचीसुचरितं, मनोसुचरितं--इमे तयो कुसले धम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति। त किस्स हेतु? पस्सन्ति हि ते भोन्तो समणब्राह्मणा अकुसलानं धम्मानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं कुसलानं धम्मानं नेक्खम्मे आनिसंसं वोदानपक्ख। सन्त येव खो पन हेतुं 'अत्थि हेतू' तिस्स दिट्ठि होति; सास्स होति सम्मादिट्ठि। [N. 87] सन्तं येव खो पन हेतुं 'अत्थि हेतू' ति सङ्कप्पेति; स्वास्स होति सम्मासङ्कप्पो। सन्तं येव खो पन हेतु 'अत्थि हेतू' ति वाचं भासति; सास्स होति सम्मावाचा। सन्तं येव खो पन हेतुं 'अत्थि हेतू' ति आह; ये ते अरहन्तो हेतुवादा तेसमयं न पच्चनीकं करोति। सन्त येव खो पन हेतुं 'अत्थि हेतू' ति पर सञ्ञापेति,

---

११. गृहपतियो! और उन दोनों प्रकार के श्रमण-ब्राह्मणों में जो यह मानते हैं--'प्राणियों के चित्तविकार का कोई न कोई हेतु या निमित्त अवश्य होता है; हेतु या निमित्त के विना उनको कोई चित्तविकार···पूर्ववत्···छह योनियों में जन्म लेते हुए, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं'; उनके प्रति यह सम्भावना करनी चाहिये--वे काय, वाक् तथा मन से कृत दुष्कर्मों को छोड़, काय-वाक्-मन द्वारा कृत सत्कर्मों को अपनाने लगेंगे। वह क्यों? वह इसलिये कि वे श्रमण-ब्राह्मण इन दुष्कर्मों में आदीनव (दोष), अपकार या कष्ट देखते हैं तथा सत्कर्मों में नैष्कर्म्यकृत शुद्धता एवं उसका महत्त्व भी देखते हैं। और हेतु के होते हुए 'हेतु है'--उनकी ऐसी दृष्टि बन जाती है;

१३. "सन्ति, गहपतयो, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'नत्थि सब्बसो भवनिरोधो' ति। तेसं येव खो, गहपतयो, समणब्राह्मणानं एके समणब्राह्मणा उजुविपच्चनीकवादा। ते एवमाहंसु—'अत्थि सब्बसो भवनिरोधो' [R. 411] ति। त किं मञ्ञथ, गहपतयो, ननुमे समणब्राह्मणा अञ्ञमञ्ञस्स उजुविपच्चनीकवादा" ति?

"एवं, भन्ते"।

"तत्र, गहपतयो, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति—'ये खो ते भोन्तो समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—नत्थि सब्बसो भवनिरोधो ति, इदं मे अदिट्ठं; ये पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—अत्थि सब्बसो भवनिरोधो ति, इदं मे अविदितं। अहं चेव खो पन अजानन्तो अपस्सन्तो एकंसेन आदाय वोहरेय्यं—इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं ति, न मेतं अस्स पतिरूपं। ये खो ते भोन्तो समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—नत्थि सब्बसो भवनिरोधो [B. 74] ति, सचे तेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं, ठानमेतं विज्जति—ये ते देवा अरूपिनो सञ्ञामया अपण्णकं मे तत्रूपपत्ति भविस्सति। ये पन ते [N. 89] भोन्तो समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—अत्थि सब्बसो भव-

---

१३. "गृहपतियो! वहीं कुछ श्रमण-ब्राह्मण इस मत या धारणा को मानने वाले होते हैं—'भवनिरोध (जन्म-मरण का अन्त) सर्वथा नहीं होता'। गृहपतियो! वहीं कुछ श्रमण-ब्राह्मण इस मतवाद के विरुद्धमत वाले भी हैं—'भवनिरोध सर्वथा होता है'। तो क्या मानते हो, गृहपतियो! ये दोनों प्रकार के श्रमण-ब्राह्मण परस्पर विरुद्धमत वाले नहीं हैं?"

"हाँ, भन्ते! ऐसा ही है।"

"गृहपतियो! यहाँ बुद्धिमान् पुरुष यह सोचता है—'इनमें जो श्रमण-ब्राह्मण ऐसी धारणा या ऐसे मत वाले हैं—भवनिरोध सर्वशः (एकान्ततः) नहीं होता, यह मेरा देखा नहीं है; और जो श्रमण-ब्राह्मण ऐसी धारणा या मत वाले हैं—भवनिरोध सर्वथा है, यह मत भी मैं भलीभाँति जान नहीं पाया। अतः यदि मैं बिना जाने, बिना देखे इन दोनों मतों में से किसी एक मत पर आचरण करने लगूँ कि यही ठीक है, दूसरा गलत है तो यह बात मेरे योग्य नहीं होगी। और वे जो श्रमण ब्राह्मण इस वाद तथा धारणा वाले हैं—भवनिरोध सर्वथा नहीं होता, यदि उनकी यह बात सत्य मान ली जाय तो यह सम्भव है कि ये जो रूपी संज्ञामय देव हैं, उनके बीच मेरी बिना द्विविधा (अपर्णक) के उत्पत्ति होगी। और जो वे श्रमण-ब्राह्मण ऐसे वाद या

निरोधो ति, सचे तेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं वचनं, ठानमेतं विज्जति--यं दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायिस्सामि। ये खो ते भोन्तो समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो--नत्थि सब्बसो भवनिरोधो ति, तेसमयं दिट्ठि सारागाय सन्तिके, संयोगाय सन्तिके, अभिनन्दनाय सन्तिके, अज्झोसानाय सन्तिके, उपादानाय सन्तिके। ये पन ते भोन्तो समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—अत्थि सब्बसो भवनिरोधो ति, तेसमयं दिट्ठि असारागाय सन्तिके, असंयोगाय सन्तिके, अनभिनन्दनाय सन्तिके, अनज्झोसानाय सन्तिके, अनुपादानाय सन्तिके' ति। सो इति पटिसङ्खाय भवानं येव निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति।

२. चत्तारो पुग्गला

१४. "चत्तारोमे, गहपतयो, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, गहपतयो, एकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। इध, गहपतयो, एकच्चो पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। इध, गहपतयो, एकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो च होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। इध, गहपतयो, एकच्चो पुग्गलो नेवत्तन्तपो होति नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न

धारणा वाले हैं--भवनिरोध सर्वथा होता हैं, यदि उनकी यह बात सत्य मान ली जाय तो यह सम्भव है कि मैं इसी जन्म में परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाऊँ। वे जो श्रमण-ब्राह्मण ऐसी धारणा वाले हैं--भवनिरोध सर्वथा नहीं होता उनकी यह दृष्टि सरागता, संयोग (बन्धन), अभिनन्दन (लालसा), अध्यवसान एवं उपादान (ग्रहण) के नजदीक पहुँचाने वाली है। और जो श्रमण-ब्राह्मण इस मत या धारणा वाले हैं--भवनिरोध सर्वथा होता है, उनकी यह दृष्टि (धारणा) संसार के प्रति वैराग्य, दूर रहने, उपेक्षा, अनध्यवसाय एवं अनुपादान (अग्रहण) की ओर ले जाने वाली है।' वह यह सोचकर, जन्म-मरण के प्रति वैराग्य एवं निरोध के लिए प्रयत्नशील होता है।

२. चार प्रकार के पुद्गल

१४. "गृहपतियो! इस संसार में चार प्रकार के पुद्गल देखे जाते हैं। कौन से चार? गृहपतियो! (१) यहाँ पुद्गलों का एक ऐसा समूह होता है, जो अपनी प्रत्येक क्रिया से अपने आपको कष्ट देता है, अपने आपको दुःखी रखता है··· पूर्ववत्[१]··· जो अपनी क्रियाओं से न स्वयं को कष्ट देता है, न उसकी क्रियाओं से

---

१ द्र०--पीछे पृ० ६४२-४३।

परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो; सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मेनिच्छातो [R. 412] निब्बुतो सीतीभूतो सुखपटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति।

१५. "कतमो च, गहपतयो, पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो? इध, गहपतयो, एकच्चो पुग्गलो अचेलको होति मुत्ताचारो हत्थापलेखनो…पे०…इति एवरूपं अनेकविहितं कायस्स आतापनपरितापनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। अयं वुच्चति, गहपतयो, पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

"कतमो च, गहपतयो, पुग्गलो परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो इध, ? [B. 75] गहपतयो, एकच्चो पुग्गलो ओरब्भिको होति सूकरिको…पे०…ये [N. 90] वा पनञ्ञे पि केचि कुरूरकम्मन्ता। अयं वुच्चति, गहपतयो, पुग्गलो परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

"कतमो च, गहपतयो, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो? इध, गहपतयो, एकच्चो पुग्गलो

दूसरे लोग ही कोई कष्ट अनुभव करते हैं—यह 'न आत्मतप न परंतप' कहलाता है। यह चतुर्थ प्रकार का पुद्गल इसी जन्म में शान्त, सुखी, शीतलस्वभाव, सुखानुभवी एवं ब्रह्मभूत आत्मा से साधनारत रहता है।

१५. "गृहपतियो! कौन सा पुद्गल 'आत्मतप और आत्मताप में ही लगा' होता है? गृहपतियो! यहाँ कोई पुद्गल अचेलक (=नग्न), मुक्ताचारी… पूर्ववत्[1]…ऐसे अनेक प्रकार से काया को कष्ट देने वाले आताप-संताप के व्यापार में लगा हुआ साधना करता है। भिक्षुओ! यह 'आत्मतप' कहलाता है, जो कि अपने को कष्ट देने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं पाता।

"गृहपतियो! और कौन सा पुद्गल 'परंतप' कहलाता है, जो अपने कार्यों से दूसरों को कष्ट देने में ही लगा रहता है? गृहपतियो! यहाँ कोई पुद्गल अपने कर्तव्य के रूप में क्रूर-कर्म, जैसे—भेड़…पूर्ववत्[2]…करना स्वीकार कर लेता है और इन्हीं में अपना मन लगाये रखता है। गृहपतियो! वह पुद्गल 'परंतप' कहलाता है…।

"गृहपतियो! और कौन सा पुद्गल है, जो 'आत्मताप के साथ-साथ परताप' में भी सुख का अनुभव करता हो? गृहपतियो! यहाँ कोई राजा या माना हुआ

---

१. द्र०—पीछे पृ० ४५३ (३६. महासच्चकसुत्त) दूसरा भाग।
२. द्र०—पीछे पृ० ६४६ (१. कन्दरकसुत्त)।

राजा वा होति खत्तियो मुद्धावसित्तो…पे०…ते पि दण्डतज्जिता भयतज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोन्ति। अयं वुच्चति, गहपतयो, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

"कतमो च, गहपतयो, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो; सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखपटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति? इध, गहपतयो, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो…पे०…सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं…पे०…ततियं झानं…पे०…चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो…पे०…इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते [R. 413] अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपात-

---

धनाढ्य …पूर्ववत्[1]… यह आज्ञा सुनकर, भय से काँपते, रोते-कलपते यह कार्य पूर्ण करते हैं। गृहपतियो! ऐसा पुद्‌गल 'आत्मतप और परंतप' कहलाता है।

"गृहपतियो! और कौन सा पुद्‌गल 'न आत्मतप न परंतप' कहलाता है…? गृहपतियो! यहाँ लोक में तथागत उत्पन्न होते हैं…पूर्ववत्[2]…वह पाँच नीवरणों को चित्त से हटाकर चित्त के अवशिष्ट उपक्लेशों को जानकर…प्रथम ध्यान… द्वितीय ध्यान…तृतीय ध्यान…चतुर्थ ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है।

"यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध, पर्यवदात, मलरहित, विकाररहित, मृदु, हल्का… एक जन्म…पूर्ववत्…अनुस्मरण करता है। यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध, पर्यवदात…

---

१. द्र०—पीछे पृ० ६४७।
२. द्र० पीछे पृ० ५४८-४९-५०।

ञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते [B. 76] दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। सो एवं समाहिते चित्ते [N. 91] परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति···पे०···अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो, एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवापि चित्तं विमुच्चति अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयं वुच्चति, गहपतयो, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोग मनुयुत्तो; सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखपटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरती" ति।

१६. एवं वुत्ते, सालेय्यका ब्राह्मणगहपतिका भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य 'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति; एवमेवं भोता गोतमेन

हो जाने पर···प्राणियों के विषय में भी जानकारी पा लेता है। यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध, पर्यवदात्···क्षयज्ञानहेतु स्वचित्त को झुकाता है। तब वह 'यह दुःख है', 'यह दुःखसमुदय है···पूर्ववत्···इन बातों को यथातथ रूप में जान लेता है। गृहपतियो! ऐसा पुद्गल 'न आत्मतप न परंतप' कहलाता है। यह पुद्गल इसी जन्म में शान्त, सुखी, शीतल-स्वभाव, सुखानुभवी एवं ब्रह्मभूत आत्मा से साधनारत रहता है।"

१६. ऐसा कहे जाने पर शालेयक ब्राह्मणगृहपति भगवान् से यों बोले--"आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे, ढके को आवरणरहित कर दे, भूले-भटके को सही रास्ता बता दे, अँधेरे में कोई तैलभरा दीपक लेकर खड़ा हो जाय, जिससे कि आँखों वाले रूपों (=मार्गस्थ वस्तुओं) को देख सकें; ऐसे ही आप गौतम ने अनेक तरह से धर्म का प्रवचन किया। ये हम

अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गते" ति।

गहपतिवग्गो निट्ठितो पठमो।

तस्सुद्दानं

कन्दर-नागर-सेखवतो च
पोतलियो पुन जीवकभच्चो।
उपालिदमथो कुक्कुरअभयो
बहुवेदनीयापण्णकतो दसमो॥

उदान

आप गौतम को, आपके धर्म एवं सङ्घ की शरण में जाते हैं। आप गौतम आज से हमें जीवनपर्यन्त अपना अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।

अपण्णकसुत्त समाप्त॥

गहपतिवग्ग समाप्त॥

इस वर्ग में दश सूत्रों का व्याख्यान है--१. कन्दरकसुत्त, २. अट्ठकनागरसुत्त, ३. सेखसुत्त, ४. पोतलियसुत्त, ५. जीवकसुत्त, ६. उपालिसुत्त, ७. कुक्कुरवतिकसुत्त, ८. अभयराजकुमारसुत्त, ९. बहुवेदनीयसुत्त, एवं १०. अपण्णकसुत्त।

-:०:-

११. अम्बलट्ठिकराहुलोवादसुत्तं

[N. 92, B. 77, R. 414] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा राहुलो अम्बलट्ठिकायं विहरति। अथ खो भगवा सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन अम्बलट्ठिका येनायस्मा राहुलो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो आयस्मा राहुलो भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान आसनं पञ्ञापेसि, उदकं च पादानं। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज पादे पक्खालेसि। आयस्मा पि खो राहुलो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

१. तुच्छउदकाधानूपमो मुसावादी

२. अथ खो भगवा परित्तं उदकावसेसं उदकाधाने ठपेत्वा आयस्मन्तं राहुलं आमन्तेसि--"पस्ससि नो त्वं, राहुल, इमं परित्तं उदकावसेसं उदकाधाने ठपितं" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"एवं परित्तं खो, राहुल, तेसं सामञ्ञं येसं नत्थि सम्पजानमुसावादे लज्जा" ति।

---

११. अम्बलट्ठिकराहुलाववादसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधना हेतु विराजमान थे। उसी समय आयुष्मान् राहुल (भी) अम्बलट्ठिका (ग्राम) में साधना कर रहे थे। तब भगवान् किसी दिन सायंकाल ध्यान-साधना से उठ, अम्बलट्ठिका में, जहाँ आयुष्मान् राहुल साधना कर रहे थे, पधारे। आयुष्मान् राहुल ने भगवान् को, दूर से ही, आते हुए देख लिया। देखकर आसन बिछा दिया और पैर धोने के लिये जल रख दिया। भगवान् बिछे आसन पर विराजे। विराजकर, उन्होंने पैर धोये। आयुष्मान् राहुल भी भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

१. असत्यवादी, अनुपयोगी जल रखने के स्थान की तरह

२. तब भगवान ने पैर धोने से बचे जल को उदकाधान (=लोटे) में ही छोड़कर आयुष्मान् राहुल से कहा--"राहुल! तुम इस उदकाधान में रखे व्यर्थ जल को देख रहे हो न!"

"हाँ! भन्ते।"

"राहुल! यही स्थिति उन श्रमणभाव छोड़े भिक्षुओं की होती है, जिन्हें जानते-बूझते असत्यभाषण में कोई लज्जा या संकोच नहीं है"। (१)

अथ खो भगवा परित्तं उदकावसेसं छड्डेत्वा आयस्मन्तं राहुलं आमन्तेसि--"पस्ससि नो त्वं, राहुल, परित्तं उदकावसेसं छड्डितं" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"एवं छड्डितं खो, राहुल, तेसं सामञ्ञं येसं नत्थि सम्पजानमुसावादे लज्जा" ति।

अथ खो भगवा तं उदकाधानं निक्कुज्जित्वा आयस्मन्तं राहुलं आमन्तेसि--"पस्ससि नो त्वं, राहुल, इमं उदकाधानं निक्कुज्जितं" ति ?

"एवं, भन्ते"। [N. 93]

"एवं निक्कुज्जितं खो, राहुल, तेसं सामञ्ञं येसं नत्थि सम्पजानमुसावादे लज्जा" ति।

अथ खो भगवा तं उदकाधानं उक्कुज्जित्वा आयस्मन्तं राहुलं आमन्तेसि--"पस्ससि नो त्वं, राहुल, इमं उदकाधानं रित्तं तुच्छं" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"एवं रित्तं तुच्छं खो, राहुल, तेसं सामञ्ञं येसं नत्थि सम्पजानमुसावादे लज्जा ति। सेय्यथापि, राहुल, रञ्ञो नागो ईसादन्तो उरूळ्हवा अभिजातो

तब भगवान् ने लोटे में बचे उस थोड़े से जल को फेंककर, आयुष्मान् राहुल से कहा--"राहुल ! इस फेंके हुए जल को देख रहे हो न ?"

"हाँ, भन्ते।"

"राहुल ! इसी तरह उन भिक्षुओं का छोड़ा हुआ श्रामण्यभाव (साधुता) भी ऐसा ही समझना चाहिए, जिन्हें जानते-बूझते झूठ बोलने में लज्जा-संकोच न हो।" (२)

इसके बाद भगवान् ने उस जलपात्र को औंधा कर, आयुष्मान् राहुल को दिखाते हुए पूछा--"राहुल ! इस औंधा किये जलपात्र को देख रहे हो न ?"

"हाँ, भन्ते ! देख रहा हूँ।"

"राहुल ! इसी तरह उन भिक्षुओं का श्रामण्यभाव भी औंधा हो चुका है, जिन्हें जानते-बूझते झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती।" (३)

तब फिर (अन्त में) भगवान् ने उस जलपात्र को सीधा कर, आयुष्मान् राहुल से पूछा--"राहुल ! इस खाली जलपात्र को देखते हो ?"

"हाँ, भन्ते ! देखता हूँ।"

"इसी तरह, राहुल ! उन भिक्षुओं का श्रामण्यभाव भी ऐसा खाली और तुच्छ (बेकार) हो चुका होता है, जिन्हें जानते-बूझते झूठ बोलने में लज्जा या संकोच न

सङ्गामावचरो सङ्गामगतो पुरिमेहि पि पादेहि कम्मं करोति, पच्छिमेहि पि पादेहि, कम्म करोति, पुरिमेन पि कायेन कम्मं करोति, पच्छिमेन पि कायेन कम्मं करोति, सासेन पि कम्मं करोति, कण्णेहि पि कम्मं [B 78] करोति, दन्तेहि पि कम्मं करोति, नङ्गुट्ठेन पि कम्मं करोति; [R. 415] रक्खेतेव सोण्डं। तत्थ हत्थारोहस्स एवं होति--'अयं खो रञ्ञो नागो ईसादन्तो उरूळ्हवा अभिजातो सङ्गामावचरो सङ्गामगतो पुरिमेहि पि पादेहि कम्मं करोति, पच्छिमेहि पि पादेहि कम्मं करोति···पे०··· नङ्गुट्ठेन पि कम्मं करोति; रक्खेतेव सोण्डं। अपरिच्चत्तं खो रञ्ञो नागस्स जीवित' ति। यतो खो, राहुल, रञ्ञो नागो ईसादन्तो उरूळ्हवा अभिजातो सङ्गामावचरो सङ्गामगतो पुरिमेहि पादेहि कम्मं करोति' पच्छिमेहि पि कम्मं करोति···पे०···नङ्गुट्ठेन पि कम्मं करोति, सोण्डाय पि कम्मं करोति, तत्थ हत्थारोहस्स एवं होति--'अयं खो रञ्ञो नागो ईसादन्तो उरूळ्हवा अभिजातो सङ्गामावचरो सङ्गामगतो पुरिमेहि पि पादेहि कम्मं करोति, पच्छिमेहि पि पादेहि कम्मं करोति, पुरिमेन पि कायेन कम्मं करोति, पच्छिमेन पि कायेन कम्मं करोति, सीसेन पि कम्म करोति, कण्णेहि पि कम्मं करोति, दन्तेहि पि कम्मं करोति, नङ्गुट्ठेन पि कम्मं करोति, सोण्डाय पि कम्मं करोति। परिच्चत्तं खो रञ्ञो नागस्स जीवितं। नत्थि दानि किञ्चि रञ्ञो नागस्स अकरणीयं'

हो। राहुल ! जैसे कोई राजा का हाथी हलदण्ड के समान लम्बे दाँतों वाला, अच्छी काठी वाला (सवारी करने योग्य), कुलीन, युद्ध के दाँव-पेंच को समझने वाला हो वह युद्धभूमि में जाने पर, अपने अगले पैरों से भी काम करता है और पिछले पैरों से भी, अपने शरीर के अगले भाग से भी काम करता है और पिछले भाग से भी, शिर से भी, कान से भी, दाँत से भी, पूँछ से भी काम करता है; इस तरह (इन सब से) अपनी सूँड़ की रक्षा करता रहता है। उस समय महावत के मन में यह होता है--'यह राजा का हाथी जो हलदण्ड के समान लम्बे दाँत वाला··· पूर्ववत्···सूँड की रक्षा करता रहता है। राजा के इस हाथी का जीवन अविश्वसनीय है'। लेकिन यदि राहुल ! राजा का वह हाथी···पूँछ से भी काम करता है और सूँड से भी काम करता है; वहाँ महावत के मन में यह होता है--'यह राजा का हाथी··· सूँड से भी काम करता है, अतः इसका जीवन विश्वसनीय है। अब इस राजा के हाथी का कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है'। इसी तरह, राहुल ! जिसको जहाँ कहीं भी

ति। एवमेव खो, राहुल, यस्स कस्सचि सम्पजानमुसावादे नत्थि [N. 94] लज्जा, नाहं तस्स किञ्चि पापं अकरणीयं ति वदामि। तस्मातिह ते, राहुल, 'हस्सा पि न मुसा भणिस्सामी' ति—एवं हि ते, राहुल, सिक्खितब्बं।

२. पच्चवेक्खित्वा कम्मं कातब्बं

३. "तं किं मञ्ञसि, राहुल, किमत्थियो आदासो" ति ?

"पच्चवेक्खणत्थो, भन्ते" ति।

"एवमेव खो, राहुल, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा कायेन कम्मं कातब्बं, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा वाचाय कम्मं कातब्बं, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा मनसा कम्मं कातब्बं। यदेव त्वं, राहुल, कायेन कम्मं कत्तुकामो अहोसि तदेव ते कायकम्मं पच्चवेक्खितब्बं--'यं नु खो अहं इदं कायेन कम्मं कत्तुकामो इदं मे कायकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, परब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, उभयब्याबाधाय पि संवत्तेय्य--अकुसलं इदं कायकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति ? सचे त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि--'यं खो अहं इदं कायेन कम्मं कत्तकामो इदं मे कायकम्मं अत्तब्याबाधाय [B. 79] पि संवत्तेय्य, परब्याबाधाय पि सवत्तेय्य, उभयब्याबाधाय पि संवत्तेय्य--

---

जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा का अनुभव नहीं होता, उसके लिये कोई भी पाप (अकुशल) कर्म अकरणीय नहीं रह जाता--ऐसा मेरा मानना है। अतः राहुल ! तुम्हें यहाँ यह शिक्षा लेनी चाहिये--'हास्य (हँसी-मजाक) में भी असत्य नहीं बोलूँगा'।

२. सोच-समझकर कर्म करना चाहिये

३. "तो तुम क्या मानते हो, राहुल ! कि दर्पण (आदास=आदर्श) किस काम में आता है ?"

"भन्ते ! (अपना चेहरा) देखने के काम आता है।"

"इसी तरह, राहुल ! देख-समझकर शरीर से कर्म करना चाहिये; सोच-समझकर वाणी से कर्म करना चाहिये, सोच-समझकर मन से भी कर्म करना चाहिये। राहुल ! यहाँ तुम शरीर से जो भी कर्म करना चाहो, उसके विषय में पहले यह सोच लो कि 'कहीं यह मेरे द्वारा किये जाने वाला कार्यकर्म अपने लिये, दूसरों के लिये या दोनों ही के लिये दुःखोत्पादक तो नहीं हो जायगा; क्योंकि यह पापकर्म करने में भी कष्टकर है और इसका परिणाम भी कष्टप्रद ही होगा !', यदि राहुल ! तूँ इस तरह समीक्षा करते हुए, उसके बारे में यह जान ले—'यह मेरा कायकर्म, जिसे मैं करना चाहता हूँ, अपने लिये...परिणाम भी कष्टप्रद ही है', तो राहुल ! शरीर से ऐसा कर्म, सामर्थ्य रहते, नहीं करना चाहिये। और यदि राहुल ! इस कायकर्म के बारे में, जिसे तुम

[R. 416] अकुसलं इदं कायकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति, एवरूपं ते, राहुल, कायेन कम्मं ससक्कं न करणीयं। सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि--'यं खो अहं इदं कायेन कम्मं कत्तुकामो इदं मे कायकम्मं नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, न परब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तेय्य—कुसलं इदं कायकम्मं सुखुद्रयं सुखविपाकं' ति, एवरूपं ते, राहुल, कायेन कम्मं करणीयं।

"करोन्तेन पि ते, राहुल, कायेन कम्मं तदेव ते कायकम्मं पच्चवेक्खितब्बं—'यं नु खो अहं इदं कायेन कम्मं करोमि इदं मे कायकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति--अकुसलं इदं कायकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति ? सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि--'यं खो अहं इदं कायेन कम्म करोमि इदं मे कायकम्मं [N. 95] अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि सवत्तति--अकुसलं इदं कायकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति, पटिसंहरेय्यासि त्वं, राहुल, एवरूपं कायकम्मं। सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि--'यं खो अह इद कायेन कम्मं करोमि इदं मे कायकम्मं नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, न परब्याबाधाय पि संवत्तति, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तति--कुसल इदं कायकम्मं सुखद्रयं सुखविपाकं' ति, अनुपदज्जेयासि त्वं, राहुल, एवरूप कायकम्मं।

करना चाहते हो, सोचते-सोचते तुम्हें यह समझ में आ जाय कि 'मेरा यह कायकर्म··· न अपने लिये, न दूसरों के लिये, न दोनों के लिये कष्टप्रद है--क्योंकि यह कुशल कर्म करने में भी सुखकर है और इसका परिणाम भी सुखप्रद ही है', तो राहुल ! शरीर से ऐसा कर्म (अवश्य) करना चाहिये। (१)

"राहुल ! और कायकर्म करते समय भी तुम्हें यह सोचना चाहिए—'क्या मेरे द्वारा किया जा रहा, यह कायकर्म अपने लिये ··परिणाम में भी कष्टप्रद है ?' यदि राहुल ! तूँ इस तरह समीक्षा करते हुए, उसके बारे में यह जान ले—'मेरे द्वारा किया जा रहा है यह कायकर्म···परिणाम भी कष्टप्रद ही है', तो राहुल ! तुझे शरीर से ऐसा कर्म छोड़ देना चाहिये। और यदि राहुल ! इस कायकर्म के बारे में···यह समझ आ जाय—'मेरे द्वारा किया जा रहा यह कायकर्म···न अपने लिये, न दूसरों के लिये··· परिणाम भी सुखप्रद ही है', तो राहुल ! शरीर से ऐसा कर्म बार-बार करना चाहिये। (२)

"कत्वा पि ते, राहुल, कायेन कम्मं तदेव ते कायकम्मं पच्चवेक्खितब्बं--'यं नु खो अहं इदं कायेन कम्मं अकासिं, इदं मे कायकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति--अकुसलं इदं कायकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति ? सचे खो त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि--'यं खो अहं इदं कायेन कम्मं अकासिं इदं मे कायकम्मं अत्तब्याबाधाय पि सवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति--अकुसलं इदं कायकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति, एवरूपं ते, राहुल, कायकम्मं सत्थरि वा विञ्ञूसु वा सब्रह्मचारीसुदेसेतब्बं, विवरितब्बं, [B. 80] उत्तानीकातब्ब; देसेत्वा विवरित्वा उत्तानीकत्वा आयतिं संवरं आपज्जितब्बं। सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि--'यं खो [R.417] अहं इदं कायेन कम्मं अकासिं इदं मे कायकम्मं नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, न परब्याबाधाय पि संवत्तति, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तति--कुसलं इदं कायकम्मं सुखुद्रयं सुखविपाकं' ति, तेनेव त्वं, राहुल, पीतिपामोज्जेन विहरेय्यासि अहोरत्तानुसिक्खी कुसलेसु धम्मेसु। (२)

४. "यदेव त्वं, राहुल, वाचाय कम्मं कत्तुकामो अहोसि तदेव ते वचीकम्मं पच्चवेक्खितब्ब--'यं नु खो अहं इदं वाचाय कम्मं कत्तुकामो इदं मे वचीकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, परब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, उभयब्याबाधाय पि सवत्तेय्य--अकुसलं इदं वचीकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति ? सचे त्वं, राहुल,

---

"और इसी तरह, राहुल ! वह कायकर्म करने बाद भी, उसके बारे में तुझे यों सोचना चाहिये—'क्या मेरे द्वारा किया गया यह कायकर्म अपने लिये...कष्टप्रद ही है ?' यदि राहुल ! तू इस तरह सोचते-सोचते उसके बारे में यह जान ले—'यह मेरे द्वारा किया गया कायकर्म अपने लिए...कष्टप्रद ही है', तो राहुल ! तुझे अपने ऐसे कायकर्मों को अपने शास्ता के सामने, या विद्वानों के सामने या अपने साथी भिक्षुओं के सामने कह देना चाहिये, विस्तार से बतादेना चाहिये या इसका खुलासा कर देना चाहिये; यह सब करके भविष्य में उन पर संयम करना चाहिये। और यदि राहुल ! इस कायकर्म के बारे में... यह समझ ले—'मेरे द्वारा किया गया यह कायकर्म न अपने लिये...परिणाम में भी सुखप्रद ही है' तो राहुल ! ऐसे ही कर्म से तू सुख और आनन्द पा सकेगा; अतः दिन-रात ऐसे कुशल कर्म करने की चेष्टा करनी चाहिये। (३)

४. "राहुल ! यहाँ तू वाणी से भी जो कर्म करना चाहे, उसके विषय में पहले यह सोच ले कि 'क्या यह मेरे द्वारा किया जाने वाला वाक्कर्म अपने लिये...परिणाम भी

[N. 96] पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि—'यं खो अहं इदं वाचाय कम्मं कत्तुकामो इद मे वचीकम्मं अत्तयाबाधाय पि संवत्तेय्य, परब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, उभयब्याबाधाय पि संवत्तेय्य—अकुसलं इदं वचीकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति, एवरूपं ते, राहुल, वाचाय कम्मं ससक्कं न करणीयं। सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि—'यं खो अहं इदं वाचाय कम्मं कत्तुकामो इदं मे वचीकम्मं नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, न परब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तेय्य—कुसलं इदं वचीकम्मं सुखुद्रयं सुखविपाकं' ति, एवरूपं ते, राहुल, वाचाय कम्मं करणीयं। (१)

"करोन्तेन पि, राहुल, वाचाय कम्मं तदेव ते वचीकम्मं पच्चवेक्खितब्बं—'यं नु खो अहं इदं वाचाय कम्मं करोमि इदं मे वचीकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति—अकुसलं इदं वचीकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति? सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि—'यं खो अहं इदं वाचाय कम्मं करोमि इदं मे वचीकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति—अकुसल इदं वचीकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति, पटिसंहरेय्यासि त्वं, राहुल, एवरूपं वचीकम्मं। सचे पन त्व, राहुल, पच्च-[B. 81] वेक्खमानो एव जानेय्यासि—'य खो अहं इदं वाचाय कम्म करोमि [R.418] इदं मे वचीकम्मं नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, न परब्याबाधाय

कष्टप्रद ही होगा'? यदि राहुल! तूं इस तरह समीक्षा करते हुए, उसके बारे में यह जान ले—'मेरा यह वाक्कर्म···अपने लिये···परिणाम भी कष्टप्रद ही होगा,' तो राहुल! वाणी से ऐसा कर्म, सामर्थ्य रहते, नहीं करना चाहिये। और यदि राहुल! इस वाक्कर्म के, बारे में तूँ जिसे करना चाहता है, सोचते-सोचते तुझे यह समझ में आ जाय कि 'मेरा यह वाक्कर्म···न अपने लिये···परिणाम भी सुखप्रद ही होगा', तो राहुल! शरीर से ऐसा कर्म बार-बार करना चाहिये। (१)

"राहुल! और वाक्कर्म करते समय भी तुम्हें यह सोचना चाहिये—'क्या यह मेरे द्वारा किया जा रहा वाक्कर्म अपने लिये···परिणाम भी कष्टप्रद ही है? यदि राहुल! तूँ इस तरह समीक्षा करते हुए, उसके बारे में यह जान ले—'मेरे द्वारा किया जा रहा यह वाक्कर्म···परिणाम भी कष्टप्रद ही है', तो राहुल! तुझे वाणी से ऐसा कर्म छोड़ देना चाहिये। और यदि राहुल! इस वाक्कर्म के बारे में तुझे यह

पि संवत्तति, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तति—कुसलं इदं वचीकम्मं सुखुद्रयं सुखविपाक' ति, अनुपदज्जेय्यासि, त्वं राहुल, एवरूप वचीकम्मं। (२)

"कत्वा पि ते, राहुल, वाचाय कम्मं तदेव ते वचीकम्मं पच्चवेक्खितब्बं—'यं नु खो अहं इद वाचाय कम्मं अकासिं इदं मे वचीकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि सवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति, अकुसलं इद वचीकम्म दुक्खुद्रय दुक्खविपाकं' ति ? सचे खो त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि—'य खो अह इदं वाचाय कम्म अकासिं इदं मे वचीकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि सवत्तति, [N. 97] उभयब्याबाधाय पि सवत्तति—अकुसलं इद वचीकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति, एवरूप ते, राहुल, वचीकम्म सत्थरि वा विञ्ञूसु वा सब्रह्मचारीसु देसेतब्बं, विवरितब्ब, उत्तानीकातब्बं; देसेत्वा विवरित्वा उत्तानीकत्वा आयतिं संवरं आपज्जितब्बं। सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि—'यं खो अह इद वाचाय कम्मं अकासिं इदं मे वचीकम्मं नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, न परब्याबाधाय पि संवत्तति, न उभयब्याबाधाय पि सवत्तति—कुसलं इदं वचीकम्मं सुखुद्रयं सुखविपाकं' ति, तेनेव त्वं, राहुल, पीतिपामोज्जेन विहरेय्यासि अहोरत्तानुसिक्खी कुसलेसु धम्मेसु। (३)

५ "यदेव त्वं, राहुल, मनसा कम्मं कत्तुकामो अहोसि तदेव ते मनोकम्मं पच्चवेक्खितब्बं—'यं नु खो अहं इदं मनसा कम्मं कत्तुकामो इदं मे मनोकम्मं

समझ आ जाय—'मेरे द्वारा किया जा रहा यह वाक्कर्म न अपने लिये···परिणाम भी सुखद ही है' तो राहुल! वाणी से ऐसा कर्म बार-बार करना चाहिये। (२)

"और इसी तरह, राहुल! वह वाक्कर्म करने के बाद भी, उसके बारे में तुम्हें यों सोचना चाहिये—'क्या यह मेरे द्वारा किया गया, वाक्कर्म अपने लिये···कष्टप्रद है?' यदि तू राहुल! इस तरह सोचते-सोचते उसके बारे में यह जान ले—'यह मेरे द्वारा किया गया वाक्कर्म अपने लिये···कष्टप्रद ही है' तो राहुल! तुम्हें अपने ऐसे वाक्कर्मों को अपने शास्ता के सामने या विद्वानों को···भविष्य में उनपर संयम करना चाहिये। और यदि राहुल! इस वाक्कर्म के बारे में···यह समझ ले—'मेरे द्वारा किया गया यह वाक्कर्म न अपने लिये···परिणाम में भी सुखप्रद ही है' तो राहुल! तू ऐसे ही कर्म से सुख और आनन्द पा सकेगा; अतः तुझे दिन-रात ऐसे कुशल कर्म करने की चेष्टा करनी चाहिये। (३)

५. "राहुल! यहाँ तूँ मन से जो भी कर्म करना चाहे, उसके विषय में पहले यह सोचना चाहिये—'क्या यह मेरे द्वारा किया जानेवाला मनःकर्म अपने लिये···परिणाम

अत्तब्याबाधाय वि संवत्तेय्य, परब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, उभयब्याबाधाय पि संवत्तेय्य—अकुसलं इदं मनोकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति? सचे त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि—'यं खो अहं इदं मनसा कम्मं कत्तुकामो इद मे मनोकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, परब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, उभयब्याबाधाय पि संवत्तेय्य—अकुसलं इदं मनोकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति, एवरूपं ते, राहुल, मनसा कम्मं ससक्कं न करणीयं। सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि—'यं खो अहं इदं मनसा [B. 82] कम्मं कत्तुकामो इदं मे मनोकम्मं नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, न परब्याबाधाय पि संवत्तेय्य, न उभयब्याबाधाय पि सवत्तेय्य—कुसलं इदं [R. 419] मनोकम्मं सुखुद्रयं सुखविपाकं' ति, एवरूपं ते, राहुल, मनसा कम्मं करणीयं।

"करोन्तेन पि ते, राहुल, मनसा कम्मं तदेव ते मनोकम्मं पच्चवेक्खितब्बं—'यं नु खो अहं इदं मनसा कम्मं करोमि इद मे मनोकम्मं अत्तब्याबाधाय पि सवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति—अकुसल इदं मनोकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति? सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो [N. 98] एवं जानेय्यासि—'यं खो अहं इदं मनसा कम्मं करोमि इदं मे मनोकम्मं अत्तब्याबाधाय पि सवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति—अकुसलं इदं मनोकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति, पटिसंहरेय्यासि त्वं, राहुल, एवरूप मनोकम्मं। सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्ख-

---

भी कष्टप्रद ही होगा?' यदि राहुल। तूँ इस तरह सोचते-सोचते यह जान ले—'मेरा यह मनःकर्म...अपने लिये...परिणाम भी कष्टप्रद ही है', तो राहुल! मन से ऐसा कर्म, सामर्थ्य रहते, नहीं करना चाहिये! और यदि राहुल! इस मनःकर्म के बारे में, जिसे तू करना चाहता है, सोचते-सोचते तुझे यह समझ मेंआ जाय कि 'मेरे द्वारा किया जाने वाला यह मनःकर्म न अपने लिये...परिणाम भी सुखप्रद है', तो राहुल! मन से ऐसा कर्म बार-बार करना चाहिये। (१)

"और राहुल! मनःकर्म करते समय भी तुझे यह सोचना चाहिये—'क्या यह मेरे द्वारा किया जा रहा मनःकर्म अपने लिये...परिणाम भी कष्टप्रद है?' यदि राहुल! तूँ इस तरह सोचते-सोचते उसके बारे में यह जान ले—'मेरे द्वारा किया जा रहा यह मनःकर्म...परिणाम भी कष्टप्रद ही है', तो राहुल! तुझे मन से ऐसा कर्म छोड़ देना चाहिए। और यदि राहुल! इस मनःकर्म के बारे में यह समझ आ

मानो एवं जानेय्यासि—'यं खो अहं इदं मनसा कम्मं करोमि इदं मे मनोकम्मं नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, न परब्याबाधाय पि संवत्तति, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तति—कुसलं इदं मनोकम्मं सुखुद्रयं सुखविपाकं' ति, अनुपदज्जेय्यासि त्वं, राहुल, एवरूपं मनोकम्मं।

"कत्वा पि ते, राहुल, मनसा कम्मं तदेव ते मनोकम्मं पच्चवेक्खितब्बं—'यं नु खो अहं इदं मनसा कम्मं अकासि इदं मे मनोकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति—अकुसल इदं मनोकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति? सचे खो त्वं राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि—'यं खो अहं इद मनसा कम्म अकासि इदं मे मनोकम्मं अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति—अकुसल इद मनोकम्मं दुक्खुद्रयं दुक्खविपाकं' ति, एवरूपं पन ते, राहुल, मनोकम्मं अट्टीयितब्बं हरायितब्बं जिगुच्छितब्बं; अट्टीयित्वा हरायित्वा जिगुच्छित्वा आयतिं संवरं आपज्जितब्बं। सचे पन त्वं, राहुल, पच्चवेक्खमानो एवं जानेय्यासि—'यं खो अहं इदं [B. 83] मनसा कम्मं अकासि इदं मे मनोकम्मं नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, न परब्याबाधाय पि संवत्तति, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तति—कुसलं इदं मनोकम्मं सुखुद्रयं सुखविपाकं' ति, तेनेव त्वं, राहुल, पीतिपामोज्जेन विहरेय्यासि अहोरत्तानुसिक्खी कुसलेसु धम्मेसु। (३)

जाय—'मेरे द्वारा किया जा रहा यह मनःकर्म न अपने लिये...परिणाम भी सुखप्रद ही है', तो राहुल! मन से ऐसा कर्म बार-बार करना चाहिये। (२)

"और इसी तरह, राहुल! वह मनःकर्म करने के बाद भी, उसके बारे में तुम्हें यों सोचना चाहिये—'क्या यह मेरे द्वारा किया गया मनःकर्म अपने लिये... कष्टप्रद ही है?' यदि तू राहुल! इस तरह सोचते-सोचते उसके बारे में यह जान ले—'यह मेरे द्वारा किया गया मनःकर्म अपने लिये...परिणाम भी कष्टप्रद ही है', तो राहुल! इस अकुशल मनःकर्म से खेद प्रकट करना चाहिये, दूर रहना चाहिये, घृणा करनी चाहिये; खेद प्रकट कर, दूर रहकर एवं घृणा कर भविष्य में इस पर संयम करना चाहिये। और यदि राहुल! तूँ इस मनःकर्म के बारे में सोचते-सोचते यह समझ ले—'मेरे द्वारा किया गया यह मनःकर्म न अपने लिये...परिणाम में भी सुखप्रद है', तो राहुल! तूँ ऐसे ही कर्म से सुख और आनन्द पा सकेगा, अतः तुझे दिन-रात ऐसे कुशल कर्म करने की चेष्टा करनी चाहिये। (३)

[R. 420] ६. "ये हि केचि, राहुल, अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा कायकम्मं परिसोधेसुं, वचीकम्मं परिसोधेसुं, मनोकम्मं परिसोधेसुं, सब्बे ते एवमेवं पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा कायकम्मं परिसोधेसुं, [N. 99] पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा वचीकम्मं परिसोधेसुं, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा मनोकम्मं परिसोधेसुं। ये पि हि केचि, राहुल, अनागतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा कायकम्मं परिसोधेस्सन्ति, वचीकम्मं परिसोधेस्सन्ति, मनोकम्मं परिसोधेस्सन्ति, सब्बे ते एवमेवं पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा कायकम्मं परिसोधेस्सन्ति, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा वचीकम्मं परिसोधेस्सन्ति, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा मनोकम्मं परिसोधेस्सन्ति। ये पि हि केचि, राहुल, एतरहि समणा वा ब्राह्मणा वा कायकम्मं परिसोधेन्ति, वचीकम्मं परिसोधेन्ति, मनोकम्मं परिसोधेन्ति, सब्बे ते एवमेवं पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा कायकम्मं परिसोधेन्ति, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा वचीकम्मं परिसोधेन्ति, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा मनोकम्मं परिसोधेन्ति। तस्मातिह, राहुल, 'पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा कायकम्मं परिसोधेस्सामि, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा वचीकम्मं परिसोधेस्सामि, पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा मनोकम्मं परिसोधेस्सामी' ति—एवं हि ते, राहुल, सिक्खितब्बं" ति।

७. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा राहुलो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

---

६. "राहुल ! जिन किन्हीं श्रमण-ब्राह्मणों ने पूर्वकाल में अपने कायकर्म, वाक्कर्म या मनःकर्म का परिशोधन किया है, उन्होंने इसी तरह प्रत्यवेक्षण (सोच-समझ) कर कायकर्म ···वाक्कर्म···मनःकर्म का परिशोधन किया। और राहुल ! भविष्य में भी जो कोई श्रमण-ब्राह्मण अपने कायकर्म, वाक्कर्म या मनःकर्म परिशुद्ध करना चाहेंगे, वे भी इसी प्रकार प्रत्यवेक्षण कर कायकर्म···वाक्कर्म···मनःकर्म का परिशोधन करेंगे। और फिर ! राहुल जो वर्तमानकाल में श्रमण-ब्राह्मण अपने कायकर्म, वाक्कर्म या मनःकर्म का परिशोधन करना चाहते हैं, वे भी इसी तरह प्रत्यवेक्षण कर कायकर्म··· वाक्कर्म···मनःकर्म परिशोधित करते हैं। इसलिये राहुल ! तुम्हें भी—'मैं प्रत्यवेक्षण कर अपने कायकर्म···वाक्कर्म···मनःकर्म परिशोधित करूँगा'—ऐसी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।"

७. ऐसा भगवान् ने उपदेश किया। प्रसन्नमन राहुल ने भगवान् के श्रीवचनों का अभिनन्दन किया॥

अम्बलट्ठिकराहुलोवादसुत्त समाप्त॥

१२. महाराहुलोवादसुत्तं

१. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने [N. 100] अनाथपिण्डिकस्स आरामे । अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि । आयस्मा पि खो [B. 84, R. 421] राहुलो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि । अथ खो भगवा अपलोकेत्वा आयस्मन्तं राहुलं आमन्तेसि—

१. पञ्चसु खन्धेसु अनत्तभावना

"यं किञ्चि, राहुल, रूपं—अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा—सब्बं तं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं" ति ।

"रूपमेव नु खो, भगवा, रूपमेव नु खो, भगवा" ति ?

"रूपं पि, राहुल, वेदना पि, राहुल, सञ्ञा पि, राहुल, सङ्खारा पि, राहुल, विञ्ञाणं पि, राहुला" ति ।

अथ खो आयस्मा राहुलो "को नुज्ज भगवता सम्मुखा ओवादेन ओवदितो

---

१२. महाराहुलाववादसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती नगरी स्थित जेतवन में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित विहार में विराजमान थे । तब भगवान् (किसी दिन) प्रातःकाल पहन कर, पात्र-चीवर ले, भिक्षा के लिये श्रावस्ती में प्रविष्ट हुए । आयुष्मान् राहुल भी प्रातःकाल पहन कर, पात्र-चीवर ले, भगवान् के पीछे-पीछे चल दिये । तब (कुछ दूर चलने पर) भगवान् ने आयुष्मान् राहुल को पीछे देखकर, उनसे कहा—

१. पाँचों स्कन्धों में अनात्मभावना

"राहुल ! यह जो भूत-भविष्यत्-वर्तमान का आन्तरिक या बाह्य रूप है, वह भले ही स्थूल हो या सूक्ष्म, अच्छा हो या बुरा, दूर हो या नजदीक इस सब कुछ के बारे में 'यह मेरा नहीं है, 'न मैं यह हूँ, न यह मेरी आत्मा है'—इस तरह भलीभाँति जानकर समझना चाहिये ।"

"रूप को ही, भगवन् ! रूप के ही विषय में, भगवन् ! (आपका यह उपदेश है) ?"

"राहुल ! रूप की ही बात नहीं है; वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान के विषय में भी राहुल ! यही बात समझनी चाहिये ।"

इसके बाद आयुष्मान् राहुल "भगवान् से ऐसा अमृतोपम उपदेश सुनने के

गामं पिण्डाय पविसिस्सती" ति ततो पटिनिवत्तित्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसीदि पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। अद्दसा खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं राहुलं अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसिन्नं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। दिस्वान आयस्मन्तं राहुलं आमन्तेसि—"आनापानस्सतिं, राहुल, भावनं भावेहि। आनापानस्सति, राहुल, भावना भाविता बहुलीकता महप्फला होति महानिसंसा" ति।

२. पञ्चसु धातुसु अनत्तभावना

[N. 101] २. अथ खो आयस्मा राहुलो सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राहुलो भगवन्तं एतदवोच—"कथं भाविता नु खो, भन्ते, आनापानस्सति, कथं बहुलीकता महप्फला होति महानिसंसा" ति ?

(१) पठवीधातु

"यं किञ्चि, राहुल अज्झत्तं पच्चत्तं कक्खलं खरिगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं—केसा लोमा नखा दन्ता तचो मंसं न्हारु अट्ठि अट्ठिमिञ्जं वक्कं

बाद अब कौन भिक्षा के लिये ग्राम में जाय"—ऐसा सोचकर, वहीं से वापस लौटकर (अरण्य में) किसी एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और आसन लगा, शरीर को सीधाकर एवं स्मृति को संजोकर, ध्यानमग्न हो गये। आयुष्मान् शारिपुत्र ने आयुष्मान् राहुल को (अरण्य में) किसी वृक्ष नीचे ध्यानमग्न बैठे देखा। देखकर (उन्होंने) कहा—"राहुल ! आनापानस्मृति (प्राणायाम) की भावना (साधना) कर। राहुल ! यह आनापानस्मृति साधना विपुलफलदायक एवं उत्तममाहात्म्य वाला है।"

२. पाँचों धातुओं में अनात्मभावना

२. इसके बाद, सायकाल होने पर, आयुष्मान् राहुल उक्त ध्यानसाधना उठ, जहाँ भगवान् विराजमान् थे वहाँ, पहुँचे; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन्होंने भगवान् से यों पूछा—"भन्ते ! आनापानस्मृति की साधना कैसे की जाती है ? कैसे यह विपुल फलदायक एवं उत्तम माहात्म्य वाली हो सकती है ?"

(१) पृथ्वीधातु

"राहुल ! यहाँ प्रत्येक व्यक्ति के प्रतिशरीर के अन्दर जो कुछ भी कर्कश या खर (रूखा) मिलता है, जैसे—केश, लोम, नख, दन्त, त्वचा, मांस, स्नायु, हड्डी,

हृदयं यकनं किलोमकं पिहकं पप्फासं अन्तं अन्तगुणं उदरियं करीसं, यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं कक्खल खरिगतं उपादिन्नं--अयं वुच्चति, राहुल, अज्झत्तिका पठवीधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका पठवीधातु या च बाहिरा पठवीधातु, पठवीधातुरेवेसा। तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता, ति—एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं [R. 422] सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा पठवीधातुया पठवीधातुया निब्बिन्दति, चित्तं विराजेति।

(२) आपोधातु

३. "कतमा च राहुल, आपोधातु? आपोधातु सिया अज्झत्तिका, सिया बाहिरा। कतमा च, राहुल, अज्झत्तिका आपोधातु? यं अज्झत्तं [B. 85] पच्चत्तं आपो आपोगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं--पित्तं सेम्हं पुब्बो लोहितं सेदो मेदो अस्सु वसा खेळो सिङ्घाणिका लसिका मुत्तं, यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं आपो आपोगतं उपादिन्नं—अयं वुच्चति, राहुल, अज्झत्तिका आपोधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका आपोधातु या च बाहिरा आपोधातु, आपोधातुरेवेसा। तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति—

हड्डी में रहने वाला चिकना पदार्थ (=अट्ठिमिञ्ज), वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोम (पित्ताशय), प्लीहा, फुप्फुस, आँत, उदरमल (पुरीष) अथवा ऐसा ही और जो कुछ भी शरीर में कर्कश या रूखा पदार्थ मिलता है—वह 'आन्तरिक (=अज्झत्तिक) पृथ्वीधातु' कहलाता है। इस तरह, यह आन्तरिक एवं बाह्य—दोनों ही पृथ्वीधातु 'पृथ्वीधातु' है। उस (पृथ्वीधातु) को—'यह मेरी नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—इस तरह जैसी है वैसी ही जानकर भावना करनी चाहिए। इस तरह, जैसी है वैसी ही समझ कर साधक पृथ्वीधातु से उचट (उदास हो) जाता है, पृथ्वीधातु से स्वचित्त को विरक्त कर लेता है।

(२) आपोधातु (अब्धातु)

३. "राहुल ! आपोधातु (जल) क्या है ? आपोधातु भी आन्तर और बाह्य (भेद से दो प्रकार की) हो सकती है। राहुल ! यह आन्तर आपोधातु क्या है ? यहाँ प्रत्येक व्यक्ति के प्रतिशरीर में जो कुछ भी द्रव (बहने वाला) जलमय पदार्थ मिलता है; जैसे—पित्त, श्लेष्मा, पूय, रक्त, पसीना, चर्बी (=मेद), आँसू, वसा, खँखार (=खेल), सिणक, लसीका, मूत्र—ऐसा ही और भी जो कुछ इस शरीर के अन्दर बहने वाला पदार्थ है, वह आन्तरिक आपोधातु कहलाता है। और यह जो आन्तरिक या बाह्य आपोधातु हैं, दोनों ही 'आपोधातु' कहलाती हैं। उस (आपोधातु) को—'यह मेरी नहीं है, न मैं यह हूँ, न यह मेरी आत्मा है,—ऐसा भलीभाँति

एवमेतं यथाभूतं सम्मपञ्ञाय दट्ठब्बं एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा आपोधातुया निब्बिन्दति, आपोधातुया चित्तं विराजेति।

(३) तेजोधातु

[N. 102] ४. "कतमा च, राहुल, तेजोधातु? तेजोधातु सिया अज्झत्तिका, सिया बाहिरा। कतमा च, राहुल, अज्झत्तिका तेजोधातु? यं अज्झत्तं पच्चत्तं तेजो तेजोगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं—येन च सन्तप्पति येन च जीरीयति येन च परिडय्हति येन च असितपीतखायितसायितं सम्मा परिणामं गच्छति, यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं तेजो तेजोगतं उपादिन्नं—अयं वुच्चति, राहुल, अज्झत्तिका तेजोधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका तेजोधातु या च बाहिरा तेजोधातु तेजोधातुरेवेसा। तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति--एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा तेजोधातुया निब्बिन्दति, तेजोधातुया चित्तं विराजेति।

(४) वायोधातु

५. "कतमा च, राहुल, वायोधातु? वायोधातु सिया अज्झत्तिका, सिया बाहिरा। कतमा च, राहुल, अज्झत्तिका वायोधातु? यं अज्झत्तं पच्चत्तं वायो वायोगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं--उद्धङ्गमा वाता, अधोगमा वाता,

---

समझकर साधना करनी चाहिये। इस तरह भलीभाँति समझकर साधक आपोधातु से उचट जाता है, स्वचित को विरक्त कर लेता है।

(३) तेजोधातु

४. "राहुल! तेजोधातु (अग्नि) क्या है? तेजोधातु भी आन्तर और बाह्य (भेद से दो प्रकार की) हो सकती है। राहुल! यह आन्तरिक तेजोधातु क्या है? यहाँ प्रत्येक व्यक्ति के प्रतिशरीर के अन्दर जो कुछ भी तेजोमय पदार्थ विद्यमान हैं, जैसे—जिससे ताप होता है, जिससे अन्न जीर्ण होता है, जिससे द्रव सूखता है या जिससे खाया-पीया-चाटा-चूसा ठीक से पचता है—या ऐसा ही और जो कुछ भी इस शरीर के अन्दर तेजोमय पदार्थ है, ये सब 'आन्तरिक तेजोधातु' कहलाता है। और ये जो आन्तरिक या बाह्य तेजोधातु हैं—दोनों 'तेजोधातु' ही कहलाती हैं। इस (तेजोधातु) के विषय में 'यह मेरी नहीं है'''पूर्ववत्''' विरक्त कर लेता है।

(४) वायोधातु

५. "राहुल! वायोधातु कौन सी है? वायोधातु भी आन्तर और बाह्य (भेद से दो प्रकार की) हो सकती है। राहुल! यह आन्तरिक वायोधातु क्या है? यह जो प्रत्येक शरीर के अन्दर वायु या वायुधातुसम्पृक्त पदार्थ मिलता है, जैसे—

कुच्छिसया वाता, कोट्ठसया वाता, अङ्गमङ्गानुसारिनो वाता, अस्सासो पस्सासो इति यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं वायो वायोगतं उपादिन्नं ---अयं वुच्चति, राहुल अज्झत्तिका वायोधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका वायोधातु या च बाहिरा वायोधातु वायोधातुरेवेसा। [R. 423, B. 86] तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति---एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा वायोधातुया निब्बिन्दति, वायोधातुया चित्तं विराजेति।

(५) आकासधातु

६. "कतमा च, राहुल, आकासधातु? आकासधातु सिया अज्झत्तिका सिया बाहिरा। कतमा च, राहुल, अज्झत्तिका आकासधातु? यं अज्झत्तं पच्चत्तं आकासं आकासगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं—कण्णच्छिद्दं नासच्छिद्दं मुखद्वारं, येन च असितपीतखायितसायितं अज्झोहरति, यत्थ च असितपीतखायितसायितं सन्तिट्ठति, येन च असितपीतखायितसायितं अधोभागं निक्खमति, यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं आकासं आकासगतं, अघं अघगतं, विवरं विवरगतं, असम्फुट्ठं मंसलोहितेहि उपादिन्नं--अयं वुच्चति, [N. 103] राहुल, अज्झत्तिका आकासधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका आकासधातुया च बाहिरा आकासधातु आकासधातुरेवेसा। तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न

उर्ध्वगामी वायु (प्राण), अधोगामी वायु (अपान), उदरगत वायु, (समान) कोष्ठगत वायु, अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रक्त बहाने वाली वायु (व्यान), श्वास-प्रश्वास, या ऐसी ही अन्य प्रत्येक शरीर के अन्दर रहने वाली वायु या वायुसम्पृक्त पदार्थ हैं, ये सब 'आन्तरिक वायुधातु' कहलाते हैं। और यह जो'''स्वचित्त को विरक्त कर लेता है।

(५) आकाशधातु

६. "राहुल! आकाशधातु कौन सी है? आकाशधातु भी आन्तरिक और बाह्य (भेद से दो प्रकार की) हो सकती है। राहुल! यह आन्तरिक आकाशधातु कौन सी है? यह जो प्रत्येक शरीर के अन्दर आकाश या आकाशसम्पृक्त पदार्थ मिलता है, जैसे—कान का छिद्र, नाक का छिद्र, मुखद्वार, जिस छिद्र से खाया-पीया-चाटा-चूसा जाता है और वह खाया-पीया-चाटा-चूसा पेट में टिकाता है एवं मलद्वार जिससे वह खाया-पीया-चाटा-चूसा पेट से बाहर निकलता है और ऐसा ही जो कुछ भी प्रत्येक शरीर के अन्दर आकाश या आकाश (छिद्र) मय शून्य, बिल और रक्त-मांसादि से असंस्पृष्ट पदार्थ मिलते हैं—राहुल! वे सब आन्तरिक आकाशधातु कहलाते हैं। और ये जो आन्तरिक या बाह्य आकाशधातु हैं—दोनों 'आकाशधातु' कहलाती हैं। इस (आकाशधातु) के विषय में 'यह मेरी

मेसो अत्ता' ति--एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा आकासधातुया चित्तं निब्बिन्दति, आकासधातुया चित्तं विराजेति।

३. पठवीसमा भावना

७. "पठवीसमं, राहुल, भावनं भावेहि। पठवीसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ति। सेय्यथापि, राहुल पठविया सुचिं पि निक्खिपन्ति, असुचिं पि निक्खिपन्ति, गूथगतं पि निक्खिपन्ति, मुत्तगतं पि निक्खिपन्ति, खेळगतं पि निक्खिपन्ति, पुब्बगतं पि निक्खिपन्ति, लोहितगतं पि निक्खिपन्ति, न च तेन पठवी अट्टीयति वा हरायति वा जिगुच्छति वा; एवमेव खो त्वं, राहुल, पठवीसमं भावनं भावेहि। पठवीसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ति।

४. आपोसमा भावना

८. "आपोसमं, राहुल, भावनं भावेहि। आपोसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ति। सेय्यथापि, राहुल, आपस्मिं सुचिं पि धोवन्ति, असुचिं पि धोवन्ति, गूथगतं पि धोवन्ति, मुत्तगतं पि धोवन्ति, खेळगतं पि धोवन्ति, पुब्बगतं पि

नहीं है···साधना करनी चाहिये। इस तरह भलीभाँति समझकर साधक आकाशधातु से उचट जाता है, स्वचित्त को विरक्त कर लेता है।

३. पृथ्वीतुल्य भावना

७. "राहुल! तुम पृथ्वी के समान रहने की साधना करो। राहुल! पृथ्वी के समान रहने की साधना करते हुए, तुम्हारे मन को अच्छे लगने वाले उत्पन्न धर्म तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे। राहुल! जैसे लोग पृथ्वी पर अच्छी चीज भी फेंकते हैं, गन्दी चीज भी फेंकते हैं, मल (पुरीष), मूत्र, खँखार, पूय और गन्दा खून भी फेंकते रहते हैं, परन्तु इससे पृथ्वी न खिन्न होती है, न कोई ग्लानि या कोई घृणा ही करती है, इसी तरह, राहुल! तुम भी पृथ्वी के समान रहने (सहनशीलता) की साधना करो। राहुल! पृथ्वी के समान रहने की साधना···स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे।

४. जलतुल्य भावना

८. राहुल! तुम जल के समान रहने की साधना करो। राहुल! जल के समान रहने की साधना···स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे। राहुल! जैसे लोग जल में अच्छी

धोवन्ति, लोहितगतं पि धोवन्ति, न च तेन आपो अट्टीयति वा हरायति वा जिगुच्छति वा; एवमेव खो त्वं, राहुल, [B. 87, R. 424] आपोसमं भावनं भावेहि। आपोसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ति।

५. तेजोसमा भावना

९. "तेजोसमं, राहुल, भावनं भावेहि। तेजोसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय [N. 104] ठस्सन्ति। सेय्यथापि, राहुल, तेजो सुचिं पि दहति, असुचिं पि दहति, गूथगतं पि दहति, मुत्तगतं पि दहति, खेळगतं पि दहति, पुब्बगतं पि दहति, लोहितगतं पि दहति, न च तेन तेजो अट्टीयति वा हरायति वा जिगुच्छति वा; एवमेव खो त्वं, राहुल, तेजोसमं भावनं भावेहि। तेजोसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ति।

६ वायोसमा भावना

१०. "वायोसमं, राहुल, भावनं भावेहि। वायोसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ति। सेय्यथापि, राहुल, वायो सुचिं पि उपवायति, असुचिं पि उपवायति, गूथगतं पि उपवायति, मुत्तगतं पि उपवायति, खेळगतं पि

चीज भी धोते हैं, गन्दी चीज… गन्दा खून भी धोते हैं, परन्तु इससे जल…या कोई घृणा ही करता है, इसी तरह, राहुल ! तुम भी जल के समान रहने…स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे।

५. अग्नि (तेजस) तुल्य भावना

९. "राहुल ! अग्नि के समान रहने की साधना करो। राहुल ! अग्नि के समान रहने की साधना करते हुए…स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे। राहुल ! जैसे अग्नि अच्छी चीज को जला देती है…गन्दा खून भी जला देती है, परन्तु इससे अग्नि न खिन्न… न कोई घृणा ही करती है, इसी तरह, राहुल ! तुम भी अग्नि के समान रहने की… स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे।

६. वायुतुल्य भावना

१०. "राहुल ! वायु के समान रहने की साधना करो। राहुल ! वायु के समान रहने की साधना करते हुए…स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे। राहुल ! जैसे वायु अच्छी

उपवायति, पुब्बगतं पि उपवायति, लोहितगतं पि उपवायति, न च तेन वायो अट्टीयति वा हरायति वा जिगुच्छति वा; एवमेव खो त्वं, राहुल, वायोसमं भावनं भावेहि। वायोसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ति।

७ आकाससमा भावना

११. "आकाससमं, राहुल, भावनं भावेहि। आकाससमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ति। सेय्यथापि, राहुल, आकासो न कत्थचि पतिट्ठितो; एवमेव खो त्वं, राहुल, आकाससमं भावनं भावेहि। आकाससमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ति।

८. चत्तारो ब्रह्मविहारा

१२. "मेत्तं, राहुल, भावनं भावेहि। मेत्तं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो यो ब्यापादो सो पहीयिस्सति। करुणं, राहुल, भावनं भावेहि। करुणं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो या विहेसा सा पहीयिस्सति। मुदितं, राहुल, [N. 105] भावनं भावेहि। मुदितं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो या

चीज के पास से भी बहती है⋯गन्दे खून के पास से भी बहती है, परन्तु इससे वायु न खिन्न⋯न कोई घृणा करती है; इसी तरह राहुल! तुम भी वायु के समान रहने⋯स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे।

७. आकाशतुल्य भावना

११. "राहुल! आकाश के समान रहने की साधना करो। राहुल! आकाश के समान रहने की साधना करते हुए, तुम्हारे मन को अच्छे लगने वाले उत्पन्न धर्म तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे। राहुल! जैसे आकाश किसी भी चीज पर टिका हुआ (प्रतिष्ठित) नहीं है; उसी तरह राहुल! तुम भी आकाश के समान रहने (अनपेक्षभाव) की साधना करो। राहुल! आकाश के समान रहने की साधना⋯ स्पर्श भी नहीं कर पायेंगे।

८. चार ब्रह्मविहार

१२. राहुल! मैत्री (सबके प्रति सुहृद्-भाव) भावना के अभ्यास का प्रयास करो। राहुल! इस मैत्री भावना के अभ्यास से, तुम्हारे चित्त में बैठा हिंसा-द्वेषभाव सर्वथा नष्ट हो जायगा। राहुल! करुणा (समग्र प्राणियों पर दया करना) भावना का अभ्यास करो। राहुल! इस करुणा भावना के अभ्यास से तुम्हारे चित्त में स्थित विहिंसा (दूसरों को सताने की इच्छा) सर्वथा नष्ट हो जायगी। राहुल! मुदिता (दूसरों को सुखी देख, प्रसन्न होना) भावना का अभ्यास करो। राहुल! मुदिता

अरति सा पहीयिस्सति। उपेक्खं, राहुल, भावनं भावेहि। उपेक्खं [B. 88] हि ते, राहुल, भावनं भावयतो यो पटिघो सो पहीयिस्सति। असुभं, राहुल, भावनं भावेहि। असुभं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो यो रागो सो पहीयिस्सति। अनिच्चसञ्ञं, राहुल, भावनं भावेहि। अनिच्च-[R. 425] सञ्ञं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो यो अस्मिमानो सो पहीयिस्सति।

६. आनापान भावना

१३. "आनापानस्सतिं, राहुल भावनं भावेहि। आनापानस्सति हि ते राहुल, भाविता बहुलीकता महप्फला होति महानिसंसा। कथं भाविता च, राहुल, आनापानस्सति, कथं बहुलीकता महप्फला होति महानिसंसा? इध, राहुल, भिक्खु अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो सतो व अस्ससति सतो व पस्ससति। दीघं वा अस्ससन्तो 'दीघं अस्ससामी' ति पजानाति, दीघं वा पस्ससन्तो 'दीघं पस्ससामी' ति पजानाति; रस्सं वा अस्ससन्तो 'रस्सं अस्ससामी' ति पजानाति; रस्सं वा

भावना के अभ्यास से तुम्हारे चित्त में स्थित अरति (दूसरों के हित के प्रति वैराग्य) नष्ट हो जायगी। राहुल! उपेक्षा (वैर भाव के प्रति उदासीनता) भावना का अभ्यास करो। राहुल! उपेक्षाभावना के अभ्यास से तुम्हारे चित्त में स्थित प्रतिघ (दूसरों का विरोध-भाव) नष्ट हो जायगा। राहुल! अशुभ (कामभोगों में बुरी भावना रखना) भावना का अभ्यास करो। राहुल! अशुभ-भावना के अभ्यास से तुम्हारे चित्त में स्थित राग (आसक्ति) नष्ट हो जायगा। राहुल अनित्यसंज्ञा (सभी संस्कार अनित्य हैं) भावना का अभ्यास करो। राहुल! अनित्यसंज्ञा-भावना के अभ्यास से तुम्हारे चित्त से अस्मिमान (मैं ही सब कुछ हूँ—यह अहकार) नष्ट हो जायगा।

९. आनापानभावना

१३. "राहुल! आनापानस्मृति की भावना का भी अभ्यास करो। राहुल! इस आनापानस्मृति की भावना से तुम्हें बहुत लाभ होगा; क्योंकि यह अत्यधिक माहात्म्य वाली है। राहुल! यह आनापानस्मृति-भावना कैसे होती है? कैसे यह अत्यन्त फलप्रद एवं उत्तम माहात्म्यदायक होगी? राहुल! यहाँ कोई साधक भिक्षु अरण्य में, किसी वृक्ष के नीचे या एकान्तगृह में आसन लगाकर, शरीर को सीधाकर, स्मृति को संजोकर बैठता है। वह स्मरण करते हुए ही श्वास लेता है और स्मरण करते हुए ही श्वास छोड़ता है। लम्बा श्वास लेता हुआ 'लम्बा श्वास ले रहा हूँ'—जानता

पस्ससन्तो 'रस्सं पस्ससामी' ति पजानाति। 'सब्बकायप्पटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'सब्बकायप्पटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति। 'पीतिप्पटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पीतिप्पटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'सुखप्पटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'सुखप्पटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'चित्तसङ्खारप्पटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'चित्तसङ्खारप्पटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पस्सम्भयं चित्तसङ्खारं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पस्सम्भयं चित्तसङ्खारं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'चित्तप्पटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'चित्तप्पटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'अभिप्पमोदयं चित्तं [N. 106] अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'अभिप्पमोदयं चित्तं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'समादहं चित्तं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'समादहं चित्तं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'विमोचयं चित्तं अस्स-

---

है, लम्बा श्वास छोड़ता हुआ 'लम्बा श्वास छोड़ रहा हूँ'--जानता है; छोटा श्वास लेता हुआ 'छोटा श्वास ले रहा हूँ'--जानता है; छोटा श्वास छोड़ता हुआ 'छोटा श्वास छोड़ रहा हूँ'—जानता है। 'सम्पूर्ण शरीर का ध्यान रखता हुआ श्वास लूँगा'--सीखता है; 'सम्पूर्ण···श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है; 'देहसंस्कारों को दबाते हुए श्वास लूँगा'--सीखता है; देहसंस्कारों···श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है। प्रीति का अनुभव करते हुए श्वास लूँगा'—सीखता है; 'प्रीति का···श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है; 'सुख का अनुभव करते हुए श्वास लूँगा'--सीखता है; सुख का··· श्वास छोड़ूँगा'—सीखता है; 'चित्तसंस्कारों का अनुभव करते हुए श्वास लूँगा'—सीखता है; चित्तसंस्कारों का···श्वास छोड़ूँगा'—सीखता है; 'चित्तसंस्कारों को दबाते हुए श्वास लूँगा'—सीखता है; 'चित्तसंस्कारों को दबाते हुए श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है; 'चित्त का अनुभव करते हुए श्वास लूँगा'--सीखता है; चित्त का अनुभव करते हुए श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है; 'चित्त सर्वतः प्रमुदित रखते हुए श्वास लूँगा'—सीखता है; 'चित्त को सर्वतः प्रमुदित रखते हुए श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है; 'चित्त को समाहित रखते हुए श्वास लूँगा'--सीखता है; 'चित्त को समाहित रखते हुए श्वास छोड़ूँगा'—सीखता है; चित्त को (राग आदि से) विमुक्त करते हुए श्वास लूँगा'--सीखता है; 'चित्त को विमुक्त करते हुए श्वास छोड़ूँगा'—सीखता है; '(सभी पदार्थों को) अनित्य मानता हुआ श्वास लूँगा'—

सिस्सामी' ति सिक्खति; 'विमोचयं चित्तं पस्ससिस्सामी' ति [B. 89] सिक्खति; 'अनिच्चानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'अनिच्चानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'विरागानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'विरागानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'निरोधानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'निरोधानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पटिनिस्सग्गानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पटिनिस्सग्गानुपस्सी पस्स सस्सामी' ति सिक्खति।

"एवं भाविता खो, राहुल, आनापानस्सति, एवं बहुलीकता महप्फला होति महानिसंसा। एवं भाविताय, राहुल, आनापानस्सतिया [R. 426] एवं बहुलीकताय ये पि ते चरिमका अस्सासा ते पि विदिता व निरुज्झन्ति नो अविदिता" ति।

१४. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा राहुलो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

सीखता है; 'अनित्य मानता हुआ श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है; '(सभी पदार्थों में) वैराग्य भाव रखता हुआ श्वास लूँगा'--सीखता है; 'वैराग्यभाव रखता हुआ श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है; '(चित्तवृत्तियों पर) निरोध रखता हुआ श्वास लूँगा''' श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है; '(सर्वत्र) परित्याग-दृष्टि रखता हुआ श्वास लूँगा'--सीखता है; 'परित्याग-दृष्टि रखता हुआ श्वास छोड़ूँगा'--सीखता है।

"राहुल! इस प्रकार की गयी यह आनापानस्मृति-भावना होती है, इस तरह अभ्यस्त की गयी भावना अत्यन्त फलप्रद एवं अतिशय माहात्म्य वाली होती है। राहुल! इस तरह अभ्यस्त की गई आनापानस्मृति-भावना से जो अन्तिम श्वास या प्रश्वास बाकी हैं, वे भी जाने हुए (ज्ञात) ही निरुद्ध होंगे, बिना जाने (अज्ञात) नहीं।"

१४. भगवान् ने ऐसा कहा। प्रसन्नमन आयुष्मान् राहुल ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

महाराहुलोवादसुत्त समाप्त॥

१३. चूलमालुक्यसुत्तं

१. मालुक्यपुत्तस्स अब्याकतपञ्हा

[N. 107] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मतो मालुक्यपुत्तस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"यानिमानि दिट्ठिगतानि भगवता अब्याकतानि ठपितानि पटिक्खित्तानि--'सस्सतो लोको' ति पि, 'असस्सतो लोको' ति पि, 'अन्तवा लोको ति पि, 'अनन्तवा लोको' ति पि, 'तं जीवं तं सरीरं' ति पि, 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति पि, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पि, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति पि, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति पि, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पि—तानि मे भगवा न ब्याकरोति। यानि मे भगवा न ब्याकरोति तं मे न रुच्चति, तं मे नक्खमति। सोहं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छिस्सामि। सचे मे भगवा ब्याकरिस्सति—'सस्सतो

---

१३. क्षुद्रमालुक्यसूत्र

१. अव्याकृत प्रश्नों के प्रति मालुक्यपुत्र का चिन्तन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती के, अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा बनवाये, जेतवनाराम में साधना (विहार) कर रहे थे। उस समय एकान्त में ध्यानमग्न बैठे आयुष्मान् मालुक्यपुत्र के मन में यह विचार उठा--"भगवान् ने ये जो अन्य दार्शनिकों के मतवाद बिना व्याकरण (समीक्षा) के ही छोड़ दिए हैं, उन्हें उपेक्षित मानकर उनका व्याख्यान करना अस्वीकृत कर दिया है, छोड़ दिया है--(१) 'यह लोक शाश्वत (नित्य) है' (२)[1] 'यह लोक अशाश्वत (विनाशी) है' (३) 'इस लोक का अन्त होता है' (४) 'इस लोक का (कभी) अन्त नहीं होता' (५) 'वही जीव है, वही शरीर है' (६) 'जीव कोई अन्य है, शरीर कोई अन्य' (७) 'तथागत मरने के बाद भी होते हैं' (८) 'तथागत मरने के बाद नहीं होते' (९) 'मरने के बाद तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते हैं' (१०) 'मरने के बाद तथागत न होते हैं' न नहीं होते'--इन सब मतवादों का भगवान् ने (मुझ) व्याकरण नहीं किया है। (मेरे मन की स्थिति यह है कि) भगवान् जो बातें मुझे नहीं बताते, करने के लिए नहीं कहते, वे बातें मुझे नहीं भातीं, न मुझे वे सहन होती हैं। अतः मैं भगवान् के पास जाकर स्वयं इस बारे में पूछूँगा। यदि वे मुझे (इन मतवादों पर)

---

१. छट्ठ संगायन एवं नालन्दा संस्करणों के अतिरिक्त अन्य संस्करणों (सी०, स्या०, रो०) में 'मालुक्य' को 'मालुङ्क्य' पाठ है।

लोको' ति वा 'असस्सतो लोको' ति वा···पे०···नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा--एवाहं भगवति ब्रह्मचरियं चरिस्सामि; नो चे मे भगवा ब्याकरिस्सति--'सस्सतो लोको' ति वा 'असस्सतो लोको' ति वा···पे०···नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा—एवाहं सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सामी" ति।

२. अथ खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो सायण्हसमयं पटिसल्लाना [R. 427] वुट्ठितो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो भगवन्तं एतदवोच--

३. "इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—यानिमानि दिट्ठिगतानि भगवता अब्याकतानि [N. 108] ठपितानि पटिक्खित्तानि—'सस्सतो लोको' ति पि, 'असस्सतो लोको' ति पि···पे०···नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति पि—तानि मे भगवा न ब्याकरोति। यानि भगवा न ब्याकरोति तं मे न रुच्चति, तं मे नक्खमेति। सोहं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छिस्सामि। सचे मे भगवा ब्याकरिस्सति—'सस्सतो लोको' ति वा, 'असस्सतो लोको' ति वा···पे···नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा—एवाहं भगवति, ब्रह्मचरियं चरिस्सामि। नो चे मे भगवा ब्याकरिस्सति—'सस्सतो लोको' ति वा, 'असस्सतो लोको'

कुछ, जैसे—(१) 'यह लोक शाश्वत है', 'यह लोक अशाश्वत···पूर्ववत्···(१०) मरने के बाद तथागत न होते हैं न नहीं होते' बतायेंगे, तो मैं उन पर श्रद्धा रखते हुए, उनकी बताई बातों पर आचरण करूँगा। यदि भगवान् ये सब—(१) 'यह लोक शाश्वत है', 'यह लोक अशाश्वत···पूर्ववत्···(१०) मरने के बाद तथागत न होते हैं न नहीं होते' नहीं बतायेंगे तो मैं भिक्षुभाव को छोड़कर, पुनः अपने हीनभाव (गृहस्थ धर्म) के पालन हेतु लौट जाऊँगा।"

२. इसके बाद आयुष्मान् मालुक्यपुत्र सायंकाल ध्यानभावना से उठ, जहाँ भगवान् विराजमान् थे वहाँ, पहुँचे; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् मालुक्यपुत्र ने भगवान् से यह निवेदन किया—

३. "भन्ते ! यहाँ मुझे एकान्त में ध्यानमग्न बैठे हुए को, मन में यह विचार आया--भगवान् ने ये जो अन्य दार्शनिकों के मतवाद···छोड़ दिया है--(१) 'यह लोक शाश्वत है' (२) 'यह लोक अशाश्वत···पूर्ववत्···हीनभाव (गृहस्थधर्म)

ति वा···पे··नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा—एवाहं सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सामी ति। सचे भगवा जानाति—'सस्सतो लोको' ति, 'सस्सतो लोको' ति मे भगवा ब्याकरोतु; सचे भगवा जानाति—'असस्सतो लोको' ति, 'असस्सतो लोको' ति मे भगवा ब्याकरोतु। नो चे भगवा जानाति—'सस्सतो लोको ति वा असस्सतो लोको ति वा', अजानन्तो खो पन अपस्सन्तो एतदेव उजुकं होति यदिदं—'न जानामि, न पस्सामी' ति। सचे भगवा जानाति—'अन्तवा लोको' ति, 'अन्तवा लोको' ति मे भगवा ब्याकरोतु; सचे भगवा जानाति 'ति, अनन्तवा लोको ''अनन्तवा लोको' ति मे भगवा ब्याकरोतु। नो चे भगवा जानाति—'अन्तवा लोको ति वा अनन्तवा लोको ति वा', अजा-[B. 91] नन्तो खो पन अपस्सन्तो एतदेव उजुकं होति यदिदं—'न जानामि, न पस्सामी' ति। सचे भगवा जानाति—'तं जीवं तं सरीरं' ति, 'तं जीवं तं सरीरं' ति मे भगवा ब्याकरोतु; सचे भगवा जानाति—'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति, 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति मे भगवा ब्याकरोतु। नो चे भगवा जानाति—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा', अजानन्तो खो पन अपस्सन्तो एतदेव उजुकं होति यदिदं—'न जानामि, न पस्सामी' ति। सचे भगवा जानाति—'होति तथागतो परं मरणा' ति [R. 428] 'होति तथागतो परं मरणा' ति मे भगवा ब्याकरोतु; सचे भगवा जानाति—'न होति तथागतो परं मरणा' ति, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति मे भगवा ब्याकरोतु। नो चे भगवा जानाति—'होति तथागतो परं मरणा ति वा न होति तथागतो परं मरणा ति वा', [N. 109] अजानतो खो पन अपस्सतो एतदेव उजुकं होति यदिदं—'न जानामि न पस्सामी' ति। सचे भगवा जानाति—'होति च न च होति तथाग ो परं

के पालन हेतु लौट जाऊँगा। यदि भगवान् जानते हैं—(१) 'लोक शाश्वत है' तो मुझे वैसा व्याख्यान करें। यदि भगवान् यह जानते हैं—(२) लोक अशाश्वत है' तो मुझे वैसा व्याख्यान करें। यदि भगवान् यह नहीं मानते—(१-२) 'यह लोक शाश्वत है या अशाश्वत' तो न जानने वाले न समझने वाले के लिये यही उचित होगा कि वह स्पष्ट कह दे—'मैं (इस विषय में तुम्हें बताने लायक) कुछ नहीं जानता, कुछ नहीं समझता'। यदि भगवान् जानते हैं—(३) 'लोक अन्तवान' ··पूर्ववत्··· (९) 'मरने के बाद तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते हैं' तो भगवान् मुझे वैसा व्याख्यान करें; यदि भगवान् जानते हैं—(१०) मरने के बाद तथागत न होते हैं,

मरणा ति, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति मे भगवा ब्याकरोतु; सचे भगवा जानाति—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति मे भगवा ब्याकरोतु। नो चे भगवा जानाति—'होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति वा नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा', अजानतो खो पन अपस्सतो एतदेव उजुकं होति यदिदं—'न जानामि, न पस्सामी''' ति।

४. "किं नु ताहं, मालुक्यपुत्त, एवं अवचं--'एहि त्वं, मालुक्यपुत्त, मयि ब्रह्मचरियं चर, अहं ते ब्याकरिस्सामि--सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा, अन्तवा लोको ति वा, अनन्तवा लोको ति वा, तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति तथागतो परं मरणा ति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा' " ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"त्वं वा पन मं एवं अवच--'अहं, भन्ते, भगवति ब्रह्मचरियं चरिस्सामि, भगवा मे ब्याकरिस्सति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको [B. 92] ति वा, अन्तवा लोको ति वा, अनन्तवा लोको ति वा, तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति

न नहीं होते' तो मुझे वैसा व्याख्यान करें। यदि भगवान् यह नहीं जानते--'तथागत मरने के बाद होते भी हैं, नहीं भी होते हैं या मरने के बाद तथागत न होते हैं, न नहीं होते' तो न जानने वाले न समझने वाले के लिए यही उचित होगा कि वह स्पष्ट कह दे—'इस विषय में मैं कुछ नहीं जानता, कुछ नहीं समझता'।"

४. "मालुक्यपुत्र! मेरे यहाँ दीक्षा लेने से पहले क्या मैंने तुमसे यह कहा था कि 'तुम मालुक्यपुत्र! आओ, मुझसे दीक्षा ले लो, मैं तुम्हें इन मतवादों पर भी सब कुछ बता दूंगा, जैसे--(१) यह लोक शाश्वत है, (२) यह लोक अशाश्वत··· पूर्ववत्··· (१०) मरने के बाद तथागत न होते हैं, न नहीं होते'!"

"नहीं, भन्ते! ऐसा नहीं कहा था।"

"या तुमने मुझसे ऐसा कहा था--'भन्ते! मैं आपके धर्म की दीक्षा ले रहा हूँ, दीक्षा के बाद आपको इन मतवादों पर, जैसे—(१) यह लोक शाश्वत है, (२) यह लोक अशाश्वत ···पूर्ववत्···(१०) मरने के बाद तथागत न होते हैं, न नहीं होते'--अपने विचार बताने होंगे?"

तथागतो परं मरणा ति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा' " ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"इति किर, मालुक्यपुत्त, नेवाहं तं वदामि--'एहि त्वं, मालुक्यपुत्त, मयि ब्रह्मचरियं चर, अहं ते ब्याकरिस्सामि—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा···पे०···नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा' ति; न पि किर मं त्वं वदेसि--'अहं, भन्ते, भगवति ब्रह्मचरियं चरिस्सामि, [N. 110] भगवा मं ब्याकरिस्सति—सस्सतो लोको ति वा असस्सतो लोको ति वा···पे०···नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा' ति। एवं सन्ते, मोघपुरिस, को सन्तो क पच्चाचिक्खसि ?

२. सल्लविद्धपुरिसस्स उपमा

५. "यो खो, मालुक्यपुत्त, एवं वदेय्य--'न तावाहं भगवति ब्रह्मचरियं चरिस्सामि याव मे भगवा न ब्याकरिस्सति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा···पे०···नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा' ति, [R. 429] अब्याकतमेव तं, मालुक्यपुत्त, तथागतेन अस्स, अथ सो पुग्गलो कालं करेय्य। सेय्यथापि, मालुक्यपुत्त, पुरिसो सल्लेन विद्धो अस्स सविसेन

"नहीं, भन्ते ! ऐसा भी नहीं है।"

"तो मालुक्यपुत्र ! जब मैंने तुमसे यह नहीं कहा कि 'तुम मालुक्यपुत्र ! आओ, मुझसे दीक्षा ले लो, मैं तुम्हें इन मतवादों पर बता दूँगा, जैसे—(१) यह लोक शाश्वत···(१०) तथागत न नहीं होते' और न तुमने ही यह कहा था--'भन्ते ! मैं आपके धर्म की दीक्षा ले रहा हूँ, दीक्षा लेने के बाद आपको इन मतवादों पर, जैसे—(१) लोक शाश्वत है···पूर्ववत्···(१०) तथागत न नहीं होते' अपने विचार बताने होंगे। तो मोघपुरुष ! ऐसा होने पर कौन किसको उपालम्भ देगा !

२. शल्यविद्ध पुरुष का दृष्टान्त

५. "मालुक्यपुत्र ! जो ऐसा कहे—'मैं तब तक भगवान् से दीक्षा ग्रहण कर उनके बताये धर्म का आचरण नहीं करूँगा, जब तक कि वे मुझे इन मतवादों पर, जैसे--(१) लोक शाश्वत है' (२) लोक अशाश्वत···पूर्ववत्···(१०) तथागत न नहीं होते', अपने विचार नहीं बता देते; तो ये सब मतवाद मालुक्यपुत्र मेरे द्वारा अव्याकृत ही रहेंगे, भले ही उस प्रश्नकर्त्ता की एक दिन मृत्यु ही क्यों न हो जाय। मालुक्यपुत्र ! जैसे कोई शस्त्र से आहत (=शल्यविद्ध) पुरुष हो, वह शस्त्र गाढ़े

गाळ्हपलेपनेन; तस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता भिसक्कं सल्लकत्तं उपट्ठपेय्युं। सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं पुरिसं जानामि येनम्हि विद्धो, खत्तियो वा ब्राह्मणो वा वेस्सो वा सुद्दो वा' ति; सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं पुरिसं जानामि येनम्हि विद्धो, एवंनामो एवंगोत्तो इति वा' ति; सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं पुरिसं जानामि येनम्हि विद्धो, दीघो वा रस्सो वा मज्झिमो वा' ति; सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं पुरिसं जानामि येनम्हि विद्धो, काळो वा सामो वा मङ्गुरच्छवो वा' ति; सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं पुरिसं जानामि येनम्हि विद्धो, अमुकस्मि गामे वा निगमे [B. 95] वा नगरे वा' ति; सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं धनुं जानामि येनम्हि विद्धो, यदि वा चापो यदि वा कोदण्डो' ति; सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं जियं जानामि यायम्हि विद्धो, यदि वा अक्कस्स यदि वा सण्हस्स यदि वा न्हारुस्स यदि वा मरुवाय यदि वा खीरपण्णिनो' ति; सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं कण्डं जानामि येनम्हि विद्धो, यदि वा गच्छं यदि

लेपवाले जहर से बुझा हो। उसे उसके मित्र, सलाहकार या नाते-रिश्तेदार शल्य-चिकित्सक वैद्य के पास ले जाँय। तब वह (आहत पुरुष) यों कहे—'मैं तब तक इस शस्त्र को नहीं निकालने दूँगा, जब तक कि उस शस्त्र चलाने वाले के विषय में यह न जान लूँ कि वह क्षत्रिय है, ब्राह्मण है, वैश्य है या शूद्र'; (या) वह यों कहे––'मैं तब तक इस शल्य को नहीं निकालने दूँगा, जब तक मुझे यह न ज्ञात हो जाय कि शस्त्र चलाने वाला पुरुष इस नाम अथवा इस गोत्र का है'; (या) वह यों कहे––'मैं तब तक इस शल्य को नहीं निकालने दूँगा, जब तक कि मैं यह न जान लूँ कि वह शस्त्र चलाने वाला पुरुष लम्बा है, नाटा है या औसत कद का'; (या) वह यों कहे––मैं तब तक···जान लूँ कि वह काला है, साँवला है या पीली छवि (आभा) वाला है'; (या) वह यों कहे––'मैं तब तक···जान लूँ कि वह अमुक गाँव, कस्बे या नगर का वासी है'; (या) वह यों कहे––'मैं तब तक इस शल्य को नहीं निकालने दूँगा, जब तक कि मैं उस धनुष के बारे में न जान लूँ, जिससे यह शस्त्र (बाण) छोड़ा गया है कि वह चाप (लोहे का बना हुआ) है या कोदण्ड (बाँस का धनुष)'; (या) वह यह कहे––'मैं तब तक···उस धनुष की डोरी (ज्या) के बारे में न जान लूँ कि वह आक (मदार) के दूध की, या साठे की, या ताँत की, या मरुवा लता की, या क्षीरपर्णी (दूधिया जड़ी) से बनी हुई है'; (या) वह यह कहे––'मैं तब तक···उस बाण

[N.111] वा रोपिमं' ति; सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं कण्डं जानामि येनम्हि विद्धो, यस्स पत्तेहि वाजितं यदि वा गिज्झस्स यदि वा कङ्कस्स यदि वा कुललस्स यदि वा मोरस्स यदि वा सिथिलहनुनो' ति; सो एवं वदेय्य—'न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं कण्डं जानामि येनम्हि विद्धो, यस्स न्हारुना परिक्खित्तं यदि वा गवस्स यदि वा महिंसस्स यदि वा रोरुवस्स यदि वा सेम्हारस्सा' ति; सो एवं वदेय्य—न तावाहं इमं सल्लं आहरिस्सामि याव न तं सल्लं जानामि येनम्हि विद्धो, यदि वा सल्लं यदि वा खुरप्पं यदि वा वेकण्डं यदि वा नाराचं यदि वा वच्छदन्तं यदि वा करवीरपत्तं' [R.430] ति—अञ्ञातमेव तं, मालुक्यपुत्त, तेन पुरिसेन अस्स, अथ सो पुरिसो कालं करेय्य। एवमेव खो, मालुक्यपुत्त, यो एवं वदेय्य—'न तावाहं भगवति ब्रह्मचरियं चरिस्सामि याव मे भगवा न ब्याकरिस्सति—सस्सतो लोको ति वा असस्सतो लोको ति वा···पे०···नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा' ति—अब्याकतमेव तं, मालुक्यपुत्त, तथागतेन अस्स, अथ सो पुग्गलो कालं करेय्य।

में पीछे लगे काण्ड के बारे में न जान लूँ कि वह किसी तालाब के किनारे स्वयं अनायास उगे सर्पत का है या किसी के द्वारा बोये हुए सर्पत का'; (या) वह यह कहे—'मैं तब तक उस बाण के पिछले भाग में लगे शरकाण्ड के साथ चिपके हुए फर (पंख) के बारे में यह न जान लूँ कि वे बाज के, गिद्ध के, कङ्क (एक विशेष प्रकार का गिद्ध जाति का पक्षी) के, या बगुले के, या मोर के, या शिथिलहनु (एक विशेष प्रकार का पक्षी) के पंख हैं'; (या) वह यह कहे—'मैं तब तक···न जान लूँ कि बाण फेंकने वाली धनुष की ताँत किस पशु की आँत से बनी हुई थी—गौ की, भैंस की, रोरुव (मृग) की, या बन्दर की'; (या) वह यह कहे—'मैं तब तक··· मैं जिस बाण बिंधा हूँ, उसकी जाति के बारे में न जान लूँ कि क्या वह बाण शल्य की तरह (तीखा), या खुरपे की तरह, या दुधारा, या नाराच की तरह, या वत्सदन्त (बछड़े के दाँतों की तरह छोटे-छोटे दाँते (नोंक) वाला) की तरह, या करवीरपत्र की भाँति लम्बी-लम्बी नोंक वाला है'—यदि वह शल्यविद्ध पुरुष इन बातों को जानने का आग्रह ही किये रहे तो निश्चित है कि इन्हें बिना जाने ही उसकी मृत्यु हो जायगी। इसी तरह, मालुक्यपुत्र! जो यह कहे—'मैं तब तक भगवदुपष्टि धर्म की दीक्षा नहीं लूँगा, जब तक कि भगवान् मुझे इन बातों का स्पष्टीकरण न कर दें, जैसे—(१) यह लोक शाश्वत है, (२) यह लोक अशाश्वत···मरणानन्तर तथागत न नहीं होते', तो उसे ये बातें अन्त तक अस्पष्ट (अब्याकृत) ही रह जायेंगी और एक दिन वह मर जायगा।

३. कस्मा अब्याकतं

६. "'सस्सतो लोको' ति, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एवं 'नो असस्सतो लोको' ति, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एवं पि 'नो सस्सतो लोको' ति वा, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति, 'असस्सतो लोको' ति वा दिट्ठिया सति अत्थेव जाति, अत्थि जरा, अत्थि मरणं, सन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा; येसाहं दिट्ठेव धम्मे निघातं पञ्ञापेमि। 'अन्तवा लोको' ति, मालुक्यपुत, दिट्ठिया [B. 94] सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एवं 'नो अन्तवा लोको' ति, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एवं पि 'नो अन्तवा लोको' ति वा, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति, 'अन्तवा लोको' ति [N. 112] वा दिट्ठिया सति अत्थेव जाति, अत्थि जरा, अत्थि मरणं, सन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा; येसाहं दिट्ठेव धम्मे निघातं पञ्ञापेमि। 'तं जीवं तं सरीरं' ति, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एवं 'नो अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एव पि 'नो तं जीवं तं सरीरं' ति वा, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति, 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति वा दिट्ठिया सति अत्थेव जाति…पे… निघातं पञ्ञापेमि। 'होति तथागतो परं मरणा' ति, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एवं 'नो न होति तथागतो परं मरणा' ति मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एवं पि 'नो

---

३. किस कारण इनका व्याकरण नहीं होता

६. "मालुक्यपुत्र ! क्या (१) 'लोक शाश्वत है'--यह जानने पर ही हम धर्म का आचरण शुरू करेंगे, और ऐसा भी नहीं है कि (२) 'यह लोक अशाश्वत है'--यह जानने पर ही धर्माचरण प्रारम्भ करेंगे। मालुक्यपुत्र ! भले ही वह साधक 'लोक शाश्वत है' या 'अशाश्वत'--यह जाने या न जाने तब भी उसका जन्म तो है ही, उसकी जरा भी है ही, उसकी मृत्यु भी है ही, शोक-परिदेव-दुःख-दौर्मनस्य-उपायास भी उसे घेरे ही रहेंगे; जिनके कि नाश का मैं इसी जन्म में उपदेश करता हूँ। मालुक्यपुत्र ! क्या (३-४) 'लोक अन्तवान् है' यह जानने पर ही … उपदेश करता हूँ। मालुक्यपुत्र ! क्या (५-६) 'वही जीव है, वही शरीर है'--यह जानने पर ही… उपदेश करता हूँ। मालुक्यपुत्र ! क्या (७-८) 'तथागत मरने के बाद होते हैं'--यह जानने पर ही… उपदेश करता हूँ। मालुक्यपुत्र ! क्या (९) 'मरणानन्तर तथागत होते

होति तथागतो परं मरणा' ति वा, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति वा दिट्ठिया सति अत्थेव जाति ···पे···येसाहं दिट्ठेव [R. 431] धम्मे निघातं पञ्ञापेमि। 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एवं 'नो नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो अभविस्सा ति, एवं पि 'नो होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति, मालुक्यपुत्त, दिट्ठिया सति, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति वा दिट्ठिया सति अत्थेव जाति···पे०···येसाहं दिट्ठेव धम्मे निघातं पञ्ञापेमि।

७. "तस्मातिह, मालुक्यपुत्त, अब्याकतं च मे अब्याकततो धारेथ; ब्याकतं च मे ब्याकततो धारेथ। किं च, मालुक्यपुत्त, मया अब्याकतं? 'सस्सतो लोको' ति मालुक्यपुत्त, मया अब्याकतं; 'असस्सतो लोको' ति—मया अब्याकतं; 'अन्तवा लोको' ति—मया अब्याकतं; 'अनन्तवा लोको' ति—मया अब्याकतं; 'तं जीवं तं सरीरं' ति—मया अब्याकतं; 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति—मया अब्यात; 'होति तथागतो परं मरणा' ति—मया अब्याकतं; 'न होति [B. 95] तथागतो परं मरणा' ति—मया अब्याकतं; 'होति च न च होति

भी हैं, नहीं भी होते—यह जानने पर ही हम धर्म का आचरण शुरू करेंगे! और ऐसा भी नहीं है कि (१०) 'मरणानन्तर तथागत न होते हैं, न नहीं होते'—यह जानने पर ही धर्माचरण प्रारम्भ करेंगे। मालुक्यपुत्र! भले ही वह साधक (९) 'मरणानन्तर तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते हैं' या (१०) 'मरणानन्तर तथागत न होते हैं, न नहीं होते—यह जाने या न जाने तब भी उसका जन्म तो है ही···इसी जन्म में इनके नाश का मैं उपदेश करता हूँ।

७. "इसलिये मालुक्यपुत्र! मेरे द्वारा अब्याकृत बातों को अब्याकृत के रुप में ही जान धारण कर, और मेरे द्वारा ब्याकृत को ब्याकृत के रुप में जान धारण कर। मालुक्यपुत्र! मैंने क्या ब्याकृत (स्पष्ट) नहीं किया है? मालुक्यपुत्र! (१) लोक शाश्वत है'—इस मतवाद को मैंने ब्याकृत नहीं किया है, अब्याकृत ही रखा है, (२) 'लोक अशाश्वत···पूर्ववत्···(१०), मरणानन्तर तथागत न नहीं होते'—इस मतवाद मैंने अब्याकृत किया है। मालुक्यपुत्र! मैंने इस मतवाद को क्यों नहीं ब्याकृत को किया? क्योंकि मालुक्यपुत्र! इस मतवाद का जानना, निश्चय ही न तो सार्थक (सप्रयोजन) है, न धर्माभ्यास प्रारम्भ करने में उपयोगी है, न यह

तथागतो परं मरणा' ति--मया अब्याकतं; 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति--मया अब्याकतं। कस्मा चेतं, मालुक्यपुत्त, मया [N. 113] अब्याकतं ? न हेतं, मालुक्यपुत्त, अत्थसंहितं न आदिब्रह्मचरियकं न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति। तस्मा तं मया अब्याकतं।

"किं च, मालुक्यपुत्त, मया ब्याकतं ? 'इदं दुक्खं' ति, मालुक्यपुत्त, मया ब्याकतं; 'अयं दुक्खसमुदयो' ति--मया ब्याकतं; 'अयं दुक्खनिरोधो' ति--मया ब्याकतं; 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति--मया ब्याकतं। कस्मा चेतं, मालुक्यपुत्त, मया ब्याकतं ? एतं हि, मालुक्यपुत्त, अत्थसंहितं एतं आदिब्रह्मचरियकं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। तस्मा तं मया ब्याकतं। तस्मातिह, [R. 432] मालुक्यपुत्त, अब्याकतं च मे अब्याकततो धारेथ; ब्याकतं च मे ब्याकततो धारेथा" ति।

८. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा मालुक्यपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

कामभोगों से दूर हटने में, न उनसे वैराग्य में, न इन्द्रिय-निरोध में, न चित्तशान्ति के लिये, न ज्ञान के साक्षात्कार में हेतु और न निर्वाणप्राप्ति में ही कथमपि सहायक है। इसलिये मैंने उस मतवाद का व्याकरण नहीं किया।

"मालुक्यपुत्र ! और मैंने किस बात का व्याकरण किया है ? मालुक्यपुत्र ! 'यह दुःख है'— यह व्याकृत किया है, 'यह दुःखसमुदय है'—यह व्याकृत किया है, 'यह दुःखनिरोध है'--यह व्याकृत किया है, 'यह दुःख निरोधगामी मार्ग है'— यह व्याकृत किया है ! मालुक्यपुत्र ! मैंने इस का व्याकरण क्यों किया ? क्योंकि मालुक्यपुत्र ! इसका जानना सार्थक है , यह धर्माभ्यास प्रारम्भ करने में, कामभोगों से दूर हटने में, उनसे वैराग्य में, इन्द्रियनिरोध में, चित्तशान्ति के लिये, ज्ञान के साक्षात्कार में और निर्वाण प्राप्ति में अत्यन्त सहायक है। इसलिये मैंने इसका व्याकरण किया है। मालुक्यपुत्र ! इसलिये मेरे द्वारा अव्याकृत को अव्याकृत रूप में ही मानकर, धारण कर; और मेरे द्वारा व्याकृत को व्याकृत रूप में धारण कर।

८. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमन आयुष्मान् मालुक्यपुत्र ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

चूलमालुक्यसुत्त समाप्त॥

१४. महामालुक्यसुत्तं

[N. 114] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

१. पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि

"धारेथ नो तुम्हे, भिक्खवे, मया देसितानि पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानी" ति?

एवं वुत्ते, आयस्मा मालुक्यपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"अहं खो, भन्ते, धारेमि भगवता देसितानि पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानी" ति।

"यथा कथं पन त्वं, मालुक्यपुत्त, धारेसि मया देसितानि पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानी" ति?

[B. 96] "सक्कायदिट्ठिं खो अहं, भन्ते, भगवता ओरम्भागियं संयोजनं देसितं धारेमि; विचिकिच्छं खो अहं, भन्ते, भगवता ओरम्भागियं संयोजनं देसितं धारेमि; सीलब्बतपरामासं खो अहं, भन्ते, भगवता ओरम्भागियं संयोजनं

---

१४. महामालुक्यसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा बनवाये जेतवनाराम में विहार (साधना) कर रहे थे। उस समय भगवान् ने भिक्षुओं को "भिक्षुओ !" सम्बोधन कर बुलाया। भिक्षुजन "अच्छा, भन्ते !"—कहकर उनके पास गये। भगवान् ने यों कहा--

१. पाँच अवरभागीय संयोजन

"भिक्षुओ ! क्या तुम मेरे द्वारा उपदिष्ट पाँच अवरभागीय संयोजनों पर चिन्तन (धारण) करते हो ?"

ऐसा पूछने पर आयुष्मान् मालुक्यपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—"हाँ, भन्ते ! मैं आप द्वारा उपदिष्ट पाँच अवरभागीय संयोजनों का चिन्तन करता हूँ ?"

"मालुक्यपुत्र ! तुम मेरे द्वारा उपदिष्ट इन पाँच अवरभागीय संयोजनों का कैसे चिन्तन करते हो ?"

"भन्ते ! (१) 'सत्कायदृष्टि' (काया को ही सब कुछ समझना) को मैंने आप द्वारा उपदिष्ट पाँच अवरभागीय संयोजनों में से एक माना है; (२) भन्ते ! मैंने 'विचिकित्सा' (सन्देह) को उन पाँच अवरभागीय संयोजनों में माना है; (३) भन्ते ! मैंने 'शीलव्रतपरामर्श' (शील-व्रत को ही सब कुछ मानना) को···, (४)

देसितं धारेमि; कामच्छन्दं खो अहं, भन्ते, भगवता ओरम्भागियं संयोजनं देसितं धारेमि; ब्यापादं खो अहं, भन्ते भगवता ओरम्भागियं संयोजनं देसितं धारेमि। एवं खो अहं, भन्ते, धारेमि भगवता देसितानि पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानी" ति।

"कस्स खो नाम त्वं, मालुक्यपुत्त, इमानि एवं पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि देसितानि धारेसि? ननु, मालुक्यपुत्त, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका इमिना तरुणूपमेन उपारम्भेन उपारम्भिस्सन्ति? दहरस्स हि, मालुक्यपुत्त, कुमारस्स मन्दस्स उत्तानसेय्यकस्स सक्कायो ति पि न [N. 115, R. 433] होति, कुतो पनस्स उप्पज्जिस्सति सक्कायदिट्ठि? अनुसेति त्वेवस्स सक्काय-दिट्ठानुसयो। दहरस्स हि, मालुक्यपुत्त, कुमारस्स मन्दस्स उत्तानसेय्यकस्स धम्मा ति पि न होति, कुतो पनस्स उप्पज्जिस्सति धम्मेसु विचिकिच्छा? अनुसेति त्वेवस्स विचिकिच्छानुसयो। दहरस्स हि, मालुक्यपुत्त, कुमारस्स मन्दस्स उत्तानसेय्यकस्स सीला ति पि न होति, कुतो पनस्स उप्पज्जिस्सति सीलेसु सीलब्बतपरामासो? अनुसेति त्वेवस्स सीलब्बतपरामासानुसयो। दहरस्स हि, मालुक्यपुत्त, कुमारस्स मन्दस्स उत्तानसेय्यकस्स कामा ति पि न

भन्ते! मैंने 'कामच्छन्द' (विषयासक्ति) को···, (५) भन्ते! मैंने 'व्यापाद' (हिंसा) को उन पाँच अवरभागीय संयोजनों में माना है। इस तरह, भन्ते! मैंने आप द्वारा उपदिष्ट पाँच अवरभागीय सयोजनों पर चिन्तन किया है।"

"अरे, मालुक्यपुत्र! तूँ किसके द्वारा उपदिष्ट इन पाँच अवरभागीय संयोजनों का चिन्तन कर रहा है? मालुक्यपुत्र! निश्चय ही ऐसी बचकानी बातों से दूसरे सम्प्रदायों के परिव्राजक ही इस तरह सीधे साधे आदमियों को बहकाते हैं! मालुक्य-पुत्र! पालने में लेटे, अबोध, छोटे बच्चे को 'सत्काय' (आत्मवाद) ही नहीं होता, फिर उसे 'सत्कायदृष्टि' कहाँ से उत्पन्न होगी? हाँ, सत्कायदृष्टि का संस्कार अवश्य उससे सम्पृक्त रहता है। मालुक्यपुत्र! वह पालने में लेटा, अबोध एवं छोटा शिशु तो धर्मों (मानसिक विचारों) के बारे में भी कुछ नहीं जानता, फिर उसे उन धर्मों के प्रति 'विचिकित्सा' कहाँ से उत्पन्न होगी! हाँ, उस विचिकित्सा के संस्कार अवश्य उससे सम्पृक्त रहते हैं। मालुक्यपुत्र! वह पालने में लेटा, अबोध एवं छोटा बच्चा 'शील' (सदाचार) के बारे में कुछ ही नहीं जानता, तो फिर उसमें 'शीलव्रतपरामर्श' की क्या आशा रखी जा सकती है! हाँ, उससे शीलव्रत-परामर्श के संस्कार अवश्य सम्पृक्त रहते हैं। फिर मालुक्यपुत्र! वह पालने में लेटा,

होति, कुतो पनस्स उप्पज्जिस्सति कामेसु कामच्छन्दो? अनुसेति त्वेवस्स कामरागानुसयो। दहरस्स हि, मालुक्यपुत्त, कुमारस्स मन्दस्स उत्तानसेय्यकस्स सत्ता ति पि न होति, कुतो पनस्स उप्पज्जिस्सति सत्तेसु ब्यापादो? अनुसेति त्वेवस्स ब्यापादानुसयो। ननु, मालुक्यपुत्त, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका इमिना तरुणूपमेन उपारम्भेन उपारम्भिस्सन्ती" ति?

एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"एतस्स, भगवा, कालो, एतस्स, सुगत कालो यं भगवा पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि देसेय्य। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

"तेन हानन्द, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि, भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

२. ओरम्भागियसंयोजनपहानपटिपदा

[B. 97] २. "इधानन्द, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो, सप्पुरिसानं अदस्सावी

अबोध एवं छोटा बच्चा जब 'काम' के बारे में कुछ नहीं जानता, तो उसमें 'कामासक्ति' (कामच्छन्द) कहाँ से उत्पन्न होगी! हाँ, उस कामराग के संस्कार उससे अवश्य सम्पृक्त रहते हैं। इसी तरह, मालुक्यपुत्र! वह पालने में लेटा, मन्द एवं अबोध शिशु 'प्राणी हैं'—यह भी नहीं जानता; तो उसे उनके 'उत्पीड़न की इच्छा' (=व्यापाद) कहाँ से उत्पन्न होगी! हाँ, उस उत्पीड़न की इच्छा के संस्कार अवश्य उससे सम्पृक्त रहते हैं। मालुक्यपुत्र! निश्चय ही ऐसी बचकानी बातों से दूसरे सम्प्रदाय के परिव्राजक सीधे-साधे लोगों को बहकाते हैं!"

(भगवान् के) ऐसा कहने पर, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! इस समय, इस बात का अवसर भी है और प्रसङ्ग भी कि आप इन पाँच अवरभागीय संयोजनों के बारे में उचित उपदेश करें। आपसे सुनकर, भिक्षुजन इसे उसी रूप में धारण करेंगे।"

"तो, आनन्द! सुनो, ठीक से मन में बैठा लो, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

"अच्छा भन्ते!"—कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को उत्तर दिया। (तब) भगवान् यों बोले—

२. पञ्चअवरभागीय संयोजनों प्रहाण का मार्ग

२. "आनन्द! यहाँ कोई अज्ञ, पृथग्जन, जो आर्यजनों का न चिन्तन करता है, न उनके धर्मों के विषय में कुछ जानता है, न उनके उन धर्मों में कोई श्रद्धा रखता

सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो सक्कायदिट्ठिपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति सक्कायदिट्ठिपरेतेन; उप्पन्नाय च सक्कायदिट्ठिया निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स सा सक्कायदिट्ठि थामगता अप्पटिविनीता ओरम्भागियं संयोजनं। विचिकिच्छापरियुट्ठितेन चेतसा विहरति [N. 116] विचिकिच्छापरेतेन, उप्पन्नाय च विचिकिच्छाय निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स सा विचिकिच्छा थामगता अप्पटिविनीता ओरम्भागियं संयोजनं। सीलब्बतपरामासपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति सीलब्बतपरामासपरेतेन; उप्पन्नस्स च सीलब्बतपरामासस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स सो सीलब्बतपरासासो थामगतो अप्पटिविनीतो ओरम्भागिय संयोजनं। कामरागपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति कामरागपरेतेन; उप्पन्नस्स च [R. 334] कामरागस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स सो कामरागो थामगतो अप्पटिविनीतो ओरम्भागियं संयोजनं। ब्यापादपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ब्यापादपरेतेन; उप्पन्नस्स च ब्यापादस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स सो ब्यापादो थामगतो अप्पटिविनीतो ओरम्भागियं सयोजनं।

३. "सुतवा च खो, आनन्द, अरियसावको अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो, सप्पुरिसान दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पुरिसधम्मे सुविनीतो न सक्कायदिट्ठिपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति

है, सत्पुरुषों के बारे में न कुछ जानता है, न उनके बताये रास्ते के विषय में कुछ जानता है, न उनके प्रति या उन धर्मों के प्रति श्रद्धा रखता है, वह सत्कायदृष्टि से युक्त एवं सम्पृक्त चित्त से चिन्तन करता है; और इस सत्कायदृष्टि के उत्पाद से वह (जगत्प्रपंच से) निकलने का वास्तविक मार्ग नहीं जानता। उसकी यह दृढ़ताप्राप्त, एवं गहराई सत्कायदृष्टि 'अवरभागीय संयोजन' है। विचिकित्सा से युक्त एवं सम्पृक्त ...विचिकित्सा 'अवरभागीय सयोजन' है। शीलव्रत परामर्श से युक्त एवं सम्पृक्त...शीतलव्रतपरामर्श 'अवरभागीय सयोजन' है। कामराग से युक्त एवं सम्पृक्त ...कामराग 'अवरभागीय संयोजन' है। व्यापाद से युक्त एवं सम्पृक्त चित्त से चिन्तन करता है; और इस व्यापाद के उत्पाद से वह निकलने का वास्तविक मार्ग नहीं जानता। उसका यह दृढ़ताप्राप्त एवं गहरा या व्यापाद 'अवरभागीय सयोजन' है।

३. "इसके विपरीत, आनन्द ! ऐसा कोई आर्यश्रावक, जो आर्यजनों के धर्मों के सिद्धान्तों का श्रवण कर चुका है, आर्यधर्मों का जानकार है, उन धर्मों में श्रद्धा-विश्वास रखता है, सत्पुरुषों के बताये मार्ग को पहचानता है, उनके बताये मार्ग का जानकार है, उनके मार्ग में श्रद्धा रखता है, वह इस सत्कायदृष्टि से युक्त एवं सम्पृक्त

न सक्कायदिट्ठिपरेतेन; उप्पन्नाय च सक्कायदिट्ठिया निस्सरणं यथाभूतं पजानाति। तस्स सा सक्कायदिट्ठिसानुसया पहीयति। न विचिकिच्छापरियुट्ठितेन चेतसा विहरति न विचिकिच्छापरेतेन; उप्पन्नाय च विचिकिच्छाय निस्सरणं यथाभूतं पजानाति। तस्स सा विचिकिच्छा सानुसया पहीयति। न सीलब्बतपरामासपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति न सीलब्बतपरामासपरेतेन; उप्पन्नस्स च सीलब्बतपरामासस्स निस्सरणं यथाभूतं पजानाति। तस्स सो सीलब्बतपरामासो सानुसयो पहीयति। न कामरागपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति न कामरागपरेतेन; उप्पन्नस्स च कामरागस्स निस्सरणं यथाभूतं पजानाति। तस्स सो कामरागो सानुसयो पहीयति। न ब्यापादपरियुट्ठितेन चेतसा [B. 98] विहरति न ब्यापादपरेतेन; उप्पन्नस्स च ब्यापादस्स निस्सरणं यथाभूतं पजानाति। तस्स सो ब्यापादो सानुसयो पहीयति।

४. "यो, आनन्द, मग्गो या पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं [N. 117] पहानाय तं मग्गं तं पटिपदं अनागम्म पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि ञस्सति वा दक्खति वा पजहिस्सति वा ति—नेतं ठानं विज्जति। सेय्यथापि, आनन्द, महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो तचं अच्छेत्वा फेग्गुं अच्छेत्वा सारच्छेदो भविस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति; एवमेव खो, आनन्द, यो मग्गो या पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोज-

---

चित्त से चिन्तन नहीं करता; और इस सत्कायदृष्टि के उत्पाद से वह निकलने का वास्तविक मार्ग जानता है। जिससे उसकी सत्कायदृष्टि संस्कारसहित हो प्रहीण हो जायगी। विचिकित्सा...शीलव्रतपरामर्श...कामराग...व्यापाद से युक्त एवं सम्पृक्त चित्त से चिन्तन नहीं करता; और इस व्यापाद के उत्पाद से निकलने का वास्तविक मार्ग जानता है। जिससे उसका व्यापाद संस्कारसहित प्रहीण हो जाता है।

४. "आनन्द! यह सम्भव नहीं है कि जो यह पाँच अवरभागीय संयोजनों के प्रहाण का मार्ग है, उसे जाने बिना उन पाँच अवरभागीय संयोजनों को जान पाये, देख पाये या उन्हें नष्ट कर पाये! जैसे कि आनन्द! यह सम्भव नहीं है कि किसी दृढ़काष्ठ वाले वृक्ष की छाल या गूदे को काटे बिना उसका आन्तरिक दृढ़काष्ठ काट लिया जाय; इसी तरह, आनन्द! जो यह पाँच अवरभागीय संयोजनों के प्रहाण का मार्ग है, उसे जाने बिना उन पाँच अवरभागीय संयोजनों को वह जान पाये, देख पाये या उन्हें नष्ट कर पाये—यह सम्भव नहीं।

नानं पहानाय तं मग्गं तं पटिपदं अनागम्म पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि ञस्सति वा दक्खति वा पजहिस्सति वा ति—नेतं ठानं विज्जति।

"यो च खो, आनन्द, मग्गो या पटिपदा ओरम्भागियानं संयोजनानं पहानाय तं मग्गं तं पटिपदं आगम्म पञ्चोरम्भागियानि [R. 435] संयोजनानि ञस्सति वा दक्खति वा पजहिस्सति वा ति—ठानमेतं विज्जति। सेय्यथापि, आनन्द, महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो तचं छेत्वा सारच्छेदो भविस्सती ति—ठानमेतं विज्जति; एवमेव खो,आनन्द यो, मग्गो या पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं पहानाय तं मग्गं तं पटिपदं आगम्म पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि ञस्सति वा दक्खति वा पजहिस्सति वा ति—ठानमेतं विज्जति। सेय्यथापि, आनन्द, गङ्गा नदी पूरा उदकस्स समतित्तिका काकपेय्या, अथ दुब्बलको पुरिसो आगच्छेय्य —'अहं इमिस्सा गङ्गाय नदिया तिरियं बाहाय सोतं छेत्वा सोत्थिना पारं गच्छिस्सामी' ति; सो न सक्कुणेय्य गङ्गाय नदिया तिरियं बाहाय सोतं छेत्वा सोत्थिना पारं गन्तुं। एवमेव खो, आनन्द, येसं केसञ्चि सक्काय-निरोधाय धम्मे देसियमाने चित्त न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति। सेय्यथापि सो दुब्बलको पुरिसो एवमेते दट्ठब्बा। सेय्यथापि, आनन्द, गङ्गा नदी पूरा उदकस्स समतित्तिका काकपेय्या, अथ बलवा

"आनन्द! परन्तु यह सम्भव है कि वह आर्यश्रावक जो उन पाँच अवरभागीय संयोजनों के प्रहाण का मार्ग है, उसे जानकर ही उन पाँच अवरभागीय संयोजनों को सही ढग से जान सके, देख सके या उन्हें नष्ट कर पाये। आनन्द! जैसे यह सम्भव है कि किसी दृढ़काष्ठ वाले वृक्ष की छाल या गूदे को काटकर उसके आन्तरिक दृढ़काष्ठ को काट लिया जाय। इसी तरह, आनन्द! जो यह पाँच अवरभागीय...जान सके, देख सके या उन्हें नष्ट कर पाये। जैसे आनन्द! कभी गङ्गा नदी किनारों तक ऐसी लबालब भरी हुई हो कि जहाँ किनारे पर बैठकर कौए आदि पक्षी भी आराम से जल पी सकें, वहाँ कोई दुर्बल व्यक्ति आये और कहे— 'मैं इस गंगानदी के तीव्र प्रवाह को हाथों से ही तिरछे पैर (तैर) कर आराम से उस पार चला जाऊँगा', परन्तु वह (अपनी दुर्बलता के कारण) वैसा नहीं कर पायेगा। इसी तरह, आनन्द! जिन किन्हीं (पृथग्जनों) का चित्त, सत्कायनिरोध का उपदेश सुनने पर भी, द्रवित (मुदित) नहीं होता, न प्रसन्न होता, न स्थिर रहता है, न मुक्त होता है, उनको इसी दुर्बल पुरुष की तरह समझना चाहिये। इसके विपरीत, आनन्द! कभी गङ्गा नदी किनारों तक...जल पी सकें, तब वहाँ कोई

पुरिसो आगच्छेय्य—'अहं इमिस्सा गङ्गाय नदिया तिरियं बाहाय सोतं [B. 99] छेत्वा सोत्थिना पारं गच्छिस्सामी' ति; सो सक्कुणेय्य गङ्गाय नदिया तिरियं बाहाय सोतं छेत्वा सोत्थिना पारं गन्तुं। एवमेव खो, आनन्द, येसं केसञ्चि सक्कायनिरोधाय धम्मे देसियमाने चित्तं पक्खन्दति [N. 118] पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति। सेय्यथापि सो बलवा पुरिसो एवमेते दट्ठब्बा।

५. "कतमो चानन्द, मग्गो, कतमा पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं पहानाय ? इधानन्द, भिक्खु उपधिविवेका अकुसलानं धम्मानं पहाना सब्बसो कायदुट्ठुल्लानं पटिप्पस्सद्धिया विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो यदेव तत्थ होति रूपगतं वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं ते धम्मे अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो अबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो समनुपस्सति। सो तेहि धम्मेहि चित्तं पटिवापेति। सो तेहि धम्मेहि चित्तं पटिवापेत्वा [R. 436] अमताय धातुया चित्तं उपसंहरति—'एतं सन्तं पणीतं यदिदं

बलवान पुरुष आये और यह कहे—'मैं इस गङ्गानदी को...पार चला जाऊँगा', और वह ऐसा करके आराम से पार चला जाये। इसी तरह, आनन्द ! जिन किन्हीं (आर्यश्रावकों) का चित्त, सत्कायनिरोध का उपदेश सुनने पर, द्रवित होता है, प्रसन्न होता है, स्थिर रहता है, मुक्त होता है, उन आर्यश्रावकों को उसी बलवान् पुरुष की तरह समझना चाहिये।

५. "आनन्द ! इन पाँच अवरभागीय संयोजनों के नाश के लिये कौन सा मार्ग है, कौन सा रास्ता (उपाय) है ? यहाँ आनन्द ! भिक्षु चित्त की अस्थिरता को बढ़ाने वाले विकारों (= उपधि) को त्याग कर, अकुशल-धर्मों को छोड़कर, काय-चंचलता का शमन कर, कामभोग और अकुशल धर्मों से दूर रहकर, वितर्क-विचार सहित विवेकजन्य प्रीतिसुख वाले प्रथमध्यान की साधना करता है। वह (भिक्षु) जो कुछ रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले धर्म हैं, उन्हें अनित्य, दुःख, रोग, गण्ड (व्रण), शल्य (कीला), घाव, आबाधा (पीड़ा), पराया, नश्वर, शून्य और अनात्म के तौर पर देखता है। वह उन धर्मों से चित्त को रोक कर, उसे अमृतोपम निर्वाण पद पाने की ओर लगाता है—'यही शान्त है, सुखमय है, क्योंकि यह निर्वाण सभी संस्कारों का शामक है, समग्र मानसविकारों (=उपधि) के

सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हाक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं' ति। सो तत्थ ठितो आसवानं खयं पापुणाति; नो चे आसवानं खयं पापुणाति; नो चे आसवानं खयं पापुणाति तेनेव धम्मरागेन ताय धम्मनन्दिया पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति, तत्थ परिनिब्बायी, अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं पि खो, आनन्द, मग्गो अयं पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं पहानाय।

"पुन च परं, आनन्द, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा ··पे०··· दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति पे० ततियं झानं ··पे०···चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो यदेव तत्थ होति रूपगतं वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं···पे०···अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं पि खो, आनन्द, मग्गो अयं पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं पहानाय।

"पुन च परं, आनन्द, भिक्खु सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघ-सञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो अकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो यदेव तत्थ [B. 100] होति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं··पे···अनावत्तिधम्मो

त्याग में सहायक है, तृष्णाक्षयकारक है, वैराग्योत्पादक है, निरोधकारक है'। वह यह साधना करता हुआ, अपने सभी आस्रवों का क्षय कर लेता है; यदि किसी कारण-वश वह अपने आस्रवों का क्षय न कर पाये तो इस साधना में लगाव तथा प्रीति के कारण इन पाँच अवरभागीय संयोजनों का प्रहाण तो कर ही लेता है और (इस देहपात के बाद) देवयोनि में उत्पन्न हो वहाँ परिनिर्वृत होता है, उस लोक से च्युत नहीं हो पाता। आनन्द ! यह भी एक मार्ग है, उपाय है, उन पाँच अवरभागीय संयोजनों के प्रहाण (नाश) का।

"और फिर, आनन्द ! वह भिक्षु वितर्क-विचार के शान्त हो जाने पर···द्वितीय ध्यान···तृतीय ध्यान···चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। वह (भिक्षु) जो कुछ रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान से···उस लोक से च्युत नहीं हो पाता। आनन्द ! यह भी एक मार्ग है, उपाय है, उन पाँच अवरभागीय संयोजनों के प्रहाण का।

"और फिर, आनन्द ! वह भिक्षु रूपसंज्ञाओं का सर्वथा समतिक्रमण हो जाने से और प्रतिघसंज्ञाओं के अस्त हो जाने से नानात्वसंज्ञाओं की ओर चित्त न लगाकर 'आकाश अनन्त है'—इस प्रकार आकाशानन्त्यायतन की साधना करता है। वह

[N. 119] तस्मा लोका। अयं पि खो, आनन्द, मग्गो अयं पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं पहानाय।

"पुन च परं, आनन्द, भिक्खु सब्बसो आकासानञ्चायततं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो यदेव तत्थ होति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं···पे०··· अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं पि खो, आनन्द, मग्गो अयं पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं पहानाय।

"पुन च परं, आनन्द, भिक्खु सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो यदेव तत्थ होति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं··पे०··· [R. 437] अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं पि खो, आनन्द मग्गो अयं पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनं पहानाय।

३. चेतोविमुत्ति पञ्ञाविमुत्ति

६. "एसो चे, भन्ते, मग्गो एसा पटिपदा पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं पहानाय, अथ किञ्चरहि इधेकच्चे भिक्खू चेतोविमुत्तिनो एकच्चे भिक्खू पञ्ञाविमुत्तिनो" ति?

(भिक्षु) जो कुछ रूप, वेदना···च्युत नहीं हो पाता। आनन्द! यह भी एक मार्ग है, उपाय है, उन पाँच अवरभागीय संयोजनों के प्रहाण का।

"और फिर, आनन्द! वह भिक्षु आकाशानन्त्यायतन से भी आगे बढ़कर 'विज्ञान अनन्त है'—इस विज्ञानानन्त्यायतन की साधना करता है। वह (भिक्षु) जो कुछ रूप, वेदना···च्युत नहीं हो पाता। आनन्द! यह भी एक मार्ग···संयोजनों के प्रहाण का।

"और फिर आनन्द! वह भिक्षु उससे भी आगे बढ़कर, 'कुछ भी नहीं है'—यों समझता हुआ आकिञ्चन्यायतन की साधना करता है। वह (भिक्षु) जो कुछ रूप, वेदना···च्युत नहीं हो पाता। आनन्द! यह भी एक मार्ग है, उपाय है, उन पाँच अवरभागीय संयोजनों के प्रहाण का।"

३. चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति

६. "ठीक है, भन्ते! पाँच अवरभागीय संयोजनों के प्रहाण का यही मार्ग है, यही उपाय है, परन्तु आजकल क्यों कुछ साधक भिक्षु चेतोविमुक्ति की साधना करते हैं, कुछ प्रज्ञाविमुक्ति की साधना करते हैं।

"एत्थ खो पन तेसाहं, आनन्द, इन्द्रियवेमत्ततं वदामी" ति।

७. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भासितं अभिनन्दी ति।

"आनन्द ! यह मेरी दृष्टि में उनकी मानसिकशक्ति का वैचित्र्य मात्र है।"

७. भगवान ने यह कहा। प्रसन्नमन आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया।

महामालुक्यसुत्त समाप्त ॥

१५. भद्दालिसुत्तं

[N. 120] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

१. एकासनभोजने भद्दालिस्स अनुस्साहो

"अहं खो, भिक्खवे, एकासनभोजनं भुञ्जामि; एकासनभोजनं खो अहं, [B. 101] भिक्खवे, भुञ्जमानो अप्पाबाधतं च सञ्जानामि अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं च। एथ, तुम्हे पि, भिक्खवे, एकासनभोजनं भुञ्जथ; एकासनभोजनं खो भिक्खवे, तुम्हे पि भुञ्जमाना अप्पाबाधतं च सञ्जानिस्सथ अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं चा" ति। एवं वुत्ते, आयस्मा भद्दालि भगवन्तं एतदवोच—"अहं खो, भन्ते, न उस्सहामि एकासनभोजनं भुञ्जितुं; एकासनभोजनञ्हि मे, भन्ते, भुञ्जतो सिया कुक्कुच्चं, सिया विप्पटिसारो" ति।

"तेन हि त्वं भद्दालि, यत्थ निमन्तितो अस्ससि तत्थ एकदेसं भुञ्जित्वा

---

१५. भद्रालिसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधना कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने (किसी अवसर पर) भिक्षुओं को "भिक्षुओ !" सम्बोधन कर बुलाया। भिक्षु भी "अच्छा भन्ते !"—कहकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान् ने यह कहा—

१. एककालिक भोजन में भद्रालि का अनुत्साह

"भिक्षुओ ! मैं एक ही बार (=एकासन) भोजन करता हूँ; भिक्षुओ ! यों एक बार भोजन करता हुआ मैं अपने शरीर में नीरोगता, उत्साह, बल और साधना में अधिकाधिक मन लगना—ये अच्छी बातें महसूस करता हूँ। आओ, भिक्षुओ ! तुम भी एक बार भोजन करने की आदत डालो; भिक्षुओ ! एक ही बार भोजन करने से तुम अपने शरीर में भी नीरोगता...आदि अच्छी बातें महसूस करोगे।" (भगवान् के) ऐसा कहने पर आयुष्मान् भद्रालि यों बोले—"मुझे तो एक ही बार भोजन करने में कोई उत्साह नहीं है; क्योंकि, भन्ते ! हो सकता है, एक ही बार भोजन करने से (मेरे शरीर में) बेचैनी या उदासी (भारीपन) महसूस होने लगे।"

"तो भद्रालि ! तुम ऐसा भी कर सकते हो कि तुम्हें निमन्त्रण मिलने पर सामने आये भोजन में से एक हिस्सा उसी समय खाकर, बाकी हिस्से को लाकर बाद में

एकदेसं नीहरित्वा पि भुञ्जेय्यासि। एवं पि खो त्वं, भद्दालि, [R. 438] भुञ्जमानो एकासनो यापेस्ससो" ति।

"एवं पि खो अहं, भन्ते, न उस्सहामि भुञ्जितुं; एवं पि हि, भन्ते, भुञ्जतो सिया कुक्कुच्चं, सिया विप्पटिसारो" ति।

अथ खो आयस्मा भद्दालि भगवता सिक्खापदे पञ्ञापियमाने भिक्खुसङ्घे सिक्खं समादियमाने अनुस्साहं पवेदेसि। अथ खो आयस्मा भद्दालि सब्बं तं तेमासं न भगवतो सम्मुखीभावं अदासि, यथा तं सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरकारी।

२. तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू भगवतो चीवरकम्मं करोन्ति—निट्ठितचीवरो भगवा तेमासच्चयेन चारिकं पक्कमिस्सती ति। अथ [N. 121] खो आयस्मा भद्दालि येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तेहि भिक्खूहि सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं भद्दालिं ते भिक्खू एतदवोचुं—"इदं खो,

---

खा लो। भद्रालि! इस तरह भोजन करने से भी तुम एक ही बार भोजन करने जैसी शारीरिक स्थिति को पा सकोगे।"

"भन्ते! आपकी यह बात मानने में भी मुझे कोई उत्साह नहीं है, क्योंकि, भन्ते! ऐसा करने से भी मुझे वही हैरानी-परेशानी हो सकती है (क्योंकि, भोजन की मात्रा तो एक बार वाली अल्प ही होगी)।"

तब आयुष्मान् भद्रालि ने, भगवान् द्वारा सङ्घ के लिये भोजन विषयक शिक्षापद का उपदेश देते समय और संघ द्वारा उस शिक्षापद को अङ्गीकार करने की स्वीकृति देते समय, उपेक्षा ही प्रकट की, अनुत्साह ही दिखाया। इतना ही नहीं उस पूरे 'त्रैमास' भर (जब सङ्घ वर्षा के तीन महीने एक ही जगह रहकर साधना करता है) आयुष्मान् भद्रालि भगवान् के सम्मुख नहीं गये, क्योंकि वे शास्ता के (भोजन विषयक) अनुशासन को पूरा करने में उपेक्षा (अनुत्साह) दिखा रहे थे।

२. उस समय बहुत से भिक्षु भगवान् के लिये 'चीवरकर्म' (वस्त्र सिलकर तैयार) कर रहे थे कि यह चीवर पहनकर भगवान् 'त्रैमास' के बाद चारिका (उपदेश हेतु देशभ्रमण) प्रारम्भ करेंगे। उस समय आयुष्मान् भद्रालि वहाँ पहुँचे, जहाँ बैठे भिक्षु चीवरकर्म कर रहे थे; पहुँचकर, उन भिक्षुओं से बातचीत करते हुए, कुशल मंगल पूछ, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् भद्रालि से उन भिक्षुओं ने बताया—"आयुष्मन् भद्रालि! भगवान् के लिये यह चीवरकर्म किया जा रहा है। इसे ग्रहण करने के बाद ही 'त्रैमास' से उठ, वे चारिका प्रारम्भ

आवुसो भद्दालि, भगवतो चीवरकम्मं करीयति। निट्ठितचीवरो भगवा तेमासच्चयेन चारिकं पक्कमिस्सति। इङ्घावुसो भद्दालि, एतं देसकं साधुकं मनसि करोहि; मा ते पच्छा दुक्करतरं अहोसी" ति।

"एवमावुसो" ति खो आयस्मा भद्दालि तेसं भिक्खूनं पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा भद्दालि भगवन्तं एतदवोच—"अच्चयो मं, भन्ते, अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, योहं भगवता सिक्खापदे पञ्ञापियमाने भिक्खुसङ्घे सिक्खं समादियमाने अनुस्साहं पवेदेसिं। तस्स मे, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया" ति।

[B. 102] "तग्घ त्वं, भद्दालि, अच्चयो अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, यं त्वं मया सिक्खापदे पञ्ञापियमाने भिक्खुसङ्घे सिक्खं समादियमाने अनुस्साहं पवेदेसि। समयो पि खो ते, भद्दालि, अप्पटिविद्धो अहोसि—'भगवा खो सावत्थियं विहरति, भगवा पि मं जानिस्सति—भद्दालि नाम भिक्खु सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरकारी' ति। अयं पि खो ते, भद्दालि, [R. 439] समयो अप्पटिविद्धो अहोसि। समयो पि खो ते, भद्दालि,

---

करेंगे। अच्छा हो, आयुष्मन् भद्रालि! कि तुम भगवान् की देशना को अब भी अपने मन में ठीक से धारण कर लो, ऐसा न हो कि बाद में उसे पूरा कर पाना (तुम्हारे लिये) दुष्कर हो जाय।"

"ठीक है, आयुष्मानो!"—कह और उन भिक्षुओं को सुन, आयुष्मान् भद्रालि जहाँ भगवान् विराजमान् थे वहाँ पहुँचे; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे, आयुष्मान् भद्रालि भगवान् से यों बोले—"भन्ते! मैंने आपके शिक्षापद का उल्लङ्घन (उपेक्षा) किया—यह मुझसे बहुत बड़ा प्रमाद हुआ। यह प्रमाद वैसा ही था जैसे कोई बच्चा, मूर्ख या पागल (उन्मत्त) करे। भन्ते! आप मेरे उस अपराध को क्षमा करें, भविष्य में मैं अपनी ओर से ऐसी उपेक्षा नहीं होने दूँगा।"

"भद्रालि! निश्चय ही तुमने बच्चों, मूर्खों या उन्मत्तों की तरह यह अपराध किया है कि तुमने मेरे शिक्षा देते समय, उसे संघ द्वारा स्वीकार कर लेने पर भी उपेक्षा दिखायी। भद्रालि! तुम्हें उस समय यह भी विचार नहीं हुआ—'भगवान् भी आजकल श्रावस्ती में ही विहरण कर रहे हैं, वे यदि (मेरी इस उपेक्षा) को जान लेंगे तो उनके मन में यह न हो जाय कि ये भद्रालि नामक भिक्षु शास्ता के अनुशासन (शिक्षा) को पूरा नहीं कर रहा है।' भद्रालि! यह तुमसे गलत कार्य हुआ।

अप्पटिविद्धो अहोसि—'सम्बहुला खो भिक्खु सावत्थियं वस्सं उपगता, ते पि मं जानिस्सन्ति—भद्दालि नाम भिक्खु सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरकारी' ति। अयं पि खो ते भद्दालि समयो अप्पटिविद्धो अहोसि। समयो पि खो ते, भद्दालि, अप्पटिविद्धो अहोसि—'सम्बहुला खो भिक्खुनियो सावत्थियं वस्सं उपगता, ता पि मं जानिस्सन्ति—भद्दालि नाम भिक्खु सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरकारी' ति। अयं पि खो ते, भद्दालि, समयो अप्पटिविद्धो अहोसि। समयो पि खो ते, भद्दालि, अप्पटिविद्धो अहोसि—'सम्बहुला खो उपासका सावत्थियं पटिवसन्ति, ते पि मं जानिस्सन्ति— [N. 122] भद्दालि नाम भिक्खु सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरकारी' ति। अयं पि खो ते, भद्दालि, समयो अप्पटिविद्धो अहोसि। समयो पि खो ते, भद्दालि, अप्पटिविद्धो अहोसि—'सम्बहुला खो उपासिका सावत्थियं पटिवसन्ति, ता पि मं जानिस्सन्ति—भद्दालि नाम भिक्खु सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरकारी' ति। अयं पि खो ते, भद्दालि, समयो अप्पटिविद्धो अहोसि। समयो पि खो ते, भद्दालि, अप्पटिविद्धो अहोसि—'सम्बहुला खो नानातित्थिया समण-ब्राह्मणा सावत्थियं वस्सं उपगता, ते पि मं जानिस्सन्ति—भद्दालि नाम भिक्खु समणस्स गोतमस्स सावको थेरञ्ञतरो सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरकारी' ति। अयं पि खो ते, भद्दालि, समयो अप्पटिविद्धो अहोसी" ति।

"अच्चयो मं, भन्ते, अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं योहं भगवता सिक्खापदे पञ्ञापियमाने भिक्खुसङ्घे सिक्खं समादियमाने अनु-

---

भद्दालि! उस समय तुम्हें यह भी विचार नहीं आया—'श्रावस्ती में इस समय बहुत से भिक्षु वर्षावास कर रहे हैं, उन्हें जब यह पता लगेगा कि... गलत कार्य हुआ। भद्दालि! तुम्हें यह भी विचार नहीं आया—'इस समय श्रावस्ती में बहुत सी भिक्षुणियाँ... गलत कार्य हुआ। भद्दालि! तुम्हें यह भी विचार नहीं आया—'इस समय श्रावस्ती में बहुत से उपासक... गलत काम हुआ। भद्दालि! तुम्हें यह भी विचार नहीं आया—'इस समय श्रावस्ती में बहुत सी उपासिकायें... गलत कार्य हुआ। और भद्दालि! तुम्हें यह भी विचार नहीं आया—'इस समय श्रावस्ती में बहुत से अन्य सम्प्रदायों के श्रमण-ब्राह्मण भी ठहरे हुए हैं वे भी मुझे जानेंगे कि श्रमण गौतम का भद्दालि नामक प्रसिद्ध भिक्षु शास्ता के अनुशासन (शिक्षा) को पूरा नहीं कर रहा है।' भद्दालि! यह तुमसे गलत कार्य हुआ।"

"भन्ते! निश्चय ही मैंने बच्चों, मूर्खों या उन्मत्तों की तरह यह अपराध किया है कि मैंने आपके द्वारा शिक्षापदों का उपदेश देते समय और संघ द्वारा उसको

स्साहं पवेदेसिं। तस्स मे, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया" ति।

"तग्घ त्वं, भद्दालि, अच्चयो अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, [B. 103] यं त्वं मया सिक्खापदे पञ्ञापियमाने, भिक्खुसङ्घे सिक्खं समादियमाने अनुस्साहं पवेदेसि। तं किं मञ्ञसि, भद्दालि, इधस्स भिक्खु उभतोभागविमुत्तो, तमहं एवं वदेय्यं—'एहि मे त्वं, भिक्खु, पङ्के सङ्कमो होही' ति, अपि नु खो सो सङ्कमेय्य वा अञ्ञेन वा कायं सन्नामेय्य, 'नो' ति वा वदेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, भद्दालि, इधस्स भिक्खु पञ्ञाविमुत्तो कायसक्खि दिट्ठिप्पत्तो सद्धाविमुत्तो धम्मानुसारी सद्धानुसारी, तमहं एवं वदेय्यं—'एहि मे त्वं, भिक्खु, पङ्के सङ्कमो होही' ति, अपि नु खो सो सङ्कमेय्य वा अञ्ञेन कायं सन्नामेय्य, 'नो' ति वा वदेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, भद्दालि, अपि नु त्वं, भद्दालि, तस्मिं समये उभतोभागविमुत्तो वा होसि पञ्ञाविमुत्तो वा कायसक्खि [N. 123, R. 440] वा दिट्ठिप्पत्तो वा सद्धाविमुत्तो वा धम्मानुसारी वा सद्धानुसारी वा" ति?

अङ्गीकार करते समय भी उपेक्षा (अनुत्साह) दिखायी। भन्ते! आप मेरे उस अपराध को क्षमा करें, भविष्य में मैं अपनी ओर से ऐसी उपेक्षा नहीं होने दूँगा।"

"भद्रालि! निश्चय ही तुमने···उपेक्षा दिखायी। तो तुम क्या मानते हो, भद्रालि! यहाँ कोई अर्हत् भिक्षु हो, उसको मैं ऐसा कहूँ--'आ भिक्षु! तूँ मेरे लिए इस कीचड़ में पार होने के लिये रास्ता बन जा', तब क्या वह भिक्षु रास्ता दे देगा, अपने शरीर को एक तरफ झुका लेगा या 'ना' कर देगा?"

"ऐसा नहीं है, भन्ते!"

"तो तुम क्या मानते हो, भद्रालि! यहाँ कोई भिक्षु जो प्रज्ञाविमुक्त, कायसाक्षी, दृष्टिप्राप्त, श्रद्धाविमुक्त, धर्मानुसारी एवं श्रद्धानुसारी हो, उसको मैं ऐसा कहूँ—'आ'···'ना' कर देगा?"

"ऐसा भी नहीं है, भन्ते!"

"तो क्या मानते हो, भद्रालि! उस (उपेक्षा करते) समय क्या (तुम उन दोनों से भी ऊपर) ज्ञानी भिक्षु थे या प्रज्ञाविमुक्त···श्रद्धानुसारी थे?"

"नो हेतं, भन्ते"।

"ननु त्वं, भद्दालि, तस्मिं समये रित्तो तुच्छो अपरद्धो" ति ?

"एवं, भन्ते। अच्चयो मं, भन्ते, अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथा-यथाअकुसलं, योहं भगवता सिक्खापदे पञ्ञापियमाने भिक्खुसङ्घे सिक्खं समादियमाने अनुस्साहं पवेदेसिं। तस्स मे, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया" ति।

"तग्घ त्वं, भद्दालि, अच्चयो अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, यं त्वं मया सिक्खापदे पञ्ञापियमाने भिक्खुसङ्घे सिक्खं समादियमाने अनुस्साहं पवेदेसि। यतो च खो त्वं, भद्दालि, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोसि, तं ते मयं पटिग्गण्हाम। वुद्धिहेसा, भद्दालि, अरियस्स विनये यो अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति, आयतिं संवरं आपज्जति।

२. सत्थुसासने सिक्खाय परिपूरकारी

३. "इध, भद्दालि, एकच्चो भिक्खु सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरिकारी होति। तस्स एवं होति—'यन्नूनाहं विवित्तं सेनासनं भजेय्यं अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। अप्पेव नामाहं उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरेय्यं' ति। सो

"ऐसा भी नहीं है, भन्ते!"

"भद्दालि! तो क्या तुम उस समय भिक्षुभाव से शून्य, तुच्छ (व्यर्थ), अपराधी थे?"

"हाँ, भन्ते! ऐसा ही था। भन्ते! निश्चय ही मैंने बचों...उपेक्षा नहीं होने दूँगा।"

"भद्दालि! निश्चय ही तुमने... उपेक्षा दिखायी। क्योंकि, भद्दालि! अब तुम अपनी भूल को भूल के रूप में धर्मानुसार स्वीकार करते हो, (तो) इसे हम मान लेते हैं। भद्दालि! आर्यविनय में यह समझदारी (=बुद्धि) ही मानी जाती है कि कोई की हुई अपनी गलती को गलती के रूप में मान ले।

२. शास्ता द्वारा उपदिष्ट शिक्षा का पूरक

३. "भद्दालि! यहाँ कोई भिक्षु शास्ता के शासन में बतायी गयी शिक्षा को पूर्ण करने वाला न हो। उसके मन यह हो—"क्यों न मैं निश्चय ही एकान्त स्थान का सेवन करूँ, फिर भले ही वह कोई वनप्रदेश हो, वृक्ष के नीचे का स्थान हो, पहाड़ हो, गुफा हो, पहाड़ों की घाटी हो, श्मशान हो, जंगल का किनारा हो,

[B. 104] विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। तस्स तथावूपकट्ठस्स विहरतो सत्था पि उपवदति, अनविच्च पि विञ्ञू सब्रह्मचारी उपवदन्ति, देवता पि उपवदन्ति, अत्ता पि अत्तानं उपवदति। सो सत्थारा पि उपवदितो, अनुविच्च पि विञ्ञूहि सब्रह्मचारीहि उपवदितो, देवताहि पि उपवदितो, अत्तना पि अत्तानं उपवदितो न उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरोति। तं किस्स हेतु? एवञ्हेतं, भद्दालि, होति यथा तं सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरकारिस्स।

[N. 124] ४. "इध पन, भद्दालि, एकच्चो भिक्खु सत्थुसासने सिक्खाय परिपूरकारी होति। तस्स एवं होति—'यन्नूनाहं विवित्तं सेनासनं भजेय्यं अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलाल-
[R. 441] पुञ्जं। अप्पेव नामाहं उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरेय्यं' ति। सो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। तस्स तथावूपकट्ठस्स विहरतो सत्था पि न उपवदति, अनुविच्च पि विञ्ञू सब्रह्मचारी न उपवदन्ति, देवता पि न उपवदन्ति, अत्ता पि अत्तानं न उपवदति। सो सत्थारा पि अनुपवदितो, अनुविच्च पि विञ्ञूहि सब्रह्मचारीहि अनुपव-

---

खुली जगह हो, या कोई तृण की राशि हो। मैं वहाँ बैठ, ध्यान लगाकर, मानव स्वभाव से भी ऊपर के आर्यों के ज्ञानदर्शन का साक्षात्कार करूँ।' तब वह एकान्त सेवन करता···तृण की राशि पर ध्यानमग्न हो, बैठे। वैसा करते समय उसके शास्ता भी उसका उपवाद (निन्दा) करें, सोचकर उसके साथी भी, देवता भी, यहाँ तक कि वह स्वयं भी अपना उपवाद करे। वह इस तरह, शास्ता, साथियों, देवों और स्वयं द्वारा निन्दित होने से मानव स्वभाव से भी ऊपर के आर्यों के ज्ञानदर्शन का साक्षात्कार नहीं कर पाता। वह क्यों? वह इसलिये कि वह शास्ता के शासन में प्राप्त शिक्षा को पूर्ण करने वाला नहीं होता।

४. "भद्रालि! यहाँ कोई दूसरा भिक्षु जिसने शास्ता के शासन में प्राप्त शिक्षा को पूर्ण कर लिया हो। उसके मन में यह हो—'क्यों न मैं किसी एकान्त प्रदेश में··· साक्षात्कार करूँ"। तब वह एकान्त सेवन करता···तृण की राशि पर ध्यानमग्न हो, बैठे। वैसा करते समय उसके शास्ता उसका उपवाद (निन्दा) न करें···स्वयं भी अपना उपवाद न करें। वह इस तरह अपने शास्ता से निन्दित न होने के कारण

दितो, देवताहि पि अनुपवदितो, अत्तना पि अत्तानं अनुपवदितो उत्तरिमनुस्स-धम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरोति। सो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तं किस्स हेतु? एवञ्हेतं, भद्दालि, होति यथा तं सत्थुसासने सिक्खाय परिपूरकारिस्स।

५. "पुन च परं, भद्दालि, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तं किस्स हेतु? एवञ्हेतं, भद्दालि, होति यथा तं सत्थुसासने सिक्खाय परिपूरकारिस्स।

"पुन च परं, भद्दालि, भिक्खु पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति, सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज [B. 105] विहरति। तं किस्स हेतु? एवञ्हेतं, भद्दालि, होति यथा तं सत्थुसासने सिक्खाय परिपूरकारिस्स।

"पुन च परं, भद्दालि, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धि

...आर्यों के ज्ञानदर्शन का साक्षात्कार कर लेता है। वह क्यों? क्योंकि वह शास्ता के शासन में प्राप्त शिक्षा को पूर्ण करने वाला होता है। वह कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहकर, वितर्क-विचारसहित, विवेकजन्य, प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान की साधना करता है। वह क्यों? क्योंकि वह शास्ता के शासन में प्राप्त शिक्षा का परिपूरक होता है।

५. "और फिर, भद्दालि! वह भिक्षु साधना करते-करते आगे चलकर अपने वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने से "पूर्ववत्[1] ...द्वितीय ध्यान की साधना करता है। वह क्यों? क्योंकि वह ...परिपूरक होता है।

"और फिर, भद्दालि! वह भिक्षु आगे चलकर, प्रीति से भी वैराग्य हो जाने से ...पूर्ववत्[1] ...तृतीय ध्यान की साधना करता है। वह क्यों? क्योंकि वह ... परिपूरक होता है।

"और फिर, भद्दालि! वह भिक्षु उक्त सुख-दुःख के प्रहाण से ...पूर्ववत्[1] ...चतुर्थ ध्यान की साधना करता है। वह क्यों? क्योंकि वह ...परिपूरक होता है।

१-१-१. द्र०—पीछे पृ० ४५–४६।

चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तं किस्स हेतु? एवञ्हेतं भद्दालि, होति यथा तं सत्थुसासने सिक्खाय परिपूरकारिस्स।

[N. 125] "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो…पे०…इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। तं किस्स हेतु? एवञ्हेतं, भद्दालि, [R. 442] होति यथा तं सत्थुसासने सिक्खाय परिपूरकारिस्स।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति—'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता…पे… विनिपातं निरयं उपपन्ना; इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता…पे०…सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन…पे०…यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। तं किस्स हेतु? एवञ्हेतं, भद्दालि, होति यथा तं सत्थुसासने सिक्खाय परिपूरकारिस्स।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे [B. 106] मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसव-

---

"वह इस प्रकार चित्त के समाहित, एकाग्र, पर्यवदात्…पूर्ववत्[1]…इस प्रकार आकार और उद्देश सहित अपने अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों को स्मरण करने लगा। वह क्यों? क्योंकि वह…परिपूरक होता है।

"इस प्रकार चित्त के समाहित, एकाग्र, पर्यवदात्…पूर्ववत्[1]…प्राणियों को मरते-जन्मते देखने लगता है। वह क्यों? क्योंकि वह…परिपूरक होता है।

"इस प्रकार चित्त के समाहित, एकाग्र…पूर्ववत्[1]…अब यहाँ करने के लिए

१-१-१. द्र०—पीछे पृ० ४६—४७—४८।

निरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थ- [N. 126] त्ताया' ति पजानाति। तं किस्स हेतु? एवञ्हेतं, भद्दालि, होति यथा तं सत्थुसासने सिक्खाय परिपूरकारिस्सा'' ति।

३. आपत्तिबहुला च अनापत्तिबहुला च

६. एवं वुत्ते, आयस्मा भद्दालि भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु, को पच्चयो येन मिधेकच्चं भिक्खुं पसय्ह पसय्ह कारणं करोन्ति? को पन, भन्ते, हेतु, को पच्चयो येन मिधेकच्चं भिक्खुं नो तथा पसय्ह पसय्ह कारणं करोन्ती" ति?

"इध, भद्दालि, एकच्चो भिक्खु अभिण्हापत्तिको होति आपत्तिबहुलो। सो भिक्खूहि वुच्चमानो अञ्ञेनञ्ञं पटिचरति, बहिद्धा कथं अपनामेति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति, न सम्मा वत्तति, न लोमं पातेति, न नेत्थारं वत्तति, 'येन सङ्घो अत्तमनो होति तं करोमी' ति नाह। तत्र, भद्दालि, भिक्खूनं एवं होति—अयं खो, आवुसो, भिक्खु अभिण्हापत्तिको आपत्तिबहुलो। सो भिक्खूहि वुच्चमानो अञ्ञेनञ्ञं पटिचरति,

---

कुछ शेष नहीं है'—यह जान लेता है। वह क्यों? क्योंकि वह शास्ता के शासन में प्राप्त शिक्षा का परिपूरक होता है।"

३. अपराधी (दोषी) एवं अनपराधी (निर्दोष) भिक्षु

६. ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान् भद्रालि ने भगवान् से यों पूछा—"भन्ते! क्या कारण है, क्या निमित्त है कि यहाँ किसी-किसी को तो भिक्षुजन बार-बार चेतावनी देते हैं? और फिर भन्ते! क्या कारण है, क्या निमित्त है कि यहाँ किसी-किसी को भिक्षु बार-बार चेतावनी नहीं देते?"

"भद्रालि! यहाँ जो भिक्षु बार-बार गलतियाँ करने का अभ्यासी हो जाता है, जो कि उससे छूट नहीं पाती। वह अन्य भिक्षुओं द्वारा टोके जाने पर, उन्हें और-और बातों की ओर घुमा देता है, प्रसङ्ग से बाहर की बात उठाने लगता है, उनके साथ अपना क्रोध, असन्तोष और द्वेष प्रकट करने लगता है, उनसे ठीक व्यवहार नहीं करता, अपनी बात से पीछे नहीं हटता (अपनी गलती नहीं मानता), न अपनी की हुई गलती से कोई बचाव का ही रास्ता निकालता है और न यही कहता है कि

बहिद्धा कथं अपनामेति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति, न [R. 443] सम्मा वत्तति, न लोमं पातेति, न नेत्थारं वत्तति, 'येन सङ्घो अत्तमनो होति तं करोमी' ति नाह। साधु वतायस्मन्तो इमस्स भिक्खुनो तथा तथा उपपरिक्खथ यथास्सिदं अधिकरणं न खिप्पमेव वूपसमेय्या ति। तस्स खो एवं, भद्दालि, भिक्खुनो भिक्खू तथा तथा उपपरिक्खन्ति यथास्सिदं अधिकरणं न खिप्पमेव वूपसम्मति।

७. "इध पन, भद्दालि, एकच्चो भिक्खू अभिण्हापत्तिको होति आपत्तिबहुलो। सो भिक्खूहि वुच्चमानो नाञ्ञेनञ्ञं पटिचरति, बहिद्धा कथं न अपनामेति, न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति, सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, 'येन सङ्घो अत्तमनो होति तं करोमी' ति [B. 107] आह। तत्र, भद्दालि, भिक्खूनं एवं होति—अयं खो आवुसो, भिक्खु अभिण्हापत्तिको आपत्तिबहुलो। सो भिक्खूहि वुच्चमानो नाञ्ञेनञ्ञं पटिचरति, बहिद्धा कथं न अपनामेति, न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च [N. 127] पातुकरोति, सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, 'येन सङ्घो अत्तमनो होति तं करोमी' ति आह। साधु वतायस्मन्तो, इमस्स भिक्खुनो तथा तथा उपपरिक्खथ यथास्सिदं अधिकरणं खिप्पमेव वूपसमेय्या ति। तस्स खो एवं, भाद्दलि, भिक्खूनो भिक्खू तथा तथा उपपरिक्खन्ति यथास्सिदं अधिकरणं खिप्पमेव वूपसम्मति।

'अब मैं ऐसा काम करूँगा, जो सङ्घ रुचे'। भद्रालि! तब भिक्षुओं को यह होता है—'यह भिक्षु बार-बार गलतियाँ करने का अभ्यासी···जो सङ्घ को रुचे। अच्छा हो कि आप लोग इस भिक्षु के क्रिया-कलापों की तब तक जाँच (ध्यान में रखना) करते रहें, जब तक कि यह वैसी गलतियाँ करना सर्वथा बन्द न कर दे। तब वे भिक्षुजन उस भिक्षु की तब तक निगरानी रखते हैं जब तक कि वह वैसी गलतियाँ करना बन्द न कर दे।

७. "भद्रालि! यहाँ कोई भिक्षु बार-बार गलतियाँ करने का अभ्यासी होता है। परन्तु वह अन्य भिक्षुओं द्वारा टोके जाने पर उन्हें और-और बातों की ओर नहीं लगाता···जो सङ्घ को रुचे'—यह कहता है। भद्रालि! तब भिक्षुओं को यह होता है—'यह भिक्षु बार-बार गलतियाँ करने का···जो सङ्घ को रुचे'—यह कहता है। अच्छा हो कि आप लोग इस भिक्षु के क्रिया-कलापों पर तब तक कड़ी निगरानी रखें, जब तक कि यह वैसी गलतियाँ करना तत्काल बन्द न कर दे। तब वे भिक्षुजन उस भिक्षु···तत्काल बन्द न कर दें।

८. "इध, भद्दालि, एकच्चो भिक्खु अधिच्चापत्तिको होति अनापत्तिबहुलो। सो भिक्खूहि वुच्चमानो अञ्ञेनञ्ञं पटिचरति, बहिद्धा कथं अपनामेति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति, न सम्मा वत्तति, न लोमं पातेति, न नेत्थारं वत्तति, 'येन सङ्घो अत्तमनो होति तं, करोमी' ति नाह। तत्र, भद्दालि, भिक्खूनं एवं होति—अयं खो, आवुसो, भिक्खु अधिच्चापत्तिको अनापत्तिबहुलो। सो भिक्खूहि वुच्चमानो अञ्ञेनञ्ञं पटिचरति, बहिद्धा कथं अपनामेति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति, न सम्मावत्तति, न लोमं पातेति, न नेत्थारं वत्तति, 'येनं सङ्घो अत्तमनो हो त तं करोमि' ति नाह। साधु वतायस्मन्तो, इमस्स भिक्खुनो तथा तथा उपपरिक्खथ यथास्सिदं अधिकरणं न खिप्पमेव वूपसमेय्या ति। तस्स खो एवं, भद्दालि, भिक्खुनो भिक्खू तथा तथा उपरिक्खन्ति यथास्सिदं अधिकरणं न खिप्पमेव वूपसम्मति। [R. 444]

९. "इध पन, भद्दालि, एकच्चो भिक्खु अधिच्चापत्तिको होति अनापत्तिबहुलो। सो भिक्खूहि वुच्चमानो नाञ्ञेनञ्ञं पटिचरति, न बहिद्धा कथं अपनामेति, न कोपं च न दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति, सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, 'येन सङ्घो अत्तमनो होति तं करोमी' ति आह। तत्र, भद्दालि, भिक्खूनं एवं होति—अयं खो, आवुसो, भिक्खू अधिच्चापत्तिको अनापत्तिबहुलो। सो भिक्खूहि वुच्चमानो नाञ्ञेनञ्ञं परिचरति, न बहिद्धा कथं अपनामेति, न कोपं च न दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति,

---

८. "भद्रालि ! जिस भिक्षु की गलतियाँ तो कम होती हैं और अच्छाइयाँ ज्यादा, परन्तु उसकी वे गलतियाँ भी जल्दी से दूर नहीं हो पातीं। वह अन्य भिक्षुओं द्वारा टोके जाने पर, उन्हें और-और बातों की ओर घुमा देता है... जो सङ्घ रुचे'—यह नहीं कहता। भद्रालि ! तब वहाँ भिक्षुओं को यों होता है—'इस भिक्षु की गलतियाँ तो कम जो सङ्घ को रुचे'—यह नहीं कहता। अच्छा हो कि... उन कम गलतियों को भी करना तत्काल न छोड़ दे। तब वे भिक्षुजन उस भिक्षु... तत्काल न छोड़ दे।

९. "भद्रालि ! फिर यहाँ कोई और भिक्षु हो, जिसकी गलतियाँ तो कम होती हैं और अच्छाइयाँ ज्यादा; परन्तु उसकी वे गलतियाँ भी जल्दी से दूर नहीं हो पाती। पर वह अन्य भिक्षुओं द्वारा टोके जाने पर, उन्हें और-और बातों की ओर नहीं घुमाता... जो सङ्घ को रुचे'—यह कहता है। भद्रालि ! तब वहाँ भिक्षुओं को यों होता है—

[B. 108] सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, 'येन सङ्घो अत्तमनो होति तं करोमी' ति आह। साधु वतायस्मन्तो, इमस्स भिक्खुनो तथा तथा उपपरिक्खथ यथास्सिदं अधिकरणं खिप्पमेव वूपसमेय्या ति। तस्स खो एवं [N. 128] भद्दालि, भिक्खूनो भिक्खू तथा उपपरिक्खन्ति यथास्सिदं अधिकरणं खिप्पमेव वूपसम्मति।

१०. "इध, भद्दालि, एकच्चो भिक्खु सद्धामत्तकेन वहति पेममत्तकेन। तत्र, भद्दालि, भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सद्धामत्तकेन वहति पेममत्तकेन। सचे मयं इमं भिक्खुं पसय्ह पसय्ह कारणं करिस्साम—मा यं पिस्स तं सद्धामत्तकं पेममत्तकं तम्हा पि परिहायी'ति। सेय्यथापि, भद्दालि, पुरिसस्स एकं चक्खुं, तस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता तं एकं चक्खुं रक्खेय्युं—'मा यं पिस्स तं एकं चक्खुं तम्हा पि परिहायी' ति; एवमेव खो, भद्दालि, इधेकच्चो भिक्खु सद्धामत्तकेन वहति पेममत्तकेन। तत्र, भद्दालि, भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सद्धामत्तकेन वहति पेममत्तकेन। सचे मयं इमं भिक्खुं पसय्ह पसय्ह कारणं करिस्साम—मा यं पिस्स तं सद्धामत्तकं पेममत्तकं तम्हा पि परिहायी' ति। अयं खो, भद्दालि, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चं भिक्खुं नो तथा पसय्ह पसय्ह कारणं करोन्ती" ति।

'इस भिक्षु की गलतियाँ तो कम'''जो सङ्घ को रुचें'—यह कहता है। अच्छा हो कि आप लोग'''तब तक कड़ी निगरानी रखें; जब तक कि यह उन छोटी गलतियों को भी तत्काल न छोड़ दे। तब वे भिक्षुजन उस भिक्षु'''छोटी गलतियों को भी तत्काल न छोड़ दे।

१०. "भद्रालि! यहाँ कोई भिक्षु केवल श्रद्धा और प्रेम से दूसरों के साथ अपना व्यवहार करता है। भद्रालि! वहाँ अन्य भिक्षुओं को (उसके बारे में) यह हो—'आयुष्मानो! यह भिक्षु तो केवल श्रद्धा और प्रेम से दूसरों के साथ अपना व्यवहार करता है। यदि हम इस भिक्षु से बार-बार टोका-टाकी करेंगे, तो ऐसा न हो कि इसका श्रद्धा-प्रेममय व्यवहार भी खत्म हो जाय'। भद्रालि! जैसे किसी पुरुष को एक ही आँख हो, उसके मित्र, साथी और नाते-रिश्तेदार उसकी उस एक आँख का निरन्तर ध्यान रखें—'कहीं ऐसा न हो कि किसी कारण इसकी यह एक आँख भी इसका साथ छोड़ दे'; इसी तरह, भद्रालि! यहाँ कोई भिक्षु सभी से केवल श्रद्धा और प्रेम के साथ'''ऐसा न हो कि इसका श्रद्धा प्रेममय व्यवहार भी खत्म हो जाय'। भद्रालि! यह वह कारण या निमित्त है, जिससे वृद्ध भिक्षु उस भिक्षु को बार-बार टोका-टाकी नहीं करते।"

४. अस्साजानीयूपमो भिक्खु

११. "को नु खो, भन्ते, हेतु, को पच्चयो येन पुब्बे [R. 445] अप्पतरानि चेव सिक्खापदानि अहेसुं बहुतरा च भिक्खू अञ्ञाय सण्ठहिंसु ? को पन, भन्ते, हेतु, को पच्चयो येन एतरहि बहुतरानि चेव सिक्खापदानि होन्ति अप्पतरा च भिक्खू अञ्ञाय सण्ठहन्ती" ति ?

"एवमेतं, भद्दालि, होति सत्तेसु हायमानेसु, सद्धम्मे अन्तरधायमाने, बहुतरानि चेव सिक्खापदानि होन्ति अप्पतरा च भिक्खू अञ्ञाय सण्ठहन्ती ति। न ताव, भद्दालि, सत्था सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेति याव न इधेकच्चे आसवट्ठानीया धम्मा सङ्घे पातुभवन्ति। यतो च खो, भद्दालि, इधेकच्चे आसवट्ठानीया धम्मा सङ्घे पातुभवन्ति, अथ सत्था सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेति तेसं येव आसवट्ठानीयानं धम्मानं पटिघाताय। न ताव, भद्दालि, इधेकच्चे आसवट्ठानीया धम्मा सङ्घे पातुभवन्ति याव न सङ्घो महत्तं पत्तो होति। यतो च खो, भद्दालि, सङ्घो महत्तं [B. 109] पत्तो होति, अथ इधेकच्चे आसवट्ठानीया धम्मा सङ्घे पातुभवन्ति। अथ

---

४. उत्तम घोड़े के समान भिक्षु

११. भन्ते ! इसमें क्या कारण है, क्या निमित्त है कि पूर्वकाल में कम शिक्षापद (भिक्षुनियम) बने होने पर भी उस समय के बहुत अधिक भिक्षु उन्हें जानकर भिक्षुनियम का दृढ़ता से पालन करते थे ! और भन्ते ! इसमें क्या कारण, क्या निमित्त है कि आज बहुत अधिक भिक्षुनियम बने होने पर भी कुछ ही भिक्षु भिक्षुनियम-पालन में दृढ़ता दिखा रहे हैं !"

"भद्दालि ! ऐसा इसलिये होता है कि आजकल प्राणियों के दुर्बल सत्त्व हो जाने से और सद्धर्म के क्षीण हो जाने पर, अत्यधिक भिक्षुनियम बने रहने पर भी उन्हें कुछ ही भिक्षु उन्हें जानकर, उनके पालन में दृढ़ता दिखाते हैं। भद्दालि ! सच्चाई यह है कि शास्ता तब तक कोई शिक्षापद का उपदेश नहीं करते, जब तक कि तात्कालिक सङ्घ में कोई खोट बहुलता से घर न करने लगा हो या भिक्षुओं में नानाविध चित्तविकार न उत्पन्न होने लगे हों। भद्दालि ! क्योंकि आजकल भिक्षुसङ्घ में अधिक चित्तविकार उत्पन्न होने लगे हैं; अतः शास्ता भी उन चित्तविकारों के नाश हेतु, रोज-रोज नये-नये शिक्षापदों का उपदेश करते हैं। भद्दालि ! इस सङ्घ में वे चित्तविकार तब तक पैदा नहीं हो पाते, जब तक कि यह सङ्घ इतना विशाल न हो जाय कि उस पर अनुशासन रखना कठिन जान पड़े। क्योंकि भद्दालि ! जब

सत्था सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेति तेसं येव आसवट्ठानीयानं धम्मानं [N. 129] पटिघाताय। न ताव, भद्दालि, इधेकच्चे आसवट्ठानीया धम्मा सङ्घे पातुभवन्ति याव न सङ्घो लाभग्गं पत्तो होति यसग्गं पत्तो होति, बाहुसच्चं पत्तो होति, रत्तञ्ञुतं पत्तो होति। यतो च खो, भद्दालि, सङ्घो रत्तञ्ञुतं पत्तो होति, अथ इधेकच्चे आसवट्ठानीया धम्मा सङ्घे पातुभवन्ति, अथ सत्था सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेति तेसं येव आसवट्ठानीयानं धम्मानं पटिघाताय।

१२. "अप्पका खो तुम्हे, भद्दालि, तेन समयेन अहुवत्थ यदा खो अहं आजानीयस्सूपमं धम्मपरियायं देसेसिं। तं सरसि भद्दाली" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तत्र, भद्दालि, कं हेतुं पच्चेसी" ति ?

"सो हि नूनाहं, भन्ते, दीघरत्तं सत्थुसासने सिक्खाय अपरिपूरकारी अहोसिं" ति।

सङ्घ इतना विशाल हो जाता है (कि उसमें अनुशासनहीनता घर करने लगे) तो उसमें चित्तविकारों का उत्पन्न होना अनिवार्य हो जाता है। तब शास्ता श्रावकों को उनके चित्तविकारों के नाश हेतु शिक्षापदों का उपदेश करते हैं। भद्रालि ! सङ्घ में चित्तविकार (कमजोरियाँ) तब तक पैदा नहीं होते, जब तक उस सङ्घ के भिक्षु (अपने व्यक्तिगत) लाभ एवं यश के लिये लालायित न हों, अपनी अधिकज्ञता और दीर्घकालिकता का वृथाभिमान न करने लगें। क्योंकि भद्रालि ! उस समय सङ्घ के भिक्षु अपनी दीर्घकालिकता के वृथाभिमान में पड़ जाते हैं, अतः तब सङ्घ में कुछ चित्तविकार उत्पन्न होने लगते हैं। तब शास्ता श्रावकों को उनके चित्तविकारों के नाशहेतु शिक्षापदों का उपदेश करते हैं।

१२. "भद्रालि ! उस समय तुम भिक्षु लोग बहुत कम थे, जब मैंने उत्तम (अजानीय) घोड़े का दृष्टान्त देकर एक धर्मोपदेश (धर्मपर्याय) किया था। भद्रालि ! क्या वह तुम्हें याद है ?"

"नहीं भन्ते !"

"भद्रालि ! उसमें क्या कारण समझते हो ?"

"भन्ते ! उस समय मैं निश्चय ही बहुत देर तक शास्ता (आप) के शासन में प्राप्त शिक्षा का सर्वथा पालन करने वाला नहीं था।"

"न खो, भद्दालि, एसेव हेतु, एस पच्चयो। अपि च मे त्वं, भद्दालि, दीघरत्तं चेतसा चेतोपरिच्च विदितो—'न चायं मोघपुरिसो मया धम्मे देसियमाने अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसो समन्नाहरित्वा ओहितसोतो धम्मं सुणाती' ति। अपि च ते अहं, भद्दालि, आजानीयस्सूपमं धम्मपरियायं देसिस्सामि। तं सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" [R. 446] ति। "एवं भन्ते" ति खो आयस्मा भद्दालि भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

१३. "सेय्यथापि, भद्दालि, दक्खो अस्सदमको भद्रं अस्साजानीयं लभित्वा पठमेनेव मुखाधाने कारणं कारेति। तस्स मुखाधाने कारणं कारियमानस्स होन्ति येव विसूकायितानि विसेवितानि विप्फन्दितानि कानिचि कानिचि, यथा तं अकारितपुब्बं कारणं कारियमानस्स। सो अभिण्हकारणा अनुपुब्बकारणा तस्मिं ठाने परिनिब्बायति। यतो खो, भद्दालि भद्रो अस्साजानीयो अभिण्हकारणा अनुपुब्बकारणा तस्मिं ठाने परिनिब्बुतो होति, तमेनं अस्सदमको उत्तरि कारणं कारेति युगाधाने। तस्स युगाधाने कारणं कारियमानस्स होन्ति येव विसूकायितानि विसेवितानि विप्फन्दितानि कानिचि कानिचि यथा तं अकारित-

---

"भद्रालि! यही कारण या निमित्त तुम्हारी उस भूल में नहीं है। अपितु भद्रालि! दीर्घकाल से मैंने भी तेरे चित्त की बात जान ली है कि 'यह मोघपुरुष मेरे द्वारा धर्मोपदेश किये जाते समय ध्यान से, मन लगाकर, चित्त एकाग्र कर, कान खोलकर धर्म नहीं सुनता'। अस्तु भद्रालि! मैं तुम्हें फिर से उत्तम अश्व का दृष्टान्त देकर, धर्मोपदेश करूँगा। उसे ठीक से ध्यान लगाकर सुनो; मैं कहता हूँ। "अच्छा, भन्ते!"—कहकर आयुष्मान् भद्रालि ने भगवान् से निवेदन किया। भगवान् यों बोले—

१३. "भद्रालि! जैसे कोई (हाथ में चाबुक लिये) निपुण घुड़सवार किसी अच्छे, गुणसम्पन्न अश्व को पाकर उसे शुरू में (१) मुँह में लगाम पकड़ना सिखाता है। पहले न जाना हुआ होने के कारण, उस अश्व को मुँह में लगाम रखने की शिक्षा देते समय, उस अश्व से कुछ थोड़ी बहुत गलतियाँ होती रहती हैं। परन्तु वह निरन्तर शिक्षा प्राप्त करता हुआ, अपनी गलतियों को परिमार्जित कर लेता है। भद्रालि! जब वह उत्तम अश्व निरन्तर शिक्षा प्राप्त करता हुआ अपनी गलतियों को परिमार्जित कर लेता है, तदनन्तर वह घुड़सवार उसको आगे की शिक्षा, (२) जुआ खींचना आदि देता है। पहले न जाना हुआ होने के कारण उस अश्व से जुआ

[N. 130] पुब्बं कारणं कारियमानस्स ! सो अभिण्हकारणा अनुपुब्बकारणा [B. 110] तस्मि ठाने परिनिब्बायति। यतो खो, भद्दालि, भद्रो अस्साजानीयो अभिण्हकारणा अनुपुब्बकारणा तस्मिं ठाने परिनिब्बुतो होति, तमेनं अस्सदमको उत्तरि कारणं कारेति—अनुत्तमे मण्डले खुरकासे धावे दवत्ते राजगुणे राजवंसे उत्तमे जवे उत्तमे हये उत्तमे साखल्ये। तस्स उत्तमे जवे उत्तमे हये उत्तमे साखल्ये कारणं कारियमानस्स होन्ति येव विसूकायितानि विसेवितानि विप्फन्दितानि कानिचि कानिचि, यथा तं अकारितपुब्बं कारणं कारियमानस्स। सो अभिण्हकारणा अनुपुब्बकारणा तस्मिं ठाने परिनिब्बायति। यतो खो, भद्दालि, भद्रो अस्साजानीयो अभिण्हकारणा अनुपुब्बकारणा तस्मिं ठाने परिनिब्बुतो होति, तमेनं अस्सदमको उत्तरि वण्णियं च पाणियं च अनुपप्पवेच्छति। इमेहि खो, भद्दालि, दसहङ्गेहि समन्नागतो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो रञ्ञो अङ्गन्तेव सङ्ख्यं गच्छति।

"एवमेव खो, भद्दालि, दसहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि दसहि ? इध, भद्दालि, भिक्खु असेखाय सम्मादिट्ठिया समन्नागतो

खींचने की शिक्षा…परिमार्जित कर लेता है। भद्रालि ! जब वह उत्तम अश्व निरन्तर शिक्षा प्राप्त हुआ अपनी गलतियों को परिमार्जित कर लेता है, तब वह निपुण घुड़सवार उसे आगे की शिक्षा—(३) चक्र (मंडल) में तेजी से घुमावदार चक्कर लगाना, (४) चक्र में खुरों से बिना आवाज किये तीव्रता से दौड़, (५) सरपट दौड़, (६) हिनहिनाना, (७) दुड़की (एक गति) चाल, (८) राजाओं की सवारी के योग्य चाल, (९) राजवंश के योग्य उत्तम अश्वों की पंक्ति में आना और राजवंश में ग्राह्यता के लिए उपयुक्त विनय सिखाता है। वह अश्व इन शिक्षाओं को प्राप्त करते समय, प्रारम्भ में…परिमार्जित कर लेता है। भद्रालि ! जब वह उत्तम अश्व निरन्तर शिक्षा प्राप्त करता हुआ, अपनी गलतियों को परिमार्जित कर लेता है, तदनन्तर वह निपुण घुड़सवार उसको आगे की शिक्षा, (१०) वर्ण्य (एक विशेष प्रकार की गति) एवं बलीय गतियाँ सिखाता है। भद्रालि ! इन दस गतियों से सुशिक्षित उत्तम अश्व ही राज-दरबार के योग्य होता है, राजा की सवारी के योग्य एवं राज्य (की सेना) का 'अंग' होने की स्थिति में पहुँचता है।

"इसी तरह, भद्रालि ! दश गुणों (धर्मों) से युक्त भिक्षु ही लोक में अपने घर बुलाने योग्य, अतिथि सेवा के लिए उपयुक्त, दान योग्य, प्रणाम करने योग्य एवं

होति, असेखेन सम्मासङ्कप्पेन समन्नागतो होति, असेखाय सम्मावाचाय समन्नागतो होति, असेखेन सम्माकम्मन्तेन समन्नागतो होति, असेखेन सम्माआजीवेन समन्नागतो होति, असेखेन सम्मावायामेन समन्नागतो होति, [R. 447] असेखाय सम्मासतिया समन्नागतो होति, असेखेन सम्मासमाधिना समन्नागतो होति, असेखेन सम्माञाणेन समन्नागतो होति, असेखाय सम्माविमुत्तिया समन्नागतो होति--इमेहि खो, भद्दालि, दसहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति।

१४. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा भद्दालि भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

उत्तम पुण्यक्षेत्र रूप है। कौन से दश (गुणों) से ? भद्रालि ! यहाँ कोई भिक्षु (१) अशैक्ष्य (सिद्ध) सम्यग्दृष्टि से युक्त होता है, (२) अशैक्ष्य सम्यक्सङ्कल्प…, (३) अशैक्ष्य सम्यग्वाक्…, (४) अशैक्ष्य सम्मक्कर्म…, (५) अशैक्ष्य सम्यगाजीव…, (६) अशैक्ष्य सम्यग्व्यायाम…, (७) अशैक्ष्य सम्यक्स्मृति…, (८) अशैक्ष्य सम्यक्समाधि…, (९) अशैक्ष्य सम्यग्ज्ञान… एवं (१०) अशैक्ष्य सम्यग्विमुक्ति से मुक्त होता है। भद्रालि ! इन दश गुणों से युक्त भिक्षु ही लोक में अपने यहाँ बुलाने योग्य, अतिथि सेवा के उपयुक्त, दानयोग्य, प्रणाम करने योग्य एवं उत्तम पुण्यक्षेत्र रूप है।"

१४. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमन आयुष्मान् भद्रालि ने भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया॥

भद्रालिसुत्त समाप्त॥

१६. लटुकिकोपमसुत्तं

१. उदायिस्स भगवति पसादो

[N.131, B. 111] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा अङ्गुत्तरापेसु विहरति आपणं नाम अङ्गुत्तरापानं निगमो। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय आपणं पिण्डाय पाविसि। आपणे पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येनञ्ञतरो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। तं वनसण्डं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। आयस्मा पि खो उदायी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय आपणं पिण्डाय पाविसि। आपणे पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन सो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। तं वनसण्डं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो आयस्मतो उदायिस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"बहुन्नं वत नो भगवा दुक्खधम्मानं अपहत्ता, बहुन्नं वत नो भगवा सुखधम्मानं उपहत्ता; बहुन्नं वत नो भगवा अकुसलानं धम्मानं अपहत्ता, बहुन्नं वत नो भगवा कुसलानं धम्मानं उपहत्ता"ति।

---

१६. लटुकिकोपमसूत्र

१. उदायी की भगवान के प्रति प्रसन्नता

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) अङ्गुत्तराप[1] प्रदेश में आपण नामक अङ्गुत्तरजाति वाली प्रजा के कस्बे में विहार कर रहे थे। उस समय पूर्वाह्णकाल में भगवान् पहनकर, पात्र-चीवर ले, आपण ग्राम में प्रविष्ट हुए। आपण में भिक्षाकर, भोजन से निवृत्त हो, दिन में ध्यानभावना के लिये, किसी एकान्त वन-प्रदेश में पहुँचे। उस वनप्रदेश में जाकर, किसी वृक्ष के नीचे, दिन में ध्यान भावना के लिए विराजे। उधर आयुष्मान् उदायी भी पूर्वाह्णकाल में पहनकर...ध्यान भावना के लिये बैठे। तब एकान्त में रहते आयुष्मान् उदायी के मन में यह वितर्क उत्पन्न हुआ--"भगवान् हमारे बहुत से दुःखों को दूर करने वाले हैं, भगवान् हमारे बहुत से सुखों को देने वाले (=उपहर्ता) हैं और भगवान् हमारे बहुत से अकुशलधर्मों (पाप) को दूर करने वाले हैं तथा भगवान् हमारे बहुत से कुशलधर्मों (पुण्य) को देने वाले हैं!"

---

१. अङ्गुत्तराप=बिहार के भागलपुर-मुँगेर जिलों के मध्य गंगा का उत्तर भाग।—राहुलजी.

अथ खो आयस्मा उदायी सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा उदायी भगवन्तं एतदवोच—"इध मय्हं, [R. 448] भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'बहुन्नं वत नो भगवा दुक्खधम्मानं अपहत्ता, बहुन्नं वत नो भगवा सुखधम्मानं उपहत्ता; बहुन्नं वत नो भगवा अकुसलानं धम्मानं अपहत्ता, बहुन्नं वत नो भगवा कुसलानं धम्मानं उपहत्ता' ति। मयं हि, भन्ते, पुब्बे सायं चेव भुञ्जाम पातो च दिवा च विकाले। अहु खो सो, भन्ते समयो यं भगवा भिक्खू आमन्तेसि—[N. 132] 'इङ्घ तुम्हे, भिक्खवे, एवं दिवाविकालभोजनं पजहथा' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, अहुदेव अञ्ञथत्तं, अहुदेव दोमनस्सं—'यं पि नो सद्धा गहपतिका दिवा विकाले पणीतं खादनीयं भोजनीयं देन्ति, तस्स पि नो भगवा पहानमाह, तस्स पि नो सुगतो पटिनिस्सग्गमाहा' ति। ते मयं, भन्ते, भगवति [B. 112] पेमं च गारवं च हिरिं च ओत्तप्पं च सम्पस्समाना एवं तं दिवाविकालभोजनं पजहिम्हा। ते मयं, भन्ते, सायं चेव भुञ्जाम पातो च। अहु खो सो, भन्ते, समयो यं भगवा भिक्खू आमन्तेसि—'इङ्घ तुम्हे, भिक्खवे, एकं रत्ति विकालभोजनं पजहथा' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, अहुदेव अञ्ञथत्तं अहुदेव दोमनस्सं—

तब आयुष्मान् उदायी सायंकाल ध्यानभावना से उठ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे; पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे, आयुष्मान् उदायी भगवान् से यों बोले—"भन्ते! अभी यहाँ मुझे एकान्त में ध्यानमग्न बैठे हुए को मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—'भगवान् हमारे बहुत से दुःखों को दूर...कुशलधर्मों को देने वाले हैं'। भन्ते! हम लोग सायंकाल भी खाते थे, प्रातःकाल भी, दिन में समय-बेसमय भी खाते थे। भन्ते! एक समय आया, जब आपने भिक्षुओं को आदेश दिया—'भिक्षुओ! अब तुम इस दिन में समय-बेसमय भोजन को छोड़ दो'। भन्ते! तब (आपका आदेश सुनकर) मुझे बहुत कष्ट हुआ और मैं मन में दूसरी तरह सोचने लगा—'अरे यह जो गृहस्थजन हमको श्रद्धापूर्वक सुस्वादु एवं मधुर भोजन दिन में समय-बेसमय देते रहते हैं, उसका भी भगवान् निषेध कर रहे हैं, उसका भी सुगत त्याग करने के लिये कर रहे हैं'। भन्ते! फिर भी हमने आपके प्रति स्नेह, गौरव, लज्जा तथा संकोच के कारण उस दिन में समय-बेसमय के भोजन को त्याग दिया। भन्ते! फिर हमने सायंकाल एवं प्रातःकाल (केवल दो वार) भोजन करना शुरू किया। इस पर भी, भन्ते! एक समय आया,

'यं पि नो इमेसं द्विन्नं भत्तानं पणीतसङ्खाततरं तस्स पि नो भगवा पहानमाह, तस्स पि नो सुगतो पटिनिस्सग्गमाहा' ति। भूतपुब्बं, भन्ते, अञ्ञतरो पुरिसो दिवा सूपेय्यं लभित्वा एवमाह—'हन्द च इमं निक्खिपथ, सायं सब्बेव समग्गा भुञ्जिस्सामा' ति। या काचि, भन्ते, सङ्खतियो सब्बा ता रत्तिं, अप्पा दिवा। ते मयं, भन्ते, भगवति पेमं च गारवं च हिरिं च ओत्तप्पं च सम्पस्समाना एवं तं रत्तिं विकालभोजनं पजहिम्हा। भूतपुब्बं, भन्ते, भिक्खू रत्तन्धकारतिमिसायं पिण्डाय चरन्ता चन्दनिकं पि पविसन्ति, ओळिगल्ले पि पपतन्ति, कण्टकावाटं पि आरोहन्ति, सुत्तं पि गाविं आरोहन्ति, माणवेहि पि समागच्छन्ति कतकम्मेहि पि अकतकम्मेहि पि, मातुगामो पि ते असद्धम्मेन निमन्तेति। भूतपुब्बाहं, भन्ते, रत्तन्धकारतिमिसायं पिण्डाय चरामि। अद्दसा खो मं, भन्ते, अञ्ञतरा इत्थी विज्जन्तरिकाय भाजनं धोवन्ती। दिस्वा मं भीता विस्सरमकासि—'अभुम्मे पिसाचो वत मं' ति! एवं वुत्ते,

---

जब आपने भिक्षुओं को यह उपदेश किया--'भिक्षुओ! अब तुम एक ही रात में समय-बेसमय खाना छोड़ दो'। भन्ते तब (आपका यह आदेश सुनकर) मुझे बहुत कष्ट हुआ और मैं मन में दूसरी तरह सोचने लगा--'अरे यह जो दो समय के भोजन में (श्रद्धालु गृहस्थों द्वारा) स्वादु अच्छे से अच्छा बना पदार्थ मिलता है, उसका भगवान् निषेध कर रहे हैं, उसका भी सुगत त्याग करने के लिये कह रहे हैं।' भन्ते! कभी किसी आदमी ने दिन में पीने योग्य स्वादिष्ठ पेय पाकर यों कहा--'अरे, इसको रखो, सायंकाल होने पर इसे हम साथ पीयेंगे,। भन्ते! अच्छे बने हुए भोजन खाने वाले को दिन की अपेक्षा रात में अधिक अच्छे लगते हैं। भन्ते! फिर भी हमने आपके प्रति स्नेह, गौरव, लज्जा तथा संकोच के कारण, उस रात में समय-बेसमय के भोजन को त्याग दिया। भन्ते! पहले कभी भिक्षु लोग घोर अन्धकारयुक्त रात्रि में भिक्षा करने जाते समय कहीं नाली में गिर जाते थे, कहीं नाबदान में गिर पड़ते थे, कँटीली छोटी दीवार (बाड़) पर भी चढ़ जाते थे, रास्ते में लेटी गाय पर भी उनका पैर पड़ जाता था, काम पूरा किये या न पूरा किये अज्ञात आदमियों (चोरों) से भी टकरा जाते थे, बदमाश औरतें भी उन्हें गलत काम के लिये बुला लेती थीं। पहले कभी मैं एक बार घोर अन्धकार युक्त रात्रि में भिक्षा के लिये गाँव में जा रहा था। भन्ते! उस समय किसी घर में बर्तन धोती हुई स्त्री ने, बिजली की चमक में, मुझको देखा। मुझे देखते ही भयभीत हुई वह चिल्ला उठी— 'मर गयी रे! यह प्रेत (पिशाच) मुझे खाने आ रहा है !!" उसके ऐसा कहने पर, भन्ते! मैंने

अहं, भन्ते, तं इत्थिं एतदवोचं--'नाहं, भगिनि, पिसाचो; भिक्खु [R. 449] पिण्डाय ठितो' ति।

'भिक्खुस्स आतुमारी, भिक्खुस्स मातुमारी! वरं ते, भिक्खु, तिण्हेन गोविकन्तनेन कुच्छि परिकन्तो, न त्वेव वरं यं रत्तन्धकारतिमिसायं [N. 133] कुच्छिहेतु पिण्डाय चरसी' ति।

"तस्स मय्हं, भन्ते, तदनुस्सरतो एवं होति--'बहुन्नं वत नो भगवा दुक्खधम्मानं अपहत्ता, बहुन्नं वत नो भगवा सुखधम्मानं उपहत्ता; बहुन्नं वत नो भगवा अकुसलानं धम्मानं अपहत्ता, बहुन्नं वत नो भगवा कुसलानं धम्मानं उपहत्ता" ति।

२. मोघपुरिसानं सिक्खाकामानं च नानाकरणं

२. "एवमेव पनुदायि, इधेकच्चे मोघपुरिसा 'इदं पजहथा' ति मया वुच्चमाना ते एवमाहंसु--'किं पनिमस्स अप्पमत्तकस्स ओरमत्तकस्स अधिसल्लिखतेवायं समणो' ति। ते तं चेव नप्पजहन्ति, मयि च अप्पच्चयं उपट्ठापेन्ति। ये च भिक्खू सिक्खाकामा तेसं तं, उदायि, होति [B. 113] बलवं बन्धनं, दळ्हं बन्धनं, थिरं बन्धनं, अपूतिकं बन्धनं, थूलो, कलिङ्गरो—सेय्यथापि, उदायि, लटुकिका सकुणिका पूतिलताय बन्धनेन बद्धा तत्थेव

उस स्त्री से कहा—'बहन! मैं पिशाच नहीं हूँ! मैं तो भिक्षु हूँ, भिक्षा के लिये खड़ा हूँ!'

"तुझ भिक्षु की ऐसी की तैसी! यह तू इस अँधेरी रात में भिक्षा के लिये चला है, इससे तो अधिक अच्छा यह होता कि पशुओं को काटने वाली छुरी से अपना पेट काट लेता!'

"भन्ते! उस स्त्री की प्रताड़ना सुनने के बाद से उसे याद करते हुए, मुझे यह होता है--'भगवान् हमारे बहुत से दुःखों को दूर...कुशलधर्मों को देने वाले हैं।"

२. मूर्ख और जिज्ञासुओं में भेद

२. "इसी तरह, यहाँ कुछ मोघपुरुष, 'इसे छोड़ दो'--मेरे द्वारा यह कहे जाने पर ऐसा सोचते हैं--'यह श्रमण इस छोटी सी तुच्छ बात के लिये क्या आग्रह कर रहा है'! वे मेरी बतायी बात को नहीं छोड़ते, अपितु मेरे बारे में अविश्वास भी पैदा करते हैं। किन्तु उदायी! जो शिक्षा चाहने वाले हैं, उन्हें भी यह मेरा आदेश शक्तिसम्पन्न, दृढ़, स्थिर, कठोर एवं पशुओं के गले में लटकाये गये काष्ठ (=कलिंगर) की तरह प्रतीत होता है। उदायी! जैसे कोई छोटी बटेर (पक्षी) किसी पुरानी लता के जाल में फँस जाय और वह वहीं उसी हालत में दीर्घकाल तक

वधं वा बन्धं वा मरणं वा आगमेति। यो नु खो, उदायि, एवं वदेय्य— 'येन सा लटुकिका सकुणिका पूतिलताय बन्धनेन बद्धा तत्थेव वधं वा बन्धं वा मरणं वा आगमेति, तं हि तस्सा अबलं बन्धनं, दुब्बलं बन्धनं, पूतिकं बन्धनं, असारकं बन्धनं' ति; सम्मा नु खो सो, उदायि, वदमानो वदेय्या"ति?

"नो हेतं, भन्ते। येन सा, भन्ते, लटुकिका सकुणिका पूतिलताय बन्धनेन बद्धा तत्थेव वधं वा बन्धं वा मरणं वा आगमेति, तं हि तस्सा बलवं बन्धनं, दळ्हं वन्धनं, थिरं बन्धनं, अपूतिकं बन्धनं, थूलो, कलिङ्गरो" ति।

"एवमेव खो, उदायि, इधेकच्चे मोघपुरिसा 'इदं पजहथा' ति मया वुच्चमाना ते एवमाहंसु—'किं पनिमस्स अप्पमत्तकस्स ओरमत्तकस्स अधिसल्लिखतेवायं समणो' ति? ते तं चेव नप्पजहन्ति, मयि च अप्पच्चयं [N. 134] ये च भिक्खू सिक्खाकामा तेसं तं, उदायि, होति उपट्ठापेन्ति। बलवं बन्धनं, दळ्हं बन्धनं, थिरं बन्धनं, अपूतिकं बन्धनं, थूलो, कलिङ्गरो।

३. "इध पनुदायि, एकच्चे कुलपुत्ता 'इदं पजहथा' ति मया वुच्चमाना [R. 450] ते एवमाहंसु—'किं पनिमस्स अप्पमत्तकस्स ओरमत्तकस्स

फँसी रहे, किसी के द्वारा मार डाली जाय या स्वयं मृत्यु की प्रतीक्षा करती रहे। उदायी ! यदि कोई यह कहे कि वह बटेर पक्षी वहाँ जिस बन्धन से बँधी हुई अपने वध, बन्धन या मरण की प्रतीक्षा कर रही है, वह बन्धन तो दुर्बल, कमजोर तथा सड़ी-गली लता का बना हुआ बेकार सा लगता है' ; तो उदायी ! क्या वह यह कहता हुआ सही कह रहा है !"

"नहीं, भन्ते ! ऐसा नहीं है। वह बटेर पक्षी वहाँ जिस लता से बँधी हुई अपने वध, बन्धन या मरण की प्रतिक्षा कर रही है, वह लता उसके लिये शक्तिसम्पन्न, दृढ़, कठोर एवं पशुओं के गले में लटकाये गये काष्ठ (कलिंगर) की तरह है।"

"इसी तरह उदायी ! कुछ मोघपुरुष 'इसे छोड़ दो'--मेरे द्वारा यह कहे जाने पर, वे यह कहें--'यह श्रमण इस छोटी सी, तुच्छ बात के लिये क्या आग्रह कर रहा है !' वे मेरे द्वारा निषिद्ध बात को नहीं छोड़ते, अपितु मेरे बारे में अविश्वास भी पैदा करते हैं। किन्तु उदायी ! जो शिक्षा चाहने वाले हैं, उन्हें भी यह मेरा आदेश शक्तिसम्पन्न, दृढ़, स्थिर, कठोर एवं दुष्ट पशुओं के गले में लटकाये गये मोटे काष्ठ (=कलिङ्गर) की तरह ही प्रतीत होता है।

३. "परन्तु उदायी ! कुछ ऐसे भी कुलपुत्र हैं, जो मेरे द्वारा 'इसे छोड़ दो'— यह कहे जाने पर, वे ऐसा कहने लगते हैं—'इस मामूली और तुच्छ दुर्गुण को छोड़ने में क्या रखा है, जिसके प्रहाण के लिये भगवान् इतना जोर दे रहे हैं, जिसके त्याग

पहातब्बस्स यस्स नो भगवा पहानमाह, यस्स नो सुगतो पटिनिस्सग्गमाहा' ति ! ते तं चेव पजहन्ति, मयि च न अप्पच्चयं उपट्ठापेन्ति। ये च भिक्खू सिक्खाकामा ते तं पहाय अप्पोस्सुक्का पन्नलोमा परदवुत्ता मिगभूतेन चेतसा विहरन्ति। तेसं तं, उदायि, होति अबलं बन्धनं, दुब्बलं बन्धनं, पूतिकं बन्धनं, असारकं बन्धनं—सेय्यथापि, उदायि, रञ्ञो नागो ईसादन्तो उरूळ्हवा अभिजातो सङ्गामावचरो दल्हेहि वरत्तेहि बन्धनेहि बद्धो ईसकं येव कायं सन्नामेत्वा तानि बन्धनानि सञ्छिन्दित्वा सम्पदालेत्वा येन कामं पक्कमति। यो नु खो, उदायि, एवं वदेय्य—'येहि सो रञ्ञो नागो ईसादन्तो उरूळ्हवा अभिजातो सङ्गामावचरो दल्हेहि वरत्तेहि बन्धनेहि बद्धो ईसकं येव कायं सन्नामेत्वा तानि बन्धनानि सञ्छिन्दित्वा सम्पदालेत्वा येन कामं पक्कमति, तं हि तस्स बलवं बन्धनं दल्हं बन्धनं, थिरं [B. 114] बन्धनं, अपूतिकं बन्धनं, थूलो, कलिङ्गरो' ति; सम्मा नु खो सो, उदायि, वदमानो वदेय्या'' ति ?

"नो हेतं, भन्ते। येहि सो, भन्ते, रञ्ञो नागो ईसादन्तो उरूळ्हवा अभिजातो सङ्गामावचरो दल्हेहि वरत्तेहि बन्धनेहि बद्धो ईसकं येव कायं सन्नामेत्वा तानि बन्धनानि सञ्छिन्दित्वा सम्पदालेत्वा येन कामं पक्कमति, तं हि तस्स अबलं बन्धनं···पे०···असारकं बन्धनं''।

के लिये सुगत कह रहे हैं'। और वे उन्हें छोड़ देते हैं, तथा मेरे बारे में अविश्वास भी पैदा नहीं करते हैं। ऐसे शिक्षा चाहने वाले भिक्षु, उसे छोड़, निश्चिन्त हो, रोम गिरा (उनकी उपेक्षाकर), दूसरे के दिये पर जीवनयापन करने वाले मृग की तरह के चित्त से लोक में विचरण करते हैं। उदायी ! उनका यह बन्धन (मेरे आदेश का पालन) निर्बल, कमजोर, सड़ा हुआ एवं व्यर्थ (निष्तत्व) है — जैसे उदायी ! राजा का हाथी, हलदण्ड के समान लम्बे दाँतो वाला, अच्छी काठी (शरीर की बनावट) वाला (सवारी करने योग्य), कुलीन, युद्ध के दाँव-पेंच को समझने वाला, मजबूत लोहे की साँकड़ों से बँधा हुआ हो वह थोड़ी सी ही शरीर की चेष्टा से उन बन्धनों को तोडकर, छिन्न-भिन्न कर, जिधर चाहे उधर चल देता है। उदायी ! इस विषय में जो यह कहे—'राजा का हाथी हलदण्ड के समान···चल देता है, उसका वह बन्धन दृढ़, मजबूत, स्थिर, न सड़ा (जंग खाया) हुआ एवं दुष्ट पशुओं के गले में डाले गये मोटे काष्ठ की तरह है', उदायी ! क्या वह यों कहता हुआ, ठीक कह रहा है ?"

"नहीं भन्ते ! ऐसा नहीं है। भन्ते ! वह जो राजा का हाथी हलदण्ड के समान ···चल देता है, उसका वह बन्धन निर्बल···व्यर्थ है।"

"एवमेव खो, उदायि, इधेकच्चे कुलपुत्ता 'इदं पजहथा' ति मया वुच्चमाना ते एवमाहंसु—'किं पनिमस्स अप्पमत्तकस्स ओरमत्तकस्स पहातब्बस्स यस्स नो भगवा पहानमाह, यस्स नो सुगतो पटिनिस्सग्गमाहा' ति ! ते तं चेव पजहन्ति, मयि च न अप्पच्चयं उपट्ठापेन्ति। ये च भिक्खू सिक्खाकामा ते तं पहाय अप्पोस्सुक्का पन्नलोमा परदवुत्ता मिगभूतेन चेतसा विह-
[N. 135] रन्ति । तेसं तं, उदायि, होति अबलं बन्धनं, दुब्बलं बन्धनं, पूतिकं बन्धनं, असारकं बन्धनं ।

"सेय्यथापि, उदायि, पुरिसो दळिद्दो अस्सको अनाळ्हियो; तस्सस्स एकं अगारकं ओलुग्गविलुग्गं काकातिदायिं न परमरूपं, एका खटोपिका ओलुग्गविलुग्गा न परमरूपा, एकिस्सा कुम्भिया धञ्ञसमवापकं न परमरूपं, एका
[R. 451] जायिका न परमरूपा । सो आरामगतं भिक्खुं पस्सेय्य सुधोतहत्थपादं मनुञ्ञं भोजनं भुत्ताविं सीताय छायाय निसिन्नं अधिचित्ते युत्तं । तस्स एवमस्स—'सुखं वत, भो, सामञ्ञं, आरोग्यं वत, भो, सामञ्ञं ! सो वतस्सं योहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति । सो न सक्कुणेय्य एकं अगारकं ओलुग्गविलुग्गं काकातिदायिं न परमरूपं पहाय, एकं खटोपिकं ओलुग्गविलुग्गं न परमरूपं पहाय, एकिस्सा कुम्भिया धञ्ञसमवापकं न परमरूपं पहाय, एकं जायिकं न परमरूपं पहाय, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा

"उदायी ! इसी तरह यहाँ कुछ कुलपुत्र 'इसे छोड़ दो'—मेरे द्वारा यह कहे जाने पर'''मृग की तरह, उपेक्षा चित्त से लोक में विचरण करते हैं। उदायी ! उनका वह बन्धन निर्बल'''व्यर्थ है ।

"उदायी ! जैसे कोई दरिद्र, धनहीन एवं सम्पत्तिविहीन हो, जिसके पास कौए की घोंसले की तरह ऊबड़-खाबड़ एक भद्दा सा घर हो, एक टूटी-फूटी, ऊँची-नीची खाट हो, एक हाँडी भर निम्नस्तर का अनाज हो, एक कुरूप सी स्त्री (=जायिका) हो। वह विहार में बैठे किसी भिक्षु को देखे, जो हाथ पैर धो, मनोज्ञ (रुचिकर) भोजन कर चुकने के बाद, किसी वृक्ष की शीतल छाया में ध्यानमग्न बैठा हो। (तब) उसको ऐसा हो—'ओह ! श्रमणभाव सुखद है, ओह ! श्रमणभाव ही शरीर नीरोग रखने वाला है ! तो क्यों न मैं भी बाल-दाढ़ी कटाकर, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ' । परन्तु (प्रव्रजित होने के लिये) वह अपने उस कौए के घोंसले की तरह, ऊबड़-खाबड़, भद्दे घर'''कुरूपा-स्त्री को छोड़ नहीं सका, न बाल-दाढ़ी कटाकर'''प्रव्रजित हो सका । उदायी ! अब

अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। यो नु खो, उदायि, एवं वदेय्य--'येहि सो पुरिसो बन्धनेहि बद्धो···पे०···तं हि तस्स अबलं बन्धनं, दुब्बलं, [B. 115] बन्धनं, पूतिकं बन्धनं, असारकं बन्धनं' ति; सम्मा नु खो सो, उदायि, वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते। येहि सो, भन्ते, पुरिसो बन्धनेहि बद्धो, न सक्कोति एकं अगारकं ओलुग्गविलुग्गं काकातिदायिं न परमरूपं पहाय, एकं खटोपिकं ओलुग्गविलुग्गं न परमरूपं पहाय, एकिस्सा कुम्भिया धञ्ञसमवापकं न परमरूपं पहाय, एकं जायिकं न परमरूपं पहाय केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं; तं हि तस्स बलवं बन्धनं, दल्हं बन्धनं, थिरं बन्धनं, अपूतिकं बन्धनं, थूलो, कलिङ्गरो" ति।

"एवमेव खो, उदायि, इधेकच्चे मोघपुरिसा 'इदं पजहथा' ति मया वुच्चमाना ते एवमाहंसु—'किं पनिमस्स अप्पमत्तकस्स ओरमत्तकस्स अधिसल्लिखतेवायं समणो' ति! ते तं चेव नप्पजहन्ति, मयि च [N. 136] अप्पच्चयं उपट्ठापेन्ति। ये च भिक्खू सिक्खाकामा तेसं तं, उदायि, होति बलवं बन्धनं, दल्हं बन्धनं, थिरं बन्धनं, अपूतिकं बन्धनं, थूलो, कलिङ्गरो'। सेय्यथापि, उदायि, गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अड्ढो महद्धनो [R. 452] महाभोगो, नेकानं निक्खगणानं चयो, नेकानं धञ्ञगणानं चयो, नेकानं खेत्तगणानं चयो, नेकानं वत्थुगणानं चयो, नेकानं भरियगणानं चयो, नेकानं दासगणानं चयो, नेकानं दासिगणानं चयो; सो आरामगतं भिक्खुं पस्सेय्य

(इस प्रसङ्ग में) जो यह कहे—'वह जिन (सांसारिक) बन्धनों से बँधा हुआ है ···वे बन्धन उसके लिये निर्बल···व्यर्थ हैं', उदायी ! क्या वह यों कहता हुआ, ठीक कह रहा है ?"

"नहीं, भन्ते ! ऐसी बात नहीं है। जिन बन्धनों से वह पुरुष बंधा हुआ है, उनके कारण वह अपने उस कौए के घोंसले की तरह, ऊबड़-खाबड़ घर···कुरूपा स्त्री को नहीं छोड़ पाता और न बाल-दाढ़ी कटाकर···प्रव्रजित हो पाता है, क्योंकि उसके वे बन्धन शक्तिसम्पन्न···मोटे काष्ठ के समान हैं।"

"इसी तरह, उदायि ! कुछ मोघपुरुष मेरे द्वारा 'इसे छोड़ दो'—यह कहे जाने पर···मोटे काष्ठ के समान है। दूसरी तरफ उदायि ! जैसे कोई गृहपति या गृहपतिपुत्र धनवान हो, जो विशाल सम्पत्ति वाला, विपुल ऐश्वर्यसम्पन्न हो, जिसके पास अत्यधिक अशर्फियों का संग्रह हो, अत्यधिक धान्यराशि हो, काफी कृषियोग्य भूमि

सुधोतहत्थपादं मनुञ्ञं भुत्ताविं सीताय छायाय निसिन्नं अधिचित्ते युत्तं। तस्स एवमस्स—'सुखं वत, भो, सामञ्ञं, आरोग्यं वत, भो, सामञ्ञं ! सो वतस्सं योहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जेय्यं' ति। सो सक्कुणेय्य नेकानि निक्खगणानि पहाय, नेकानि धञ्ञगणानि पहाय, नेकानि खेत्तगणानि पहाय, नेकानि वत्थुगणानि पहाय, नेकानि भरियगणानि पहाय, नेकानि दासगणानि पहाय, नेकानि दासिगणानि पहाय केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। यो नु खो, उदायि, एवं वदेय्य—'येहि सो गहपति वा गहपतिपुत्तो वा बन्धनेहि बद्धो, सक्कोति नेकानि निक्ख- [B. 116] गणानि पहाय···पे०···अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं, तं हि तस्स बलवं बन्धनं, दल्हं बन्धनं, थिरं बन्धनं, अपूतिकं बन्धनं, थूलो, कलिङ्गरो' ति; सम्मा नु खो सो, उदायि, वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते। येहि सो, भन्ते, गहपति वा गहपतिपुत्तो वा बन्धनेहि बद्धो, सक्कोति नेकानि निक्खगणानि पहाय···पे०···अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं; तं हि तस्स अबलं बन्धनं, दुब्बलं बन्धनं, पूतिकं बन्धनं, असारकं बन्धनं" ति।

"एवमेव खो, उदायि, इधेकच्चे कुलपुत्ता 'इदं पजहथा' ति मया वुच्चमाना ते एवमाहंसु—किं पनिमस्स अप्पमत्तकस्स ओरमत्तकस्स पहातब्बस्स

हो, बहुत से महल-अटारी (=वास्तु) हो, कई पत्नियाँ हों, अनेक नौकर-चाकर हों, अनेक दासियाँ हों, वह विहार में बैठे भिक्षु को देखे, जो हाथ-पैर धो, मनोज्ञ भोजन कर चुकने के बाद, किसी वृक्ष की शीतल छाया में···पूर्ववत्···प्रव्रजित हो जाऊँ'। और वह अपने उस अशर्फियों के संग्रह को···दासियों को छोड़, बाल-दाढ़ी कटाकर···प्रव्रजित हो जाय। उदायी ! अब जो इसके बारे में यह कहे—'यह गृहपति या गृहपतिपुत्र जिन (सांसारिक) बन्धनों से बँधे होने के कारण अपने उस अशर्फियों के संग्रह को···प्रव्रजित हो जाय, उसके वे बन्धन शक्तिसम्पन्न···मोटे काष्ठ के समान हैं', उदायी ! क्या वह यों कहता हुआ (गृहपति के बारे में) ठीक कह रहा है ?"

"नहीं, भन्ते ! ऐसी बात नहीं है। जिन बन्धनों से वह गृहपति या गृहपतिपुत्र बँधे होने के कारण, अपने उस अशर्फियों के संग्रह को छोड़···प्रव्रजित हो सकता है, क्योंकि उसके लिये वे बन्धन निर्बल···व्यर्थ हैं।"

"इसी तरह, उदायी ! यहाँ कुछ कुलपुत्र मेरे द्वारा 'इसे छोड़ दो'—यह कहे

यस्स नो भगवा पहानमाह, यस्स नो सुगतो पटिनिस्सग्गमाहा' ति ! ते तं चेव पजहन्ति, मयि च न अप्पच्चयं उपट्ठापेन्ति। ये च भिक्खू [R. 453] सिक्खाकामा ते तं पहाय अप्पोस्सुक्का पन्नलोमा परदवुत्ता [N. 137] मिगभूतेन चेतसा विहरन्ति । तेसं तं, उदायि, होति अबलं बन्धनं, दुब्बलं बन्धनं, पूतिकं बन्धनं, असारकं बन्धनं ।

३. चत्तारो पुग्गला

४. "चत्तारोमे, उदायि, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं । कतमे चत्तारो ? इधुदायि, एकच्चो पुग्गलो उपधिपहानाय पटिपन्नो होति उपधिपटिनिस्सग्गाय । तमेनं उपधिपहानाय पटिपन्नं उपधिपटिनिस्सग्गाय उपधिपटिसंयुत्ता सरसङ्कप्पा समुदाचरन्ति । सो ते अधिवासेति, नप्पजहति, न विनोदेति, न ब्यन्तीकरोति, न अनभावं गमेति । इमं खो अहं, उदायि, पुग्गल 'संयुत्तो' ति वदामि नो 'विसंयुत्तो' । त किस्स हेतु ? इन्द्रियवेमत्तता हि मे, उदायि, इमस्मिं पुग्गले विदिता ।

"इध पनुदायि, एकच्चो पुग्गलो उपधिपहानाय पटिपन्नो होति उपधि' पटिनिस्सग्गाय। तमेनं उपधिपहानाय पटिपन्नं उपधिपटिनिस्सग्गाय उपधिपटिसंयुत्ता सरसङ्कप्पा समुदाचरन्ति। सो ते नाधिवासेति, पजहति,

---

जाने पर''' मृगतुल्य चित्त से लोक में विचरण करते हैं । उदायी ! उनका वह बन्धन निर्बल''' व्यर्थ सा है ।

३. चार प्रकार के पुद्गल

४. "उदायी ! इस लोक में चार प्रकार के पुरुष दिखाई देते हैं । कौन से चार ? उदायी ! यहाँ कोई पुरुष अपनी भोगेच्छाओं या भोगसंग्रहों के नाश व त्याग के लिये उद्यत होता है । तब उसे, इस प्रयास में लगे होने होने पर, उन भोगेच्छाओं या भोगसंग्रहों के बारे में नाना प्रकार के वितर्क-विचार (स्वर-संकल्प) उठने लगते हैं । वह उन्हें स्वीकारता चलता है, नहीं छोड़ता है, न दूर हटाता है, न उनका अन्त करता है और न अभाव या नाश का प्रयास करता है । उदायी ! मैं ऐसे पुरुष को (सांसारिक बन्धनों में) 'फँसा हुआ' (=संयुक्त) मानता हूँ, 'दूर हुआ' (=विसंयुक्त) नहीं । वह क्यों ? क्योंकि उदायी ! मैं जानता हूँ कि उस पुरुष के मन का झुकाव विसंयोग (दूर रहने) की तरफ नहीं है । (१)

"उदायी ! यहाँ कोई पुरुष अपनी भोगेच्छाओं या भोगसंग्रहों के नाश व त्याग''' वितर्क-विचार (स्वर-संकल्प) उठने लगते हैं । परन्तु वह उन्हें स्वीकार नहीं करता, अपितु छोड़ देता है, दूर हटा देता है, उनका अन्त कर देता है और उनके अभाव

बिनोदेति, ब्यन्तीकरोति, अनभावं गमेति। इमं पि खो अहं, उदायि, पुग्गलं [B. 117] 'संयुत्तो' ति वदामि नो 'विसंयुत्तो'। तं किस्स हेतु ? इन्द्रिय-वेमत्तता हि मे उदायि, इमस्मिं पुग्गले विदिता।

"इध पनुदायि, एकच्चो पुग्गलो उपधिपहानाय पटिपन्नो होति उपधि-पटिनिस्सग्गाय। तमेनं उपधिपहानाय पटिपन्नं उपधिपटिनिस्सग्गाय कदाचि करहचि सतिसम्मोसा उपधिपटिसंयुत्ता सरसङ्कप्पा समुदाचरन्ति; दन्धो, उदायि, सतुप्पादो। अथ खो नं खिप्पमेव पजहति, विनोदेति, ब्यन्तीकरोति, अनभावं गमेति। सेय्यथापि, उदायि, पुरिसो दिवससन्तत्ते अयोकटाहे द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि निपातेय्य; दन्धो, उदायि उदकफुसितानं निपातो। अथ खो नं खिप्पमेव परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य। एवमेव खो, उदायि, इधेकच्चो पुग्गलो उपधिपहानाय पटिपन्नो होति उपधिपटिनिस्सग्गाय। तमेनं उपधिपहानाय पटिपन्नं उपधिपटिनिस्सग्गाय कदाचि करहचि सति-सम्मोसा उपधिपटिसंयुत्ता सरसङ्कप्पा समुदाचरन्ति; दन्धो, उदायि, [N. 138] सतुप्पादो अथ खो नं खिप्पमेव पजहति, विनोदेति,, ब्यन्तीकरोति, [R. 454] अनभावं गमेति। इमं पि खो अहं, उदायि, पुग्गलं 'संयुत्तो'

या नाश का प्रयास करता है। उदायी ! मैं ऐसे पुरुष को भी (सांसारिक बन्धनों में) 'फंसा हुआ' (=संयुक्त) कहता हूँ···विसंयोग (दूर रहने) की तरफ नहीं है। (२)

"उदायी ! और यहाँ कोई पुरुष अपनी भोगेच्छाओं या भोगसंग्रहों के नाश या त्याग के लिये उद्यत होता है। तब उसे, इस प्रयास में लगे होने पर, कभी कोई स्मृतिसम्प्रमोष (भूल) के कारण उन भोगेच्छाओं या भोगसंग्रहों के बारे में नाना प्रकार के वितर्क-विचार (स्वर-संकल्प) उठने लगते हैं, उदायी ! उसी समय उसकी स्मृति वापस धीरे-धीरे लौट आती है। तब वह उन वितर्क-विचारों को तत्काल छोड़ देता है, दूर हटा देता है, अन्त कर देता है और उनके अभाव या नाश का प्रयास करता है। जैसे उदायी ! दिन की प्रचण्ड धूप में तपी लोहे की कढ़ाई में दो या तीन पानी की बूँद डाली जाँय; उदायी ! ये पानी की बूँद धीरे-धीरे (एक-एक कर) डाली जाती हैं, इनका वहाँ तब जल्दी ही नाश हो जाता है। इसी तरह, उदायी ! यहाँ कोई पुरुष भोगेच्छाओं या भोगसंग्रहों के नाश व त्याग के लिये उद्यत होता है। तब उसे, इस प्रयास में लगे होने पर, कभी कोई स्मृतिसम्प्रमोष (भूल) के कारण···अभाव या नाश का प्रयास करता है। उदायी ! मै ऐसे पुरुष को भी

ति वदामि नो 'विसंयुत्तो' । तं किस्स हेतु ? इन्द्रियवेमत्तता हि मे, उदायि, इमस्मिं पुग्गले विदिता ।

"इध पनुदायि, एकच्चो पुग्गलो 'उपधि दुक्खस्स मूलं' ति—इति विदित्वा निरुपधि होति, उपधिसङ्खये विमुत्तो । इमं खो अहं, उदायि, पुग्गलं 'विसंयुत्तो' ति वदामि नो 'संयुत्तो' ति । तं किस्स हेतु ? इन्द्रियवेमत्तता हि मे, उदायि, इमस्मिं पुग्गले विदिता ।

इमे खो, उदायि, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ।

४. सब्बसंयोजनप्पहानं

५. "पञ्च खो इमे, उदायि, कामगुणा । कतमे पञ्च ? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया, सोतविञ्ञेय्या सद्दा...पे०...घानविञ्ञेय्या गन्धा...जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा...इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया । इमे खो, उदायि, पञ्च कामगुणा । यं खो, उदायि, इमे पञ्च कामगुणे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं इदं वुच्चति कामसुखं मिल्हसुखं पुथुज्जनसुखं

(सांसारिक बन्धनों में) 'फँसा हुआ' (=संयुक्त) कहता हूँ...विसंयोग (दूर रहने) की तरफ नहीं हैं । (३)

"फिर उदायी ! यहाँ कोई पुरुष 'यह भोगेच्छाएँ या भोगसंग्रह दुःख की जड़ हैं'—ऐसा समझकर स्वचित्त को उपधि (भोगेच्छा) रहित कर लेता है, और उस उपधिक्षय के कारण विमुक्त हो जाता है । उदायी ! मैं इस पुरुष को (भव बन्धन से) 'दूर हुआ' (=विसंयुक्त) कहता हूँ, 'फँसा हुआ' (=संयुक्त) नहीं । वह क्यों ? क्योंकि, उदायी ! मैं जानता हूँ कि इस पुरुष के मन का झुकाव किस तरफ है । (४)

इस प्रकार उदायी ! लोक में यह चार पुद्गल दिखाई देते है ।

४. सभी संयोजनों का प्रहाण

५. "उदायी ! ये पाँच प्रकार के कामभोग कहलाते हैं । कौन से पाँच ? (१) चक्षुर्विज्ञेय इष्ट कान्त, मनाप, प्रिय, कमनीय और रजनीय रूप, श्रोत्रविज्ञेय... शब्द, घ्राणविज्ञेय...गन्ध, जिह्वाविज्ञेय...रस, कायविज्ञेय इष्ट, कान्त, मनाप, प्रिय कमनीय और रजनीय स्प्रष्टव्य धर्म—उदायी ! ये पाँच 'कामभोग' हैं । उदायी ! इस पाँच कामभोगों के सहारे जो सुख या आनन्द उत्पन्न होता है, वह काम सुख केवल अज्ञों तथा अनार्यों के लिए ही आनन्दप्रद है, उसका न सेवन करना चाहिये,

अनरियसुखं, न सेवितब्बं, न भावेतब्बं, न बहुलीकातब्बं; 'भायितब्बं एतस्स सुखस्सा' ति वदामि।

[B. 118] "इधुदायि, भिक्खु विविच्चेव कामेहि···पे०···पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति, वितक्कविचारानं वूपसमा···पे०···दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, पीतिया च विरागा···पे०···ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, सुखस्स च पहाना···पे०···चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति नेक्खम्मसुखं पविवेकसुखं उपसमसुखं सम्बोधसुखं, आसेवितब्बं, बहुलीकातब्बं; 'न भायितब्बं एतस्स सुखस्सा' ति वदामि।

"इधुदायि, भिक्खु विविच्चेव कामेहि···पे०···पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति; इदं खो अहं, उदायि, इञ्जितस्मिं वदामि। किं च तत्थ इञ्जि- [N. 139] तस्मिं ? यदेव तत्थ वितक्कविचारा अनिरुद्धा होन्ति इदं तत्थ इञ्जितस्मिं। इधुदायि, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा···पे०···दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; इदं पि खो अहं, उदायि, इञ्जितस्मिं वदामि। किं च तत्थ इञ्जितस्मिं ? यदेव तत्थ पीतिसुखं अनिरुद्धं होति इदं तत्थ इञ्जितस्मिं। इधुदायि, भिक्खु पीतिया च विरागा···पे०···ततियं झानं

न उनकी इच्छा करनी चाहिए, न संग्रह करना चाहिये; 'इस तुच्छ सुख से डरना चाहिये'—ऐसा मैं कहता हूँ।

"उदायी! यहाँ भिक्षु कामों से रहित···पूर्ववत्[1]···प्रथमध्यान को प्राप्त हो विहरता है, वितर्क-विचारों के शान्त होने पर···पूर्ववत्[1]···द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहरता है, प्रीति से विरक्त हो···पूर्ववत्[1]···तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहरता है, सुख और दुःख के त्याग से···पूर्ववत्[1]···चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। यह सुख नैष्कर्म्य सुख, प्रविवेक (समाधि) सुख, शान्तिसुख, ज्ञानसुख कहलाता है। जो कि सेवन योग्य, चाहने योग्य, एवं संग्रह करने योग्य है; 'इस सुख से भय नहीं करना चाहिए'—ऐसा मैं कहता हूँ।

उदायी! यहाँ भिक्षु कामों से रहित···प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरता है; उदायी! इसे मैं इंगितावस्था (चंचलता) कहता हूँ। उसमें इंगिता क्या है? यह कि जो वहाँ वितर्क-विचारों का पूर्णतः निरोध नहीं होता, वही इसमें इंगितता है। और उदायी! यहाँ भिक्षु वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने पर···द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहरता है; उदायी इसे मैं भी इंगितता कहता हूँ। इसमें इंगितता क्या है?

१-१-१-१. द्र०—पीछे पृ० ४५-४६।

उपसम्पज्ज विहरति; इदं पि खो अहं, उदायि, इञ्जितस्मिं वदामि। किं च तत्थ इञ्जितस्मिं ? यदेव तत्थ उपेक्खासुखं अनिरुद्धं होति [R. 455] इदं तत्थ इञ्जितस्मिं। इधुदायि, भिक्खु सुखस्स च पहाना···पे०···चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति; इदं खो अहं, उदायि, अनिञ्जितस्मिं वदामि।

"इधुदायि, भिक्खु विविच्चेव कामेहि···पे पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति; इदं खो अहं, उदायि, 'अनलं' ति वदामि, 'पजहथा' ति वदामि, 'समतिक्कमथा' ति वदामि। को च तस्स समतिक्कमो ? इधुदायि, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा पे०···दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, अयं तस्स समतिक्कमो; इदं पि खो अहं, उदायि, 'अनलं' ति वदामि, 'पजहथा' ति वदामि, 'समतिक्कमथा' ति वदामि। को च तस्स समतिक्कमो ? इधुदायि, भिक्खु पीतिया च विरागा···पे०···ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, अयं तस्स समतिक्कमो; इदं पि खो अहं, उदायि, 'अनलं' ति वदामि, 'पजहथा' ति वदामि, 'समतिक्कमथा' ति वदामि। को च तस्स

यही कि जो वहाँ (वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने पर भी) प्रीतिसुख का निरोध नहीं हो पाता, वही इसमें इंगितता है। और फिर उदायी ! यहाँ भिक्षु (साधना करते-करते) प्रीति से विरक्त हो···तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहरता है; उदायी ! इसे भी मैं इंगितता ही कहता हूँ। इसमें इंगितता क्या है ? यही कि जो वहाँ (प्रीतिसुख से विरक्त हो जाने पर भी) उपेक्षासुख का निरोध नहीं हो पाता, वही इसमें इंगतता है। और फिर उदायी ! यहाँ भिक्षु सुख और दुःख के त्याग से··· चतुर्थध्यान को प्राप्त हो विहरता है, उदायी ! उसे मैं अनिङ्गितता (निश्चलता) कहता हूँ।

"उदायी ! यहाँ कोई भिक्षु कामभोगों से रहित हो···प्रथमध्यान को प्राप्त हो विहरता है, उदायी ! इसे मैं 'यह पर्याप्त नहीं है'—ऐसा कहता हूँ, 'इसे छोड़ो' और 'आगे बढ़ो'—ऐसा मैं कहता हूँ। वहाँ यह उसका आगे बढ़ना क्या है ? उदायी ! यहाँ जो भिक्षु (इससे आगे) वितर्क विचारों के शान्त हो जाने पर··· द्वितीयध्यान को प्राप्त हो विहरता है, यही उसका आगे बढ़ना है; उदायी ! इसे भी मैं 'अपर्याप्त है'—ऐसा कहता हूँ, 'इसे छोड़ो' और 'आगे बढ़ो'—ऐसा भी कहता हूँ। उसका यह आगे बढ़ना क्या है ? उदायी ! यहाँ जो प्रीति से विरक्त हो जाने पर···तृतीयध्यान को प्राप्त हो विहरता है, यही उसका आगे बढ़ना है, उदायी ! इसे भी मैं···'आगे बढ़ो'—ऐसा कहता हूँ। उसका यह आगे बढ़ना

समतिक्कमो ? इधुदायि, भिक्खु सुखस्स च पहाना...पे०...चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति, अयं तस्स समतिक्कमो; इदं पि खो अहं, उदायि, 'अनलं' ति वदामि, 'पजहथा' ति वदामि, 'समतिक्कमथा' ति वदामि। को च तस्स समतिक्कमो ? इधुदायि, भिक्खु सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं तस्स सम-
[B. 119] तिक्कमो; इदं पि खो अहं, उदायि, 'अनलं' ति वदामि, 'पजहथा' ति वदामि, 'समतिक्कमथा' ति वदामि। को च तस्स समतिक्कमो ? इधुदायि, भिक्खु सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म
[N. 140] 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं तस्स समतिक्कमो; इदं पि खो अहं, उदायि, 'अनलं' ति वदामि, 'पजहथा' ति वदामि, 'समतिक्कमथा' ति वदामि। को च तस्स समतिक्कमो ? इधुदायि, भिक्खु सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं तस्स समतिक्कमो; इदं पि खो अहं, उदायि, 'अनलं' ति वदामि, 'पजहथा' ति वदामि, 'समतिक्कमथा' ति वदामि। को च तस्स समतिक्कमो ? इधुदायि,
[R. 456] भिक्खु सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं तस्स समतिक्कमो; इदं पि खो अहं, उदायि, 'अनलं' ति वदामि, 'पजहथा' ति वदामि, 'समतिक्कमथा' ति वदामि। को च तस्स समतिक्कमो ? इधुदायि, भिक्खु सब्बसो नेवसञ्ञा-

---

क्या है ? उदायी ! यहाँ भिक्षु जो सुख और दुःख के त्याग से...चतुर्थध्यान को प्राप्त हो विहरता है, यही उसका आगे बढ़ना है; उदायी ! इसे भी मैं...'आगे बढ़ो'—ऐसा कहता हूँ। उसका यह आगे बढ़ना क्या है ? उदायी ! यहाँ कोई भिक्षु को रूपसंज्ञाओं का सर्वथा अतिक्रमण कर...[1] आकाशानन्त्यायतन...। ...[1]विज्ञानानन्त्यायतन...। ...[1]आकिञ्चन्यायतन...। ...[1] नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहरता है, यही उसका आगे बढ़ना है, इसे भी मैं 'अपर्याप्त है'—ऐसा कहता हूँ, 'इसे छोड़ो' और 'आगे बढ़ो'—ऐसा कहता हूँ। यहाँ उसका आगे बढ़ना क्या है ? उदायी ! यहाँ भिक्षु जो नैवसंज्ञानासंज्ञायतन से भी आगे बढ़कर संज्ञावेदयित निरोध को प्राप्त हो विहरता है, यही उसका आगे बढ़ना है; इस तरह,

---

१-१-१-१. द्र० पीछे पृ० ३९३-३९४।

नासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति, अयं तस्स समतिक्कमो; इति खो अहं, उदायि, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनस्स पि पहानं वदामि। पस्ससि नो त्वं, उदायि, तं संयोजनं अणुं वा थूलं वा यस्साहं नो पहानं वदामी" ति ?

"नो हेतं, भन्ते" ति।

६. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा उदायी भगवतो भासितं अभिनन्दी तिं॥

●

उदायी ! मैं नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के त्याग का भी उपदेश देता हूँ। उदायी ! क्या ऐसा कोई छोटा या बड़ा संयोजन तुम्हें दिखाई दे रहा है, जिसका कि त्याग मैंने न बताया हो ?"

"नहीं, भन्ते !"

६. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमन आयुष्मान् उदायी ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

लटुकिकोपमसुत्त समाप्त॥

●

१७. चातुमसुत्तं

१. भगवता भिक्खू पणामिता

[N. 141] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा चातुमायं विहरति आमलकीवने। तेन खो पन समयेन सारिपुत्तमोग्गल्लानप्पमुखानि पञ्चमत्तानि भिक्खुसतानि चातुमं अनुप्पत्तानि होन्ति भगवन्तं दस्सनाय। ते च आगन्तुका भिक्खू नेवासिकेहि भिक्खूहि सद्धिं पटिसम्मोदमाना सेनासनानि पञ्ञापयमाना पत्तचीवरानि पटिसामयमाना उच्चासद्दा महासद्दा अहेसुं। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"के पनेते, आनन्द, उच्चासद्दा महासद्दा, केवट्टा मञ्ञे मच्छविलोपे" ति ?

"एतानि, भन्ते, सारिपुत्तमोग्गल्लानप्पमुखानि पञ्चमत्तानि भिक्खु-
[B. 120] सतानि चातुमं अनुप्पत्तानि भगवन्तं दस्सनाय। ते आगन्तुका भिक्खू नेवासिकेहि भिक्खूहि सद्धिं पटिसम्मोदमाना सेनासनानि पञ्ञापयमाना पत्तचीवरानि पटिसामयमाना उच्चासद्दा महासद्दा" ति।

"तेनहानन्द, मम वचनेन ते भिक्खू आमन्तेहि—'सत्था आयस्मन्ते आमन्तेती'" ति।

---

१७. चातुमसूत्र

१. भगवान् द्वारा भिक्षुओं को विहार-परित्याग का आदेश

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) चातुमा ग्राम के आमलकीवन में विहार कर रहे थे। उस समय शारिपुत्र, मौद्गल्यायन आदि पाँच सौ भिक्षु भगवान् के दर्शन हेतु चातुमा ग्राम में आये। वे आने वाले भिक्षु पहले से वहाँ रहने वाले भिक्षुओं से परस्पर कुशल-मंगल पूछते हुए, अपना बिस्तर व पात्र-चीवर यथास्थान रखते हुए, ऊँचे-ऊँचे शब्द (कोलाहल) कर रहे थे। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को बुलाकर पूछा--"आनन्द ! ये कौन लोग है, जिन्होंने विहार को इतना अधिक कोलाहल करके मछली बाजार सा बना दिया है (या मानों मल्लाह, हल्ला-गुल्ला करते हुए, मछली मार रहे हों) ?"

"भन्ते ! ये शारिपुत्र, मौद्गल्यायन आदि पाँच सौ भिक्षु भगवान् के दर्शन हेतु चातुमा में आये हुए हैं। ये बाहर से आने वाले भिक्षु पहले से वहाँ रहने वाले...कोलाहल कर रहे हैं।"

"तो आनन्द ! मेरे कहने से उन भिक्षुओं को (मेरे पास) यह कहकर बुलाओ—'शास्ता आप लोगों को बुला रहे हैं।'"

"एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—"सत्था आयस्मन्ते आमन्तेती" ति। "एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो आनन्दस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं [R. 457] अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो ते भिक्खू भगवा एतदवोच—"किं नु तुम्हे, भिक्खवे, उच्चासद्दा महासद्दा, केवट्टा मञ्ञे मच्छविलोपे" ति ?

"इमानि, भन्ते, सारिपुत्तमोग्गल्लानप्पमुखानि पञ्चमत्तानि [N. 142] भिक्खुसतानि चातुमं अनुप्पत्तानि भगवन्तं दस्सनाय। तेमे आगन्तुका भिक्खू नेवासिकेहि भिक्खूहि सद्धिं पटिसम्मोदमाना सेनासनानि पञ्ञापयमाना पत्तचीवरानि पटिसामयमाना उच्चासद्दा महासद्दा" ति।

"गच्छथ, भिक्खवे, पणामेमि वो, न वो मम सन्तिके वत्थब्बं" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय पक्कमिंसु। तेन खो पन समयेन चातुमेय्यका सक्या सन्थागारे सन्निपतिता

"जो आज्ञा, भन्ते"—भगवान् से यह कहकर, आयुष्मान् आनन्द जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ पहुँचे; पहुँचकर, उन भिक्षुओं से यह बोले—"शास्ता ने आप लोगों को बुलाया है।" "ठीक है, आयुष्मन् !"—उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को यह उत्तर देकर जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओं से भगवान् ने यह पूछा—"भिक्षुओ ! क्यों तुम इतना हल्ला-गुल्ला (कोलाहल) कर रहे थे, मानो मल्लाह लोग मछली मार रहे हों !"

"भन्ते ! शारिपुत्र मौद्गल्यायन आदि पाँच सौ भिक्षु ...कोलाहल कर रहे थे।"

"भिक्षुओ ! तुम अभी यहाँ से चले जाओ, (तत्काल विहार खाली कर दो !), मेरे साथ तुम लोगों के रहने की कोई जरुरत नहीं !"

वे भिक्षु "जैसी आज्ञा, भन्ते !"—यों भगवान् को उत्तर देते हुए, भगवान् का आदेश मानकर, अपने आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम एवं प्रदक्षिणा कर, अपना-अपना आसन समेट, पात्र-चीवर ले (विहार से बाहर) चले गये। उसी समय चातुमा निवासी शाक्य लोग किसी विशेष कार्य से अपने संस्थागार (पचायत घर) में एकत्र थे। उन चातुमावासी शाक्यों ने आते हुए भिक्षुओं को दूर

होन्ति केनचिदेव करणीयेन। अद्दसंसु खो चातुमेय्यका सक्या ते भिक्खू दूरतो व आगच्छन्ते; दिस्वान येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोचुं—"हन्द, कहं पन तुम्हे आयस्मन्तो गच्छथा" ति ?

"भगवता खो, आवुसो, भिक्खुसङ्घो पणामितो" ति।

"तेनहायस्मन्तो मुहुत्तं निसीदथ, अप्पेव नाम मयं सक्कुणेय्याम भगवन्तं पसादेतुं" ति। "एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू चातुमेय्यकानं सक्यानं पच्चस्सोसुं। अथ खो चातुमेय्यका सक्या येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो चातुमेय्यका सक्या भगवन्तं एतदवोचुं--"अभिनन्दतु, भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं; अभिवदतु, भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं। सेय्यथापि, भन्ते, भगवता [B. 121] पुब्बे भिक्खुसङ्घो अनुग्गहितो, एवमेव भगवा एतरहि अनुग्गण्हातु भिक्खुसङ्घं। सन्तेत्थ, भन्ते, भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं। तेसं भगवन्तं दस्सनाय अलभन्तानं सिया अञ्ञथत्तं, सिया विपरिणामो। सेय्यथापि, भन्ते, बीजानं तरुणानं उदकं अलभन्तानं सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो; एवमेव खो, भन्ते, सन्तेत्थ

से ही देखा; देखकर वे जहाँ वे, भिक्षु थे वहाँ, पहुँचे; पहुँचकर, उन्होंने उन भिक्षुओं से यह पूछा—"आयुष्मानो ! आप लोग कहाँ जा रहे हैं ?"

(भिक्षुओं ने उत्तर दिया—) "आयुष्मानो ! भगवान् ने इस भिक्षुसङ्घ को विहार छोड़ने का आदेश दे दिया है।"

(शाक्यों ने भिक्षुओं से कहा--) "आयुष्मानो ! आप कुछ देर यहीं ठहरें, हो सकता है, हम लोग भगवान् को (आप लोगों को विहार में वापस लौटाने के लिए) राजी कर लें।" उन भिक्षुओं ने "ठीक है, आयुष्मानो !"--कहकर, चातुमावासी शाक्यों को प्रत्युत्तर दिया। तब चातुमावासी शाक्य जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे वे चातुमावासी शाक्य भगवान् से यों बोले--"भन्ते ! भगवान् भिक्षुसङ्घ पर प्रसन्न हों, उसका अभिनन्दन करें, उसे उपदेश-आदेश दें। भन्ते ! आपने जैसे पूर्वकाल में भिक्षुसङ्घ को अनुग्रहीत (स्वीकार) किया है, उसी तरह आज भी आप भगवान् भिक्षुसङ्घ को अनुग्रहीत करें। भन्ते ! कुछ नये भिक्षु जिन्होंने अभी-अभी दीक्षा ली है और सङ्घ के धर्मविनय में प्रविष्ट हुए हैं। उन को आपके वरदहस्त का सहारा न मिलने पर हो सकता है, इसका उलटा प्रभाव पड़े या कोई भयंकर दुष्परिणाम

भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं, [R. 458] तेसं भगवन्तं दस्सनाय अलभन्तानं सिया अञ्ञथत्तं, सिया विपरिणामो। सेय्यथापि, भन्ते, वच्छस्स तरुणस्स मातरं अपस्सन्तस्स सिया अञ्ञथत्तं, सिया विपरिणामो; एवमेव खो, भन्ते, सन्तेत्थ भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं, तेसं भगवन्तं अपस्सन्तानं सिया अञ्ञथत्तं, सिया विपरिणामो। अभिनन्दतु, भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं; [N. 143] अभिवदतु, भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं। सेय्यथापि, भन्ते, भगवता पुब्बे भिक्खुसङ्घो अनुग्गहितो, एवमेव भगवा एतरहि अनुग्गण्हातु भिक्खुसङ्घं" ति।

२. अथ खो ब्रह्मा सहम्पति भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्ज़ेय्य, एवमेव—ब्रह्मलोके अन्तरहितो भगवतो पुरतो पातुरहोसि। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्त एतदवोच--"अभिनन्दतु, भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं; अभिवदतु, भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं। सेय्यथापि, भन्ते, भगवता पुब्बे भिक्खुसङ्घो अनुग्गहितो; एवमेव भगवा एतरहि अनुग्गण्हातु भिक्खुसङ्घं। सन्तेत्थ, भन्ते, भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं, तेसं भगवन्तं दस्सनाय अलभन्तानं सिया अञ्ञथत्तं, सिया विपरिणामो। सेय्यथापि, भन्ते, बीजानं तरुणानं उदकं अलभन्तानं सिया अञ्ञथत्तं, सिया विपरिणामो; एवमेव खो, भन्ते, सन्तेत्थ भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता

सामने आये। भन्ते! जैसे नये बोये बीजों को जल न मिलने पर, उलटा प्रभाव या दुष्परिणाम होता है; इसी तरह, भन्ते! कुछ नये भिक्षु दुष्परिणाम सामने आये। और भन्ते! जैसे छोटे बच्चे पर माता के न दिखायी देने से, उलटा प्रभाव या दुष्परिणाम होता है; इसी तरह, भन्ते! कुछ नये भिक्षु... दुष्परिणाम सामने आये। अतः भन्ते! भगवान् भिक्षुसङ्घ का अभिनन्दन करें, उसे आदेश-उपदेश दें। भन्ते! जैसे आपने पूर्वकाल में भिक्षुसङ्घ को अनुगृहीत किया था; उसी तरह आज भी आप भगवान् इस भिक्षुसङ्घ को अनुगृहीत करें।

२. इसके बाद सहम्पति ('सहा' लोक के स्वामी) ब्रह्मा ने स्वचित्त से भगवान् के चित्त का भाव जानकर, जैसे कोई बलवान् पुरुष सिकुड़ी बाँह (बाहु) को पसार दे या पसारी हुई बाँह को सिकोड़ ले, उसी तरह ब्रह्मलोक में अन्तर्धान होकर वे ब्रह्मा भगवान् के सम्मुख प्रकट हुए। तब उन सहम्पति ब्रह्मा ने अपने उत्तरासङ्ग

अधुनागता इमं धम्मविनयं, तेसं भगवन्तं दस्सनाय अलभन्तानं सिया अञ्ञथत्तं, सिया विपरिणामो। सेय्यथापि, भन्ते, वच्छस्स तरुणस्स मातरं अपस्सन्तस्स सिया अञ्ञथत्तं, सिया विपरिणामो; एवमेव खो, भन्ते, सन्तेत्थ भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं, तेसं भगवन्तं अपस्सन्तानं सिया अञ्ञथत्तं, सिया विपरिणामो। अभिनन्दतु, [B. 122] भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं; अभिवदतु, भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं। सेय्यथापि, भन्ते, भगवता पुब्बे भिक्खुसङ्घो अनुग्गहितो; एवमेव [R. 459] भगवा एतरहि अनुग्गण्हातु भिक्खुसङ्घं" ति।

३. असक्खिसु खो चातुमेय्यका च सक्या ब्रह्मा च सहम्पति भगवन्तं पसादेतुं बीजूपमेन च तरुणूपमेन च। अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो भिक्खू आमन्तेसि—"उट्ठेथावुसो, गण्हथ पत्तचीवरं। पसादितो भगवा चातुमेय्यकेहि च सक्येहि ब्रह्मुना च सहम्पतिना बीजूपमेन च तरुणूपमेन चा" ति। "एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स [N. 144] पटिस्सुत्वा उट्ठायासना पत्तचीवरमादाय येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं सारिपुत्तं भगवा एतदवोच—"किन्ति ते, सारिपुत्त, अहोसि मया भिक्खुसङ्घे पणामिते" ति ?

(चादर) को एक ओर दाँये कन्धे पर कर, भगवान् की ओर हाथ जोड़ प्रणाम कर, भगवान् से यों कहा—"भगवान् भिक्षुसङ्घ का अभिनन्दन करें" पूर्ववत्"' इस भिक्षुसङ्घ को अनुगृहीत करें।

३. (अन्त में) उन चातुमावासी शाक्यों और सहम्पति ब्रह्मा ने बीज और तरुण वत्स की उपमा के सहारे भगवान् को इस भिक्षुसङ्घ पर अनुग्रह (कृपा) करने के लिए मना ही लिया। इसके बाद आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने भिक्षुओं से कहा—"आयुष्मानो ! उठो, अपने-अपने पात्र-चीवर सम्हालो। चातुमावासी शाक्यों एवं सहम्पति ब्रह्मा ने नये अंकुर और तरुण वत्स की उपमा देकर भगवान् को हम पर कृपा भाव करने के लिए मना लिया है।" "ठीक है, आयुष्मन् !" कहकर, वे भिक्षु आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की बात मान, अपना-अपना पात्र-चीवर ले, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। (तब) एक ओर बैठे (उन भिक्षुओं में से) आयुष्मान् शारिपुत्र से भगवान् ने यह पूछा—"शारिपुत्र ! जब मैंने भिक्षुसङ्घ को विहार छोड़ने का आदेश दिया था, तब तुम्हारे मन में क्या विचार हुआ ?"

"एवं खो मे, भन्ते, अहोसि--'भगवता भिक्खुसङ्घो पणामितो। अप्पोस्सुक्को दानि भगवा दिट्ठधम्मसुखविहारं अनुयुत्तो विहरिस्सति, मयं पि दानि अप्पोस्सुक्का दिट्ठधम्मसुखविहारमनुयुत्ता विहरिस्सामा'" ति।

"आगमेहि त्वं, सारिपुत्त, आगमेहि त्वं, सारिपुत्त, दिट्ठधम्मसुखविहारं" ति।

अथ खो भगवा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं आमन्तेसि—"किन्ति ते, मोग्गल्लान, अहोसि मया भिक्खुसङ्घे पणामिते" ति ?

"एवं खो मे, भन्ते, अहोसि—'भगवता भिक्खुसङ्घो पणामितो। अप्पोस्सुक्को दानि भगवा दिट्ठधम्मसुखविहारं अनुयुत्तो विहरिस्सति, अहं च दानि आयस्मा च सारिपुत्तो भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सामा'" ति।

"साधु साधु, मोग्गल्लान ! अहं वा हि, मोग्गल्लान, भिक्खुसङ्घं परिहरेय्यं सारिपुत्तमोग्गल्लाना वा" ति।

२. चत्तारि पब्बजितभयानि

४. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"चत्तारिमानि, भिक्खवे,

"भन्ते ! उस समय मुझे यह हुआ था--'भगवान् ने भिक्षुसङ्घ को विहार से चले जाने का आदेश दे दिया। अब भगवान् निश्चिन्त हो, दृष्टधर्मसुख-विहार से युक्त हो साधना में लगेंगे। और इधर हम भी निश्चिन्त हो दृष्टधर्मसुख-विहार से युक्त हो साधना करेंगे'।"

"ठहर शारिपुत्र ! ठहर, दृष्टधर्मसुख-विहार की बात मत कर।"

इसके बाद भगवान् ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से भी यही पूछा—"मौद्गल्यायन ! मेरे द्वारा भिक्षुसङ्घ को विहार से निकाल देने पर तुम्हारे मन में क्या विचार उठे ?"

"भन्ते ! मेरे मन में तो यह हुआ था—'भगवान्...साधना में लगेंगे, और अब मैं और आयुष्मान् शारिपुत्र इस भिक्षुसङ्घ का संचालन करेंगे'।"

"ठीक है मौद्गल्यायन ! तुम्हारा कहना ठीक है, (अब तुम दोनों इस स्थिति में पहुँच गये हो कि) इस भिक्षुसङ्घ का मैं संचालन करूँ या शारिपुत्र-मौद्गल्यायन—कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।"

२. प्रव्रज्या में चार प्रकार के भय (खतरे)

४. इसके बाद भगवान् ने भिक्षुओं को यों सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! (नदी

भयानि उदकोरोहन्ते पाटिकङ्खितब्बानि। कतमानि चत्तारि? ऊमिभयं, कुम्भीलभयं, आवट्टभयं, सुसुकाभयं--इमानि, भिक्खवे, चत्तारि भयानि उदकोरोहन्ते पाटिकङ्खितब्बानि। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारिमानि भयानि [B. 123] इधेकच्चे पुग्गले इमस्मिं धम्मविनये अगारस्मा अनगारियं [R. 460] पब्बजिते पाटिकङ्खितब्बानि। कतमानि चत्तारि? ऊमिभयं, कुम्भीलभयं, आवट्टभयं, सुसुकाभयं।

ऊमिभयं

५. "कतमं च, भिक्खवे, ऊमिभयं? इध, भिक्खवे, एकच्चो कुलपुत्तो [N. 145] सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति--'ओतिण्णाम्हि जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो; अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति। तमेनं तथा पब्बजितं समानं सब्रह्मचारी ओवदन्ति, अनुसासन्ति—'एवं ते अभिक्कमितब्बं, एवं ते पटिक्कमितब्बं, एवं ते

आदि के) जल में प्रवेश करते समय मनुष्य को इन चतुर्विध भयों (खतरों) की आशंका बनी रहती है। कौन से चार? (१) ऊर्मिभय (ऊँची-ऊँची लहरों से टकराने का भय), (२) कुम्भीलभय (मगरमच्छ का भय), (३) आवर्तभय (गहरे भ्रमरों में फँस जाने का भय) और (४) शिशुकाभय (नरभक्षी मत्स्य का भय)—भिक्षुओ! (जैसे) जल में प्रवेश करते समय मनुष्य को इन चतुर्विध भयों की आशका बनी रहती है। इसी तरह भिक्षुओ! इन चार प्रकार के भयों की आशंका उस पुरुष को भी बनी रहती है, जो (मेरे) इस धर्मविनय में, घर से बेघर हो, प्रव्रजित हो चुका हो। कौन से चार? (१) ऊर्मिभय, (२) कुम्भीलभय, (३) आवर्तभय और (४) शिशुकाभय।

ऊर्मिभय

५. "भिक्षुओ! ऊर्मिभय कौन सा है? भिक्षुओ! यहाँ कोई कुलपुत्र घर से बेघर हो प्रव्राजत होता है। (प्रव्रजित होने के तत्काल बाद वह यों सोचता है—) 'मैं तो जन्म, जरा, मरण, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास (परेशानियों) में पड़ा हूँ, दुःखों से घिरा हूँ; दुःखों में डूबा हूँ; क्या कोई है ऐसा उपाय जिसके सहारे मैं इस एकान्त दुःखसमूह से सदा के लिए छुटकारा पा सकूँ। (तब) इस तरह (नव) प्रव्रजित हुए कुलपुत्र को उसके साथी भिक्षु (भिक्षुभावोपयुक्त रहने-सहने, उठने-बैठने के लिए) नाना प्रकार के उपदेश-आदेश देने लगते हैं—'

आलोकितब्बं, एवं ते विलोकितब्बं, एवं ते समिञ्जितब्बं, एवं ते पसारितब्बं, एवं ते सङ्घाटिपत्तचीवरं धारेतब्बं' ति। तस्स एवं होति—'मयं खो पुब्बे अगारियभूता समाना अञ्ञे ओवदाम, अनुसासाम। इमे पनम्हाकं पुत्तमत्ता मञ्ञे, नत्तमत्ता मञ्ञे, अम्हे ओवदितब्बं अनुसासितब्बं मञ्ञन्ती' ति। सो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, ऊमिभयस्स भीतो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तो। 'ऊमिभयं' ति खो, भिक्खवे, कोधुपायासस्सेतं अधिवचनं।

कुम्भीलभयं

६. "कतमं च, भिक्खवे, कुम्भीलभयं? इध, भिक्खवे, एकच्चो कुलपुत्तो सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति—'ओतिण्णोम्हि जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो; अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति। तमेनं तथा पब्बजितं समानं सब्रह्मचारी ओवदन्ति अनु-

---

'तुम्हें इस प्रकार जाना चाहिये, इस प्रकार आना चाहिये, तुम्हें इस प्रकार आलोकन या विलोकन करना चाहिये, तुम्हें यों हाथ-पैर पसारने चाहिये, यों सिकोड़ने चाहिये और तुम्हें इस तरह सङ्घाटि, पात्र-चीवर धारण करना चाहिये'। तब उस कुलपुत्र को यह होता है—'अरे! पहले जब हम गृहस्थ थे, तब हम दूसरों को उपदेश करते थे, आदेश देते थे। परन्तु अब ये (छोटे-मोटे भिक्षु) हमारे नाती-पोते के समान होते हुए भी हमें उपदेश-आदेश के योग्य मानते हैं।' (वह कुलपुत्र यह सोचकर) इस धर्म-विनय को छोड़, वापस हीन (गृहस्थ) धर्म में लौट जाता है। भिक्षुओ! इसके बारे में तब लोग यह कह बैठते हैं कि यह ऊर्मिभय से संत्रस्त हो, इस धर्मविनय को छोड़, वापस गृहस्थ धर्म में लौट गया। भिक्षुओ! यह 'ऊर्मिभय' (शब्द) क्रोध और परेशानी का ही पर्याय है। (१)

कुम्भीलभय

६. "भिक्षुओ! कुम्भीलभय कौन सा है? भिक्षुओ! यहाँ कोई कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्राजत होता है। (प्रव्रजित हो यों सोचता है—) 'मैं तो जन्म, जरा···छुटकारा पा सकूँ'। (तब) इस तरह (नव) प्रव्रजित हुए कुलपुत्र को उसके साथी भिक्षु नाना प्रकार के आदेश-उपदेश देने लगते हैं—'यह तुम्हें खाना चाहिए, यह तुम्हें नहीं खाना चाहिए; यह तुम्हें भोजन में लेना चाहिये, यह तुम्हें भोजन में नहीं लेना चाहिए; तुम्हें इसका रस लेना चाहिए, तुम्हें इसका रस

सासन्ति—'इदं ते खादितब्बं, इदं ते न खादितब्बं; इदं ते भुञ्जितब्बं, इदं ते न भुञ्जितब्बं; इदं ते सायितब्ब, इदं ते न सायितब्बं; इदं ते पातब्बं, इदं ते न पातब्बं; कप्पियं ते खादितब्बं, अकप्पियं ते न खादितब्बं; कप्पियं ते भुञ्जितब्बं, अकप्पियं ते न भुञ्जितब्बं; कप्पियं ते सायितब्बं, अकप्पियं ते न सायितब्बं; कप्पियं ते पातब्बं, अकप्पियं ते न पातब्बं; काले ते खादितब्बं, विकाले ते न खादितब्बं; काले ते भुञ्जितब्बं, [B. 124] विकाले ते न भुञ्जितब्बं; काले ते सायितब्बं, विकाले ते न सायितब्बं; काले ते पातब्बं, विकाले ते न पातब्बं' ति। तस्स एवं होति—[R. 461] 'मयं खो पुब्बे अगारियभूता समाना यं इच्छाम तं खादाम, यं न इच्छाम न तं खादाम; यं इच्छाम तं भुञ्जाम, यं न इच्छाम न तं भुञ्जाम; [N. 146] यं इच्छाम तं सायाम, यं न इच्छाम न तं सायाम; यं इच्छाम तं पिवाम, यं न इच्छाम न तं पिवाम; कप्पियं पि खादाम, अकप्पियं पि खादाम; कप्पियं पि भुञ्जाम, अकप्पियं पि भुज्जाम; कप्पियं पि सायाम, अकप्पियं पि सायाम; कप्पियं पि पिवाम, अकप्पियं पि पिवाम; काले पि खादाम, विकाले पि खादाम; काले पि भुञ्जाम, विकाले पि भुञ्जाम; काले पि सायाम, विकाले पि सायाम; काले पि पिवाम, विकाले पि पिवाम। यं पि नो सद्धा गहपतिका दिवा विकाले पणीतं खादनीयं भोजनीयं देन्ति

नहीं लेना चाहिए; यह तुम्हें पीना चाहिए, यह तुम्हें नहीं पीना चाहिए; तुम्हें कल्प्य (विधिसम्मत) ही खाना चाहिए, अकल्प्य खाना नहीं; कल्प्य भोजन ही करना चाहिए, अकल्प्य भोजन नहीं; तुम्हें कल्प्य रस ही लेना चाहिए, अकल्प्य रस नहीं; तुम्हें कल्प्य पेय पदार्थ का ही पान करना चाहिये, अकल्प्य पेय पदार्थ का नहीं; तुम्हें समय पर ही खाना लेना चाहिए, असमय पर नहीं; तुम्हें समय पर ही भोजन करना चाहिये, असमय पर नहीं; तुम्हें समय पर रस लेना चाहिये, असमय पर नहीं; तुम्हें समय पर ही पीना चाहिये, असमय पर नहीं'। (तब) उसको यह विचार होता है—'हम पहले जब गृहस्थ थे तब जिसे चाहते उसे खाते, जिसे नहीं चाहते उसे नहीं खाते; जैसा चाहते वैसा भोजन करते, जैसा नहीं चाहते वैसा भोजन नहीं करते; जो चाहते वही रस लेते, जो नहीं चाहते वह रस नहीं लेते थे; जो चाहते थे उसे पीते थे, जो नहीं चाहते उसे नहीं पीते थे; कल्प्य भी खाते थे, अकल्प्य भी खाते थे ....कल्प्य भी पीते थे, अकल्प्य भी पीते थे; समय से भी खाते थे, बेसमय भी खाते थे .. समय से भी पीते थे, असमय से भी पीते थे। और जो श्रद्धालु गृहस्थ अच्छा और रुचिकर (प्रणीत) भोजन समय-बेसमय देते हैं, उस पर भी यह लोग रोक

तत्थ पिमे मुखावरणं मञ्ञे करोन्ती' ति। सो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कुम्भीलभयस्स भीतो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तो। 'कुम्भीलभयं' ति खो, भिक्खवे, ओदरिकत्तस्सेतं अधिवचनं।

आवट्टभयं

७. "कतमं च, भिक्खवे, आवट्टभयं? इध, भिक्खवे, एकच्चो कुलपुत्तो सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति—'ओतिण्णोम्हि जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो; अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति। सो एवं पब्बजितो समानो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति। अरक्खितेनेव कायेन अरक्खिताय वाचाय अनुपट्ठिताय सतिया असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति गहपतिं वा गहपतिपुत्तं वा पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितं समङ्गीभूतं परिचारयमानं। तस्स एवं होति—'मयं खो पुब्बे अगारियभूता समाना पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारिम्हा। संविज्ज-

---

(=मुखावरण) लगाते हैं'। (यों सोचकर वह कुलपुत्र) इस भिक्षुभाव का त्यागकर, वापस गृहस्थ धर्म में लौट जाता है। भिक्षुओ! यह कुम्भीलभय से डरा हुआ, भिक्षुभाव का त्याग कर, वापस गृहस्थधर्म में लौट गया कहलाता है। भिक्षुओ! यह 'कुम्भीलभय' (शब्द) पेटूपन का ही दूसरा नाम है। (२)

आवर्तभय

७. "भिक्षुओ! (भिक्षुओ के लिये) आवर्तभय क्या है? भिक्षुओ! यहाँ कोई कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो, प्रव्रजित होता है। (प्रव्रजित होकर वह यों सोचता है—) 'मैं जन्म, जरा... छुटकारा पा सकूँ'। वह इस प्रकार प्रव्रजित हुआ, पूर्वाह्ण में पात्र-चीवर ले, काया से अरक्षित (सयमरहित), चित्त व वाणी से अरक्षित, स्मृति से वंचित, इन्द्रियसंयमरहित हो, गाँव या कस्बे में भिक्षा के लिये प्रवेश करता है। वह वहाँ किसी गृहपति या गृहपतिपुत्र को देखता है, जो पाँचों कामभोगों मे लिपटा, उन्हीं में ओतप्रोत तथा नाना परिचारकों द्वारा सेवित हो। (तब) उसको यह होता है—'हम भी पहले गृहस्थ रहते हुए, पाँचों कामभोगों से लिपटे, उन्हीं में ओतप्रोत तथा नाना परिचारकों द्वारा अपनों की तरह सेवित थे। मेरे घर में भी भोग के लिये नाना पदार्थ हैं। भोगों को भोगते हुए भी पुण्य किया

न्ति खो पन मे कुले भोगा। सक्का भोगे च भुञ्जितुं पुञ्ञानि च कातुं' ति। सो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, आवट्टभयस्स भीतो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तो। 'आवट्टभयं' ति खो, भिक्खवे, पञ्चन्नेतं कामगुणानं अधिवचनं।

सुसुकाभयं

[N. 147, B. 125, R. 462] ८. "कतमं च भिक्खवे, सुसुकाभयं ? इध, भिक्खवे, एकच्चो कुलपुत्तो सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति—'ओतिण्णोम्हि जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो; अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति। सो एवं पब्बजितो समानो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति। अरक्खितेनेव कायेन अरक्खिताय वाचाय अनुपट्ठिताय सतिया असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति मातुगामं दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा। तस्स मातुगामं दिस्वा दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा रागो चित्तं अनुद्धंसेति। सो रागानुद्धसेन चित्तेन सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। अयं

जा सकता है'। (वह यों सोचकर) इस भिक्षुभाव को त्याग, वापस गृहस्थधर्म में लौट जाता है। भिक्षुओ! वह आवर्तभय से डरा हुआ, भिक्षुभाव को त्यागकर, गृहस्थधर्म में लौट गया कहलाता है। भिक्षुओ! यह 'आवर्तभय' (शब्द) पाँच कामभोगों का ही दूसरा नाम है। (३)

शिशुकाभय

८. "भिक्षुओ! यह शिशुकाभय क्या है? भिक्षुओ! यहाँ कोई कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित होता है। (प्रव्रजित हो वह यह सोचता है—) 'मैं जन्म, जरा ... छुटकारा पा सकूँ'। वह इस प्रकार प्रव्रजित हुआ पूर्वाह्न में पात्र-चीवर ले, काया से अरक्षित ... कस्बे में भिक्षा के लिये प्रवेश करता है। तब वह वहाँ ठीक ढंग से कपड़ा न ओढ़ी-पहनी स्त्री को देखता है। उस स्त्री को देखकर, उसके चित्त में राग उत्पन्न हो, उसे पीड़ित करने लगता है। वह इस राग से पीड़ित हो, भिक्षुभाव का त्याग कर, वापस गृहस्थधर्म में लौट जाता है। भिक्षुओ! ऐसा यह पुरुष 'शिशुकाभय से डरा भिक्षुभाव का त्यागकर, गृहस्थधर्म में लौटा हुआ' कहलाता है। भिक्षुओ! यह 'शिशुकाभय' (शब्द) 'नारी के प्रति राग' का दूसरा नाम

वुच्चति, भिक्खवे, सुसुकाभयस्स भीतो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तो। 'सुसुकाभयं' ति खो, भिक्खवे, मातुगामस्सेतं अधिवचनं। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि भयानि, इधेकच्चे पुग्गले इमस्मिं धम्मविनये अगारस्मा अनगारियं पब्बजिते पाटिकङ्खितब्बानी" ति।

९. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

●

है। (इस तरह) भिक्षुओ! ये चार प्रकार के भयों की आशंका उस पुरुष को बनी रहती है, जो (मेरे) इस धर्मविनय में, घर से बेघर हो, प्रव्रजित हो चुका है।"

९. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमन उन भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

चातुमसुत्त समाप्त॥

●

१८. नलकपानसुत्तं

१. अनुरुद्धं उद्दिस्स भगवतो ओवादो

[N. 148] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति नळकपाने पलासवने। तेन खो पन समयेन सम्बहुला अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता कुलपुत्ता भगवन्तं उद्दिस्स सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता होन्ति—आयस्मा च अनुरुद्धो, आयस्मा च भद्दियो, आयस्मा च किम्बिलो, आयस्मा च भगु, आयस्मा च कोण्डञ्ञो, आयस्मा च रेवतो, आयस्मा च आनन्दो, अञ्ञे च अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता कुलपुत्ता। तेन खो पन समयेन [R. 463] भगवा भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे निसिन्नो होति। अथ [B. 126] खो भगवा ते कुलपुत्ते आरब्भ भिक्खू आमन्तेसि—"ये ते, भिक्खवे, कुलपुत्ता ममं उद्दिस्स सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता, कच्चि ते, भिक्खवे, भिक्खू अभिरता ब्रह्मचरिये" ति? एवं वुत्ते, ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। दुतियं पि खो भगवा ते कुलपुत्ते आरब्भ भिक्खू आमन्तेसि—"ये ते, भिक्खवे, कुलपुत्ता ममं उद्दिस्स सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता, कच्चि ते, भिक्खवे, भिक्खू अभिरता ब्रह्मचरिये" ति? दुतियं पि

---

१८. नड़कपानसूत्र

१. अनुरुद्ध के लिये भगवान् का अनुशासन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशलदेशस्थ नड़कपान ग्राम के पलाशवन में साधना हेतु ठहरे हुए थे। उस समय बहुत से प्रख्यात श्रद्धालु कुलपुत्र भगवदुपदिष्ट धर्म में घर से बेघर हो, प्रव्रजित हो रहे थे; जैसे—आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् भद्रिय (या नन्दिय), आयुष्मान् किम्बिल, आयुष्मान् भृगु, आयुष्मान् कौण्डिन (या कुण्डधान), आयुष्मान् रेवत और आयुष्मान् आनन्द तथा अन्य ऐसे ही (तत्कालीन) प्रख्यात कुलपुत्र। उस समय कभी भगवान् भिक्षुसङ्घ से घिरे हुए खुले मैदान (=अब्भोकास) में विराजमान थे। भगवान् ने उपरिलिखित कुलपुत्रों के विषय में भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! ये जो कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक घर छोड़ बेघर हो, मुझसे प्रव्रजित हुए हैं, भिक्षुओ! क्या वे धर्मसाधना में प्रसन्नतापूर्वक मन लगा रहे हैं?" ऐसा पूछे जाने पर वे भिक्षु चुप ही रहे। भगवान् ने भिक्षुओं से उन कुलपुत्रों के विषय में फिर सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! ये जो कुलपुत्र...प्रसन्नतापूर्वक मन लगा रहे हैं?" दूसरी बार (पूछे जाने पर) भी वे भिक्षु चुप ही रहे। तीसरी बार भी

खो ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। ततियं पि खो भगवा ते कुलपुत्ते आरब्भ भिक्खू आमन्तेसि--"ये ते, भिक्खवे, कुलपुत्ता ममं उद्दिस्स सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता, कच्चि ते, भिक्खवे, भिक्खू अभिरता ब्रह्मचरिये" ति ? ततियं पि खो ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं।

२. अथ खो भगवतो एतदहोसि--"यन्नूनाहं ते कुलपुत्ते पुच्छेय्यं" ति ! अथ खो भगवा आयस्मन्तं अनुरुद्धं आमन्तेसि--"कच्चि तुम्हे, अनुरुद्धा[1], अभिरता ब्रह्मचरिये" ति ?

"तग्घ मयं भन्ते, अभिरता ब्रह्मचरिये" ति।

"साधु साधु, अनुरुद्धा ! एतं खो, अनुरुद्धा, तुम्हाकं पतिरूपं कुलपुत्तानं सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितानं यं तुम्हे अभिरमेय्याथ ब्रह्मचरिये। ये तुम्हे अनुरुद्धा, भद्रेन योब्बनेन समन्नागता पठमेन [N. 149] वयसा सुसू काळकेसा कामे परिभुञ्जेय्याथ तेन तुम्हे, अनुरुद्धा, भद्रेन पि योब्बनेन समन्नागता पठमेन वयसा सुसू काळकेसा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता। ते च खो पन तुम्हे, अनुरुद्धा, नेव राजाभिनीता अगारस्मा अनगारियं

भगवान् ने भिक्षुओं को उन कुलपुत्रों के विषय में सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! ये जो कुलपुत्र···मन लगा रहे हैं ?" तीसरी बार (पूछे जाने पर) भी वे भिक्षु चुप ही रहे।

२. तब भगवान् को यह (विचार) हुआ--"क्यों न मैं (यह बात) उन्हीं कुलपुत्रों से पूछूँ !" तब भगवान् ने आयुष्मान् अनुरुद्ध को सम्बोधित किया—"अनुरुद्ध ! क्या तुम लोग इस धर्मसाधना में प्रसन्न हो ?"

"अवश्य, भन्ते ! हम इस धर्मसाधना में बहुत प्रसन्न हैं।"

"ठीक है, ठीक है, अनुरुद्ध ! यह तुम्हारे जैसे उच्च कुलों से आये, घर छोड़ बेघर हो, कुलपुत्रों के लिए उपयुक्त ही है कि जो तुम इस धर्मसाधना में इतना प्रसन्न हो। आयुष्मान् अनुरुद्ध ! तुम्हें तो इस नयी उम्र में, भरी जवानी में जबकि तुम्हारे बाल (युवावस्थोचित) काले ही हैं, गृहस्थ में रहकर नानाविध कामभोग ही भोगने चाहिए थे, वे तुम इस नयी उम्र···में घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हो गये हो। अनुरुद्ध ! तुम लोग न तो राजा के भय से घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हुए हो, न चोरों के भय से··, न तुम्हें किसी का ऋण (कर्ज) देना था कि जिसके भय से घर

---

१. पालि में यह परिपाटी है कि जब एक ही प्रश्न सामने बैठे कई लोगों से किया जाय तो उनमें से किसी प्रमुख व्यक्ति के नाम में बहुवचन का प्रयोग कर दिया जाता है। —सं०

पब्बजिता, न चोराभिनीता अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता, न इणट्टा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता, न भयट्टा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता, नाजीविकापकता अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता। 'अपि च खोम्हि ओतिण्णो जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो; अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति--ननु तुम्हे, अनुरुद्धा एवं सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"एवं पब्बजितेन च पन, अनुरुद्धा, कुलपुत्तेन किमस्स करणीयं ? विवेकं, अनुरुद्धा, कामेहि विवेकं अकुसलेहि धम्मेहि पीतिसुख नाधिगच्छति अञ्ञं वा ततो सन्ततरं। तस्स अभिज्झा पि चित्तं परियादाय तिट्ठति, ब्यापादो [B. 127] पि चित्तं परियादाय तिट्ठति, थीनमिद्धं पि चित्तं परियादाय तिट्ठति, उद्धच्चकुक्कुच्चं पि चित्तं परियादाय तिट्ठति, विचिकिच्छा पि चित्तं [R. 464] परियादाय तिट्ठति, अरति पि चित्तं परियादाय तिट्ठति, तन्दी पि चित्तं परियादाय तिट्ठति। विवेकं, अनुरुद्धा, कामेहि विवेकं अकुसलेहि धम्मेहि पीतिसुखं नाधिगच्छति अञ्ञं वा ततो सन्ततरं।

छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हुए हो, न किसी अन्य भय से..., न आजीविका (रोजगार) न होने के भय से घर छोड़ बेघर हो, प्रव्रजित, हुए हो। अपितु, उस (प्रव्रज्या लेने के) समय तुम्हें यह विचार हो रहा था—'मैं जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास में डूबा हूँ, दुःख में गिरा हूँ, दुःख में लिपटा हूँ; क्या ही अच्छा होता कि मुझे इस एकान्त दुःखस्कन्ध के नाश का कोई उपाय ज्ञात हो जाता'—अनुरुद्ध ! तुम तो इस प्रकार श्रद्धापूर्वक घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हुए हो न?"

"हाँ, भन्ते ! यही बात है।"

"(परन्तु) अनुरुद्ध ! इस तरह प्रव्रजित हुए कुलपुत्र का क्या कर्तव्य (करणीय) है? अनुरुद्ध ! कामों से दूर रहना या अकुशल धर्मों से दूर रहना ही (साधक को) प्रीतिसुख, या उससे भी अच्छा शान्ततर सुख नहीं दे सकता; (जब तक कि) उसका चित्त लोभ से जकड़ा रहता है, व्यापाद से,... स्त्यान-मृद्ध से..., औद्धत्य-कौकृत्य से..., विचिकित्सा से..., असन्तोष से..., तन्द्रा (आलस्य) से उसका चित्त जकड़ा रहता है। इस तरह, केवल कामभोगों से दूर रहना या अकुशल-धर्मों से दूर रहना ही सुख नहीं दे सकता।

"विवेकं, अनुरुद्धा, कामेहि विवेकं अकुसलेहि धम्मेहि पीतिसुखं अधिगच्छति अञ्ञं वा ततो सन्ततरं। तस्स अभिज्झा पि चित्तं न परियादाय तिट्ठति, ब्यापादो पि चित्तं न परियादाय तिट्ठति, थीनमिद्धं पि चित्तं न परियादाय तिट्ठति, उद्धच्चकुक्कुच्चं पि चित्तं न परियादाय तिट्ठति, विचिकिच्छा पि चित्तं न परियादाय तिट्ठति, अरति पि चित्तं न परियादाय तिट्ठति, तन्दी पि चित्तं न परियादाय तिट्ठति। विवेकं, अनुरुद्धा, कामेहि विवेकं अकुसलेहि धम्मेहि पीतिसुखं अधिगच्छति अञ्ञं वा ततो सन्ततरं।

३. "किन्ति वो, अनुरुद्धा, मयि होति—'ये आसवा [N. 150] सङ्किलेसिका पोनोब्भविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं जातिजरामरणिया, अप्पहीना ते तथागतस्स; तस्मा तथागतो सङ्खायेकं पटिसेवति, सङ्खायेकं अधिवासेति, सङ्खायेकं परिवज्जेति, सङ्खायेकं विनोदेती'' ति ?

"न खो नो, भन्ते, भगवति एवं होति—'ये आसवा सङ्किलेसिका पोनोब्भविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं जातिजरामरणिया, अप्पहीना ते तथागतस्स; तस्मा तथागतो सङ्खायेकं पटिसेवति, सङ्खायेकं अधिवासेति, सङ्खायेकं परिवज्जेति, सङ्खायेकं विनोदेती' ति। एवं खो नो, भन्ते, भगवति होति—'ये आसवा सङ्किलेसिका पोनोब्भविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं

'हाँ, अनुरुद्ध ! कामभोगों से दूर रहना या अकुशल धर्मों से दूर रहना ही (साधक को) प्रीतिसुख या उससे भी अच्छा, शान्ततर सुख दे सकता है। (यदि) लोभ उसका चित्त न जकड़े रहे, व्यापाद...स्त्यानमृद्ध...औद्धत्य-कौकृत्य...विचिकित्सा...असन्तोष...तन्द्रा से उसका चित्त न जकड़ा रहे। इस तरह, अनुरुद्ध ! कामभोगों से दूर रहना या अकुशलधर्मों से दूर रहना सुख दे सकता है।

३. "अनुरुद्ध ! क्या तुम्हें मेरे बारे में यह विचार होता है—'जो आस्रव क्लेशदायक हैं, बार-बार उत्पन्न होते हैं, भयप्रद हैं, दुःखमय फल देने वाले हैं और भविष्य में जाति-जरा-मरण के प्रदाता हैं—ये आस्रव भगवान् के अभी पूर्णतः क्षीण नहीं हुए हैं; इसीलिए भगवान् जानकर, एक का प्रतिसेवन (अभ्यास या उपयोग) करते हैं, जानकर एक को स्वीकार करते हैं, जानकर एक का परिवर्जन (त्याग) करते हैं और जानकर एक को दूर हटाते हैं ?''

"नहीं भन्ते ! आपके विषय में हमें ऐसा नहीं होता—'जो आस्रव क्लेशदायक...दूर हटाते हैं।' अपितु, भन्ते ! हमें आपके विषय में यह होता है—'जो आस्रव क्लेशदायक...जाति-जरा-मरण के प्रदाता हैं—ये सभी आस्रव भगवान्

जातिजरामरणिया, पहीना ते तथागतस्स; तस्मा तथागतो सङ्खायेकं पटिसेवति, सङ्खायेकं अधिवासेति, सङ्खायेकं परिवज्जेति, सङ्खायेकं विनोदेती''' ति।

"साधु साधु, अनुरुद्धा ! तथागतस्स, अनुरुद्धा, ये आसवा सङ्किलेसिका पोनोब्भविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं जातिजरामरणिया, पहीना ते उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। सेय्यथापि, अनुरुद्धा, तालो मत्थकच्छिन्नो अभब्बो पुनविरूळ्हिया; [B. 128] एवमेव खो, अनुरुद्धा, तथागतस्स ये आसवा सङ्किलेसिका पोनोब्भविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं जातिजरामरणिया, पहीना ते उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा; तस्मा तथागतो सङ्खायेकं पटिसेवति, सङ्खायेकं अधिवासेति, सङ्खायेकं परिवज्जेति, सङ्खायेकं विनोदेति।

[1]२. कालङ्कते उपपत्तीसु ब्याकरणं

४. "तं किं मञ्ञसि, अनुरुद्धा, कं अत्थवसं सम्पस्समानो तथागतो सावके अब्भतीते कालङ्कते उपपत्तीसु ब्याकरोति—असु अमुत्र उपपन्नो; असु अमुत्र उपपन्नो" ति ?

के पूर्णतः क्षीण हो चुके हैं; अतः भगवान् जानकर एक का प्रतिसेवन...दूर हटाते हैं।'''

ठीक है, अनुरुद्ध ! ठीक है, तथागत के सभी आस्रव जो क्लेशदायक...जाति-जरा-मरण के प्रदाता हैं, वे पूर्णतः क्षीण हो चुके हैं, उनकी जड़ उखड़ चुकी है, वे ताड़वृक्ष की तरह ठूँठ (शाखा-पत्रविहीन) हो चुके हैं, अभाव को प्राप्त हो चुके हैं और भविष्य में उनका उत्पाद नहीं होगा। अनुरुद्ध ! जैसे ताड़ का वृक्ष सिरे (मस्तक) से काट दिया जाय तो वह आगे बढ़ने (=विरुल्हि) से रुक जाता है। इसी तरह, अनुरुद्ध ! तथागत के सभी आस्रव...भविष्य में इनका उत्पाद नहीं होगा; अतः भगवान् जानकर एक का प्रतिसेवन करते हैं...दूर हटाते हैं।

२. मृत पुरुष का पुनर्जन्मविषयक ब्याकरण

४. "तो क्या मानते हो, अनुरुद्ध ! तथागत क्या प्रयोजन देखते हुए मृत व्यक्तियों की उपलब्धि का इतनी दृढ़ता से व्याकरण करते हैं—'वह यहाँ उत्पन्न हुआ, वह यहाँ उत्पन्न हुआ ?"

---

१. इसके आगे सूत्र के अन्त तक महापण्डित श्री राहुल सांस्कृत्यायन द्वारा हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ। —सं०

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा भगवन्नेत्तिका [R. 465, N. 151] भगवम्पटिसरणा। साधु वत, भन्ते, भगवन्तं येव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा भिक्खु धारेस्सन्ती" ति।

"न खो, अनुरुद्धा, तथागतो जनकुहनत्थं न जनलपनत्थं न लाभसक्कार-सिलोकानिसंसत्थं न 'इति मं जनो जानातू' ति सावके अब्भतीते कालङ्कते उपपत्तीसु ब्याकरोति—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो' ति। सन्ति च खो, अनुरुद्धा, कुलपुत्ता सद्धा उळारवेदा उळारपामोज्जा। ते तं सुत्वा तदत्थाय चित्तं उपसंहरन्ति। तेसं तं, अनुरुद्धा, होति दीघरत्तं हिताय सुखाय।

५. "इधानुरुद्धा, भिक्खु सुणाति—'इत्थन्नामो भिक्खु कालङ्कतो; सो भगवता ब्याकतो—अञ्ञाय सण्ठही' ति। सो खो पनस्स आयस्मा सामं दिट्ठो वा होति अनुस्सवस्सुतो वा—'एवंसीलो सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंधम्मो सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंपञ्ञो सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंविहारी सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंविमुत्तो सो आयस्मा

"भन्ते! यह धर्म तो आपके ही के सहारे है, आप इसे जिधर मोड़ दें, उधर मुड़ने को तैयार है, यह तो आप पर ही आश्रित है। अतः अच्छा यही होगा कि आप ही अपने इस कहे का व्याकरण करें। आप से सुनकर हम भिक्षु लोग उसे वैसा ही धारण कर लेंगे।"

"अनुरुद्ध! तथागत न जनता को बहकाने या किसी की खुशामद के लिये, न लाभ, सत्कार या प्रशंसा पाने के लिये, न इसलिये कि 'लोग मेरे बारे में यह समझें' कि तथागत अपने मृत श्रावकों के विषय में इतनी दृढ़ता से व्याकरण करते हैं—'वह यहाँ उत्पन्न हुआ, वह यहाँ उत्पन्न हुआ'। अनुरुद्ध! ऐसे भी श्रद्धालु कुलपुत्र हैं, जो विमलबुद्धि और दूसरे की प्रशंसा सुनकर प्रीतिसुख का अनुभव करते हैं। वे मेरे इस व्याकरण को सुनकर इसे अपने चित्त में बैठाते हैं। अनुरुद्ध! यह उनके लिये दीर्घकाल तक हितकर एवं सुखकर होता है।

५. "अनुरुद्ध! वहाँ कोई भिक्षु यह सुनता है—'इस नाम के भिक्षु का देहपात हो गया; उसका भगवान् ने व्याकरण कर दिया—इसे जानकर मन में बैठा लो'। वह मृत भिक्षु इस (सुनने वाले) भिक्षु का स्वयं देखा हुआ हो या कर्ण परम्परा से उसके बारे में सुना हो—'यह (मृत) भिक्षु ऐसे सदाचार वाला था, ऐसे धर्मा-चरण वाला था, ऐसा प्रज्ञावान् था, ऐसी साधना वाला था और वह ऐसा दोषविहीन

अहोसि इति पी' ति । सो तस्स सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्तो तदत्थाय चित्तं उपसंहरति । एवं पि खो, अनुरुद्धा, भिक्खुनो फासुविहारो होति ।

"इधानुरुद्धा, भिक्खु सुणाति--'इत्थन्नामो भिक्खु कालङ्कतो; सो भगवता ब्याकतो--पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका' ति । सो खो पनस्स आयस्मा सामं दिट्ठो वा होति अनुस्सवस्सुतो वा--'एवंसीलो सो आयस्मा अहोसि [B. 129] इति पि, एवंधम्मो···पे०···एवंपञ्ञो···एवंविहारी···एवंविमुत्तो सो आयस्मा अहोसि इति पी' ति । सो तस्स सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्तो तदत्थाय चित्तं उपसंहरति । एवं पि खो, अनुरुद्धा, भिक्खुनो फासुविहारो होति ।

"इधानुरुद्धा, भिक्खु सुणाति--'इत्थन्नामो भिक्खु कालङ्कतो; सो भगवता ब्याकतो--तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सती' ति । सो खो पनस्स आयस्मा सामं दिट्ठो वा होति अनुस्सवस्सुतो वा--'एवंसीलो सो [N. 152] आयस्मा अहोसि इति पि, एवंधम्मो···पे०···एवंपञ्ञो···

(संसार से निःस्पृह) था' । वह श्रोता भिक्षु उसके श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग एवं प्रज्ञा का अनुसरण करते हुए, इन गुणों की प्राप्ति के लिये स्वचित्त को निगृहीत करता है । अनुरुद्ध ! इस तरह से भी इस भिक्षु की साधना में सरलता आ जाती है ।

"अनुरुद्ध ! यहाँ कोई भिक्षु सुनता है—'इस नाम के भिक्षु का देहपात हो गया; उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है—वह पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षय हो जाने के कारण देवयोनि में जाने के लिये वहाँ उत्पन्न हुआ है, वह उस लोक से पुन; च्युत नहीं होगा' । वह मृत भिक्षु (सुनने वाले) भिक्षु का स्वयं देखा हुआ हो या कर्णपरम्परा से उसके बारे में सुना हो कि 'यह (मृत) भिक्षु ऐसे सदाचार वाला··· साधना में सरलता आ जाती है ।

"अनुरुद्ध ! यहाँ कोई भिक्षु सुनता है—'इस नाम के भिक्षु का देहपात हो गया; उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है--तीन संयोजनों के पूर्णतः क्षय और सांसारिक राग-द्वेष के अत्यल्प होने के कारण, यह भिक्षु सकृदागामी हो चुका है; अतः यह यहाँ पुनः एक बार आकर (साधना द्वारा) अपने दुःखों का अन्त कर लेगा' । वह मृत भिक्षु इस (सुनने वाले) भिक्षु का स्वयं देखा हुआ हो या

एवंविहारी · एवंविमुत्तो सो आयस्मा अहोसि इति पी' ति। सो तस्स सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्तो तदत्थाय [R. 466] चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, भिक्खुनो फासुविहारो होति।

"इधानुरुद्धा, भिक्खु सुणाति--'इत्थन्नामो भिक्खु कालङ्कतो; सो भगवता ब्याकतो—तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो' ति। सो खो पनस्स आयस्मा सामं दिट्ठो वा होति अनुस्सवस्सुतो वा—'एवंसीलो सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंधम्मो···पे०···एवंपञ्ञो···एवंविहारी···एवंविमुत्तो सो आयस्मा अहोसि इति पी' ति। सो तस्स सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्तो तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, भिक्खुनो फासुविहारो होति।

६. "इधानुरुद्धा, भिक्खुनी सुणाति—'इत्थन्नामा भिक्खुनी कालङ्कता; सा भगवता ब्याकता—अञ्ञाय सण्ठही' ति। सा खो पनस्स भगिनी सामं दिट्ठा वा होति अनुस्सवस्सुता वा—'एवंसीला सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंधम्मा सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंपञ्ञा सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंविहारिनी सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंविमुत्ता सा भगिनी अहोसि

कर्णपरम्परा से उसके बारे में सुना हो कि 'यह (मृत) भिक्षु ऐसे सदाचार···साधना में सरलता आ जाती है।

"अनुरुद्ध! यहाँ कोई भिक्षु सुनता है--'इस नाम के भिक्षु का देहपात हो गया; उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है—तीनों संयोजनों के परिक्षय से धर्माचरण में सुदृढ़ हो, स्रोतापन्न बन, सम्बोधि के लिए निश्चित रूप से तत्पर हो चुका है'। वह मृत भिक्षु इस (सुनने वाले) भिक्षु का स्वयं देखा हुआ हो या कर्णपरम्परा···साधना में सरलता आ जाती है।

६. "अनुरुद्ध! यहाँ कोई भिक्षुणी सुनती है--'इस नाम की भिक्षुणी का देहपात हो गया; उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है--'इसे जानकर मन में बैठा लो'। वह मृत भिक्षुणी इस (सुनने वाली) भिक्षुणी की स्वयं देखी हुई हो या कर्णपरम्परा से उसके बारे में सुना हो कि 'यह (मृत) बहन ऐसे सदाचार वाली थी, ऐसी धर्माचारी···प्रज्ञावती···साधना वाली···दोषविहीन थी'। वह श्रोता भिक्षुणी उसके श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग एवं प्रज्ञा का अनुसरण करते हुए, इन गुणों की प्राप्ति

इति पी' ति। सा तस्सा सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्ती तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, भिक्खुनिया फासु-[B. 130] विहारो होति।

"इधानुरुद्धा, भिक्खुनी सुणाति—'इत्थन्नामा भिक्खुनी कालङ्कता; सा भगवता ब्याकता—पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनी अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका' ति। सा खो पनस्सा भगिनी सामं दिट्ठा वा होति अनुस्सवस्सुता वा—'एवंसीला सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंधम्मा...पे०...एवंपञ्ञा एवंविहारिनी एवंविमुत्ता सा भगिनी अहोसि इति पी' ति। सा तस्सा सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्ती तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, भिक्खुनिया फासुविहारो होति।

[N. 153] "इधानुरुद्धा, भिक्खुनी सुणाति—'इत्थन्नामा भिक्खुनी कालङ्कता; सा भगवता ब्याकता—तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामिनी सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सती' ति। सा खो पनस्सा भगिनी सामं दिट्ठा वा होति अनुस्सवस्सुता वा—'एवंसीला सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंधम्मा...पे०...एवंपञ्ञा एवंविहारिनी एवंविमुत्ता सा भगिनी अहोसि इति पी' ति। सा तस्सा सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्ती तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, भिक्खुनिया फासुविहारो होति।

"इधानुरुद्धा, भिक्खुनी सुणाति—'इत्थन्नामा भिक्खुनी कालङ्कता; सा भगवता ब्याकता—तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपात-

---

के लिये स्वचित्त को निगृहीत करती है। अनुरुद्ध! इस तरह भी इस भिक्षुणी की साधना में सरलता आ जाती है।

"अनुरुद्ध! यहाँ कोई भिक्षुणी सुनती है—'इस नाम की भिक्षुणी का देहपात हो गया, उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है—वह पाँच अवरभागीय संयोजनों...साधना में सरलता आ जाती है।

"अनुरुद्ध! यहाँ कोई भिक्षुणी सुनती है—'इस नाम की भिक्षुणी का देहपात हो गया, उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है—तीन संयोजनों के पूर्णतः क्षय से और सांसारिक...साधना में सरलता आ जाती है।

"अनुरुद्ध! यहाँ कोई भिक्षुणी सुनती है—'इस नाम की भिक्षुणी का देहपात

धम्मा नियता सम्बोधिपरायणा' ति। सा खो पनस्सा भगिनी [R. 467] सामं दिट्ठा वा होति अनुस्सवस्सुता वा—'एवंसीला सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंधम्मा एवंपञ्ञा एवंविहारिनी एवं विमुत्ता सा भगिनी अहोसि इति पी' ति। सा तस्सा सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्ती तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, भिक्खुनिया फासुविहारो होति।

७. "इधानुरुद्धा, उपासको सुणाति—'इत्थन्नामो उपासको कालङ्कतो; सो भगवता ब्याकतो—पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका' ति। सो खो पनस्स आयस्मा सामं दिट्ठो वा होति अनुस्सवस्सुतो वा--'एवंसीलो सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंधम्मो सो आयस्मा अहोसि इति [B. 131] पि, एवंपञ्ञो सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंविहारी सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंविमुत्तो सो आयस्मा अहोसि इति पी' ति। सो तस्स सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्तो तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, उपासकस्स फासुविहारो होति।

"इधानुरुद्धा, उपासको सुणाति—'इत्थन्नामो उपासको कालङ्कतो; सो भगवता ब्याकतो—तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सती' [N. 154] ति। सो खो पनस्स आयस्मा सामं दिट्ठो वा होति अनुस्सवस्सुतो वा—'एवंसीलो सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंधम्मो एवंपञ्ञो एवंविहारी एवंविमुत्तो सो आयस्मा अहोसि इति पी' ति। सो तस्स सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्तो तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, उपासकस्स फासुविहारो होति।

हो गया; उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है--तीनों संयोजनों के परिक्षय से धर्माचरण में सुदृढ़···साधना में सरलता आ जाती है।

७. "अनुरुद्ध! यहाँ कोई उपासक सुनता है—'इस नाम के उपासक का देहपात हो गया, उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है—वह पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से···साधना में सरलता आ जाती है।

"अनुरुद्ध! यहाँ कोई उपासक सुनता है—'इस नाम के उपासक का देहपात हो गया, उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है—तीन संयोजनों के पूर्णतः क्षय से और सांसारिक···साधना में सरलता आ जाती है।

"इधानुरुद्धा, उपासको सुणाति—'इत्थन्नामो उपासको कालङ्कतो; सो भगवता ब्याकतो—तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो' ति। सो पनस्स आयस्मा सामं दिट्ठो वा होति अनुस्सवस्सुतो वा—'एवंसीलो सो आयस्मा अहोसि इति पि, एवंधम्मो एवंपञ्ञो एवंविहारी एवंविमुत्तो सो आयस्मा अहोसि इति पी' ति। सो तस्स सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्तो तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा उपासकस्स फासुविहारो होति।

८. "इधानुरुद्धा, उपासिका सुणाति—'इत्थन्नामा उपासिका कालङ्कता; सा भगवता ब्याकता—पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनी अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका' ति। सा खो पनस्सा भगिनी सामं दिट्ठा वा होति अनुस्सवस्सुता वा—'एवंसीला सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंधम्मा एवंपञ्ञा एवंविहारिनी एवंविमुत्ता [R. 468] सा भगिनी अहोसि इति पी' ति। सा तस्सा सद्धं च सीलं च [B. 132] सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्ती तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि, अनुरुद्धा, उपासिकाय फासुविहारो होति।

"इधानुरुद्धा, उपासिका सुणाति—'इत्थन्नामा उपासिका कालङ्कता; सा भगवता ब्याकता—तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामिनी सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सती' ति। सा खो पनस्सा भगिनी सामं दिट्ठा वा होति अनुस्सवस्सुता वा—'एवंसीला सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंधम्मा एवंपञ्ञा एवंविहारिनी एवंविमुत्ता सा भगिनी अहोसि इति पी' ति। सा तस्सा सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्ती तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, उपासिकाय फासुविहारो होति।

"अनुरुद्ध! यहाँ कोई उपासक सुनता है—'इस नाम के उपासक का देहपात हो गया, उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है--तीनों संयोजनों के परिक्षय से धर्माचरण... साधना में सरलता आ जाती है।

८. "अनुरुद्ध! यहाँ कोई उपासिका सुनती है—'इस नाम की उपासिका का देहपात हो गया, उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है—वह पांच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से...साधना में सरलता आ जाती है।

"अनुरुद्ध! यहाँ कोई उपासिका सुनती है—'इस नाम की उपासिका का देहपात हो गया, उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है—तीन संयोजनों का पूर्णतः क्षय और सांसारिक... साधना में सरलता आ जाती है।

"इधानुरुद्धा, उपासिका सुणाति—'इत्थन्नामा उपासिका [N. 155] कालङ्कता; सा भगवता ब्याकता—तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा' ति। सा खो पनस्सा भगिनी सामं दिट्ठा वा होति अनुस्सवस्सुता वा—'एवंसीला सा भगिनी अहोसि इति पि, एवधम्मा सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंपञ्ञा सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंविहारिनी सा भगिनी अहोसि इति पि, एवंविमुत्ता सा भगिनी अहोसि इति पी' ति। सा तस्सा सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरन्ती तदत्थाय चित्तं उपसंहरति। एवं पि खो, अनुरुद्धा, उपासिकाय फासुविहारो होति।

"इति खो, अनुरुद्धा, तथागतो न जनकुहनत्थं न जनलपनत्थं न लाभ-सक्कारसिलोकानिसंसत्थं न 'इति मं जनो जानातू' ति सावके अब्भतीते कालङ्कते उपपत्तीसु ब्याकरोति—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो' ति। सन्ति च खो, अनुरुद्धा, कुलपुत्ता सद्धा उळारवेदा उळारपामोज्जा। ते तं सुत्वा तदत्थाय चित्तं उपसंहरन्ति। तेसं तं, अनुरुद्धा, होति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

९. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा अनुरुद्धो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति॥

"अनुरुद्ध! यहाँ कोई उपासिका सुनती है—'इस नाम की उपासिका का देहपात हो गया; उसके बारे में भगवान् ने यह बताया है—तीनों संयोजनों के परिक्षय से धर्माचरण···साधना में सरलता आ जाती है।

"अनुरुद्ध! इस तरह तथागत न जनता को बहकाने या किसी की खुशामद के लिये, न लाभ-सत्कार या प्रशंसा पाने के लिये, न इसलिये कि 'लोग मेरे बारे में यह समझें' कि तथागत अपने मृत-श्रावकों के विषय में इतनी दृढ़ता से व्याकरण करते हैं—'वह यहाँ उत्पन्न हुआ, वह वहाँ उत्पन्न हुआ'। अनुरुद्ध! ऐसे भी श्रद्धालु कुलपुत्र हैं, जो विमलबुद्धि और दूसरे की प्रशंसा सुनकर प्रीतिसुख का अनुभव करते हैं। वे मेरे किये इस व्याकरण को सुनकर इसे अपने चित्त में बैठाते हैं। अनुरुद्ध! यह उनके लिए दीर्घकाल तक हितकर एवं सुखकर होगा।

९. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमन आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

नलकपानसुत्त समाप्त॥

१६. गोलियानिसुत्तं[1]

१. आरञ्ञिकपटिपत्तियं सारिपुत्तस्स ओवादो

[N. 156, R. 469, B. 133] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन गोलियानि[2] नाम भिक्खु आरञ्ञिको पदरसमाचारो सङ्घमज्झे ओसटो होति केनचिदेव करणीयेन। तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो गोलियानिं भिक्खुं आरब्भ भिक्खू आमन्तेसि—

सगारवेन भवितब्बं

२. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन सब्रह्मचारीसु सगारवेन भवितब्बं सप्पतिस्सेन। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु सङ्घगतो सङ्घे विहरन्तो सब्रह्मचारीसु अगारवो होति अप्पतिस्सो, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन, यो अयमायस्मा सब्रह्मचारीसु सगारवो होति अप्पतिस्सो' ति—

---

१९. गोलियानिसूत्र

१. आरण्यक नियमपालन में शारिपुत्र का उद्बोधन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् राजगृह स्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में साधना कर रहे थे। उस समय अभिमानी (दर्पयुक्त) गोलियानि नामक आरण्यक भिक्षु सङ्घ में किसी कार्य से आया हुआ था। वहाँ आयुष्मान् शारिपुत्र ने, गोलियानि भिक्षु के विषय में, भिक्षुओं को यह उपदेश दिया—

(क) सम्मान (गौरव) करना चाहिये

२. "आयुष्मानो ! सङ्घ में आये हुए या सङ्घ में रहने वाले आरण्यक (जंगल में रहने वाले) भिक्षु को अपने साथियों के प्रति गौरव (बड़प्पन) एवं सम्मान रखना चाहिये। यदि, आयुष्मानो ! सङ्घ में आया या सङ्घ में रहने वाला आरण्यक भिक्षु साथियों का गौरव या सम्मान नहीं करता तो लोग उसके बारे में व्यङ्ग्य (ताना) भी कस सकते हैं। 'इस आरण्यक भिक्षु का जंगल में एकान्तवास एवं स्वच्छन्द विचरण करने का क्या लाभ है, जब कि यह अपने साथियों का गौरव या सम्मान नहीं करता'—यह व्यङ्ग्य कस सकते हैं। इसलिए सङ्घ में

---

१. गोलिस्सानिसुत्तं–स्या०; गुलिस्सानिसुत्तं-सी०, रो०। २. गोलिस्सानि–स्या; गुलिस्सानि–सी०, रो०।

तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन सब्रह्मचारीसु सगारवेन भवितब्बं सप्पतिस्सेन।

आसनकुसलेन भवितब्बं

३. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन आसनकुसलेन भवितब्बं—इति थेरे च भिक्खू नानुपखज्ज निसीदिस्सा नवे च भिक्खू न आसनेन पटिबाहिस्सामी ति। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु सङ्घगतो सङ्घे विहरन्तो न आसनकुसलो होति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन, यो अयमायस्मा आसनकुसलो न होती' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा [N. 157] आरञ्ञिकेन भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन आसनकुसलेन भवितब्बं।

आभिसमाचारिको धम्मो जानितब्बो

४. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन आभिसमा-

---

आये या सङ्घ में रहने वाले आरण्यक भिक्षु को अपने साथियों का गौरव मानना चाहिये, सम्मान करना चाहिये।

(ख) बैठने में कुशलता दिखानी चाहिये

३. "आयुष्मानो! सङ्घ में आये हुए या सङ्घ में रहने वाले आरण्यक भिक्षु को यों आसनकुशल (बैठने उठने में चतुर) होना चाहिये—'मैं पुराने वृद्ध भिक्षुओं के सामने जब तक वे बैठ न जाँय, तब तक मैं न उनके शरीर को रगड़ता हुआ बैठूँगा और न स्वयं कोई आसन ग्रहण करूँगा, या (पहले से आसन पर बैठे) नये भिक्षुओं को उनके आसन से नहीं उठाऊँगा। यदि आयुष्मानो! यह संघ में आया या संघ में रहने वाला आरण्यक भिक्षु आसनकुशल नहीं होता तो लोग उसके बारे में तरह-तरह की बात भी कहते हैं। 'इस आरण्यक भिक्षु के एकान्तवास एवं स्वच्छन्द विचरण से क्या लाभ है, जब कि यह सङ्घ में बैठने-उठने में भी प्रवीण नहीं है'—यह कहने लगते हैं। इसलिए सङ्घ में आये···आसनकुशल होना चाहिये।

(ग) सामान्य शिष्टता को जानना चाहिये

४. आयुष्मानो! सङ्घ में आये या सङ्घ में रहने वाले आरण्यक भिक्षु को

१-१. सी०, स्या०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।

चारिको पि धम्मो जानितब्बो। सचे, आवुसो, आरञ्ञको भिक्खु सङ्घगतो सङ्घे विहरन्तो आभिसमाचारिकं पि धम्मं न जानाति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन [B. 134] यो अयमायस्मा आभिसमाचारिकं पि धम्मं न जानाती' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञकेन भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन आभिसमाचारिको पि धम्मो जानितब्बो।

यथाकालं पविसितब्बं पटिक्कमितब्बं

५. "आरञ्ञकेनावुसो, भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन नातिकालेन गामो पविसितब्बो नातिदिवा पटिक्कमितब्बं। सचे, आवुसो, आरञ्ञको भिक्खु सङ्घगतो सङ्घे विहरन्तो अतिकालेन गामं पविसति अतिदिवा पटिक्कमति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा अतिकालेन गामं पविसति अतिदिवा पटिक्कमती' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञकेन भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन नातिकालेन गामो पविसितब्बो, नातिदिवा पटिक्कमितब्बं।

न कुलेसु चारित्तं आपज्जितब्बं

६. "आरञ्ञकेनावुसो, भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन न पुरेभत्तं

सामान्य शिष्टता को भी जानना चाहिए। यदि आयुष्मानो! वह सङ्घ में आया··· आरण्यक भिक्षु सामान्य शिष्टता नहीं जानता तो लोग उसके बारे में तरह-तरह की बात कहने लगते हैं। यह आरण्यक भिक्षु ··सामान्यशिष्टता नहीं जानता है। इसलिये संघ में आये···सामान्य शिष्टता को जानना चाहिये।

(घ) समय से आना-जाना चाहिये

५. "आयुष्मानो! सङ्घ में आये या सङ्घ में रहने वाले आरण्यक भिक्षु को ग्राम में बेसमय प्रवेश नहीं करना चाहिये और न बहुत सबेरे ग्राम से निकलना चाहिये। यदि आयुष्मानो! वह सङ्घ में आया···आरण्यक भिक्षु बेसमय ग्राम में प्रवेश करता है या बहुत सबेरे ग्राम से निकलता है तो लोग उसके बारे में तरह-तरह की बात कहने लगते हैं। 'यह आरण्यक भिक्षु···बहुत सबेरे ग्राम से निकलता है'—ऐसी बातें करने लगते हैं। अतः सङ्घ में आये···गाँव से बाहर नहीं निकलना चाहिये।

(ङ) घरों में बार-बार नहीं आना-जाना चाहिये

६. "आयुष्मानो! सङ्घ में आये···आरण्यक भिक्षु को भिक्षा से पहले या

पच्छाभत्तं कुलेसु चारित्तं आपज्जितब्बं। सचे, आवुसो, [R. 470] आरञ्ञिको भिक्खु सङ्घगतो सङ्घे विहरन्तो पुरेभत्तं पच्छाभत्तं कुलेसु चारित्तं आपज्जति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'अयं नूनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन विहरतो विकालचरिया बहुलीकता, तमेनं सङ्घगतं पि समुदाचरती' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा [N. 158] आरञ्ञिकेन भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन न पुरेभत्तं पच्छाभत्तं कुलेसु चारित्तं आपज्जितब्बं।

अनुद्धतेन भवितब्बं

७. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन अनुद्धतेन भवितब्बं अचपलेन। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु सङ्घगतो सङ्घे विहरन्तो उद्धतो होति चपलो, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'इदं नूनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन विहरतो उद्धच्चं चापल्यं बहुलीकतं, तमेनं सङ्घगतं पि समुदाचरती' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन अनुद्धतेन भवितब्बं अचपलेन।

भिक्षा के बाद गृहस्थों के घरों में बार-बार नहीं आना-जाना चाहिये। यदि आयुष्मानो! वह संघ में···घरों में बार-बार आता-जाता है तो लोग उसके बारे में तरह-तरह की बातें कहने लगते हैं। 'अरे इस आरण्यक भिक्षु ने एकान्त में रहते और स्वच्छन्द विचरण करते हुए अपनी ग्राम में फालतू घूमने-फिरने की आदत बहुत बढ़ा ली है, जिसे यह संघ में रहते भी छोड़ नहीं पाता'—ऐसा कहने लगते हैं। इसलिये संघ में आये···बार-बार घरों में नहीं आना-जाना चाहिये।

(च) अनुद्धत (विनीत) होना चाहिये

७. "आयुष्मानो! संघ में आये···आरण्यक भिक्षु को अनुद्धत (विनीत) और अचंचल (गम्भीर) होना चाहिये। यदि आयुष्मानो! वह संघ में आया··· अविनीत व चंचल रहेगा तो लोग उसके बारे में कुछ-का-कुछ कहने लगेंगे। 'अरे अवश्य ही इस आरण्यक भिक्षु ने एकान्त में रहते एवं स्वच्छन्द विचरण करते हुए अविनय और चंचलता को इतना अधिक बढ़ा लिया है कि वह संघ के बीच आने पर भी उन्हें छोड़ नहीं पाता'—ऐसा कहने लगेंगे। अतः संघ में आये···अनुद्धत (विनीत) और अचंचल (गम्भीर) होना चाहिये।

अमुखरेन भवितब्बं

[B. 135] ८. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन अमुखरेन भवितब्बं अविकिण्णवाचेन। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु सङ्घगतो सङ्घे विहरन्तो मुखरो होति विकिण्णवाचो, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकास्सारञ्ञे सेरिविहारेन, यो अयमायस्मा मुखरो विकिण्णवाचो' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन अमुखरेन भवितब्बं अविकिण्णवाचेन।

सुवचेन भवितब्बं

९. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन सुवचेन भवितब्बं कल्याणमित्तेन। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु सङ्घगतो सङ्घे विहरन्तो दुब्बचो होति पापमित्तो, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन, यो अयमायस्मा दुब्बचो पापमित्तो' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना सङ्घगतेन सङ्घे विहरन्तेन सुवचेन भवितब्बं कल्याणमित्तेन।

(छ) बहुत नहीं बोलना चाहिये

८. "आयुष्मानो ! संघ में आये···आरण्यक भिक्षु को अमुखर (बकवाद न करने वाला) या (बोलने की आवश्यकता ही पड़े तो) थोड़े शब्दों में बोलना चाहिये। यदि आयुष्माना ! वह संघ में आया···मुखर या फालतू बोलने वाला होता है तो लोग उसके बारे में तरह-तरह की बातें करने लगते हैं। 'अरे इस आरण्यक भिक्षु···क्या लाभ है, जबकि यह इतना मुखर एवं वाचाल है'—ऐसा कहने लगते है। अतः संघ में आये···थोड़े शब्दों में बोलना चाहिये।

(ज) मधुरभाषी होना चाहिये

९. "आयुष्मानो ! संघ में आये···आरण्यक भिक्षु को मधुरभाषी एवं मैत्रीभावनायुक्त होना चाहिये। यदि आयुष्मानो! वह संघ में आया···आरण्यक भिक्षु कर्कश बोलने वाला या पापभावना रखने वाला होता है तो लोग उसके बारे में अन्यथा बातें करने लगते हैं। 'अरे···क्या लाभ है, जबकि यह···पापमय भावना रखता है'—ऐसा कहने लगते हैं। अतः संघ में आये···मैत्रीभावनायुक्त होना चाहिये।

इन्द्रियेसु गुत्तद्वारेन भवितब्बं

१०. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना इन्द्रियेसु गुत्तद्वारेन भवितब्बं। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारो होति, [N. 159] तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारो' ति—[R. 471] तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना इन्द्रियेसु गुत्तद्वारेन भवितब्बं।

भोजने मत्तञ्ञुना भवितब्बं

११. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना भोजने मत्तञ्ञुना भवितब्बं। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भोजने अमत्तञ्ञू होति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा भोजने अमत्तञ्ञू' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना भोजने मत्तञ्ञुना भवितब्बं।

जागरियं अनुयुत्तेन भवितब्बं

१२. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना जागरियं अनुयुत्तेन भवितब्बं। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु जागरियं अननुयुत्तो होति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे [B. 136]

(झ) इन्द्रियों पर संयम रखना चाहिये

१०. "आयुष्मानो ! आरण्यक भिक्षु को अपनी इन्द्रियों के प्रति संयम (गुत्तद्वारता) रखना चाहिये। यदि, आयुष्मानो ! आरण्यक भिक्षु इन्द्रियों पर संयम नहीं रखता है तो लोग उसके बारे में अन्यथा कहने लगते हैं। 'अरे...क्या लाभ है, जबकि यह इन्द्रियों पर संयम भी नहीं रखता'—ऐसा कहने लगते हैं। अतः आरण्यक भिक्षु को इन्द्रियों के प्रति संयम रखना चाहिये।

(ञ) भोजन में मात्रा का ज्ञान रखना चाहिये

११. "आयुष्मानो ! आरण्यक भिक्षु को भोजन की मात्रा (कितना खाना चाहिए, कितना नहीं) का ज्ञान होना चाहिये यदि...।

(ट) जागरण में तत्पर होना चाहिये

१२. "आयुष्मानो ! आरण्यक भिक्षु को जागरण में तत्पर रहना चाहिये। यदि...इन्द्रियों पर सयम नहीं रखता...।

सेरिविहारेन यो अयमायस्मा जागरियं अनुयुत्तो' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना जागरियं अनुयुत्तेन भवितब्बं।

आरद्धविरियेन भवितब्बं

१३. "आरञ्ञिकेनावुसो भिक्खुना आरद्धविरियेन भवितब्बं। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु कुसीतो होति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा कुसीतो' ति--तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना आरद्धविरियेन भवितब्बं।

उपट्ठितस्सतिना भवितब्बं

१४. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना उपट्ठितस्सतिना भवितब्बं। सचे, [N. 160] आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु मुट्ठस्सती होति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा मुट्ठस्सती' ति--तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना उपट्ठितस्सतिना भवितब्बं।

समाहितेन भवितब्बं

१५. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना समाहितेन भवितब्बं। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु असमाहितो होति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा असमाहितो' ति--तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना समाहितेन भवितब्बं।

(ठ) उद्योगरत रहना चाहिये

१३. "आयुष्मानो ! आरण्यक भिक्षु को (साधना में) उद्योगरत रहना चाहिये। यदि···आलसी होता है···।

(ड) उपस्थित स्मृति होना चाहिये

१४. "आयुष्मानो ! आरण्यक भिक्षु को उपस्थित स्मृति से युक्त होना चाहिये। यदि···स्मृतिजन्य प्रमाद करता है···।

(ढ) समाहित रहना चाहिये

१५. "आयुष्मानो ! आरण्यक भिक्षु को एकाग्रचित्त होना चाहिये। यदि··· असमाहित···।

पञ्ञवता भवितब्बं

१६. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना पञ्ञवता भवितब्बं। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु दुप्पञ्ञो होति, तस्स भवन्ति [R. 472] वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा दुप्पञ्ञो' ति--तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना पञ्ञवता भवितब्बं।

धम्म विनये योगो करणीयो

१७. आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना अभिधम्मे अभिविनये योगो करणीयो। सन्तावुसो, आरञ्ञिकं भिक्खुं अभिधम्मे अभिविनये पञ्हं पुच्छितारो। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु अभिधम्मे अभिविनये पञ्हं पुट्ठो न सम्पायति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा अभिधम्मे अभिविनये पञ्हं पुट्ठो न सम्पायतो' ति--तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा [B. 137] आरञ्ञिकेन भिक्खुना अभिधम्मे अभिविनये योगो करणीयो।

आरुप्पे योगो करणीयो

१८. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म

(ण) प्रज्ञावान् होना चाहिये

१६. "आयुष्मानो! आरण्यक भिक्षु को प्रज्ञावान् होना चाहिये। यदि" प्रज्ञावान् नहीं होता"।

(त) धर्म और बुद्धोपदेश में मन लगाना चाहिये

१७. "आयुष्मानो! आरण्यक भिक्षु को अभिधर्म एवं भिक्षुनियमों का मनोयोगपूर्वक पालन करना चाहिये। आयुष्मानो! कुछ लोग उस आरण्यक भिक्षु से अभिधर्म एवं भिक्षु नियमों के बारे में पूछताछ कर सकते हैं। यदि आयुष्मानो! वह भिक्षु उन लोगों के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पायगा तो लोग उसके बारे में कहने लगेंगे। 'अरे इस"क्या लाभ है, जब कि यह धर्म और विनय में पूछे गये किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाता'--ऐसा कहने लगते हैं। अतः आरण्यक भिक्षु को"पालन करना चाहिये।

(थ) आरूप्य ध्यान में मन लगाना चाहिये

१८. "आयुष्मानो! आरण्यक भिक्षु को जो शान्तमय, विमोक्षदायक, रूपों से आगे आरूप्य ध्यान है, उनमें इसे चित्त को लगाना चाहिये। हो सकता है, कुछ

रूपे आरुप्पा तत्थ योगो करणीयो। सन्तावुसो, आरञ्ञिकं भिक्खुं ये ते [N. 161] विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा तत्थ पञ्हं पुच्छितारो। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा तत्थ पञ्हं पुट्ठो न सम्पायति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा तत्थ पञ्हं पुट्ठो न सम्पायती' ति--तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा तत्थ योगो करणीयो।

उत्तरिमनुस्सधम्मे योगो करणीयो

१९. "आरञ्ञिकेनावुसो, भिक्खुना उत्तरिमनुस्सधम्मे योगो करणीयो। सन्तावुसो, आरञ्ञिकं भिक्खुं उत्तरिमनुस्सधम्मे पञ्हं पुच्छितारो। सचे, आवुसो, आरञ्ञिको भिक्खु उत्तरिमनुस्सधम्मे पञ्हं पुट्ठो न सम्पायति, तस्स भवन्ति वत्तारो। 'किं पनिमस्सायस्मतो आरञ्ञिकस्स एकस्सारञ्ञे सेरिविहारेन यो अयमायस्मा यस्सत्थाय पब्बजितो तमत्थं न जानाती' ति—तस्स भवन्ति वत्तारो। तस्मा आरञ्ञिकेन भिक्खुना उत्तरिमनुस्सधम्मे योगो करणीयो" ति।

लोग इस आरण्यक भिक्षु से उन आरूप्य ध्यानों के बारे में कोई प्रश्न पूछें। यदि आयुष्मानो! वह आरूप्यध्यान के बारे में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर न दे पावे तो उसके बारे में लोग कहने लगेंगे। 'अरे''' क्या लाभ है, जबकि यह आरूप्यध्यान सम्बन्धी पूछे गये प्रश्नों का उत्तर भी नहीं दे पाता'—यह कहने लगते हैं। अतः आरण्यक भिक्षु को''' स्वचित्त लगाना चाहिये।

(द) लोकोत्तर शक्ति प्राप्ति में ध्यान लगाना चाहिये

१६. "आयुष्मानो! आरण्यक भिक्षु को लोकोत्तर शक्ति प्राप्त करने में मन लगाना चाहिये। हो सकता है, कुछ लोग इस आरण्यक भिक्षु से लोकोत्तर शक्ति के बारे में प्रश्न पूछें। यदि आयुष्मानो! वह लोकोत्तर शक्ति के बारे में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर न दे पावे तो लोग उसके बारे में कहने लगेंगे। 'फिर इस आरण्यक भिक्षु के एकान्तवास एवं स्वच्छन्द विचरण से क्या लाभ है, जबकि यह आयुष्मान् तो जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रव्रजित हुआ था, उसे भी नहीं जानता'—यह कहने लगते हैं। इसलिए आरण्यक भिक्षु को लोकोत्तर दिव्य शक्ति की प्राप्ति में मन लगाना चाहिये।"

२०.एवं वुत्ते, आयस्मा महामोग्गल्लानो आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"आरञ्ञिकेनेव नु खो, आवुसो सारिपुत्त, भिक्खुना इमे धम्मा समादाय वत्तितब्बा उदाहु गामन्तविहारिना पी" ति ? [R. 473]

"आरञ्ञिकेना पि खो, आवुसो मोग्गल्लान, भिक्खुना इमे धम्मा-समादाय वत्तितब्बा पगेव गामन्तविहारिना" ति।

●

---

२०. ऐसा कहने पर, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन आयुष्मान् शारिपुत्र से यों बोले--"आयुष्मन् शारिपुत्र! आपका बताया हुआ यह धर्मपालन क्या केवल आरण्यक भिक्षु को ही करना चाहिये या फिर ग्रामों के पास रहने वाले भिक्षुओं को भी इनका पालन करना चाहिये?"

"आयुष्मन् महामौद्गल्यायन! मेरे बताये इन धर्मों का आरण्यक भिक्षु को भी पालन करना चाहिये, जबकि ग्रामों के पास रहने वाले भिक्षुओं को तो इनका पालन करना ही है॥

गोलियानिसुत्त समाप्त॥

●

२०. कीटागिरिसुत्तं

१. रत्तिभोजनविरमणे भिक्खूनं अनुस्साहो

[N. 162, B. 138] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कासीसु चारिकं चरति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"अहं खो, भिक्खवे, अञ्ञत्रेव रत्तिभोजना भुञ्जामि। अञ्ञत्र खो पनाहं, भिक्खवे, रत्तिभोजना भुञ्जमानो अप्पाबाधतं च सञ्जानामि अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं च। एथ, तुम्हे पि, भिक्खवे, अञ्ञत्रेव रत्तिभोजना भुञ्जथ। अञ्ञत्र खो पन, भिक्खवे, तुम्हे पि रत्तिभोजना भुञ्जमाना अप्पाबाधतं च सञ्जानिस्सथ अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं चा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। अत्र खो भगवा कासीसु अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन कीटागिरि नाम कासीनं निगमो तदवसरि। तत्र सुदं भगवा कीटागिरिस्मिं विहरति कासीनं निगमे।

२. तेन खो पन समयेन अस्सजिपुनब्बसुका नाम भिक्खू कीटागिरिस्मिं

---

२०. कीटागिरिसूत्र

१. रात्रिभोजन-त्याग में भिक्षुओं का अनुत्साह

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) विशाल भिक्षुसंघ को साथ लिये काशी-जनपद में चारिका कर रहे थे। उस समय (कभी) भगवान् ने भिक्षुओं को यह कहा—"भिक्षुओ ! मैं रात्रिभोजन को त्याग (विरति) कर, भोजन करता हूँ। भिक्षुओ ! इस तरह, इस रात्रिभोजन के त्याग से मैं अपने अन्दर स्वस्थता, नीरोगता, हल्कापन व सामर्थ्य (बल) अनुभव करता हूँ और साधना में सुगमता से मेरा मन लगता है। आओ, भिक्षुओ ! तुम भी रात्रिभोजन त्याग कर, भोजन करो। भिक्षुओ ! इस रात्रिभोजन-त्याग से तुम भी अपने में स्वस्थता, नीरोगता, हल्कापन एवं सामर्थ्य (बल) अनुभव करोगे और साधना में तुम्हारा मन सुगमता से लगेगा"। "अच्छा, भन्ते !"—कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। फिर भगवान् क्रमशः काशी-जनपद में चारिका करते हुए जहाँ कीटागिरि[1] नामक काशी-जनपद का प्रसिद्ध कस्बा (निगम) था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् उस काशी-जनपद के कीटागिरि नामक कस्बे में विहार करने लगे।

२. उसी समय अश्वजित् एवं पुनर्वसु नामक भिक्षु भी उस कीटागिरि में

---

१. वर्तमान केराकत, जि० जौनपुर, (उ० प्र०) —श्री राहुल जी

आवासिका होन्ति। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन अस्सजिपुनब्बसुका भिक्खू तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा अस्सजिपुनब्बसुके भिक्खू एतदवोचुं—"भगवा खो, आवुसो, अञ्ञत्रेव रत्तिभोजना भुञ्जति भिक्खुसङ्घो च। अञ्ञत्र खो पनावुसो, रत्तिभोजना भुञ्जमाना अप्पाबाधतं च सञ्जानन्ति अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं च। एथ, तुम्हे पि, आवुसो अञ्ञत्रेव रत्तिभोजना भुञ्जथ। अञ्ञत्र खो पनावुसो, तुम्हे पि रत्तिभोजना भुञ्जमाना अप्पाबाधतं च सञ्जानिस्सथ अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं चा" ति। एवं वुत्ते, अस्सजिपुनब्बसुका [R. 474] भिक्खू ते भिक्खू एतदवोचुं—"मयं खो, आवुसो, सायं चेव भुञ्जाम पातो च दिवा च विकाले। ते मयं सायं चेव भुञ्जमाना पातो च दिवा च विकाले अप्पाबाधतं च सञ्जानाम अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं च। ते मयं किं सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधाविस्साम! सायं चेव [N. 163] मयं भुञ्जिस्साम पातो च दिवा च विकाले" ति।

यतो खो ते भिक्खू नासक्खिंसु अस्सजिपुनब्बसुके भिक्खू सञ्ञापेतुं, अथ येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभि- [B. 139]

निवास करते थे। तब बहुत से भिक्षु जहाँ अश्वजित् एवं पुनर्वसु थे, वहाँ गये; जाकर, उन भिक्षुओं ने अश्वजित् एव पुनर्वसु से यों कहा—"आयुष्मानो! भगवान् एवं भिक्षुसंघ रात्रिभोजन त्यागकर ही भोजन करते हैं। आयुष्मानो! वे इस रात्रिभोजन के त्याग से…साधना करते हैं। आओ आयुष्मानो! तुम भी रात्रि-भोजन त्याग कर, भोजन करो। आयुष्मानो! तुम इस रात्रिभोजन के त्याग से… सुगमता से साधना कर सकोगे।" (भिक्षुओं द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, वे अश्वजित् एवं पुनर्वसु भिक्षु उन भिक्षुओं से यों बोले—"आयुष्मानो! हम तो सायंकाल भी भोजन करते हैं, प्रातःकाल भी, दिन में भी और समय-बेसमय भी। आयुष्मानो! हम तो इस तरह शाम-सबेरे, दिन में या समय-बेसमय भोजन करते हुए भी अपने में स्वस्थता…सुगमता से साधना करते हैं। तो क्यों हम वर्तमान (=सान्दृष्टिक) को छोड़, कालान्तर की ओर दौड़े! हम तो शाम को भी खायेंगे, सुबह भी, दिन में भी और समय-बेसमय भी खायेंगे।"

जब वे भिक्षु उन अश्वजित् एवं पुनर्वसु भिक्षुओं को किसी भी तरह अपनी इस बात को नहीं समझा पाये, तब (वे भिक्षु) जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे;

वादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध मयं, भन्ते, येन अस्सजिपुनब्बसुका भिक्खू तेनुपसङ्कमिम्ह; उपसङ्कमित्वा अस्सजिपुनब्बसुके भिक्खू एतदवोचुम्ह—'भगवा खो, आवुसो, अञ्ञत्रेव रत्तिभोजना भुञ्जति भिक्खुसङ्घो च; अञ्ञत्र खो पनावुसो, रत्तिभोजना भुञ्जमाना अप्पाबाधतं च सञ्जानन्ति अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं च। एथ, तुम्हे पि, आवुसो, अञ्ञत्रेव रत्तिभोजना भुञ्जथ। अञ्ञत्र खो पनावुसो, तुम्हे पि रत्तिभोजना भुञ्जमाना अप्पाबाधतं च सञ्जानिस्सथ अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं चा' ति। एवं वुत्ते, भन्ते, अस्सजिपुनब्बसुका भिक्खू अम्हे एतदवोचुं—'मयं खो, आवुसो, सायं चेव भुञ्जाम पातो च दिवा च विकाले अप्पाबाधतं च सञ्जानाम अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं च। ते मयं किं सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधाविस्साम! सायं चेव मयं भुञ्जिस्साम पातो च दिवा च विकाले' ति। यतो खो मयं, भन्ते, नासक्खिम्ह अस्सजिपुनब्बसुके भिक्खू सञ्ञापेतुं, अथ मयं एतमत्थं भगवतो आरोचेमा" ति।

३. अथ खो भगवा अञ्ञतरं भिक्खुं आमन्तेसि—"एहि त्वं, भिक्खु, मम वचनेन अस्सजिपुनब्बसुके भिक्खू आमन्तेहि—'सत्था आयस्मन्ते आमन्तेती'" ति। "एवं, भन्ते" ति खो सो भिक्खु भगवतो पटिस्सुत्वा येन अस्सजिपुनब्बसुके भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अस्सजिपुनब्बसुके

पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओं ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! हम जहाँ अश्वजित् एवं पुनर्वसु थे, वहाँ गये; जाकर, अश्वजित् एवं पुनर्वसु भिक्षुओं से यों कहा—'आयुष्मानो! भगवान् एवं भिक्षुसंघ...सुगमता से साधना कर सकोगे'। ऐसा कहने पर, अश्वजित् एवं पुनर्वसु भिक्षुओं ने यह उत्तर दिया—'आयुष्मानो! हम तो सायंकाल भी खाते हैं...समय-बेसमय भी खायेंगे'। जब हम उन अश्वजित् एवं पुनर्वसु को यह बात किसी भी तरह नहीं समझा पाये, तब हम इस बात को भगवान् से निवेदन करने के लिये आये हैं।"

३. तब भगवान् ने किसी भिक्षु को बुलाकर कहा—"जा भिक्षु! मेरे कहने से तूँ अश्वजित् एवं पुनर्वसु भिक्षुओं से यह कह—'शास्ता ने आप-आयुष्मानों को बुलाया है'।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर वह भिक्षु जहाँ अश्वजित् एवं पुनर्वसु भिक्षु थे वहाँ, पहुँचा; पहुँचकर, उस भिक्षु ने अश्वजित् एवं पुनर्वसु से यों कहा—

भिक्खू एतदवोच--"सत्था आयस्मन्ते आमन्तेती" ति। "एवमावुसो" ति खो अस्सजिपुनब्बसुका भिक्खू तस्स भिक्खुनो पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो अस्सजिपुनब्बसुके भिक्खू भगवा एतदवोच—"सच्चं किर, भिक्खवे, सम्बहुला भिक्खू तुम्हे उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं-- [N. 164] 'भगवा खो, आवुसो, अञ्ञत्रेव रत्तिभोजना भुञ्जति भिक्खुसङ्घो च। अञ्ञत्र खो पनावुसो, रत्तिभोजना भुञ्जमाना अप्पाबाधतं च सञ्जानन्ति अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं च। एथ, तुम्हे पि, आवुसो, अञ्ञत्रेव रत्तिभोजना भुञ्जथ। अञ्ञत्र खो पनावुसो, तुम्हे पि रत्तिभोजना भुञ्जमाना अप्पाबाधतं च सञ्जानिस्सथ अप्पातङ्कतं च [R. 475] लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं चा' ति। एवं वुत्ते किर, [B. 140] भिक्खवे, तुम्हे ते भिक्खू एवं अवचुत्थ--'मयं खो पनावुसो, सायं चेव भुञ्जाम पातो च दिवा च विकाले। ते मयं सायं चेव भुञ्जमाना पातो च दिवा च विकाले अप्पाबाधतं च सञ्जानाम अप्पातङ्कतं च लहुट्ठानं च बलं च फासुविहारं च। ते मयं किं सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधाविस्साम ! सायं चेव मयं भुञ्जिस्साम पातो च दिवा विकाले' " ति ?

"एवं, भन्ते" ।

४. "किं नु मे तुम्हे, भिक्खवे, एवं धम्मं देसितं आजानाथ यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्स अकुसला धम्मा परिहायन्ति कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती" ति ?

"शास्ता आप आयुष्मानों को बुला रहे हैं"। "ठीक है, आयुष्मन्"—उस भिक्षु को यों उत्तर देकर, अश्वजित् एवं पुनर्वसु भिक्षु जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन अश्वजित् एवं पुनर्वसु भिक्षुओं से भगवान् ने यह कहा—"भिक्षुओ ! क्या यह सत्य है कि बहुत से भिक्षु तुम्हारे पास जाकर यों बोले थे--'भगवान् एवं भिक्षुसंघ··· पूर्ववत्··· बेसमय भी खायेंगे' ?"

"हाँ, भन्ते !"

४. "भिक्षुओ ! क्या तुम मेरे बारे में यह जानते हो कि मैंने ऐसे धर्म का उपदेश किया है कि पुरुष पुद्गल जो भी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव

"नो हेतं, भन्ते"।

"ननु मे तुम्हे, भिक्खवे, एवं धम्मं देसितं आजानाथ इधेकच्चस्स यं एवरूपं सुखं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ति, इधेकच्चस्स एवरूपं दुक्खं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ति, इध पनेकच्चस्स एवरूपं दुक्खं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, इधेकच्चस्स एवरूपं अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ति, इध पनेकच्चस्स एवरूपं अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती" ति ?

"एवं, भन्ते"।

[N. 165] ५. "साधु, भिक्खवे ! मया चेतं, भिक्खवे, अञ्ञातं अभविस्स अदिट्ठं अविदितं असच्छिकतं अफस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं सुखं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परि-

---

करता है, (उससे) उसके पापमय धर्म नष्ट हो जाते हैं और कुशल धर्म बढ़ते रहते हैं ?"

"नहीं, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! तो क्या तुमने मुझको ऐसा धर्मोपदेश करते हुए सुना है कि किसी सुखावेदना का अनुभव करते हुए पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म बढ़ने लगते हैं और कुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं, या किसी दुःखावेदना को अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म बढ़ने व कुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं, या किसी दुःखावेदना का अनुभव करते हुए पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं और कुशलधर्म बढ़ने लगते हैं या किसी अदुःखासुखावेदना का अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म बढ़ने व कुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं, या फिर ऐसी अदुःखासुखावेदना का अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं और कुशधर्म बढ़ने लगते हैं !"

"हाँ, भन्ते !"

५. "ठीक है, भिक्षुओ ! मैंने प्रज्ञा के सहारे यदि यह न जान लिया, न देख लिया, न समझ लिया, न साक्षात्कार कर लिया, न अनुभव कर लिया होता—'किसी ऐसी सुखावेदना का अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म बढ़ने

हायन्ती' ति' एवाहं अजानन्तो 'एवरूपं सुखं वेदनं पजहथा' ति वदेय्यं; अपि नु मे एतं, भिक्खवे, पतिरूपं अभविस्सा" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यस्मा च खो एतं, भिक्खवे, मया ञातं दिट्ठं विदितं सच्छिकतं फस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं सुखं वेदनं वेदयतो अकुसला [R. 476] धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, तस्माहं 'एवरूपं सुखं वेदनं पजहथा' ति वदामि। मया चेतं, भिक्खवे, अञ्ञातं अभविस्स [B. 141] अदिट्ठं अविदितं असच्छिकतं अफस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं सुखं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, एवाहं अजानन्तो 'एवरूपं सुखं वेदनं उपसम्पज्ज विहरथा' ति वदेय्यं; अपि नु मे एतं, भिक्खवे, पतिरूपं अभविस्सा" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यस्मा च खो एतं, भिक्खवे, मया ञातं दिट्ठं विदितं सच्छिकतं फस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं सुखं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा परि-

---

लगते हैं और कुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं'—ऐसा न जानते हुए भी यदि मैं यह कहता—'ऐसी सुखावेदना का त्याग करो'; तो भिक्षुओ ! क्या मेरा यह कहना, मेरे लिये उचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"क्योंकि भिक्षुओ ! मैंने प्रज्ञा के सहारे...अनुभव कर लिया है कि 'किसी सुखावेदना का अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म बढ़ने लगते हैं और कुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं', अतः मैं 'ऐसी सुखावेदना को त्याग दो'—ऐसा कहता हूँ,। और भिक्षुओ ! यदि मैंने प्रज्ञा के सहारे यह न जान... न अनुभव कर लिया होता—'किसी ऐसी सुखावेदना का अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं और कुशल धर्म बढ़ने लगते है' तो ऐसा न जानते हुए भी मैं यदि यह कहता कि 'ऐसी सुखावेदना को प्राप्त कर विहार करो'; तो भिक्षुओ ! क्या मेरा यह कहना उचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"क्योंकि भिक्षुओ ! मैंने प्रज्ञा के सहारे यह जान...अनुभव कर लिया है—'किसी ऐसी सुखावेदना का अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म क्षीण

हायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, तस्माहं 'एवरूपं सुखं वेदनं उपसम्पज्ज विहरथा' ति वदामि।

९. "मया चेतं, भिक्खवे, अञ्ञातं अभविस्स अदिट्ठं अविदितं असच्छिकतं अफस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं दुक्खं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, एवाहं अजानन्तो 'एवरूपं दुक्खं वेदनं पजहथा' ति वदेय्यं; अपि नु मे एतं, भिक्खवे, पतिरूपं अभविस्सा" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

[N. 166] "यस्मा च खो एतं, भिक्खवे, मया ञातं दिट्ठं विदितं सच्छिकतं फस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं दुक्खं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, तस्माहं 'एवरूपं दुक्खं वेदनं पजहथा' ति वदामि। मया चेतं, भिक्खवे, अञ्ञातं अभविस्स अदिट्ठं अविदितं असच्छिकतं अफस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं दुक्खं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, एवाहं अजानन्तो 'एवरूपं दुक्खं वेदनं उपसम्पज्ज विहरथा' ति वदेय्यं; अपि नु मे एतं, भिक्खवे, पतिरूपं अभविस्सा" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

होने लगते हैं और कुशलधर्म बढ़ने लगते हैं', अतः मैं 'ऐसी सुखावेदना को प्राप्त कर विहार करो'—ऐसा कहता हूँ।"

९. "भिक्षुओ ! यदि मैंने प्रज्ञा के सहारे यह न जान...न अनुभव कर लिया होता—'किसी ऐसी दुःखावेदना...न जानते...त्याग करो'; तो भिक्षुओ ! क्या मेरा यह कहना उचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"क्योंकि भिक्षुओ ! मैंने प्रज्ञा के सहारे यह जान...अनुभव कर लिया है—'किसी ऐसी दुःखावेदना...अतः मैं...त्याग दो'—ऐसा कहता हूँ। और भिक्षुओ ! यदि मैंने प्रज्ञा के सहारे यह न जान...न अनुभव कर लिया होता—'किसी ऐसी दुःखावेदना...न जानते...प्राप्तकर विहार करो'; तो भिक्षुओ ! क्या मेरा यह कहना उचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"यस्मा च खो एतं, भिक्खवे, मया ञातं दिट्ठं विदितं सच्छिकतं फस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं दुक्खं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, तस्माहं 'एवरूपं दुक्खं वेदनं उपसम्पज्ज विहरथा' ति वदामि।

७. "मया चेतं, भिक्खवे, अञ्ञातं अभविस्स अदिट्ठं अविदितं असच्छिकतं अफस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, एवाहं अजानन्तो 'एवरूपं अदुक्खमसुखं वेदनं पजहथा' ति वदेय्यं; अपि नु मे एतं, भिक्खवे, पतिरूपं अभविस्सा" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यस्मा च खो एतं, भिक्खवे, मया ञातं दिट्ठं विदितं सच्छिकतं फस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयतो [B. 142] अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ती' ति, तस्माहं 'एवरूपं अदुक्खमसुखं वेदनं पजहथा' ति वदामि। मया चेतं, भिक्खवे, अञ्ञातं

"क्योंकि भिक्षुओ ! मैंने प्रज्ञा के सहारे यह जान···अनुभव कर लिया है कि 'किसी ऐसी दुःखावेदना···कुशलधर्म बढ़ने लगते हैं'; अतः मैं 'ऐसी दुःखावेदना को प्राप्त कर विहार करो'––ऐसा कहता हूँ।"

७. "भिक्षुओ ! यदि मैंने प्रज्ञा के सहारे यह न जान लिया, न देख लिया, न समझ लिया, न साक्षात्कार कर लिया और न अनुभव कर लिया होता कि 'किसी ऐसी अदुःखासुखावेदना का अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशल धर्म बढ़ने लगते हैं और कुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं', ऐसा न जानते हुए भी यदि मैं यह कहता—'ऐसी अदुःखा-असुखा वेदना का त्याग करो'; तो भिक्षुओ ! क्या मेरा यह कहना उचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"क्योंकि, भिक्षुओ ! मैंने प्रज्ञा के सहारे यह जान···अनुभव कर लिया है कि 'किसी अदुःखा-असुखा वेदना का अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म बढ़ने लगते हैं और कुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं', अतः मैं 'ऐसी अदुःखा-असुखावेदना को त्याग दो'—ऐसा कहता हूँ। और भिक्षुओ ! यदि मैंने प्रज्ञा के सहारे यह न जान···न अनुभव कर लिया होता कि 'किसी अदुःखासुखावेदना का

अभविस्स अदिट्ठं अविदितं असच्छिकतं अफस्सितं पञ्ञाय—'इधेकच्चस्स एवरूपं अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ती' ति, एवाहं अजानन्तो 'एवरूपं अदुक्खमसुखं वेदनं उपसम्पज्ज विहरथा' ति वदेय्यं; अपि नु मे एतं, भिक्खवे, पतिरूपं अभविस्सा" ति ?

[N. 167] "नो हेतं, भन्ते"।

"यस्मा च खो एतं, भिक्खवे, मया ञातं दिट्ठं विदितं सच्छिकतं फस्सितं पञ्ञाय--'इधेकच्चस्स एवरूपं अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति कुसला धम्मा अभिवड्ढन्तो' ति, तस्माहं 'एवरूपं अदुक्खमसुखं [R. 477] वेदनं उपसम्पज्ज विहरथा' ति वदामि।

२. अप्पमादेन करणीयं अकरणीयं

८. "नाहं, भिक्खवे, सब्बेसं येव भिक्खूनं 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि; न पनाहं, भिक्खवे, सब्बेसं येव भिक्खूनं 'न अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। ये ते, भिक्खवे, भिक्खू अरहन्तो खीणासवा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीणभवसंयोजना सम्मदञ्ञा

अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं और कुशलधर्म बढ़ने लगते हैं', ऐसा न जानते हुए यदि मैं यह कहता—'ऐसी अदुःखा-असुखा वेदना को प्राप्त कर विहार करो'; तो भिक्षुओ ! क्या मेरा यह कहना उचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"क्योंकि, भिक्षुओ ! मैंने प्रज्ञा के सहारे यह जान "अनुभव कर लिया है कि 'किसी अदुःखा-असुखा वेदना का अनुभव करते हुए, पुरुषपुद्गल के अकुशलधर्म क्षीण होने लगते हैं और कुशलधर्म बढ़ने लगते हैं', अतः 'ऐसी अदुःखाअसुखावेदना को प्राप्त कर विहार करो'--ऐसा कहता हूँ।"

२. प्रमादरहित हो कर्तव्य पूर्ण करने न करने, का उपदेश

८. "भिक्षुओ ! मैं सभी भिक्षुओं को 'अपने कर्तव्य अप्रमादपूर्वक करो' नहीं कहता हूँ; और भिक्षुओ ! न मैं सभी भिक्षुओं को 'अपने कर्तव्य प्रमादरहित होकर न करो'—ऐसा ही कहता हूँ। भिक्षुओ ! जो भिक्षु ज्ञानी, आस्रवरहित हो चुके हैं, अपनी साधना के अन्तिम छोर तक पहुँच चुके हैं, अपने सभी कर्तव्य पूर्ण कर चुके हैं, समग्र सांसारिक भार अपने कन्धों से उतार चुके हैं, जिन्हें अपने प्राप्तव्य की प्राप्ति हो

चिमुत्ता, तथारूपानाहं, भिक्खवे, भिक्खूनं 'न अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। तं किस्स हेतु? कतं तेसं अप्पमादेन। अभब्बा ते पमज्जितुं। ये च खो ते, भिक्खवे, भिक्खू सेक्खा अप्पत्तमानसा अनुत्तरं योगक्खेमं पत्थयमाना विहरन्ति, तथारूपानाहं, भिक्खवे, भिक्खूनं 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। तं किस्स हेतु? अप्पेव नामिमे आयस्मन्तो अनुलोमकानि सेनासनानि पटिसेवमाना कल्याणमित्ते भजमाना इन्द्रियानि समन्नानयमाना—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्युं ति! इमं खो अहं, भिक्खवे, इमेसं भिक्खूनं अप्पमादफलं सम्पस्समानो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि।

९. "सत्तिमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे सत्त? (१) उभतोभागविमुत्तो, (२) पञ्ञाविमुत्तो, (३) कायसक्खि (४) दिट्ठिप्पत्तो, (५) सद्धाविमुत्तो, (६) धम्मानुसारी, (७) सद्धानुसारी।

चुकी है, जिनके भव-बन्धन क्षीण हो चुके हैं, जो सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष तक पहुँच चुके हैं—भिक्षुओ! ऐसे भिक्षुओं को मैं 'प्रमादरहित होकर कोई कर्तव्य न करो'—ऐसा नहीं कहता। वह क्यों? वह इसलिये कि उनको जो कुछ करना था, वे उसे अप्रमादपूर्वक पूरा कर ही चुके। उनसे अब प्रमाद होना शक्य ही नहीं है। और भिक्षुओ! जो भिक्षु अभी शिक्षा प्राप्त करने आये ही हैं, स्वचित्त को पूर्णतः निगृहीत नहीं कर सके हैं, लोकोत्तर योगक्षेम (निर्वाण) प्राप्त करने के लिये साधनारत हैं—भिक्षुओ! मैं ऐसे भिक्षुओं को 'अपने कर्तव्य अप्रमादपूर्वक करो' कहता हूँ। वह क्यों? वह इसलिये कि ये आयुष्मान् उचित शयनासनों का उपभोग करते, कल्याणमित्रों के साथ रहते तथा (साधना द्वारा) इन्द्रियों पर संयम रखते हुए, उस लोकोत्तर साधना फल (निर्वाण) को इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर साधना करते रहें, जिसके लिये ये कुलपुत्र एक साथ ही घर-बार छोड़, बेघर हो प्रव्रजित हुए हैं! भिक्षुओ! मैं इन भिक्षुओं के लिए, अप्रमाद का यह माहात्म्य देखते हुए 'अपने कर्तव्य अप्रमादपूर्वक करो' कहता हूँ।

९. "भिक्षुओ! संसार में सात प्रकार के लोग विद्यमान हैं। कौन से सात? (१) उभतोभागविमुक्त, (२) प्रज्ञाविमुक्त, (३) कायसाक्षी, (४) दृष्टिप्राप्त, (५) श्रद्धाविमुक्त, (६) धर्मानुसारी एवं (७) श्रद्धानुसारी।

[B. 143] "कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो उभतोभागविमुत्तो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा ते कायेन फुसित्वा विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा [N. 168] होन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो उभतोभागविमुत्तो। इमस्स खो अहं भिक्खवे, भिक्खुनो न 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। तं किस्स हेतु ? कतं तस्स अप्पमादेन। अभब्बो सो पमज्जितुं। (१)

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो पञ्ञाविमुत्तो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा ते न कायेन फुसित्वा विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति, [R. 478] भिक्खवे, पुग्गलो पञ्ञाविमुत्तो। इमस्स पि खो अहं, भिक्खवे, भिक्खुनो 'न अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। तं किस्स हेतु ? कतं तस्स अप्पमादेन। अभब्बो सो पमज्जितुं। (२)

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो कायसक्खि ? इध, भिक्खवे, एकच्चो

"भिक्षुओ ! कौन सा पुद्गल 'उभतोभागविमुक्त' कहलाता है ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल जो शान्त, विमोक्ष (धर्म) हैं, उन्हें समतिक्रान्त कर, रूपधातु में आरूप्य धर्मों का काया से स्पर्श (अनुभव) करता हुआ, साधना करता है और (दूसरी तरफ) प्रज्ञा से उनका साक्षात्कार कर (लेने से) उस (पुद्गल) के आस्रव (चित्तमल) क्षीण हो जाते हैं। भिक्षुओ ! ऐसा पुद्गल 'उभतोभागविमुक्त' कहलाता है। भिक्षुओ ! इस भिक्षु को मैं 'अपने कर्तव्य कर्म अप्रमादपूर्वक करो'-- ऐसा उपदेश नहीं करता। वह क्यों ? वह इसलिये कि उसने तो अपना कर्तव्य (पहले ही अप्रमादपूर्वक) पूर्ण कर लिया है। उससे अब प्रमाद होना शक्य नहीं है। (१)

"और, भिक्षुओ ! कौन सा पुद्गल 'प्रज्ञाविमुक्त' कहलाता है ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल जो शान्त, विमोक्ष (धर्म) हैं उन्हें समतिक्रान्त कर, रूपधातु में आरूप्य धर्मों का काया से स्पर्श (अनुभव) नहीं करता, किन्तु (दूसरी तरफ) प्रज्ञा से उनका साक्षात्कार कर (लेने से) उस (पुद्गल) के आस्रव क्षीण हो जाते हैं। भिक्षुओ ! ऐसा पुद्गल 'प्रज्ञाविमुक्त' कहलाता है। भिक्षुओ ! इस भिक्षु को···पूर्ववत्···प्रमाद होना शक्य नहीं है। (२)

"और भिक्षुओ ! कौन सा पुद्गल 'कायसाक्षी' (काया से सत्य का साक्षात्कार करने वाला) कहलाता है ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल जो शान्त, विमोक्ष (धर्म)

पुग्गलो ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा ते कायेन फुसित्वा विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो कायसक्खि। इमस्स खो अहं, भिक्खवे, भिक्खुनो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। तं किस्स हेतु ? अप्पेव नाम अयमायस्मा अनुलोमिकानि सेनासनानि पटिसेवमानो कल्याणमित्ते भजमानो इन्द्रियानि समन्नानयमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या ति ! इमं खो अहं, भिक्खवे, इमस्स भिक्खुनो अप्पमादफलं सम्पस्समानो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। (३)

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो दिट्ठिप्पत्तो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा ते न कायेन फुसित्वा विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति, तथागतप्पवेदिता चस्स धम्मा पञ्ञाय वोदिट्ठा होन्ति वोचरिता। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो दिट्ठिप्पत्तो। इमस्स पि खो अहं, भिक्खवे, भिक्खुनो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। तं किस्स हेतु ? [N. 169 , B. 144] अप्पेव नाम अयमायस्मा अनुलोमिकानि सेनासनानि पटिसेवमानो कल्याणमित्ते भजमानो इन्द्रियानि समन्नानयमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं--ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव

हैं, उन्हें समतिक्रान्त कर रूपधातु में आरूप्य धर्मों का काया से स्पर्श (अनुभव) करता है, पर (दूसरी तरफ) प्रज्ञा द्वारा उनका साक्षात्कार करने पर भी उसके कुछ ही आस्रव क्षीण हो पाते हैं। भिक्षुओ ! ऐसा पुद्गल 'कायसाक्षी' कहलाता है। भिक्षुओ ! इस भिक्षु को मैं 'अपने कर्तव्य कर्म अप्रमादपूर्वक करो'--यह उपदेश करता हूँ। वह क्यों ? वह इसलिये कि यह आयुष्मान् भिक्षु उचित शयनासन का उपभोग करते, कल्याणमित्रों के साथ रहते तथा साधना द्वारा इन्द्रियों पर संयम रखते हुए, जिसके लिये कुलपुत्र एक साथ ही घर-बार छोड़, बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस लोकोत्तर साधनाफल (निर्वाण) को इसी जन्म में स्वयं जान साक्षात् कर, प्राप्तकर साधना करते रहें। भिक्षुओ ! मैं इन भिक्षुओं के लिये, अप्रमाद का माहात्म्य देखते हुए 'अपने कर्तव्य अप्रमादपूर्वक करो'—ऐसा उपदेश करता हूँ। (३)

"भिक्षुओ ! और कौन सा पुद्गल 'दृष्टिप्राप्त' कहलाता है ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल'''पूर्ववत्'''काया से स्पर्श (अनुभव) नहीं करता और'''कुछ ही आस्रव क्षीण हो पाते हैं, वह प्रज्ञा के द्वारा तथागतोपदिष्ट धर्म समझ लेता है तथा उन पर आचरण करता है। भिक्षुओ ! ऐसा पुद्गल 'दृष्टिप्राप्त' कहलाता है। भिक्षुओ !

धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या ति ! इमं खो अहं, भिक्खवे, इमस्स भिक्खुनो अप्पमादफलं सम्पस्समानो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। (४)

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो सद्धाविमुत्तो। इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा ते न कायेन फुसित्वा विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति, तथागते चस्स सद्धा निविट्ठा होति मूलजाता पतिट्ठिता। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो सद्धाविमुत्तो। इमस्स पि खो अहं, भिक्खवे, भिक्खुनो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। तं किस्स हेतु ? अप्पेव नाम अयमायस्मा अनुलोमि- [R. 479] कानि सेनासनानि पटिसेवमानो कल्याणमित्ते भजमानो इन्द्रियानि समन्नानयमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या ति ! इमं खो अहं, भिक्खवे, इमस्स भिक्खुना अप्पमादफलं सम्पस्समानो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। (५)

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो धम्मानुसारी ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा ते न कायेन फुसित्वा विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति, तथागतप्पवेदिता चस्स धम्मा पञ्ञाय मत्तसो निज्झानं खमन्ति, अपि चस्स इमे धम्मा होन्ति, सेय्यथीदं—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधि-

---

इस भिक्षु को मैं 'अपने कर्तव्य कर्म अप्रमादपूर्वक पूर्ण कर'—यह उपदेश करता हूँ। वह क्यों ? वह इसलिये कि यह आयुष्मान् उचित शयनासन···उपदेश करता हूँ। (४)

"और भिक्षुओ ! कौन सा पुद्गल 'श्रद्धाविमुक्त' कहलाता है ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल···काया से स्पर्श (अनुभव) नहीं करता···कुछ ही आस्रव क्षीण हो पाते हैं, उसकी तथागत में श्रद्धा दृढमूल (गहरी जड़ वाली) हो जाती है और बढ़ती रहती है। भिक्षुओ ! ऐसा पुद्गल 'श्रद्धाविमुक्त' कहलाता है। भिक्षुओ ! इस भिक्षु को मैं 'अप्रमादपूर्वक अपने कर्म पूर्ण कर'—यह उपदेश करता हूँ। वह क्यों ? वह इसलिये कि यह आयुष्मान् उचित शयनासन···उपदेश करता हूँ। (५)

"और भिक्षुओ ! कौन सा पुद्गल 'धर्मानुसारी' कहलाता है। भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल···काया से स्पर्श (अनुभव) नहीं करता···कुछ ही आस्रव क्षीण हो पाते हैं, और उसके तथागतोपदिष्ट धर्म कुछ मात्रा में निदिध्यासन योग्य हो जाते

न्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो धम्मानुसारी। इमस्स पि खो अहं, भिक्खवे, भिक्खुनो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। तं किस्स हेतु ? अप्पेव नाम अयमायस्मा अनुलोमिकानि सेनासनानि पटिसेवमानो कल्याणमित्ते भजमानो इन्द्रियानि समन्नानयमानो--यस्सत्थाय [N. 170] कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या ति ! इमं खो अहं, भिक्खवे, इमस्स भिक्खुनो [B. 145] अप्पमादफलं सम्पस्समानो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। (६)

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो सद्धानुसारी ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा ते न कायेन फुसित्वा विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति, तथागते चस्स सद्धामत्तं होति पेममत्तं, अपि चस्स इमे धम्मा होन्ति, सेय्यथीदं—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो सद्धानुसारी। इमस्स पि खो अहं, भिक्खवे, भिक्खुनो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। तं किस्स हेतु ? अप्पेव नाम अयमायस्मा अनुलोमिकानि सेनासनानि पटिसेवमानो कल्याणमित्ते भजमानो इन्द्रियानि समन्नानयमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या ति ! इमं खो अहं, भिक्खवे, इमस्स भिक्खुनो अप्पमादफलं सम्पस्समानो 'अप्पमादेन करणीयं' ति वदामि। (७)

हैं, साथ ही इसके चित्त में ये धर्म भी उदित होने लगते हैं, जैसे--श्रद्धेन्द्रिय, वीर्येन्द्रिय, स्मृतीन्द्रिय, समाधीन्द्रिय, एवं प्रज्ञेन्द्रिय। भिक्षुओ ! ऐसा पुद्गल 'धर्मानुसारी' कहलाता है। भिक्षुओ ! ऐसे भिक्षु को भी मैं 'अपने कर्तव्य अप्रमादपूर्वक पूर्ण कर--यह उपदेश करता हूँ। वह क्यों ? वह इसलिये कि यह आयुष्मान् उचित शयनासन...उपदेश करता हूँ। (६)

"भिक्षुओ ! कौन सा पुद्गल 'श्रद्धानुसारी' कहलाता है ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल...काया स स्पर्श नहीं करता...कुछ ही आस्रव क्षीण हो पाते हैं...पूर्ववत्... प्रज्ञेन्द्रिय। भिक्षुओ ! ऐसा पुद्गल 'श्रद्धानुसारी' कहलाता है। भिक्षुओ ! ऐसे भिक्षु को मैं 'अपने कर्तव्य कर्म अप्रमादपूर्वक पूर्ण कर'—यह उपदेश करता हूँ। वह क्यों ? वह इसलिये कि यह आयुष्मान् उचित शयनासन...उपदेश करता हूँ। (७)

३. अनुपुब्बपटिपदा अञ्ञाराधना

१०. "नाहं, भिक्खवे, आदिकेनेव अञ्ञाराधनं वदामि; अपि च, [R. 480] भिक्खवे, अनुपुब्बसिक्खा अनुपुब्बकिरिया अनुपुब्बपटिपदा अञ्ञाराधना होति। कथं च भिक्खवे, अनुपुब्बसिक्खा अनुपुब्बकिरिया अनुपुब्बपटिपदा अञ्ञाराधना होति? इध, भिक्खवे, सद्धाजातो उपसङ्कमति, उपसङ्कमन्तो पयिरुपासति, पयिरुपासन्तो सोतं ओदहति, ओहितसोतो धम्मं सुणाति, सुत्वा धम्मं धारेति, धतानं धम्मानं अत्थं उपपरिक्खति, अत्थं उपपरिक्खतो धम्मा निज्झानं खमन्ति, धम्मनिज्झानक्खन्तिया सति छन्दो जायति, छन्दजातो उस्सहति, उस्साहेत्वा तुलेति, तुलयित्वा पदहति, पहितत्तो समानो कायेन चेव परमसच्चं सच्छिकरोति, पञ्ञाय चं नं अति- [N. 171] विज्झ पस्सति। सा पि नाम, भिक्खवे, सद्धा नाहोसि; तं पि नाम, भिक्खवे, उपसङ्कमनं नाहोसि; सा पि नाम, भिक्खवे, पयिरुपासना [B. 146] नाहोसि; तं पि नाम, भिक्खवे, सोतावधानं नाहोसि; तं पि नाम, भिक्खवे, धम्मसवनं नाहोसि; सा पि नाम, भिक्खवे, धम्मधारणा

---

३. ज्ञान की क्रमशः आराधना

१०. 'भिक्षुओ! मैं आरम्भ में ही ज्ञान की आराधना का उपदेश नहीं करता; अपितु भिक्षुओ! मेरा कहना यह है कि ज्ञान की आराधना शिक्षाओं पर, क्रियाओं पर क्रमशः आचरण करने से ही पूर्ण होती है। भिक्षुओ! यह ज्ञान की आराधना…क्रमशः कैसे पूर्ण होती है? भिक्षुओ! यहाँ कोई (पुद्गल) श्रद्धायुक्त हो (तथागत के पास) आता है, पास आकर सेवा-शुश्रूषा में लग जाता है, इस सेवा शुश्रूषा से उसकी श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ सावधान हो जाती हैं, इन इन्द्रियों के सावधान होने पर (तथागत से जो) धर्म सुनता है, उसे सुनकर (चित्त में) धारण करता है, उन धारण किये हुए धर्मों की वह स्वय सब तरफ से समीक्षा करता है, उन धर्मों के अर्थ की सब तरफ से समीक्षा करने के बाद वे धर्म निदिध्यासन के योग्य हो जाते हैं, धर्मों में वैसा निदिध्यासन सामर्थ्य आ जाने पर उनमें उसका राग (छन्द) हो जाता है, राग होने पर उसमें उनको धारण करने का उत्साह पैदा होता है, उत्साहित होकर वह उनकी ओर झुकता है, उनके प्रति झुक (आकृष्ट) हो उन पर ध्यान (समाधि) लगाता है, ध्यानस्थचित्त (प्रहितात्मा) हो वह शरीर से ही परमसत्य का साक्षात्कार करता है और प्रज्ञा से उसे सूक्ष्मतया बेधता है। भिक्षुओ! (यदि उसे) वह श्रद्धा भी न हुई, वह शरणगमन भी न हुआ, वह पर्युपासन (सेवा-शुश्रूषा) भी न हुआ, उसकी श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ उतनी सावधान न हुईं, वह धर्मश्रवण भी न हुआ, उसे वह धर्मधारणा भी न हो पायी, वह उस

नाहोसि; सा पि नाम, भिक्खवे, अत्थूपपरिक्खा नाहोसि; सा पि नाम, भिक्खवे, धम्मनिज्झानक्खन्ति नाहोसि; सो पि नाम, भिक्खवे, छन्दो नाहोसि; सो पि नाम, भिक्खवे, उस्साहो नाहोसि; सा पि नाम, भिक्खवे, तुलना नाहोसि; तं पि नाम, भिक्खवे, पधानं नाहोसि। विप्पटिपन्नात्थ, भिक्खवे, मिच्छापटिपन्नात्थ, भिक्खवे। कीव दूरेविमे, भिक्खवे, मोघपुरिसा अपक्कन्ता इमम्हा धम्मविनया।

११. "अत्थि, भिक्खवे, चतुप्पदं वेय्याकरणं यस्सुद्दिट्ठस्स विञ्ञू पुरिसो नचिरस्सेव पञ्ञायत्थं आजानेय्य। उद्दिसिस्सामि वो, भिक्खवे। आजानिस्सथ मे तं" ति ?

"के च मयं, भन्ते, के च धम्मस्स अञ्ञातारो" ति ?

"यो पि सो, भिक्खवे, सत्था आमिसगरु आमिसदायादो आमिसेहि संसट्ठो विहरति तस्स पायं एवरूपी पणोपणविया न उपेति--'एवं च नो अस्स अथ नं करेय्याम, न च नो एवमस्स न नं करेय्यामा' ति, किं पन, भिक्खवे, यं तथागतो सब्बसो आमिसेहि विसंसट्ठो विहरति। सद्धस्स, भिक्खवे, सावकस्स सत्थुसासने परियोगाहिय वत्ततो अयमनुधम्मो होति--'सत्था

धर्म के अर्थ की पूर्ण समीक्षा भी न कर सका, उसके कारण उन धर्मों में निदिध्यासन की क्षमता भी न आ सके, इस कारण उसका धर्मों में राग न हो पाय, धर्मों में राग न होने से उत्साह भी न हो, उत्साह न होने से उन धर्मों की ओर स्वचित्त को झुका न पाय, स्वचित्त को न झुका पाने से उसका चित्त समाधिस्थ न हो। तो भिक्षुओ ! ऐसे पुद्गल विप्रतिपन्न (अमार्गारूढ़) एवं मिथ्या-प्रतिपन्न कहलाते हैं। भिक्षुओ ! ये अयोग्य मोघपुरुष (मूर्ख) इस धर्मविनय से कितना ही दूर पड़ जाते हैं।

११. भिक्षुओ ! किसी भी बात का व्याकरण (व्याख्यान) चतुर्विध (चतुष्पाद) होता है, जिसके सहारे कोई भी विद्वान् व्यक्ति सामने आयी बात को प्रज्ञा द्वारा समझ सकता है। मैं तुमसे इस विषय में पूछना चाहता हूँ, क्या तुम मुझे बता सकोगे ?'.

"भन्ते ! कहाँ हम जैसे तुच्छ पुरुष और कहाँ आप जैसे धर्म के जानकार !"

"भिक्षुओ ! जो गुरु (शास्ता) स्वयं धन का लोभी, भोगों का लालची एवं सांसारिक कामभोगों में लिप्त हो साधना करता है, वह भी यह कहने का साहस, हिम्मत या दावा नहीं कर सकता—'यदि हमें ऐसा हो तो इसे करेंगे, यदि हमें ऐसा न हो तो नहीं करेंगे', फिर भिक्षुओ ! तथागत की तो बात ही क्या, जो सांसारिक विषयों से सर्वथा अलिप्त हो, साधना करते हैं। भिक्षुओ ! अपने शास्ता के शासन

भगवा, सावकोहमस्मि; जानाति भगवा, नाहं जानामी' ति। सद्धस्स, भिक्खवे, सावकस्स सत्थुसासने परियोगाहिय वत्ततो रुळ्हनीयं सत्थुसासनं होति ओजवन्तं। सद्धस्स, भिक्खवे, सावकस्स सत्थुसासने परियोगाहिय [R. 481] वत्ततो अयमनुधम्मो होति--'कामं तचो च न्हारु च अट्ठि च अवसिस्सतु, सरीरे अवसुस्सतु मंसलोहितं, यं तं पुरिसथामेन पुरिसविरियेन पुरिसपरक्कमेन पत्तब्बं न तं अपापुणित्वा विरियस्स सण्ठानं भविस्सती' [N. 172] ति। सद्धस्स, भिक्खवे, सावकस्स सत्थुसासने परियोगाहिय वत्ततो द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं—दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता" ति।

[B. 147] १२. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

भिक्खुवग्गो निट्ठितो दुतियो।

●

में श्रद्धालु एवं गम्भीरता से आचरण करने वाले श्रावक को यह विचार (अनुधर्म) होता है—'भगवान् शास्ता हैं, मैं तो (उनका) शिष्य हूँ; भगवान् ही सब कुछ जानते हैं, मैं नहीं जानता (अज्ञ) हूँ'। भिक्षुओ! अपने शास्ता के शासन में श्रद्धालु एवं गम्भीरता से आचरण करने वाले ऐसे श्रावक का धर्माचरण गहरी जड़ वाला एवं ओजस्वी (प्रतापवान्) होता है। भिक्षुओ! अपने शास्ता के शासन में श्रद्धालु...श्रावक को यह विचार होता है—'भले ही मेरी त्वचा (चमड़ी), स्नायु, (नस) या अस्थि (हड्डी) ही (शरीर में) अवशिष्ट रह जाय, शरीर का समग्र रक्त मांस सूख जाय, तो भी समग्र पुरुषशक्ति, पुरुषवीर्य एवं पुरुषपराक्रम से प्राप्त होने वाले लक्ष्य (निर्वाण) प्राप्त किये बिना मेरा यह उद्योग नहीं रुकेगा'। भिक्षुओ! अपने शास्ता के शासन में श्रद्धालु...श्रावक को चाहे गये दो फलों (परिणामों) मे से, एक फल तो अवश्य मिलेगा—या तो इसी शरीर के रहते ज्ञान (निर्वाण) प्राप्त हो जाय या फिर यदि उसके कुछ चित्तमल बाकी रह जाँय तो उनके कारण वह निर्वाण तक तो नहीं पहुँच पायेगा लेकिन अनागामित्व को तो प्राप्त कर ही लेगा।"

१२. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमन उन भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

कीटागिरिसुत्त समाप्त॥

भिक्खुवग्ग नामक द्वितीय वर्ग समाप्त॥

●

तस्सुद्दानं

कुञ्जर राहुल सस्सतलोको
मालुक्यपुत्तो च भद्दालि नामो।
खुद्द दिजाथ सहम्पतियाचं
नाळक रञ्ञिकिटागिरिनामो ॥

●

इस वर्ग का उदान

इस प्रकार इस भिक्षुवर्ग में अधोलिखित दश सूत्रों का संग्रह हुआ है—१. अम्बलट्ठिकराहुलोवादसुत्त, २. महाराहुलोवादसुत्त, ३. चूलमालुक्यसुत्त ४. महामालुक्यसुत्त, ५. भद्दालिसुत्त, ६. लटुकिकोपमसुत्त, ७. चातुमसुत्त ८. नलकपानसुत्त, ९. गोलियानिसुत्त और १०. कीटागिरिसुत्त।

●

२१. तेविज्जवच्छसुत्तं

[N. 173, B. 148] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। तेन खो पन समयेन वच्छगोत्तो परिब्बाजको एकपुण्डरीके परिब्बाजकारामे पटिवसति। अथ खो भगवा पुब्बण्ह- समयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय वेसालिं पिण्डाय पाविसि। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"अतिप्पगो खो ताव वेसालियं पिण्डाय चरितुं; यन्नूनाहं येन एकपुण्डरीको परिब्बाजकारामो येन वच्छगोत्तो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमेय्यं" ति। अथ खो भगवा येन एकपुण्डरीको परिब्बाजकारामो येन वच्छगोत्तो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो वच्छगोत्तो परिब्बा- जको भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान भगवन्तं एतदवोच—"एतु खो, भन्ते, भगवा! स्वागतं, भन्ते, भगवतो! चिरस्सं खो, भन्ते, भगवा इमं परियायमकासि यदिदं इधागमनाय। निसीदतु, भन्ते, भगवा; इदमासनं पञ्ञत्तं" ति। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। वच्छगोत्तो पि खो परि-
[R. 482] ब्बाजको अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि।

१. भगवतो सब्बञ्ञुता

एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"सुतं

---

२१. त्रैविद्यवत्ससूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) भगवान् (बुद्ध) वैशाली स्थित महावन की कूटागारशाला में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय वत्सगोत्र नामक परिव्राजक एकपुण्डरीक नामक परिव्राजकाराम में निवास करता था। उसी समय (कभी) भगवान् पूर्वाह्ण में पहनकर, पात्र-चीवर ले, वैशाली में भिक्षा के लिये प्रविष्ट हुए। तब भगवान् को यह हुआ—"अरे, अभी तो वैशाली में भिक्षा हेतु प्रवेश करने के लिये बहुत सबेरा है; क्यों न मैं थोड़ी देर एकपुण्डरीक परिव्राजकराम में जहाँ वत्सगोत्र परिव्राजक रहता है वहाँ, चलूँ"। तब भगवांन् एक पुण्डरीक परिव्राजका- राम में जहाँ वत्सगोत्र परिव्राजक था वहाँ, पहुँचे। (उधर) वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् को आते हुए दूर से ही देखा। देखकर भगवान् से यों बोला—"आइये, भन्ते भगवन्! आपका स्वागत है, भन्ते भगवन्! बहुत काल बाद आपने इधर आने का समय निकाला। भन्ते! आसन बिछा हुआ है, कृपया विराजें।" (तब) भगवान् बिछे आसन पर विराजे। वत्सगोत्र परिव्राजक भी (भगवान् से) नीचे की ओर एक आसन ले, एक ओर बैठ गया।

१. भगवान् की सर्वज्ञता

एक ओर बैठे वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते! मैंने सुना

मेतं, भन्ते—'समणो गोतमो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी, अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानाति, चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं' ति। ये ते, भन्ते, एवमाहंसु—'समणो गोतमो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी, अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानाति, चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं' ति, कच्चि ते, भन्ते, भगवतो वुत्तवादिनो, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको [N. 174] वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती" ति ?

"ये ते, वच्छ, एवमाहंसु—'समणो गोतमो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी, अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानाति, चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं' ति, न मे ते वुत्तवादिनो, अब्भाचिक्खन्ति च पन मं असता अभूतेना" ति।

२. कथं ब्यकरमाना पन मयं, भन्ते, वुत्तवादिनो चेव [B. 149] भगवतो अस्साम, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्याम, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्याम, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या" ति ?

तेविज्जो भगवा

"तेविज्जो समणो गोतमो' ति खो, वच्छ, ब्याकरमानो वुत्तवादी मे

है—'(आप) श्रमण गौतम सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, समग्र ज्ञान के साक्षात्कार करने की प्रतिज्ञा करते हैं, (आपको) चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते निरन्तर समग्र ज्ञानदर्शन उपस्थित रहता है'। भन्ते! जो ऐसा कहते हैं—'श्रमण गौतम सर्वज्ञ··· उपस्थित रहता है', भन्ते! क्या ये लोग आपके प्रति यथार्थ कहते हैं? क्या आप पर अनहुई बात का आरोप लगाते हुए, आपकी निन्दा (अभ्याख्यान) तो नहीं करते? या धर्मानुकूल वर्णन करते हैं? इससे कोई सहधर्मी (धर्मानुकूल) वाद तो निन्दनीय स्थिति में नहीं पहुँचता?"

"वत्स! जो लोग मेरे बारे में यह कहते हैं—'श्रमण गौतम सर्वज्ञ···उपस्थित रहता है', वे मेरे बारे में यथार्थवक्ता नहीं है, मुझ पर अनहुई बात का आरोप लगाते हैं···।"

२. "भन्ते! हम लोग आपके बारे में कैसा कहते हुए यथार्थवक्ता कहलायेंगे कि आप पर अनहुई बात का आरोप भी न लगे, आपकी निन्दा भी न हो, आपका धर्मानुकूल परिचय भी हो और न कोई सहधर्मीवाद आपके प्रति निन्दात्मक रूप ले सके?"

अस्स, न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्य, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्य, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छेय्य। अहं हि, वच्छ, यावदेव आकङ्खामि अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो…पे०…इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि। अहं हि, वच्छ, यावदेव आकङ्खामि दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सामि चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानामि। अहं हि, वच्छ, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामि।

[R. 483] 'तेविज्जो समणो गोतमो' ति खो, वच्छ, ब्याकरमानो वुत्तवादी चेव मे अस्स, न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्य, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्य, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या" ति।

२. अञ्ञतित्थियानं गति

३. एवं वुत्ते, वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"अत्थि नु

भगवान् तीन विद्याओं के ज्ञाता हैं

"वत्स! मेरे बारे में—'श्रमण गौतम तीन विद्याओं के जानकार हैं'—ऐसा कहने वाले मेरे प्रति यथार्थवक्ता हैं, (ऐसा कहते हुए वे) मुझ पर कोई अनहुआ नहीं थोपते, न मेरी निन्दा ही करते हैं, मेरा धर्मानुकूल ही वर्णन करते हैं और (उनके ऐसा कहने से) कोई सहधर्मीवाद भी उत्पन्न नहीं होता। (१) वत्स! मैं जब भी चाहता हूँ तब अपने अनेक पूर्वजन्मों का स्मरण कर सकता हूँ, जैसे—एक जन्म, दो…पूर्ववत्…इस प्रकार आकार और उद्देश्य सहित अपने अनेक पूर्वजन्मों को स्मरण करने लगता हूँ। (२) वत्स! मैं जब भी चाहता हूँ तब मैं अनुपम विशुद्ध दिव्य चक्षु से अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति-दुर्गति वाले प्राणियों को मरते-जन्मते तथा कर्मानुसार गति पाने वाले प्राणियों को जान लेता हूँ। (३) वत्स! मैं जब भी चाहता हूँ, तब मैं आस्रवों (राग-द्वेष-मोह आदि) के क्षय से आस्रवरहित चित्त की विमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् (प्राप्त) कर विहरण करता हूँ।

"वत्स! मेरे बारे में—'श्रमण गौतम तीन विद्याओं के जानकार हैं'—ऐसा कहने वाले मेरे प्रति यथार्थवक्ता है…वाद भी निन्दात्मक रूप नहीं लेता।"

२. अन्य तैर्थिकों की देहपात के बाद गति

३. (भगवान् के) ऐसा कहने पर, वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् से यों

खो, भो गोतम, कोचि गिही गिहिसंयोजनं अप्पहाय कायस्स [N. 175] भेदा दुक्खस्सन्तकरो" ति ?

"नत्थि खो, वच्छ, कोचि गिही गिहिसंयोजनं अप्पहाय कायस्स भेदा दुक्खस्सन्तकरो" ति।

"अत्थि पन, भो गोतम, कोचि गिही गिहिसंयोजनं अप्पहाय कायस्स भेदा सग्गूपगो" ति ?

"न खो, वच्छ, एकं येव सतं न द्वे सतानि न तीणि सतानि न चत्तारि सतानि न पञ्च सतानि अथ खो भिय्यो व ये गिही गिहिसंयोजनं अप्पहाय कायस्स भेदा सग्गूपगा" ति।

"अत्थि नु खो, भो गोतम, कोचि आजीवको कायस्स भेदा [B. 150] दुक्खस्सन्तकरो" ति ?

"नत्थि खो वच्छ, कोचि आजीवको कायस्स भेदा दुक्खस्सन्तकरो" ति।

"अत्थि पन, भो गोतम, कोचि आजीवको कायस्स भेदा सग्गूपगो" ति ?

"इतो खो सो, वच्छ, एकनवुतो कप्पो यमहं अनुस्सरामि, नाभिजानामि कञ्चि आजीवकं सग्गूपगं अञ्ञत्र एकेन; सोपासि कम्मवादी किरियवादी" ति।

पूछा— "भो गौतम ! है कोई ऐसा गृहस्थ, जो अपने गृहबन्धनों को बिना छोड़े, इस देहपात के बाद, दुःख का अन्त करने वाला हो ?"

"नहीं, वत्स ! ऐसा कोई गृहस्थ नहीं है, जो अपने गृहबन्धनों को बिना छोड़े, इस देहपात के बाद, दुःख का अन्त करने वाला हो।"

"भो गौतम ! है कोई ऐसा गृहस्थ, जो अपने गृहबन्धनों को बिना छोड़े, मरणानन्तर, स्वर्ग में जा सके ?"

"वत्स ! एक सौ ही नहीं, न दो सौ ही, न तीन सौ, न चार सौ, न पाँच सौ बल्कि उनसे ज्यादा ही गृहस्थ अपने गृहबन्धनों को बिना छोड़े, मरणानन्तर, स्वर्ग पहुँचे हैं।"

"भो गौतम ! है कोई आजीवक (नग्नसाधु), जो काया को छोड़, दुःखों का अन्त करनेवाला हो ?"

"नहीं, वत्स ! ऐसा कोई आजीवक नहीं है, जो काया छोड़, दुःखों का अन्त करने वाला हो।"

"भो गौतम ! है कोई आजीवक, जो मरणानन्तर, स्वर्ग जा सका हो?"

"वत्स ! मैं आज से एक्यानवे कल्प तक का स्मरण करता हूँ, मैं कोई भी आजीवक, को जो स्वर्ग पहुँचा हो, नहीं जानता, केवल एक को छोड़; जो कर्मवादी एवं क्रियावादी था।"

"एवं सन्ते, भो गोतम, सुञ्ञं अदुं तित्थायतनं अन्तमसो सग्गूपगेनातो" ति ?

"एवं, वच्छ, सुञ्ञं अदुं तित्थायतनं अन्तमसो सग्गूपगेन पी" ति ।

४. इदमवोच भगवा। अत्तमनो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनन्दी ति ।

●

"भो गौतम ! ऐसा होने पर तो यह सम्प्रदाय (आजीवक पन्थ) सभी बातों से शून्य है, यहाँ तक कि स्वर्ग जाने वालों से भी ?"

"हाँ, वत्स ! यह सम्प्रदाय सभी बातों से शून्य है, यहाँ तक कि स्वर्ग जाने वालों से भी ।"

४. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमन वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया ॥

तेविज्जवच्छसुत्त समाप्त ॥

●

२२. अग्गिवच्छगोत्तसुत्तं

१. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 176] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे । अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि । [R. 484] सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—

१. तथागतो दिट्ठिगतानि अनुपगतो

"किं नु खो, भो गोतम, 'सस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

"न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—'सस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं'" ति ।

"किं पन, भो गोतम, 'असस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

"न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—'असस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं'" ति ।

"किं नु खो, भो गोतम, 'अन्तवा लोको, इदमेव सच्चं [B. 151] मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

---

२२. अग्निवत्सगोत्रसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में विहार करते थे । तब वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, पहुँचा; पहुँचकर, उसने भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा । कुशल-मङ्गल पूछ, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् से यों पूछा—

१. तथागत दृष्टिगत दोषों से दूर हैं

(१) "भो गौतम ! 'यह लोक शाश्वत है, यही सत्य है, अन्य सब (वाद=मत) निरर्थक (झूठ) हैं'—क्या आप ऐसा मानते हैं ?"

"वत्स ! मेरा यह मत (धारणा) नहीं है—'यह लोक ही शाश्वत है, यही सत्य है; अन्य सब निरर्थक हैं' ।"

(२) "तो क्या फिर, भो गौतम ! 'यह लोक शाश्वत नहीं (विनाशी) है...'—आप ऐसा मानते हैं ?"

"वत्स ! मेरी यह धारणा भी नहीं है—'यह लोक शाश्वत नहीं, यही सत्य है, अन्य सब व्यर्थ ।"

(३) "क्या फिर, भो गौतम ! 'यह लोक अन्तवान् है...'—आप ऐसा मानते हैं ?"

"न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—'अन्तवा लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं'" ति।

"किं पन, भो गोतम, 'अनन्तवा लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

"न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—'अनन्तवा लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं'" ति।

"किं नु खो, भो गोतम, 'तं जीवं तं सरीरं, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

[N. 177] "न खो अहं, वच्छ; एवंदिट्ठि—'तं जीवं तं सरीरं, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं'" ति।

"किं पन, भो गोतम, 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

"न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं'" ति।

"किं नु खो, भो गोतम, 'होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

"न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—'होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं'" ति।

"वत्स ! मैं यह भी नहीं मानता हूँ—'यह लोक अन्तवान् है…'।"

(४) "क्या फिर, भो गौतम ! 'यह लोक अन्तवान् नहीं है…'—आप ऐसा मानते हैं ?"

"वत्स ! मैं ऐसा भी नहीं मानता—'यह लोक अन्तवान् नहीं है…'।"

(५) "तो क्या फिर, भो गौतम ! 'वही जीव है, वही शरीर है…'—आप ऐसी धारणा रखते हैं ?"

"वत्स ! मेरी यह धारणा भी नहीं है—'वही जीव है वही शरीर है…'।"

(६) "तो क्या फिर, भो गौतम ! 'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है…'—आप इस मत को मानते हैं ?"

"वत्स ! निश्चय ही मैं इस मत का मानने वाला भी नहीं हूँ—'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है…'।"

(७) "तो क्या फिर, भो गौतम ! 'तथागत मरने के बाद (भी) होते हैं…'—आप ऐसे मत वाले है ?"

"वत्स ! मेरा यह मतवाद भी नही है—'तथागत मरने के बाद होते हैं…'।"

"किं पन, भो गोतम, 'न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

"न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—'न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' " ति।

"किं नु खो, भो गोतम, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

"न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—'होति च न च होति [R. 485] तथागतो पर मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' " ति।

"किं पन, भो गोतम, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो" ति ?

"न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं'" ति।

२. "किं नु खो, भो गोतम, सस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं, [B. 152] वच्छ, एवंदिट्ठि—सस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि। 'किं पन, भो गोतम, असस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—असस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि। 'किं नु [N. 178] खो, भो गोतम, अन्तवा लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति—एवंदिट्ठि भवं

---

(८) "तो क्या फिर, भो गौतम ! 'तथागत मरने के बाद नहीं होते…'—आप ऐसा मानने वाले हैं ?"

"वत्स ! मैं इस मत को भी नहीं मानता—'तथागत मरने के बाद नहीं होते…'।"

(९) "तो क्या फिर, भो गौतम ! 'तथागत मरणानन्तर होते भी हैं, नहीं भी होते…'—आप यह मानते हैं ?"

"वत्स ! मैं यह भी नहीं मानता—'तथागत मरणान्तर होते भी हैं, नहीं भी होते…'।"

(१०) "तो क्या फिर, भो गौतम ! 'तथागत मरणान्तर न होते हैं, न नहीं होते हैं'—आप ऐसा मानते हैं ?"

"वत्स मैं ऐसा भी नहीं मानता—'तथागत मरणान्तर न होते हैं, न नहीं होते हैं…'।"

२. "क्या बात है, भो गौतम ! (१) 'यह लोक शाश्वत है, यही सत्य है, अन्य सब निरर्थक (झूठ) है—क्या आपका यह मत है' यह पूछे जाने पर 'वत्स !

गोतमो' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—अन्तवा लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि। 'किं पन, भो गोतम, अनन्तवा लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं वच्छ, एवंदिट्ठि—अनन्तवा लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि। 'किं नु खो, भो गोतम, तं जीवं तं सरीरं, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—तं जीवं तं सरीरं, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि। 'किं पन, भो गोतम, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि। 'किं नु खो, भो गोतम, होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञ ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं, वच्छ एवंदिट्ठि—होति तथागतो परं मरणा इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि। 'किं पन, भो गोतम, न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति—एवदिट्ठि भवं गोतमो' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि। 'किं नु खो, गोतम, होति च न च होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—होति च न च होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि। 'किं पन, भो गोतम, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति—एवंदिट्ठि भवं गोतमो' ति [B. 153] इति पुट्ठो समानो 'न खो अहं, वच्छ, एवंदिट्ठि—नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति वदेसि।

"किं पन भवं गोतमो आदीनवं सम्पस्समानो एवं इमानि सब्बसो दिट्ठिगतानि अनुपगतो" ति ?

मेरा यह मत नहीं है—यह लोक शाश्वत है, यही सत्य है, अन्य सब निरर्थक हैं'—यह उत्तर देते हैं···पूर्ववत्···(१०) और फिर, भो गौतम ! 'तथागत मरणान्तर न होते हैं, न नहीं होते···—क्या आपका ऐसा मत है' यह पूछे जाने पर भी 'वत्स ! मेरा यह भी मत नहीं है—तथागत मरने के बाद न होते हैं, न नहीं होते हैं, यही सत्य है, अन्य सब निरर्थक'—यह कहते हैं।

"क्या, भो गौतम ! आप इन सब (उपर्युक्त) मतों में कुछ बुराई (दोष) देखकर, इन्हें स्वीकार नहीं करते ?"

३. " 'सस्सतो लोको' ति खो, वच्छ, दिट्ठिगतमेतं दिट्ठिगहनं [N. 179] दिट्ठिकन्तारो दिट्ठिविसूकं दिट्ठिविप्फन्दितं दिट्ठिसंयोजनं सदुक्खं सविघातं सउपायासं सपरिळाहं न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति। असस्सतो लोको ति खो, वच्छ···पे०···अन्तवा लोको ति खो, वच्छ···पे०···अनन्तवा लोको ति खो, वच्छ···पे०···तं जीवं तं सरीरं ति खो, वच्छ···पे०···अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति खो, वच्छ पे· होति तथागतो परं मरणा ति खो, [R. 486] वच्छ···पे०··· न होति तथागतो परं मरणा ति खो, वच्छ···पे०···होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति खो, वच्छ···पे० ··नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति खो, वच्छ, दिट्ठिगतमेतं दिट्ठिगहनं दिट्ठिकन्तारो दिट्ठिवि ूकं दिट्ठिविप्फन्दितं दिट्ठिसंयोजनं सदुक्खं सविघातं सउपायासं सपरिळाहं न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति। इमं खो अहं, वच्छ, आदीनवं सम्पस्समानो एवं इमानि सब्बसो दिट्ठिगतानि अनुपगतो" ति।

२. सब्बमञ्ञितानं खया विमुत्तो

४. "अत्थि पन भोतो गोतमस्स किञ्चि दिट्ठिगतं" ति ?

"दिट्ठिगतं ति खो, वच्छ, अपनीतमेतं तथागतस्स। दिट्ठं हेतं, वच्छ, तथागतेन—'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; इति

---

(३) "वत्स ! (१) 'यह लोक शाश्वत है'—यह मत धारणा (चिन्तन) के लिये जंजाल है, सूखा जंगल है, एक प्रकार का काँटा है, चंचलता से भरा हुआ है, बाँधने वाला है, दुःखमय है, कष्टदायक है, परेशानी से भरा एवं दाहक (जलाने वाला) है; यह न निर्वेद (भवग्लानि) के लिये, न वैराग्य के लिये, न चित्त निरोध के लिये, न शान्ति के लिये, न अभिज्ञान के लिये, न सम्बोधि (परमज्ञान) के लिये और न निर्वाण के लिये उपयुक्त है।···पूर्ववत्···। वत्स ! (१०) 'तथागत मरणान्तर न होते हैं, न नहीं होते'—यह मत धारणा के लिये जंजाल···न निर्वाण के लिये उपयुक्त है। वत्स ! मैं इन (उपर्युक्त) मतों में बुराइयाँ देखकर इनको स्वीकार नहीं करता।"

२. सभी मान्यताओं के नाश से तथागत मुक्त हैं

४. "(भो गौतम !) क्या आपका अपना भी इस विषय में कोई विचार (मत) है ?"

"वत्स ! कोई धारणा बनाना—तथागत से दूर हो गया है। वत्स ! मैंने अब तक जो देखा है, उसे यों समझा है—'यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का

वेदना, इति वेदनाय समुदयो, इति वेदनाय अत्थङ्गमो; इति सञ्ञा, इति सञ्ञाय समुदयो, इति सञ्ञाय अत्थङ्गमो; इति सङ्खारा, इति सङ्खारानं समुदयो, इति सङ्खारानं अत्थङ्गमो; इति विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति। तस्मा तथागतो सब्बमञ्ञितानं सब्बमथितानं सब्बअहङ्कार-ममङ्कार-मानानुसयानं खया विरागा निरोधा चागा पटिनिस्सग्गा अनुपादा विमुत्तो ति वदामी" ति।

[N. 180, B. 154] ५. "एवं विमुत्तचित्तो पन, भो गोतम, भिक्खु, कुहिं उपपज्जती" ति?

"उपपज्जती ति खो, वच्छ, न उपेति"।

"तेन हि, भो गोतम, न उपपज्जती" ति?

"न उपपज्जती ति खो, वच्छ, न उपेति"।

"तेन हि, भो गोतम, उपपज्जति च न च उपपज्जती" ति?

"उपपज्जति च न च उपपज्जती ति खो, वच्छ, न उपेति"।

"तेन हि, भो गोतम, नेव उपपज्जति न न उपपज्जती" ति?

"नेव उपपज्जति न न उपपज्जती ति खो, वच्छ, न उपेति"।

"'एवं विमुत्तचित्तो पन, भो गोतम, भिक्खु कुहिं उपपज्जती' ति इति

नाश है; यह वेदना है नाश है; यह संज्ञा है ... नाश है; ये संस्कार हैं ... नाश है; यह विज्ञान है, यह विज्ञान का समुदय है, यह विज्ञान का नाश है'। इसलिये तथागत सभी प्रकार की मान्यताओं, सभी मतों, सभी अहंत्व-ममत्व के अभिनिवेशों (जिद्द) के क्षय, वैराग्य, निरोध, त्याग और अनुत्पत्ति के कारण विमुक्त हैं--ऐसा मैं कहता हूँ।"

५. "भो गौतम! ऐसा दोषविमुक्तचित्त भिक्षु कहाँ पैदा होता है?"

"वत्स! वह उत्पन्न होता है—यह कथन उसके बारे में असम्भव है।"

"तो क्या, भो गौतम! वह उत्पन्न नहीं होता?"

"वत्स! उसके बारे में 'उत्पन्न नहीं होता'—यह कहना भी उचित नहीं लगता!"

"तो क्या, भो गौतम! वह उत्पन्न होता है, नहीं भी होता?"

"वत्स! उसके बारे में 'उत्पन्न होता भी है, नहीं भी होता है'—यह कहना भी उचित नहीं लगता।"

"तो क्या, भो गौतम! वह न उत्पन्न होता है, न नहीं उत्पन्न होता?"

"वत्स! उसके बारे में यह कहना भी उचित नहीं लगता कि वह न उत्पन्न होता है, न नहीं होता।"

"क्या बात है, भो गौतम! आपसे यह पूछे जाने पर कि 'भो गौतम! दोष-

पुट्ठो समानो 'उपपज्जती ति खो, वच्छ, न उपेती' ति वदेसि। 'तेन हि, भो गोतम, न उपपज्जती' ति इति पुट्ठो समानो 'न उपपज्जती ति खो, वच्छ, न उपेती' ति वदेसि। तेन हि, भो गोतम, उपपज्जति च न च उपपज्जती' ति इति पुट्ठो समानो 'उपपज्जति च न च उपपज्जतो ति खो, वच्छ, न उपेती' ति वदेसि। 'तेन हि, भो गोतम, नेव उपपज्जति न न उपपज्जती ति इति पुट्ठो समानो 'नेव उपपज्जति न न उपपज्जती ति खो, वच्छ, न उपेती' ति वदेसि। एत्थाहं, भो गोतम, अञ्ञाण- [R. 487] मापादिं, एत्थ सम्मोहमापादिं। या पि मे एसा भोतो गोतमस्स पुरिमेन कथासल्लापेन अहु पसादमत्ता सा पि मे एतरहि अन्तरहिता" ति।

"अलं हि ते, वच्छ, अञ्ञाणाय, अलं सम्मोहाय। गम्भीरो हायं, वच्छ, धम्मो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो, सो तया दुज्जानो अञ्ञदिट्ठिकेन अञ्ञखन्तिकेन अञ्ञरुचिकेन अञ्ञत्र-योगेन अञ्ञत्राचरियकेन।

विमुक्तचित्त भिक्षु कहाँ उत्पन्न होता है', तो आप कहते हैं कि इसका उत्तर देना सम्भव नहीं; और भो गौतम ! यह पूछे जाने पर कि 'क्या वह उत्पन्न नहीं होता', तो आप कहते हैं कि 'इसका उत्तर देना सम्भव नहीं'; फिर भो गौतम ! आपसे 'क्या वह उत्पन्न होता भी है, नहीं भी उत्पन्न होता'—यह पूछे जाने पर भी आप यही कहते हैं कि 'इसका उत्तर देना सम्भव नहीं' ; (और) जब आपसे यह पूछा जाता है कि 'क्या वह न उत्पन्न होता न नहीं उत्पन्न होता, तो भी आपका यही उत्तर है कि 'इस विषय में कुछ भी कहना सम्भव नहीं'। भो गौतम ! यहाँ मुझे ये उत्तर सुनकर अज्ञान होने लगा है, सम्मोहन (भ्रम) होने लगा है। और जो आपके साथ पहले की बातचीत से आपके प्रति मेरी जो श्रद्धा उत्पन्न हुई थी, वह भी अब (इन उत्तरों से) नष्ट होती जा रही है !"

वत्स ! तूँ इस बात को लेकर अपने अन्दर अज्ञान मत पैदा कर, भ्रम न पैदा कर; क्योंकि वत्स ! यह धर्मप्रसङ्ग बहुत ही गम्भीर है, कठिनाई से समझ में आने योग्य (=दुर्दश्य), कठिनतया बोधगम्य, शान्त, उत्तम, किसी भी तर्क से न काटे जाने योग्य, सूक्ष्मबुद्धिग्राह्य और विद्वानों के ही समझने योग्य है, यह तुम्हारे जैसे जिज्ञासु को जो दूसरे के मतों में श्रद्धा रखता है, दूसरे सम्प्रदाय के अनुशासन को मानता है, दूसरे के ही सिद्धान्तों में रुचि रखता है, दूसरे के अनुशासन में साधनाभ्यास करता है और दूसरे को आचार्य (अनुशासक) मानता है, उसे बहुत ही कठिनाई से समझ में आ पायगा !

३. निब्बुतग्गो व तथागतो

६. "तेन हि, वच्छ, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि; यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, वच्छ, सचे ते पुरतो अग्गि जलेय्य, [N. 181] जानेय्यासि त्वं—'अयं मे पुरतो अग्गि जलती" ति ?

"सचे मे, भो गोतम, पुरतो अग्गि जलेय्य, जानेय्याहं—'अयं मे पुरतो अग्गि जलती' " ति।

"सचे पन तं, वच्छ, एवं पुच्छेय्य—'यो ते अयं पुरतो अग्गि जलति अयं अग्गि किं पटिच्च जलती' ति, एवं पुट्ठो त्वं, वच्छ, किन्ति ब्याकरेय्यासी" ति ?

"सचे मं, भो गोतम, एवं पुच्छेय्य—'यो ते अयं पुरतो अग्गि जलति अयं अग्गि किं पटिच्च जलती' ति, एवं पुट्ठो अहं, भो गोतम, एवं ब्याक- [B. 155] रेय्यं—'यो मे अयं पुरतो अग्गि जलति अयं अग्गि तिणकट्ठु-पादानं पटिच्च जलती' " ति।

"सचे ते, वच्छ, पुरतो सो अग्गि निब्बायेय्य, जानेय्यासि त्वं—'अयं मे पुरतो अग्गि निब्बुतो' "ति ?

"सचे मे, भो गोतम, पुरतो सो अग्गि निब्बायेय्य, जानेय्याहं—'अयं मे पुरतो अग्गि निब्बुतो' "ति।

---

३. तथागत सर्वश्रेष्ठज्ञानी हैं

६. "तो वत्स ! यहाँ मैं तुमसे ही पूछता हूँ; तुम्हें जैसा उचित लगे, वैसा उत्तर दो। तो क्या मानते हो, वत्स ! यदि तुम्हारे सामने अग्नि प्रज्वलित कर दी जाय, तो तुम जान पाओगे कि 'यह मेरे सामने अग्नि जल रही है' ?"

"हाँ, भो गौतम ! यदि मेरे सामने अग्नि प्रज्वलित कर दी जाय, तो मैं जान लूँगा कि 'यह मेरे सामने अग्नि जल रही है' ।"

"वत्स ! यदि फिर तुमसे यह पूछा जाय कि 'यह जो तुम्हारे सामने अग्नि जल रही है, वह किस आलम्बन (निमित्त) से जल रही है' --ऐसा पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे ?"

"भो गौतम ! यदि मुझसे कोई यह पूछे--'यह जो···जल रही है ?' तो भो गौतम ! मैं यह उत्तर दूँगा—'जो यह मेरे सामने जलती हुई अग्नि है, वह तृण-काष्ठ के सहारे (उपादान) से जल रही है ।"

"वत्स ! यदि तुम्हारे सामने वह अग्नि बुझ जाय तो तुम जान पाओगे कि 'वह अग्नि बुझ गयी है ?"

"हाँ, भो गौतम !···जान पाऊँगा कि 'वह अग्नि बुझ गयी है' ।"

"सचे पन तं, वच्छ, एवं पुच्छेय्य—'यो ते अयं पुरतो अग्गि निब्बुतो सो अग्गि इतो कतमं दिसं गतो—पुरत्थिमं वा दक्खिणं वा पच्छिमं वा उत्तरं वा' ति, एवं पुट्ठो त्वं, वच्छ, किन्ति ब्याकरेय्यासी" ति ?

"न उपेति, भो गोतम, यं हि सो, भो गोतम, अग्गि तिणकट्ठुपादानं पटिच्च अजलि तस्स च परियादाना अञ्ञस्स च अनुपहारा अनाहारो निब्बुतो त्वेव सङ्ख्यं गच्छती" ति।

७. "एवमेव खो, वच्छ, येन रूपेन तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य तं रूपं तथागतस्स पहीनं उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावकतं आयतिं अनुप्पादधम्मं। रूपसङ्खाविमुत्तो खो, वच्छ, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाळ्हो ; सेय्यथापि महासमुद्दो। उपपज्जती ति न उपेति, न उपपज्जती ति न उपेति, उपपज्जति च न च उपपज्जती [R. 488] ति न उपेति, नेव उपपज्जति न न उपपज्जती ति न [N. 182] उपेति।

"याय वेदनाय तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य सा वेदना तथागतस्स पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावकता आयतिं अनुप्पादधम्मा। वेदनासङ्खाविमुत्तो खो, वच्छ, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो

"वत्स ! अब यदि तुमसे यह पूछा जाय—'यह जो तुम्हारे सामने अग्नि बुझी, वह बुझकर किधर गयी—पूरब, दक्षिण, पश्चिम या उत्तर की तरफ'—ऐसा पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे ?"

भो गौतम ! इस बारे में ठीक-ठीक कहना तो कठिन है, हाँ, अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि वह अग्नि जो तृण-काष्ठ का आलम्बन लेकर जली थी, वह कोई अन्य उपादान न मिलने के कारण और अन्य बाह्य पदार्थ के अभाव में बुझ गयी।"

७. ऐसे ही वत्स ! तथागत का वर्णन करते समय तथागत का जो रूप बतलाया जाता है, उनका वह रूप ही समाप्त हो चुका है, वह मूलतः उच्छिन्न हो चुका है, शिर कटे ताड़ वृक्ष की तरह अभाव प्राप्त हो चुका है या वह भविष्य में कभी भी न उत्पन्न होने योग्य बन चुका है। वत्स ! तथागत जो नामरूप से विमुक्त गम्भीर, अप्रमेय एव दुरवगाह हैं—जैसे महासमुद्र। (अतः अब) उसके बारे में 'उत्पन्न होता है'—यह नहीं कहा जा सकता, 'उत्पन्न नहीं होता'—यह भी नहीं कहा जा सकता, 'उत्पन्न होता भी है और नहीं भी उत्पन्न होता'—यह भी नहीं कहा जा सकता, और 'वह नहीं उत्पन्न होता या न नहीं होता'—यह भी नहीं कहा जा सकता।

"वत्स ! तथागत का जिस वेदना के सहारे वर्णन किया जाता है…वह न उत्पन्न

दुप्परियोगाळ्हो ; सेय्यथापि महासमुद्दो। उपपज्जती ति न उपेति, न उपपज्जती ति न उपेति, उपपज्जति च न च उपपज्जती ति न उपेति, नेव उपपज्जति न न उपपज्जती ति न उपेति।

"याय सञ्ञाय तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य सा सञ्ञा तथागतस्स पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावकता आयतिं अनुप्पादधम्मा। सञ्ञासङ्खाविमुत्तो खो, वच्छ, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाळ्हो ; सेय्यथापि महासमुद्दो। उपपज्जती ति न उपेति, न [B. 156] उपपज्जती ति न उपेति, उपपज्जति च न च उपपज्जती ति न उपेति, नेव उपपज्जति न न उपपज्जती ति न उपेति।

"येहि सङ्खारेहि तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य ते सङ्खारा तथागतस्स पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावकता आयतिं अनुप्पादधम्मा। सङ्खारसङ्खाविमुत्तो खो, वच्छ, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाळ्हो ; सेय्यथापि महासमुद्दो। उपपज्जती ति न उपेति, न उपपज्जती ति न उपेति, उपपज्जति च न च उपपज्जती ति न उपेति, नेव उपपज्जति न न उपपज्जती ति न उपेति।

"येन विञ्ञाणेन तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य तं विञ्ञाणं तथागतस्स पहीनं उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावकतं आयतिं अनुप्पादधम्मं। विञ्ञाणसङ्खाविमुत्तो खो, वच्छ, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाळ्हो ; सेय्यथापि महासमुद्दो। उपपज्जती ति न उपेति, न उपपज्जती ति न उपेति, उपपज्जति च न च उपपज्जती ति न उपेति, नेव उपपज्जती न न उपपज्जती ति न उपेती" ति।

होने योग्य बन चुकी है। वत्स ! तथागत तो 'वेदना' से विमुक्त···'उत्पन्न नहीं होता या न नहीं होता'—यह भी नहीं कहा जा सकता।

"वत्स ! तथागत का जिस संज्ञा के सहारे वर्णन किया जाता है···वह न उत्पन्न होने योग्य बन चुकी है। वत्स ! तथागत तो 'संज्ञा' से विमुक्त···'उत्पन्न नहीं होता या न नहीं होता'—यह भी नहीं कहा जा सकता।

"वत्स ! तथागत का जिन संस्कारों के सहारे वर्णन किया जाता है···वे न उत्पन्न होने योग्य बन चुके हैं। वत्स ! तथागत तो 'संस्कार' से विमुक्त···'उत्पन्न नहीं होता है और न नहीं होता'—यह भी नहीं कहा जा सकता।

"तथागत का जिस विज्ञान के सहारे वर्णन किया जाता है···वह न उत्पन्न होने योग्य बन चुका है। वत्स ! तथागत तो 'विज्ञान' से विमुक्त गम्भीर, अप्रमेय एवं दुरवगाह हैं—जैसे महासमुद्र। (अतः अब) उसके बारे में 'उत्पन्न होता है'—

४. सारे पतिट्ठितं पावचनं

८. एवं वुत्ते, वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"सेय्यथापि, भो गोतम, गामस्स वा निगमस्स वा अविदूरे महासालरुक्खो। [N. 183] तस्स अनिच्चता साखापलासं पलुज्जेय्य, तचपपटिका पलुज्जेय्युं, फेग्गु पलुज्जेय्य; सो अपरेन समयेन अपगतसाखापलासो अपगततचपपटिको अपगतफेग्गुको सुद्धो अस्स, सारे पतिट्ठितो; एवमेव भोतो गोतमस्स पावचनं अपगतसाखापलासं अपगततचपपटिकं अपगतफेग्गुकं सुद्धं, सारे पतिट्ठितं। अभिक्कन्तं, भो गोतम···पे०···उपासकं मं भव गोतमो धारेतु [R. 489] अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

●

यह नहीं कहा जा सकता···'वह नहीं उत्पन्न होता है और न नहीं उत्पन्न होता है—यह भी नहीं कहा जा सकता।

४. तथागत का धर्मोपदेश सार पर प्रतिष्ठित

८. (भगवान् के) ऐसा कहने पर, वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भो गौतम! जैसे गाँव या कस्बे के निकट ही कोई महाशालवृक्ष हो। उसके अनित्य (मरणधर्मा) होने के कारण, शाखा-पत्र नष्ट हो जाय, छाल-पपड़ी नष्ट हो जाय, गूदा नष्ट हो जाय; दूसरे समय में वह वृक्ष शाखा-पत्र-त्वचा-पपड़ी-गूदा आदि विहीन हो जाय, केवल उसके अन्दर की मजबूत लकड़ी (सार) भर रह जाय; उसी तरह, आप गौतम का धर्मोपदेश शाखा-पत्र विहीन, त्वचा-पर्पटिका से शून्य एवं गूदारहित केवल अवशिष्ट दृढ़काष्ठ पर प्रतिष्ठित है। आश्चर्य है, भो गौतम! आश्चर्य है···पूर्ववत्···आप गौतम मुझको, आज से जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

अग्गिवच्छगोत्तसुत्त समाप्त॥

●

२३. महावच्छगोत्तसुत्तं

[N. 184] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति [B. 157] वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—

१. कुसलाकुसलानं सङ्खित्तदेसना

"दीघरत्ताहं भोता गोतमेन सहकथी। साधु मे भवं गोतमो सङ्खित्तेन कुसलाकुसलं देसेतू" ति।

"सङ्खित्तेन पि खो ते अहं, वच्छ, कुसलाकुसलं देसेय्यं, वित्थारेन पि खो ते अहं, वच्छ, कुसलाकुसलं देसेय्यं; अपि च ते अहं, वच्छ, सङ्खित्तेन कुसलाकुसलं देसेस्सामि। तं सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भो" ति खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

२. "लोभो खो, वच्छ, अकुसलं, अलोभो कुसलं; दोसो खो, वच्छ, अकुसलं, अदोसो कुसलं; मोहो खो, वच्छ, अकुसलं, अमोहो कुसलं। इति खो, वच्छ, इमे तयो धम्मा अकुसला, तयो धम्मा कुसला।

---

२३. महावत्सगोत्रसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह स्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा; पहुँचकर, भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् से यों कहा--

१. कुशल-अकुशल धर्मों का संक्षिप्त उपदेश

"भो गौतम! बहुत समय बीत गया, आपके साथ मुझे धर्मसंवाद किये। अच्छा हो कि आप गौतम मुझे कुशल-अकुशल धर्मों के बारे में संक्षेप से उपदेशकरें।"

"वत्स! मैं तुम्हें कुशल-अकुशल धर्मों का संक्षेप से भी उपदेश करूँगा और विस्तार से भी कुशल-अकुशल धर्मों का उपदेश करूँगा; पहले मैं तुम्हें कुशल-अकुशल धर्मों का संक्षेप से उपदेश करूँगा। उसे सुन, मेरे कहे पर ध्यान दे; मैं बताता हूँ।" "अच्छा, भो!"—कहकर, वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् को अपनी सहमति दी। (तब) भगवान् यों बोले--

२. "वत्स! लोभ अकुशल कहलाता है, अलोभ कुशल; द्वेष अकुशल है,

"पाणातिपातो खो, वच्छ, अकुसलं, पाणातिपाता वेरमणी कुसलं; अदिन्नादानं खो, वच्छ, अकुसलं, अदिन्नादाना वेरमणी कुसलं, कामेसुमिच्छाचारो खो, वच्छ, अकुसलं, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी कुसलं; मुसावादो खो, वच्छ, अकुसलं, मुसावादा वेरमणी कुसलं; पिसुणा वाचा खो, वच्छ, अकुसलं, पिसुणाय वाचाय वेरमणी कुसलं; फरुसा वाचा खो, [R. 490] वच्छ, अकुसलं, फरुसाय वाचाय वेरमणी कुसलं; सम्फप्पलापो खो, वच्छ, अकुसलं, सम्फप्पलापा वेरमणी कुसलं; अभिज्झा खो, वच्छ, अकुसलं, अनभिज्झा कुसलं; ब्यापादो खो, वच्छ, अकुसलं, अब्यापादो कुसलं; मिच्छादिट्ठि खो, वच्छ, अकुसलं, सम्मादिट्ठि कुसलं। इति खो, [N. 185] वच्छ, इमे दस धम्मा अकुसला, दस धम्मा कुसला।

"यतो खो, वच्छ, भिक्खुनो तण्हा पहीना होति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावकता आयतिं अनुप्पादधम्मा, सो होति भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञा विमुत्तो" ति।

अद्वेष कुशल; मोह अकुशल है, अमोह कुशल। वत्स! यों ये तीन धर्म अकुशल हैं और तीन धर्म कुशल।

"वत्स! प्राणातिपात (दूसरे के प्राण लेना) अकुशल है, प्राणातिपात से विराम (दूर रहना) कुशल; वत्स! अदत्तादान (चोरी) अकुशल है, अदत्तादान से विराम कुशल; वत्स! कामों में मिथ्याचार (व्यभिचार) अकुशल है, कामों में मिथ्याचार से विराम कुशल; वत्स! मृषावाद (असत्यभाषण) अकुशल है, मृषावाद से विराम कुशल; वत्स! पैशून्यवाक् (चुगलखोरी) अकुशल है, पैशून्यवाक् से विराम कुशल; वत्स! परुषवाक् (कठोरवाणी) अकुशल है, परुषवाक् से विराम कुशल; वत्स! सम्प्रलाप (बकवाद) अकुशल है, सम्प्रलाप से विराम कुशल; वत्स! अभिध्या (लोभ) अकुशल है, अभिध्या से विराम कुशल; वत्स! व्यापाद (पीड़ित करना) अकुशल है, व्यापाद से विराम कुशल; वत्स! मिथ्यादृष्टि (गलत धारणा) अकुशल है, सम्यग्दृष्टि कुशल। वत्स! इस तरह, ये दस धर्म अकुशल हैं और दश कुशल।

"वत्स! जिस भिक्षु की तृष्णा प्रहीण, मूलतः उच्छिन्न, शिरकटे ताड़ वृक्ष के जैसी अभाव प्राप्त, भविष्य में न उत्पन्न होने वाली होती है, वह भिक्षु अर्हत्, क्षीणास्रव, पूर्णब्रह्मचर्यवास वाला, कृतकृत्य, भारमुक्त, सदर्थप्राप्त, सांसारिक-बन्धनों से मुक्त एवं परमज्ञान द्वारा सम्यग्विमुक्त होता है।"

२. सावकसाविकानं आराधना

३. "तिट्ठतु भवं गोतमो। अत्थि पन ते भोतो गोतमस्स एकभिक्खु पि सावको यो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे [B. 158] सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती" ति ?

"न खो, वच्छ, एकं येव सतं न द्वे सतानि न तीणि सतानि न चत्तारि सतानि न पञ्च सतानि, अथ खो भिय्यो व ये भिक्खू मम सावका आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती" ति।

"तिट्ठतु भवं गोतमो, तिट्ठन्तु भिक्खू। अत्थि पन भोतो गोतमस्स एका भिक्खुनी पि साविका या आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती" ति ?

"न खो, वच्छ एकं येव सतं न द्वे सतानि न तीणि सतानि न चत्तारि सतानि न पञ्च सतानि, अथ खो भिय्यो व या भिक्खुनियो मम साविका आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती" ति।

"तिट्ठतु भवं गोतमो, तिट्ठन्तु भिक्खू, तिट्ठन्तु भिक्खुनियो। अत्थि पन भोतो गोतमस्स एकुपासको पि सावको गिही ओदातवसनो ब्रह्मचारी यो

---

२. श्रावक-श्राविकाओं की आराधना

३. "आप गौतम ! रुकें। (पहले मुझे यह बतायें कि) क्या आप गौतम के धर्मविनय में एक भी ऐसा श्रावक भिक्षु है, जो आस्रवक्षय द्वारा आस्रवरहित हो, चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् कर, प्राप्त कर साधनारत रहता हो !"

"वत्स ! एक (भिक्षु) की ही बात नहीं, न एक सौ, न दो सौ, न तीन सौ, न चार सौ और न पाँच सौ की बात है, अपितु मेरे श्रावकों में बहुसंख्य भिक्षु आस्रवक्षय द्वारा आस्रवरहित हो, चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वय जान, साक्षात् कर, प्राप्त कर साधनारत रहते हैं।"

"आप गौतम रुकें, भिक्षुओं की बात छोड़े। (पहले यह बताइये कि) आप के इस धर्मविनय में एक भी ऐसी श्राविका भिक्षुणी है, जो···साधनारत रहती हो ?"

"वत्स ! (मेरे इस धर्मविनय में) एक (भिक्षुणी) की ही बात नहीं, न एक सौ···साधनारत रहती हैं।"

"आप गौतम ! रुकिये, छोड़िये भिक्षु-भिक्षुणियों की बात। (मुझे अब यह बताइये कि) आप गौतम के इस धर्मविनय में कोई ऐसा श्रावक उपासक भी है,

पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका" ति ?

"न खो, वच्छ, एकं येव सतं न द्वे सतानि न तीणि सतानि [N. 186] न चत्तारि सतानि न पञ्च सतानि, अथ खो भिय्यो व ये उपासका मम सावका गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थपरिनिब्बायिनो अनावत्तिधम्मा [R. 491] तस्मा लोका" ति।

"तिट्ठतु भवं गोतमो, तिट्ठन्तु भिक्खू, तिट्ठन्तु भिक्खुनियो, तिट्ठन्तु उपासका गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो। अत्थि पन भोतो गोतमस्स एकुपासको पि सावको गिही ओदातवसनो कामभोगी सासनकरो ओवादप्पतिकरो यो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने विहरती" ति ?

"न खो, वच्छ, एकं येव सतं न द्वे सतानि न तीणि सतानि न चत्तारि सतानि न पञ्च सतानि, अथ खो भिय्यो व ये उपासका मम सावका गिही ओदातवसना कामभोगिनो सासनकरा ओवादपतिकरा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने विहरन्ती" ति।

"तिट्ठतु भवं गोतमो, तिट्ठन्तु भिक्खू, तिट्ठन्तु भिक्खुनियो, [B. 159] तिट्ठन्तु उपासका गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो, तिट्ठन्तु उपासका गिही

जो श्वेतवस्त्रधारी, गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी धर्मसाधना (ब्रह्मचर्य) का अभ्यास करता हुआ, पाँचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय द्वारा देवयोनि में उत्पन्न हो, वहाँ परिनिर्वृत्त होने के बाद, इस लोक में वापस लौट कर न आने वाला हो ?"

वत्स ! एक की ही बात नहीं, न एक सौ ... अपितु मेरे श्रावकों में अधिसंख्य उपासक... लौटकर नहीं आनेवाले हैं।"

"आप (फिर) रुकें, भो गौतम ! और भिक्षु, भिक्षुणियों, गृहस्थ साधनारत उपासकों की बात छोड़े। क्या आप गौतम के धर्मविनय में कोई एक भी गृहस्थ श्वेतवस्त्रधारी श्रावक उपासक है, जो उचित सांसारिक भोगों को भोगता हुआ, धर्मानुसारी, अनुशासन मानने वाला व संशयरहित हो, वाद-विवाद (कथोपकथन) से दूर रहने वाला, निपुणताप्राप्त, दूसरे सम्प्रदायों में कोई श्रद्धा न रख, शास्ता (आप) के शासन में ही विश्वास रखता हुआ, साधना करता है ?"

"वत्स ! एक की ही बात नहीं, न एक सौ... न पाँच सौ; अपितु मेरे अधिसंख्य गृहस्थ श्रावक उपासक... विश्वास रखते हुए, साधना करते हैं।"

"रुकें, भो गौतम ! छोड़ें भिक्षु, भिक्षुणियों को और छोड़ें उन गृहस्थ उपासकों

ओदातवसना कामभोगिनो। अत्थि पन भोतो गोतमस्स एकुपासिका पि साविका गिहिनी ओदातवसना ब्रह्मचारिनी या पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनी अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका" ति ?

"न खो, वच्छ, एकं येव सतं न द्वे सतानि न तीणि सतानि न चत्तारि सतानि न पञ्च सतानि, अथ खो भिय्यो व या उपासिका मम साविका गिहिनियो ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनियो अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका" ति।

"तिट्ठतु भवं गोतमो, तिट्ठन्तु भिक्खू, तिट्ठन्तु भिक्खुनियो, तिट्ठन्तु उपासका गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो, तिट्ठन्तु उपासका गिही ओदातवसना कामभोगिनो, तिट्ठन्तु उपासिका गिहिनियो ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो। [N. 187] अत्थि पन भोतो गोतमस्स एकुपासिका पि साविका गिहिनी ओदातवसना कामभोगिनी सासनकरा ओवादप्पतिकरा या तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने विहरती" ति ?

"न खो, वच्छ, एक येव सतं न द्वे सतानि न तीणि सतानि न चत्तारि सतानि न पञ्च सतानि, अथ खो भिय्यो व या उपासिका मम साविका

को जो ब्रह्मचर्यपूर्वक साधनारत हैं या उचित सांसारिक भोगों को भोगते हुए साधनारत रहते हैं। (मुझे अब यह बताइये कि) आप गौतम के इस धर्मविनय में कोई श्वेतवस्त्रधारी, गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी धर्मसाधना (ब्रह्मचर्य) में रत श्राविका उपासिका है, जो पाँचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय द्वारा देवयोनि में उत्पन्न हो, वहाँ परिनिर्वृत्त होने के बाद, इस लोक में लौटकर न आनेवाली हो ?"

"वत्स ! एक की ही बात नहीं, न एक सौ···न पाँच सौ; अपितु मेरी अधिसंख्य श्राविका-उपासिका···लौटकर नहीं आनेवाली हैं"।

"आप गौतम ! रुकिये···ब्रह्मचारिणी गृहस्थ श्वेतवस्त्रधारी श्राविका उपासिका को छोड़ये। (आप मुझे यह बतायें कि) आप गौतम के इस धर्मविनय में कोई गृहस्थ श्वेतवस्त्रधारी, उचित सांसारिक कामभोगी, धर्मानुसारी, अनुशासन माननेवाली एक भी श्राविका उपासिका है, जो संशयरहित, वाद-विवाद (कथोपकथन) से दूर रहने वाली, निपुणता प्राप्त, दूसरे सम्प्रदायों में कोई श्रद्धा न रख, शास्ता के शासन में ही विश्वास रखती हुई साधना करती है ?"

"वत्स ! एक की ही बात नहीं, न एक सौ···न पाँच सौ; अपितु मेरी अधि-

गिहिनियो ओदातवसना कामभोगिनियो सासनकरा ओवादप्पतिकरा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने विहरन्ती" ति।

४. "सचे हि, भो गोतम, इमं धम्मं भवं येव गोतमो आराधको अभविस्स, नो च खो भिक्खू आराधका अभविंसु; एवमिदं [R. 492] ब्रह्मचरियं अपरिपूर अभविस्स तेनङ्गेन। यस्मा च खो, भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको भिक्खू च आराधका; एवमिदं ब्रह्मचरियं परिपूरं तेनङ्गेन।

"सचे हि, भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको अभविस्स भिक्खू च आराधका अभविंसु, नो च खो भिक्खुनिया आराधिका अभविंसु; एवमिदं ब्रह्मचरियं अपरिपूरं अभविस्स तेनङ्गेन। यस्मा च खो, भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको, भिक्खू च [B. 160] आराधका, भिक्खुनियो च आराधिका; एवमिदं ब्रह्मचरियं परिपूरं तेनङ्गेन।

"सचे हि, भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको अभविस्स, भिक्खू च आराधका अभविंसु, भिक्खुनियो च आराधिका अभविंसु, नो च खो उपासका गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो आराधका अभविंसु; एवमिदं ब्रह्मचरियं अपरिपूरं अभविस्स तेनङ्गेन। यस्मा च खो,

---

संख्य गृहस्थ श्राविका उपासिका हैं; जो शास्ता के शासन में विश्वास रखती हुई साधना करती हैं।"

४. "यदि, भो गौतम! आपके इस धर्म के केवल आप ही आराधक होते, साथ में और कोई भिक्षु आराधक न होते; तो आपका यह धर्मविनय (सम्प्रदाय) इस अंश (शिष्य-परम्परा) के अभाव के कारण, पूर्ण न कहलाता; परन्तु क्योंकि आप भी इस धर्म की साधना करते हैं और साथ ही अन्य भिक्षु भी इसकी साधना करते हैं, अतः आपका यह धर्मविनय इस अंश में परिपूर्ण है।

"यदि, भो गौतम! केवल आप व आपके भिक्षु ही इस धर्म की साधना करते, और कोई भिक्षुणी इसकी साधिका न होती, तो आपका यह धर्म इस अंश (भिक्षुणी-शिष्य परम्परा) के अभाव के कारण अपूर्ण कहलाता; परन्तु क्योंकि भो गौतम! आप व आपके भिक्षु (शिष्य) एवं भिक्षुणियाँ (शिष्याएँ) धर्म के साधक हैं, अतः आपका यह धर्मविनय इस अंश में भी परिपूर्ण है।

"यदि, भो गौतम! इस धर्म के... श्वेतवस्त्रधारी, गृहस्थ ब्रह्मचारी उपासक साधक न होते, तो आपका यह धर्म इस अंश (साधक-शिष्य परम्परा) के अभाव के

भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको, भिक्खू च आराधका, भिक्खुनियो च आराधिका, उपासका च गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो आराधका; एवमिदं ब्रह्मचरियं परिपूरं तेनङ्गेन।

"सचे हि भो, गोतम इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको अभविस्स, भिक्खू च आराधका अभविंसु, भिक्खुनियो च आराधिका अभविंसु, उपासका [N. 188] च गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो आराधका अभविंसु, नो च खो उपासका गिही ओदातवसना कामभोगिनो आराधका अभविंसु; एवमिदं ब्रह्मचरियं अपरिपूरं अभविस्स तेनङ्गेन। यस्मा च खो, भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको, भिक्खु च आराधका, भिक्खुनियो च आराधिका, उपासका च गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो आराधका, उपासका च गिही ओदातवसना कामभोगिनो आराधका; एवमिदं ब्रह्मचरियं परिपूरं तेनङ्गेन।

"सचे हि, भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको अभविस्स, भिक्खू च आराधका अभविंसु, भिक्खुनियो च आराधिका अभविंसु, उपासका च गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो आराधका अभविंसु, उपासका च गिही ओदातवसना कामभोगिनो आराधका अभविंसु, नो च खो उपासिका गिहि- [R. 493] नियो ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो आराधिका अभविंसु; एवमिदं ब्रह्मचरियं अपरिपूरं अभविस्स तेनङ्गेन। यस्मा च खो, भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको, भिक्खू च आराधका, भिक्खुनियो च आराधिका, उपासका च गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो आराधका, उपासका च गिही ओदातवसना कामभोगिनो आराधका, उपासिका च [B. 161] गिहिनियो ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो आराधिका; एवमिदं ब्रह्मचरियं परिपूरं तेनङ्गेन।

कारण अपूर्ण कहलाता; परन्तु क्योंकि, भो गौतम ! इस धर्म के आप···ब्रह्मचारी उपासक साधक हैं, अतः आपका यह धर्मविनय इस अंश में भी परिपूर्ण है।

"यदि भो गौतम ! इस धर्म के आप···ब्रह्मचारी उपासक आराधक होते और श्वेतवस्त्रधारी, गृहस्थ कामभोगी उपासक (इस धर्म के) साधक नहीं होते, तो आपका यह धर्म इस अंश के अभाव के कारण अपूर्ण कहलाता; परन्तु क्योंकि भो गौतम ! इस धर्म के आप···कामभोगी उपासक साधक हैं, अतः आपका यह धर्म विनय इस अंश में भी परिपूर्ण है।

"यदि, भो गौतम ! इस धर्म के आप···कामभोगी उपासक साधक होते और श्वेतवस्त्रधारिणी, गृहस्थ ब्रह्मचारिणी उपासिकायें (इस धर्म की) साधिका न होतीं तो आपका यह धर्म इस अंश के अभाव के कारण अपूर्ण कहलाता; परन्तु क्योंकि

"सचे हि, भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको अभविस्स, भिक्खू च आराधका अभविंसु, भिक्खुनियो च आराधिका अभविंसु, उपासका च गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो आराधका अभविंसु, उपासका च गिही ओदातवसना कामभोगिनो आराधका अभविंसु, उपासिका च गिहिनियो ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो आराधिका अभविंसु, नो च खो उपासिका गिहिनियो ओदातवसना कामभोगिनियो आराधिका अभविंसु; एवमिदं ब्रह्मचरियं अपरिपूरं अभविस्स तेनङ्गेन। यस्मा च खो, भो गोतम, इमं धम्मं भवं चेव गोतमो आराधको, भिक्खू च आराधका, भिक्खुनियो च आराधिका, उपासका च गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो आराधका, उपासका च गिही ओदातवसना कामभोगिनो आराधका, उपासिका च च गिहिनियो ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो आराधिका, उपा- [N. 189] सिका च गिहिनियो ओदातवसना कामभोगिनियो आराधिका; एवमिदं ब्रह्मचरियं परिपूरं तेनङ्गेन।

३. वच्छगोत्तस्स पब्बज्जा उपसम्पदा

५. "सेय्यथापि, भो गोतम, गङ्गा नदी समुद्दनिन्ना समुद्दपोणा समुद्दपब्भारा समुद्दं आहच्च तिट्ठति; एवमेवायं भोतो गोतमस्स परिसा सगहट्ठपब्बजिता निब्बाननिन्ना निब्बानपोणा निब्बानपब्भारा निब्बानं आहच्च तिट्ठति। अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि

भो गौतम ! इस धर्म के आप...ब्रह्मचारिणी उपासिकायें साधिका हैं, अतः आपका यह धर्मविनय इस अंश में परिपूर्ण है।

"यदि भो गौतम ! इस धर्म के आप...भिक्षु...भिक्षुणियाँ...ब्रह्मचारी उपासक... कामभोगी उपासक...ब्रह्मचारी उपासिकायें साधिका होतीं और श्वेतवस्त्रधारी, गृहस्थ कामभोगी उपासिकायें (इस धर्म की) साधिका न होतीं तो आपका यह धर्मविनय इस अंश के अभाव के कारण अपूर्ण कहलाता, परन्तु क्योंकि भो गौतम ! इस धर्म के आप...कामभोगी उपासिकायें भी साधिका हैं, अतः आपका यह धर्मविनय इस अंश में परिपूर्ण है।

३. वत्सगोत्र को (भगवान् द्वारा) प्रव्रज्या उपसम्पदा

५. "भो गौतम ! जैसे गगानदी समुद्र की ओर झुकी हुई, समुद्र को ही सब कुछ समझती हुई, समुद्र की ओर ढलती हुई, समुद्र तक बहती रहती है; उसी तरह आप गौतम की यह समग्र परिषद् (सङ्घ), जिसमें गृहस्थ एवं प्रव्रजित सभी शामिल हैं, निर्वाण की ओर झुकी हुई, निर्वाण में आसक्त, निर्वाण की ओर ढलती हुई, निर्वाण तक पहुँच कर दम लेती है। आश्चर्य है, भो गौतम ! आश्चर्य है...

धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं" ति।

[R. 494] "यो खो, वच्छ, अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति पब्बज्जं, आकङ्खति उपसम्पदं, सो चत्तारो मासे परिवसति। चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय; अपि च मेत्थ पुग्गलवेमत्तता विदिता" ति।

"सचे, भन्ते, अञ्ञतित्थियपुब्बा इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खन्ता पब्बज्जं, आकङ्खन्ता उपसम्पदं चत्तारो मासे परिवसन्ति, चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय; अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि। चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु, उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावाया" ति।

अलत्थ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ [B. 162] उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा वच्छगोत्तो अद्धमासूपसम्पन्नो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा

पूर्ववत्... यह मैं आप गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म और भिक्षुसङ्घ की भी (शरण में जाता हूँ)। अच्छा हो मैं आप गौतम से प्रव्रज्या (सन्यासदीक्षा) पा लूँ, उपसम्पदा (धर्मशिक्षा) पा लूँ।"

"वत्स ! जो अन्य सम्प्रदाय का दीक्षित परिव्राजक हमारे इस धर्मविनय में प्रव्रज्या-उपसम्पदा लेना चाहता है, उसे पहले, चार मास तक परिवास (कुछ व्रत-नियमों) का पालन करना पड़ता है। चार महीने बीत जाने पर, उसके व्रत नियम-पालन से प्रसन्न भिक्षु उसे भिक्षु बनने के लिये प्रव्रज्या-उपसम्पदा देते हैं; किन्तु मुझे यहाँ व्यक्ति व्यक्ति में तारतम्य (भिन्नता) भी विदित है।"

"यदि, भन्ते ! आपके सङ्घ का यह नियम है कि अन्य सम्प्रदाय के परिव्राजक को सङ्घ में दीक्षित होने के पहले चार मास का 'परिवास' करना पड़ता है, तब चार मास बीतने पर, उसके क्रिया-कलाप से प्रसन्न भिक्षु उसे भिक्षुभाव के लिये प्रव्रज्या व उपसम्पदा देते हैं, तो मैं (चार मास के बजाय) चार वर्ष तक 'परिवास' करने को सन्नद्ध हूँ। चार वर्ष बीतने पर, मुझ पर प्रसन्न भिक्षु मुझे भिक्षुभाव के लिये प्रव्रज्या दें, उपसम्पदा दें।"

(उचित समय आने पर) वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् से प्रव्रज्या पायी, उपसम्पदा पायी। (तब) आयुष्मान् वत्सगोत्र, जिसे कि—उपसम्पन्न हुए पन्द्रह दिन ही बीते थे, भगवान् की सेवा में पहुँचा; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर

एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा वच्छगोत्तो भगवन्तं एतदवोच—"यावतकं, भन्ते, सेखेन ञाणेन सेखाय विज्जाय पत्तब्बं, अनुप्पत्तं तं मया; उत्तरि च मे भगवा धम्मं देसेतू" ति।

"तेन हि त्वं, वच्छ, द्वे धम्मे उत्तरि भावेहि—समथं च विपस्सनं च। इमे खो ते, वच्छ, द्वे धम्मा उत्तरि भाविता—समथो च विपस्सना च—अनेकधातु पटिवेधाय संवत्तिस्सन्ति।

६. "सो त्वं, वच्छ, यावदेव आकङ्खिस्ससि—'अनेकविहितं [N. 190] इद्धिविधं पच्चनुभवेय्यं—एको पि हुत्वा बहुधा अस्सं, बहुधा पि हुत्वा एको अस्सं; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छेय्यं, सेय्यथापि आकासे; पठविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करेय्यं, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छेय्यं, सेय्यथापि पठवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमेय्यं, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके च एवंमहानुभावे पाणिना परिमसेय्यं, परिमज्जेय्यं; यावब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणिस्ससि, सति सतिआयतने।

एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे आयुष्मान् वत्सगोत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! शैक्ष्य (निर्वाण मार्गारूढ़) ज्ञान एवं शैक्ष्यविद्या से जो कुछ मुझे मिल सकता था वह मैंने पा लिया; अब भगवान् मुझे उससे आगे (उत्तर) का उपदेश देने की कृपा करें।

"तो वत्स! तुम अब इन दो धर्मों की साधना (भावना) करो—(१) शमथ (समाधि) एवं (२) विपश्यना (प्रज्ञा के सहारे ज्ञान का साक्षात्कार)। वत्स! इन दो धर्मों—शमथ, विपश्यना का सफल अभ्यास तुझे अनेक धातुओं की तह (अन्तस्तल) तक पहुँचने में सहायक होगा।

६. "तब यदि, वत्स! तू कभी यह चाहेगा—'मैं अनेक प्रकार की ऋद्धि विधों (चमत्कारों) का अनुभव करूँ—एक होकर बहुत हो जाऊँ, फिर बहुत होकर एक हो जाऊँ; प्रकट होना, अन्तर्धान होना; दीवाल, प्राकार (किले का प्राचीर) या पर्वत के बीच बिना उन्हें छुए उस पार चला जाऊँ, जैसे आकाश में जाया जाता है; पृथ्वी पर भी, जल की तरह, डूबूँ-उतराऊँ; जल में भी पृथ्वी की तरह, बिना भीगे चलूँ-फिरूँ; आकाश में भी पद्मासन लगाकर, पक्षी की तरह, उड़ूँ; इन महाप्रतापी चन्द्र-सूर्य को भी अपने हाथ से छू सकूँ, मसल सकूँ; ब्रह्मलोक तक (सभी लोकों को) अपने शरीर से वश में कर लूँ', अर्थात् वहाँ तक अबाधगति

[R.. 495] "सो त्वं, वच्छ, यावदेव आकङ्खिस्ससि—'दिब्बाय सोत-धातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणेय्यं—दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके चा' ति, तत्र तत्रेवासक्खिभब्बतं पापुणिस्ससि, सति सतिआयतने।

"सो त्वं, वच्छ, यावदेव आकङ्खिस्ससि--'परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानेय्यं--सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानेय्यं, वीत-रागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानेय्यं; सदोसं वा चित्तं सदोसं चित्तं ति पजानेय्यं; वीतदोसं वा चित्तं वीतदोसं चित्तं ति पजानेय्यं; समोहं वा चित्तं समोहं चित्तं ति पजानेय्यं; वीतमोहं वा चित्तं वीतमोहं चित्तं ति पजानेय्यं; सङ्खित्तं वा चित्तं सङ्खित्तं चित्तं ति पजानेय्यं, विक्खित्तं वा चित्तं विक्खित्तं चित्तं ति पजानेय्यं; महग्गतं वा चित्तं महग्गतं चित्तं ति [B. 163] पजानेय्यं, अमहग्गतं वा चित्तं अमहग्गतं चित्तं ति पजानेय्यं; सउत्तरं वा चित्तं सउत्तरं चित्तं ति पजानेय्यं, अनुत्तरं वा चित्तं अनुत्तरं चित्तं ति पजानेय्यं; समाहितं वा चित्तं समाहितं चित्तं ति पजानेय्यं; असमाहितं वा चित्तं असमाहितं चित्तं ति पजानेय्यं; विमुत्तं वा चित्तं

से आ-जा सकूँ'—तो तूँ अपने स्मृत्यायतन के सहारे, ऊपर की बातों से जिसे चाहेगा, उसे पूरा कर लेगा (साक्षीभाव को प्राप्त होगा)।

"वत्स! यदि तूँ यह चाहेगा--'दिव्य श्रोत्रधातु द्वारा विशुद्ध मनुष्यों की पहुँच से बाहर दूर या नजदीक के दिव्य व मनुष्यकृत, शब्द सुन पाऊँ'; तो तूँ अपने स्मृत्यायतन के सहारे उन दिव्य शब्दों का साक्षीभाव प्राप्त कर सकेगा।

"वत्स! यदि तूँ यह चाहेगा--'स्वचित्त से दूसरे प्राणियों के चित्त की बात सही-सही जान सकूँ--'सरागचित्त प्राणी को सरागचित्त के रूप में पहचान सकूँ, वीतराग (रागरहित) चित्त को वीतरागचित्त के रूप में पहचान सकूँ; द्वेषयुक्तचित्त को द्वेषयुक्तचित्त के रूप में, वीतद्वेष (द्वेषरहित) चित्त को वीतद्वेषचित्त के रूप में पहचान सकूँ; समोहचित्त को समोहचित्त के रूप में, वीतमोहचित्त को वीतमोहचित्त के रूप में पहचान सकूँ; संक्षिप्त (एकाग्र) चित्त को संक्षिप्तचित्त के रूप में, विक्षिप्त (चंचल) चित्त को विक्षिप्तचित्त के रूप में पहचान सकूँ; महद्गत (विशाल) चित्त को महद्गतचित्त के रूप में, अमहद्गत (संकीर्ण) चित्त को अमहद्गतचित्त के रूप में पहचान सकूँ; सउत्तर (अश्रेष्ठ) चित्त को सउत्तरचित्त के रूप में, अनुत्तर (श्रेष्ठ, सर्वोत्तम) चित्त को अनुत्तरचित्त के रूप में पहचान सकूँ; समाहितचित्त को समाहित चित्त के रूप में, असमाहितचित्त को असमाहितचित्त के रूप में पहचान सकूँ; विमुक्तचित्त को विमुक्तचित्त के रूप में, अविमुक्तचित्त को अविमुक्तचित्त के

विमुत्तं चित्तं ति पजानेय्यं; अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणिस्ससि, सति सतिआयतने।

"सो त्वं, वच्छ, यावदेव आकङ्खिस्ससि—'अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्यं, सेय्यथीदं—एक पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं [N. 191] पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि; अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो ति; इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणिस्ससि, सति सतिआयतने।

"सो त्वं, वच्छ, यावदेव आकङ्खिस्ससि—'दिब्बेन चक्खुना [R. 496] विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सेय्यं चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानेय्यं—इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना; इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना ति; इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सेय्यं चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, [B. 164]

रूप में पहचान सकूँ"; तो तू अपने स्मृत्यायतन के सहारे, इन उपर्युक्त बातों का भी साक्षात्कार कर सकेगा।

"वत्स! यदि तू यह चाहेगा—'मैं अपने अनेक पूर्वजन्मों (की गतिविधियों) का स्मरण कर सकूँ, जैसे—एक जन्म ... पूर्ववत्[1] ... इस प्रकार आकार और उद्देश्य सहित अनेक प्रकार के अपने पूर्वजन्मों का स्मरण कर सकूँ"; तो तू अपने स्मृत्यायतन के सहारे इन उपर्युक्त बातों का भी साक्षीभाव प्राप्त कर सकेगा।

"वत्स! यदि तू यह चाहेगा—'मैं अनुपम विशुद्ध दिव्य चक्षु से अच्छे-बुरे,

---

[1] द्र०—पीछे पृ० ४६-४७।

सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानेय्यं' ति तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणिस्ससि, सति सतिआयतने।

"सो त्वं, वच्छ, यावदेव आकङ्खिस्ससि—'आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्ति पञ्ञाविमुत्ति दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणिस्ससि, सति सतिआयतने" ति।

७. अथ खो आयस्मा वच्छगोत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनु-
[N. 192] मोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो आयस्मा वच्छगोत्तो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा वच्छगोत्तो अरहतं अहोसि।

४. महिद्धिको वच्छगोत्तो भिक्खु

८. तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू भगवन्तं दस्सनाय गच्छन्ति। अद्दसा खो आयस्मा वच्छगोत्तो ते भिक्खू दूरतो व गच्छन्ते। दिस्वान येन

सुवर्ण-दुर्वर्ण…पूर्ववत्[1]…कर्मानुसार गति पाने वाले प्राणियों को पहचान सकूँ'; तो तूँ अपने स्मृत्यायतन के सहारे इन उपर्युक्त बातों का भी साक्षीभाव प्राप्त कर सकेगा।

"वत्स! यदि तूँ यह चाहेगा—'मैं आस्रवक्षय से प्राप्त अनास्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर, देखकर, प्राप्त कर, साधना में लगा रहूँ; तो तूँ अपने स्मृत्यायतन के सहारे इस उपर्युक्त बात का भी साक्षीभाव प्राप्त कर सकेगा।"

७. "इसके बाद आयुष्मान् वत्सगोत्र भगवान् के कथन का अभिनन्दन-अनुमोदन कर, आसन से उठ भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, एक ओर चला गया। तब आयुष्मान् वत्सगोत्र एकान्तवासी…आत्मसंयमी हो साधना करते, शीघ्र ही…अनुपम ब्रह्मचर्य इसी जन्म में…पूर्ववत्[2]…प्राप्त कर विहरने लगे। यों आयुष्मान् वत्सगोत्र अर्हतों में से एक हो गये।

४. महान् ऋद्धिसम्पन्न भिक्षु वत्सगोत्र

८. किसी समय बहुत से भिक्षु भगवान् के दर्शन हेतु जा रहे थे। आयुष्मान् वत्सगोत्र ने उन भिक्षुओं को जाते हुए देख लिया। देखकर, जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ, पहुँचा;

---

१. द्र०—पीछे पृ० ४७-४८।

२. द्र०—पीछे पृ० ७३३।

ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि ; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच-- [R. 497] "हन्द ! कहं पन तुम्हे आयस्मन्तो गच्छथा" ति ?

"भगवन्तं खो मयं, आवुसो, दस्सनाय गच्छामा" ति ।

"तेनहायस्मन्तो मम वचनेन भगवतो वादे सिरसा वन्दथ, एवं च वदेथ—'वच्छगोत्तो, भन्ते, भिक्खु भगवतो पादे सिरसा वन्दति, एवं च वदेति—परिचिण्णो मे भगवा, परिचिण्णो मे सुगतो' " ति । "एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो वच्छगोत्तस्स पच्चस्सोसुं । अथ खो ते भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु ; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु । एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"आयस्मा, भन्ते, वच्छगोत्तो भगवतो पादे सिरसा वन्दति, एवं च वदेति—'परिचिण्णो मे भगवा, परिचिण्णो मे सुगतो' " ति ।

"पुब्बेव मे, भिक्खवे, वच्छगोत्तो भिक्खु चेतसा चेतो परिच्च विदितो—'तेविज्जो वच्छगोत्तो भिक्खु महिद्धिको महानुभावो' ति । [B. 165]

पहुँचकर, उन भिक्षुओं से यों बोला—"अरे भाई ! आप आयुष्मान् कहाँ जा रहे हैं ?"

"आयुष्मन् ! हम भगवान् के दर्शनार्थ जा रहे हैं ।"

"तो आप आयुष्मान् लोग मेरी ओर से भी भगवान् के श्रीचरणों में प्रणाम करना और यह कहना—'भन्ते ! वत्सगोत्र भिक्षु ने भगवान् के श्रीचरणों में प्रणाम निवेदन किया है, और यों कहा है--मैंने भगवान् के उपदेशों का पूरी तरह पालन कर लिया है, मैंने सुगत के उपदेशों का पूरी तरह पालन कर लिया है' ।" "ठीक है, आयुष्मन् !"—कहकर, उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् वत्सगोत्र को उत्तर दिया । इसके बाद वे भिक्षु जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, पहुँचे; पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उन भिक्षुओं ने भगवान् से यों निवेदन किया--"भन्ते ! आयुष्मान् वत्सगोत्र ने भगवान् के श्रीचरणों में प्रणाम निवेदन किया है, और यों कहा है--'मैंने भगवान् के उपदेशों का पूरी तरह पालन कर लिया, मैंने सुगत के उपदेशों का पूरी तरह पालन कर लिया है' ।"

"भिक्षुओ ! मैंने तो पहले ही वत्सगोत्र भिक्षु के विषय में, स्वचित्त से उसके चित्त को देखकर जान लिया था--'वत्सगोत्र भिक्षु तीनों विद्याओं का जानने वाला (=त्रैविद्य), महाऋद्धिसम्पन्न एवं विपुल माहात्म्यशाली हो चुका है' । देवताओं

देवता पि मे एतमत्थं आरोचेसुं--'तेविज्जो, भन्ते, वच्छगोत्तो भिक्खु महिद्धिको महानुभावो' " ति।

९. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

●

ने भी मुझे इस बात की सूचना दे दी थी—'वत्सगोत्र भिक्षु तीनों विद्याओं…माहात्म्यशाली हो चुका है'।"

९. भगवान् ने यों कहा। आप्तमन उन भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

महावच्छगोत्तसुत्त समाप्त ॥

●

२४. दीघनखसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति [N. 193] गिज्झकूटे पब्बते सूकरखतायं। अथ खो दीघनखो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि ; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो दीघनखो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच--

१. खमतिनक्खमति

"अहं हि, भो गोतम, एवंवादी एवंदिट्ठी—'सब्बं मे न खमती' " ति।

"या पि खो ते एसा, अग्गिवेस्सन, दिट्ठि—'सब्बं मे न खमती' ति, एसा पि ते दिट्ठि न खमती" ति ?

"एसा चे मे, भो गोतम, दिट्ठि खमेय्य, तं पस्स तादिसमेव, तं पस्स तादिसमेवा" ति। [R. 498]

"अतो खो ते, अग्गिवेस्सन, बहू हि बहुतरा लोकस्मिं ये एवमाहंसु-- 'तं पस्स तादिसमेव, तं पस्स तादिसमेवा' ति। ते तं चेव दिट्ठिं नप्पजहन्ति अञ्ञं च दिट्ठिं उपादियन्ति। अतो खो ते, अग्गिवेस्सन, तनू हि तनुतरा लोकस्मिं ये एवमाहंसु—'तं पस्स तादिसमेव, तं पस्स तादिसमेवा' ति। ते

---

२४. दीर्घनखसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृहस्थित गृद्धकूट पर्वत के शूकरखात प्रदेश में साधना हेतु विराजमान थे। तब कोई दीर्घनख नामक परिव्राजक जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, पहुँचा; पहुँचकर, भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछने लगा। कुशल-मङ्गल पूछकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े दीर्घनख परिव्राजक ने भगवान् से यों निवेदन किया—

१. अभिरुचि या अनभिरुचि

"भो गौतम ! मैं ऐसा मत या ऐसी धारणा रखता हूँ—'सभी (साम्प्रदायिक या दार्शनिक मत) मुझे पसन्द नहीं'।"

"अग्निवेश ! क्या तुम्हें 'मुझे कोई भी मत पसन्द नहीं'—यह मत या धारणा भी पसन्द नहीं है ?"

"भो गौतम ! आपकी कही यह धारणा भी मुझे पसन्द हो तो यह भी वैसी ही होगी, यह भी वैसी ही होगी।"

"अग्निवेश ! इस लोक में तुमसे भी आगे कुछ लोग हैं, जो यह कहते हैं—'यह भी (मुझे) वैसे ही (नापसन्द) है, यह भी वैसे ही है'। वे (ऐसा कहकर भी) उस धारणा को तो त्याग ही नहीं पाते, अपितु (ऐसी ही) दूसरी धारणाओं को भी

तं चेव दिट्ठिं पजहन्ति अञ्ञं च दिट्ठिं न उपादियन्ति। सन्तग्गिवेस्सन, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'सब्बं मे खमती' ति ; सन्तग्गिवेस्सन, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'सब्बं मे न खमती' ति ; सन्तग्गिवेस्सन, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो--'एकच्चं मे खमति एकच्चं मे न खमती' ति। तत्रग्गिवेस्सन, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो--'सब्बं मे खमती' ति तेसमयं दिट्ठि सारागाय सन्तिके, सञ्ञोगाय सन्तिके, अभिनन्दनाय सन्तिके, अज्झोसानाय सन्तिके, उपा- [B. 166, N. 194] दानाय सन्तिके; तत्रग्गिवेस्सन, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'सब्बं मे न खमती' ति तेसमयं दिट्ठि असारागाय सन्तिके, असञ्ञोगाय सन्तिके, अनभिनन्दनाय सन्तिके, अनज्झोसाय सन्तिके, अनुपादानाय सन्तिके" ति।

२. एवं वुत्ते, दीघनखो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच--"उक्कंसेति मे भवं गोतमो दिट्ठिगतं, समुक्कंसेति मे भवं गोतमो दिट्ठिगतं" ति।

"तत्रग्गिवेस्सन, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'एकच्चं

स्वीकार कर लेते हैं। और अग्निवेश! लोक में ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो ऐसा कहते हैं—'यह भी (मुझे) वैसे ही (नापसन्द) है, यह भी वैसे ही है'। परन्तु वे उस धारणा को छोड़ देते हैं और दूसरी धारणा को स्वीकार नहीं करते। अग्निवेश! कुछ ऐसे श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो ऐसा मत व धारणा रखते हैं—'मुझे सभी (मत) पसन्द हैं'; और अग्निवेश! कुछ ऐसे श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो ऐसा मत व धारणा रखते हैं—'मुझे सभी पसन्द नहीं'; और अग्निवेश! कुछ ऐसे भी श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो ऐसा मत व धारणा रखते हैं--'मुझे (इसमें से) कुछ पसन्द है, कुछ पसन्द नहीं'। अग्निवेश! वहाँ जो वे श्रमण-ब्राह्मण यह मत या धारणा रखते हैं—'मुझे सभी (मत) पसन्द हैं'—उनकी यह धारणा रागयुक्त अवस्था के समीप है, संयोग (बन्धन), अभिनन्दन (आशक्ति), अध्यवसान (ग्रहण) एवं उपादान (पाने के लिये प्रयत्न) के समीप है; और अग्निवेश! वहाँ जो वे श्रमण-ब्राह्मण यह मत या धारणा रखते हैं--'मुझे सभी पसन्द नहीं'--उनकी यह धारणा असरागयुक्त अवस्था के समीप है, असंयोग, अनभिनन्दन, अनध्यवसान एवं अनुपादान के समीप है।"

२. ऐसा कहे जाने पर, दीर्घनख परिव्राजक ने भगवान् से यों कहा--"भो गौतम! आप ऐसा कहकर मेरी धारणाओं को ही पुष्ट कर रहे हैं, उनका उत्कर्ष कर रहे हैं, उन्हें बढ़ावा दे रहे हैं!"

"अग्निवेश! वहाँ जो श्रमण-ब्राह्मण इस मत या धारणा वाले हैं--'मुझे

मे खमति एकच्चं मे न खमती' ति। या हि तेसं खमति सायं दिट्ठि सारागाय सन्तिके, संयोगाय सन्तिके, अभिनन्दनाय सन्तिके, अज्झोसानाय सन्तिके, उपादानाय सन्तिके; या हि तेसं न खमति सायं दिट्ठि असारागाय सन्तिके, असंयोगाय सन्तिके, अनभिनन्दनाय सन्तिके, अनज्झोसानाय सन्तिके, अनुपादानाय सन्तिके। तत्रग्गिवेस्सन, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो--'सब्बं मे खमती' ति तत्थ विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति—'या खो मे अयं दिट्ठि--सब्बं मे खमती' ति इमं चे अहं दिट्ठि थामसा परामास्स अभिनिविस्स वोहरेय्यं—इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति; द्वीहि मे अस्स विग्गहो --यो चायं समणो वा ब्राह्मणो वा एवंवादी एवंदिट्ठि—सब्बं मे न खमती ति, यो चायं समणो वा ब्राह्मणो [R. 499] वा एवंवादी एवंदिट्ठि—एकच्चं मे खमति एकच्चं मे न खमती ति—इमेहि अस्स द्वीहि विग्गहो। इति विग्गहे सति विवादो, विवादे सति विघातो, विघाते सति विहेसा'। इति सो विग्गहं च विवादं च विघातं च विहेसं च अत्तनि सम्पस्समानो तं चेव दिट्ठि पजहति अञ्ञं च दिट्ठि न उपादियति। एवमेतासं दिट्ठीनं पहानं होति, एवमेतासं दिट्ठीनं पटिनिस्सग्गो होति।

(इस मत में) कुछ पसन्द है, कुछ नहीं पसन्द'। उनका जो यह मत या धारणा है, वह सरागता के समीप है, संयोग, अभिनन्दन, अध्यवसान एवं उपादान के समीप है; उस मत में उनका असहमति वाला मत या धारणा असरागयुक्त के समीप है, असंयोग, अनभिनन्दन, अनध्यवसान, एवं अनुपादान के समीप है। अग्निवेश! उनमें से जो श्रमण-ब्राह्मण यह मत या धारणा वाले हैं—'मुझे (इस मत में) सब कुछ पसन्द है'; वहाँ (उनमें से कोई) समझदार (विज्ञ) पुरुष यों सोचता है—'यह जो मेरी धारणा है कि मुझे सब कुछ पसन्द है, यदि मैं इस धारणा को दृढ़ता से पकड़ एवं आग्रह के साथ स्वीकारते हुए यह कहूँ कि यही सत्य है, बाकी सब (मत) झूठ; तो (ऐसा कहने पर) मेरा इन दो (विरोधी) मतवालों से विग्रह (विवाद) होगा--एक उस श्रमण-ब्राह्मण से जो इस मत या धारणा वाला है कि मुझे यह सम्पूर्ण मत पसन्द नहीं है, और दूसरे उससे जो श्रमण-ब्राह्मण यह मत या धारणा रखता है कि मुझे इसमें कुछ पसन्द है, कुछ नहीं—इन दो (विरोधी) मत वालों से मेरा बिग्रह (विरोध) होगा। विरोध से विवाद बढ़ेगा, विवाद से विघात (पीड़ा) होने लगेगा और विघात होने पर हैरानी (=विहेसा) होने लगेगी'। यों वह चिन्तक अपने अन्दर हो रहे इस विग्रह, विवाद, विघात एवं हैरानी को देखते हुए, उस धारणा को छोड़ देता है और दूसरे मतों को ग्रहण नहीं करता।

३. "तत्रग्गिवेस्सन, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'सब्बं मे न खमती' ति तत्थ विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति—'या खो मे अयं दिट्ठि—सब्बं मे न खमती ति, इमं चे अहं दिट्ठिं थामसा परामास्स अभिनिविस्स वोहरेय्यं—इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति; द्वीहि मे अस्स विग्गहो—यो चायं समणो वा ब्राह्मणो वा एवंवादी एवंदिट्ठी—सब्बं मे [N. 195, B. 167] खमती ति, यो चायं समणो वा ब्राह्मणो वा एवंवादी एवंदिट्ठी—एकच्चं मे खमति एकच्चं मे न खमती ति—इमेहि अस्स द्वीहि विग्गहो। इति विग्गहे सति विवादो, विवादे सति विघातो, विघाते सति विहेसा'। इति सो विग्गहं च विवादं च विघातं च विहेसं च अत्तनि सम्पस्समानो तं चेव दिट्ठिं पजहति अञ्ञं च दिट्ठिं न उपादियति। एवमेतासं दिट्ठीनं पहानं होति, एवमेतासं दिट्ठीनं पटिनिस्सग्गो होति।

४. "तत्रग्गिवेस्सन, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'एकच्चं मे खमति, एकच्चं मे न खमती' ति तत्थ विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति—'या खो मे अयं दिट्ठि—एकच्चं मे खमति एकच्चं मे न खमती ति, इमं चे अहं दिट्ठिं थामसा परामास्स अभिनिविस्स वोहरेय्यं—इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति; द्वीहि मे अस्स विग्गहो—यो चायं समणो वा ब्राह्मणो वा एवंवादी एवंदिट्ठी—सब्बं मे खमती ति, यो चायं समणो वा

यों इन (उक्त उभयविध) धारणाओं का (उसके चित्त से) प्रहाण हो जाता है और अन्त में उसे इनसे छुटकारा मिल जाता है।

३. "फिर, अग्निवेश ! उन श्रमण-ब्राह्मणों में कुछ ऐसे मत या धारणा वाले भी हैं, जो यह मानते हैं—'मुझे (इस मत के) सभी (अंश) पसन्द नहीं' वहाँ (उनमें से कोई) समझदार आदमी यों सोचता है—'यह जो मेरी धारणा है कि मुझे सभी पसन्द नहीं, यदि मैं इस धारणा को···यह कहूँ कि यही सत्य है, बाकी सब झूठ; तो (ऐसा कहने पर) मेरा इन दो के साथ विग्रह होगा—एक उस···जो इस धारणा वाला है कि सभी कुछ पसन्द है, और दूसरे उस···जो इस धारणा वाला है कि मुझे इसमें कुछ पसन्द है, कुछ नहीं—इन दो (विरोधी) मत वालों से मेरा विग्रह होगा। विरोध से विवाद···देखते हुए, उस धारणा को छोड़ देता है और दूसरे मतों को ग्रहण नहीं करता। यों इन···छुटकारा मिल जाता है।

४. "फिर, अग्निवेश ! उन श्रमण-ब्राह्मणों में कुछ ऐसे मत या धारणा वाले हैं—'मुझे इसमें कुछ पसन्द है, कुछ नहीं', वहाँ समझदार पुरुष यों सोचता है—'यह जो मेरी धारणा है कि मुझे इसमें कुछ पसन्द है कुछ नहीं, यदि मैं···यह कहूँ कि यही सत्य है, बाकी सब झूठ; तो (ऐसा कहने पर) मेरा इन दो के साथ विग्रह

ब्राह्मणो वा एवंवादी एवंदिट्ठी—सब्बं मे न खमती ति—इमेहि अस्स द्वीहि विग्गहो। इति विग्गहे सति विवादो, विवादे सति विघातो, विघाते सति विहेसा'। इति सो विग्गहं च विवादं च विघातं च विहेसं च अत्तनि सम्पस्समानो तं चेव दिट्ठि पजहति अञ्ञं च दिट्ठिं न उपादियति। एवमेतासं दिट्ठीनं पहानं होति, एवमेतासं दिट्ठीनं पटिनिस्सग्गो होति।

२. भगवतो अनिच्चदेसना

५. "अयं खो पनग्गिवेस्सन, कायो रूपी चातुम्महाभूतिको [R. 500] मातापेत्तिकसम्भवो ओदनकुम्मासूपचयो अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मो, अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो समनुपस्सितब्बो। तस्मिं कायं अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो समनुपस्सतो यो कायस्मिं कायछन्दो कायस्नेहो कायन्वयता सा पहीयति।

"तिस्सो खो इमा, अग्गिवेस्सन, वेदना—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। यस्मिं, अग्गिवेस्सन, समये सुखं वेदनं [N. 196] वेदेति, नेव तस्मिं समये दुक्खं वेदनं वेदेति, न अदुक्खमसुखं [B. 168] वेदनं वेदेति; सुखं येव तस्मिं समये वेदनं वेदेति। यस्मिं, अग्गिवेस्सन, समये दुक्खं वेदनं वेदेति, नेव तस्मिं समये सुखं वेदनं वेदेति, न अदुक्खमसुखं वेदनं

होगा—एक उस···से जो इस धारणा वाला है कि सभी कुछ पसन्द है और दूसरे उस···से जो इस धारणा वाला है कि मुझे सभी पसन्द नहीं है—इन दो (विरोधी) मत वालों से मेरा विग्रह होगा। विग्रह से विवाद···देखते हुए, उस धारणा को छोड़ देता है और दूसरे मतों को ग्रहण नहीं करता। यों इन···छुटकारा मिल जाता है।

२. भगवान् की अनित्यदेशना

५. "अग्निवेश! इस काया को, जो कि रूपवान्, चतुर्महाभूत से उत्पन्न, माता-पिता से सम्भूत, दाल-भात से पुष्ट हुई और अनित्य उत्सादन (विनाश)-परिमर्दन-भेदन-विध्वंस स्वभाव वाली है, इसे अनित्य के रूप में, दुःख, रोग, व्रण, शल्य (काँटा), पाप, पीड़ा, परकीय, नाशवान, शून्य और अनात्म के रूप में देखना चाहिये। इस तरह अनित्य···अनात्म के रूप में देखने से जो इस काया में पुरुष का राग, स्नेह और लगाव (=अन्वयता) है, वे नष्ट हो जाते हैं।

"अग्निवेश! (शास्त्र में) ये तीन वेदनायें हैं—(१) सुखावेदना, (२) दुःखावेदना और (३) अदुःखा-असुखावेदना। अग्निवेश! (प्राणी) जिस समय सुखा वेदना का अनुभव करता है, उस समय न दुःखा वेदना की अनुभूति होती है, न अदुःखा-असुखा वेदना की अनुभूति होती है; केवल सुखा वेदना की ही अनुभूति

वेदेति ; दुक्खं येव तस्मिं समये वेदनं वेदेति। यस्मिं, अग्गिवेस्सन, समये अदुक्खमसुखं वेदनं वेदेति, नेव तस्मिं समये सुखं वेदनं वेदेति, न दुक्खं वेदनं वेदेति ; अदुक्खमसुखं येव तस्मिं समये वेदनं वेदेति। सुखा पि खो, अग्गिवेस्सन, वेदना अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा ; दुक्खा पि खो, अग्गिवेस्सन, वेदना अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा ; अदुक्खमसुखा पि खो, अग्गिवेस्सन, वेदना अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा। एवं पस्सं, अग्गिवेस्सन, सुतवा अरियसावको सुखाय पि वेदनाय निब्बिन्दति, दुक्खाय पि वेदनाय निब्बिन्दति, अदुक्खमसुखाय पि वेदनाय निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति, विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं, विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं; नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। एवं विमुत्तचित्तो खो, अग्गिवेस्सन, भिक्खु न केनचि संवदति, न केनचि विवदति, यं च लोके वुत्तं तेन वोहरति, अपरामसं"ति।

३. धम्मानं अभिञ्ञा पहानं

[R. 501] ६. तेन खो पन समयेन आयस्मा सारिपुत्तो भगवतो

होती है। अग्निवेश ! जिस समय वह दुःखा वेदना का अनुभव करता है, उस समय वह न सुखा वेदना, न अदुःखा-सुखा वेदना का अनुभव करता है; केवल दुःखा-वेदना का ही अनुभव करता है। और अग्निवेश ! जिस समय अदुःखा-असुखा वेदना का अनुभव करता है, उस समय वह न सुखा वेदना, न दुःखा वेदना का अनुभव करता है; केवल अदुःखा-असुखा वेदना का ही अनुभव करता है। अग्निवेश ! वह सुखावेदना अनित्य, संस्कृत, प्रतीत्यसमुत्पन्न (सापेक्षिक) और क्षय-व्यय-विराग-निरोध स्वभाव वाली है; अग्निवेश ! वह दुःखा वेदना भी अनित्य···निरोध स्वभाव वाली है; अग्निवेश ! वह अदुःखा-असुखा वेदना भी अनित्य···निरोध स्वभाव वाली है। अग्निवेश ! ऐसा समझता हुआ वह आर्य-श्रावक सुखा वेदना में ग्लानि (उचाट) मानता है, दुःखा वेदना···एवं अदुःखा-असुखा वेदना में भी ग्लानि मानता है; ग्लानि मानते हुए, उसे (उनसे) वैराग्य होने लगता है, वैराग्य होने के कारण वह विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसे--'मैं इनसे छुटकारा पा चुका हूँ'—यह ज्ञान होता है। और वह—'मेरा जाति (जन्म) क्षीण हो चुका है, मेरा ब्रह्मचर्य पूर्ण हो चुका है, मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, अब यहाँ मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं'—यह जान लेता है। अग्निवेश ! इस तरह विमुक्तचित्त भिक्षु न किसी से सवाद करता है, न विवाद करता है; समय पड़ने पर जैसा करना होता है, वैसा बिना किसी आग्रह के, करता रहता है।"

पिट्ठितो ठितो होति भगवन्तं बीजयमानो। अथ खो आयस्मतो सारिपुत्तस्स एतदहोसि—"तेसं तेसं किर नो भगवा धम्मानं अभिञ्ञा पहानमाह, तेसं तेसं किर नो सुगतो धम्मानं अभिञ्ञा पटिनिस्सग्गमाहा" ति। इति हिदं आयस्मतो सारिपुत्तस्स पटिसञ्चिक्खतो अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चि। दीघनखस्स पन परिब्बाजकस्स विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि--"यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं" ति। अथ खो दीघनखो परिब्बाजको दिट्ठधम्मो पत्तधम्मो विदितधम्मो [N. 197] परियोगाळ्हधम्मो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, [B. 169] अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य--चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति--एवमेव खो भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भगवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

---

३. धर्मों की अभिज्ञा का प्रहाण

६. उस समय आयुष्मान् शारिपुत्र भगवान् के पीछे खड़े हो भगवान् को पंखा झल रहे थे। तब आयुष्मान् शारिपुत्र के मन में यों हुआ--"भगवान् ने उन-उन धर्मों (स्वभावों) का अभिज्ञा-प्रहाण (जानकर छोड़ना) बताया, सुगत ने उन-उन धर्मों का अभिज्ञा-प्रहाण बताया।" यों शारिपुत्र द्वारा (भगवान् के कथन की) समीक्षा करते हुए, उनका चित्त आस्रवों (विकारों) से मुक्त हो गया। और दीर्घनख परिव्राजक को यह शुद्ध एवं विकल धर्मज्ञान (धर्मचक्षु) उत्पन्न हुआ—"(संसार में) जो कुछ भी उत्पाद स्वभाव वाला है, वह सब (अन्त में) निरोधधर्मा (नाशवान्) है।" इसके बाद दीर्घनख परिव्राजक ने, जो कि धर्म को जान चुका था, समझ चुका था, प्राप्त कर चुका था, धर्म के अन्तस्थल तक पहुँच चुका था, उसके प्रति निःसंशय हो चुका था, वाद-विवाद रहित हो चुका था, उसमें निपुणता प्राप्त कर चुका था एवं शास्ता के शासन में दृढ़ धारणा व विश्वास बना चुका था, भगवान् से यों निवेदन किया— "आश्चर्य है भो गौतम! अद्‌भुत है, भो गौतम! जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे'''पूर्ववत्'''आज से मुझे यावज्जीवन अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

दीघनखसुत्त समाप्त ॥

२५. मागण्डियसुत्तं

[N. 198] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कुरूसु विहरति कम्मासधम्मं नाम कुरूनं निगमो, भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स अग्यागारे तिणसन्थारके। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय कम्मासधम्मं पिण्डाय पाविसि। कम्मासधम्मं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन अञ्ञतरो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। तं वनसण्डं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवा-
[R. 502] विहारं निसीदि। अथ खो मागण्डियो परिब्बाजको जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येन भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स अग्यागारं तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो मागण्डियो परिब्बाजको भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स अग्यागारे तिणसन्थारकं पञ्ञत्तं। दिस्वान भारद्वाजगोत्तं ब्राह्मणं एतदवोच—

१. भूनहुनो समणो गोतमो

"कस्स न्वयं भोतो भारद्वाजस्स अग्यागारे तिणसन्थारको पञ्ञत्तो, समणसेय्यानुरूपं मञ्ञे" ति ?

"अत्थि, भो मागण्डिय, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो।

---

२५. मागण्डियसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कुरु देश के कम्मासदम्म (कल्मषदम्य) नामक कुरु देशवासियों के किसी कस्बे में भारद्वाज गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण की अग्निशाला में तृण (घास) के बने आसन पर साधना हेतु विराजमान थे। तब भगवान् पूर्वाह्न के समय पहनकर, पात्र-चीवर ले, कम्मासदम्म कस्बे में भिक्षा के लिये प्रविष्ट हुए। कम्मासदम्म में भिक्षा कर, भोजनकर्म से निवृत्त हो, किसी एकान्त वन प्रदेश में, दिवाविहार (दिन में विश्राममूलक ध्यानाभ्यास) हेतु पहुँचे। वे उस वनप्रदेश में प्रविष्ट हो एकान्त में खड़े किसी वृक्ष के नीचे ध्यानाभ्यास हेतु विराजे। उसी समय मागन्दिय (मार्कण्डेय ?) परिव्राजक पैदल (जङ्घाविहार) चलता हुआ, टहलता-टहलता जहाँ भारद्वाजगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण की अग्निशाला थी, वहाँ पहुँचा। उस मागन्दिय परिव्राजक ने भारद्वाजगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण की अग्निशाला में एक घास से बना, बिछा हुआ आसन देखा। देखकर, भारद्वाजगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण से यह पूछा—

१. भ्रूणहा श्रमण गौतम !

"भो भारद्वाज ब्राह्मण ! आपकी अग्निशाला में यह किसका शय्यासन बिछा हुआ है, यह तो किसी श्रमण (भिक्षु) का सा लगता है ?"

"भो मागन्दिय ! एक श्रमण शाक्यपुत्र गौतम (आए हुए) हैं। उन गौतम

तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। तस्सेसा भोतो गोतमस्स सेय्या पञ्ञत्ता" ति।

"दुद्दिट्ठं वत, भो भारद्वाज, अद्दसाम; दुद्दिट्ठं वत, भो भारद्वाज, अद्दसाम! ये मयं तस्स भोतो गोतमस्स भूनहुनो सेय्यं अद्दसामा" ति।

"रक्खस्सेतं, मागण्डिय, वाचं; रक्खस्सेतं, [N. 199, B. 170] मागण्डिय, वाचं। बहू हि तस्स भोतो गोतमस्स खत्तियपण्डिता पि ब्राह्मणपण्डिता पि गहपति पण्डिता पि समणपण्डिता पि अभिप्पसन्ना विनीता अरिये ञाये धम्मे कुसले" ति।

"सम्मुखा चे पि मयं, भो भारद्वाज, तं भवन्तं गोतमं पस्सेय्याम, सम्मुखा पि नं वदेय्याम—'भूनहु समणो गोतमो' ति। तं किस्स हेतु? एवं हि नो सुत्ते ओचरती" ति।

"सचे तं भोतो मागण्डियस्स अगरु आरोचेय्यामि तं समणस्स गोतमस्सा" ति।

"अप्पोस्सुक्को भवं भारद्वाजो वुत्तो व नं वदेय्या" ति।

के बारे में यह परमसुखद यशःशब्द फैला हुआ है—'वह भगवान् अर्हत्...पूर्ववत्[1]... उपदेष्टा बुद्ध भगवान् हैं'। यह उन्हीं भगवान् गौतम का शय्यासन बिछा हुआ है।"

"भो भारद्वाज! यह तो हमें बहुत बुरा देखने को मिला कि जो हम (आपकी अग्निशाला में) उस भ्रूणघ्न गौतम का शय्यासन बिछा हुआ देख रहे हैं।"

"मागन्दिय! तुम अपनी इस बात को रोको, तुम ऐसा मत बोलो। (क्योंकि) उस श्रमण गौतम के उपदिष्ट आर्य एवं न्याय्य (या ज्ञेय?) धर्म में बहुत से क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति एवं अन्य सम्प्रदाय के परिव्राजक विद्वान् भी श्रद्धावश प्रसन्न हो, दीक्षित हो चुके हैं।"

"भो भारद्वाज! (हम क्यों चुप रहें) हम तो उस गौतम को सामने देखें तो उसके मुँह पर भी यह बात कह सकते हैं—'श्रमण गौतम भ्रूणहा है'। वह क्यों? वह इसलिये कि यही हमारे सूत्रों (धर्मग्रन्थों) में आता है।"

"तो मागन्दिय! यदि आप बुरा न माने तो आपकी यह बात श्रमण गौतम से कहूँ।"

"हाँ, भारद्वाज! आप बेखटके (निःसंकोच) मेरे कहे को उससे कह सकते हैं।"

---

१. द्र०—पीछे पृ० ७५ (७. वत्थसुत्त)

२. अस्सोसि खो भगवा दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स मागण्डियेन परिब्बाजकेन सद्धिं इमं कथासल्लापं। अथ खो भगवा सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स अग्यागारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा निसीदि भगवा पञ्ञत्ते तिणसन्थारके। अथ खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो भारद्वाजगोत्तं ब्राह्मणं भगवा एतदवोच--"अहु पन ते, भारद्वाज, मागण्डियेन परि-
[R. 503] ब्बाजकेन सद्धिं इमं येव तिणसन्थारकं आरब्भ कोचिदेव कथासल्लापो" ति? एवं वुत्ते, भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो संविग्गो लोमहट्ठजातो भगवन्तं एतदवोच--"एतदेव खो पन मयं भोतो गोतमस्स आरोचेतुकामा। अथ च पन भवं गोतमो अनक्खातं येव अक्खासी" ति। अयं च हि भगवतो भारद्वाजगोत्तेन ब्राह्मणेन सद्धिं अन्तराकथा विप्पकता होति। अथ खो मागण्डियो परिब्बाजको जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येन भारद्वाजगोतस्स ब्राह्मणस्स अग्यागारं येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा
[N. 200] भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो मागण्डियं परिब्बाजकं भगवा एतदवोच—

---

२. (उधर) भगवान् ने विशुद्ध लोकोत्तर दिव्य श्रोत्रधातु से भारद्वाजगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण के मागन्दिय परिव्राजक से हो रहे समग्र कथा-संलाप को सुन लिया। इसके बाद भगवान् सायंकाल ध्यानभावना से निवृत्त हो, जहाँ भारद्वाजगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण की अग्निशाला थी, वहाँ पहुँचे; पहुँचकर अपने उस घास से बने बिछे हुए आसन पर विराजमान हुए। तब भारद्वाजगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर उसने भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस भारद्वाजगोत्रिय ब्राह्मण से भगवान् ने यों पूछा—"भो भारद्वाज! तुम्हारी मागन्दिय परिव्राजक से, मेरे इस घास के बने शय्यासन के बारे में, क्या कोई बातचीत हुई थी?" ऐसा कहे जाने पर भारद्वाजगोत्रिय ब्राह्मण श्रद्धा से विह्वल एवं रोमाञ्चित हो उठा, और भगवान् से यों बोला—"हम भी आप गौतम से यही कहना चाह रहे थे। परन्तु आप गौतम ने तो बिना कहे ही उस बात को जानकर कह दिया।" भगवान् की भारद्वाजगोत्रिय ब्राह्मण से यह बातचीत चल ही रही थी इसी बीच मागन्दिय परिव्राजक पैदल चलता, टहलता हुआ सा जहाँ भारद्वाजगोत्रिय ब्राह्मण की अग्निशाला थी, वहाँ पुनः आ पहुँचा;

३. "चक्खुं खो, मागण्डिय, रूपारामं रूपरतं रूपसम्मु- [B. 171] दितं। तं तथागतस्स दन्तं गुत्तं रक्खितं संवुतं, तस्स च संवराय धम्मं देसेति। इदं नु ते एतं, मागण्डिय, सन्धाय भासितं—'भूनहु समणो गोतमो' " ति ?

"एतदेव खो पन मे, भो गोतम, सन्धाय भासितं--'भूनहु समणो गोतमो' ति। तं किस्स हेतु ? एवं हि नो सुत्ते ओचरती" ति।

सोतं खो, मागण्डिय, सद्दारामं···पे०···घानं खो, मागण्डिय, गन्धारामं··· जिव्हा खो, मागण्डिय, रसारामा रसरता रससम्मुदिता। सा तथागतस्स दन्ता गुत्ता रक्खिता संवुता, तस्सा च संवराय धम्मं देसेति। इदं नु ते एतं, मागण्डिय, सन्धाय भासितं--'भूनहु समणो गोतमो' ति ?

"एतदेव खो पन मे, भो गोतम, सन्धाय भासितं--'भूनहु समणो गोतमो' ति। तं किस्स हेतु ? एव हि नो सुत्ते ओचरती" ति।

कायो खो, मागण्डिय, फोट्ठब्बारामो फोट्ठब्बरतो···पे०···मनो खो, मागण्डिय, धम्मारामो धम्मरतो धम्मसम्मुदितो। सो तथागतस्स दन्तो गुत्तो रक्खितो संवुतो, तस्स च संवराय धम्मं देसेति। इदं नु ते एतं, मागण्डिय, सन्धाय भासितं--'भूनहु समणो गोतमो' ति ?

पहुँचकर उसने भगवान् से कुशलमङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस मागन्दिय परिव्राजक से भगवान् यों बोले—

३. "मागन्दिय ! चक्षुरिन्द्रिय रूप (स्वविषय) में सुख (आराम), लगाव और प्रसन्नता (सम्मोह) मानती है। वह (चक्षुरिन्द्रिय) तथागत की निगृहीत है, गुप्त है, सुरक्षित है, संयत है, (इतना ही नहीं) वह उसके संयम के लिये दूसरों को धर्मोपदेश करता है। मागन्दिय ! क्या तुमने यही सोचकर तो नहीं कहा कि 'श्रमण गौतम भ्रूणहा है' !"

'(हाँ) भो गौतम ! यही सोचकर मैंने कहा— 'श्रमण गौतम भ्रूणहा है'। वह क्यों ? वह इसलिये कि यही बात हमारे सूत्रों (धर्मग्रन्थों) से मेल खाती है।"

"मागन्दिय ! श्रोत्रेन्द्रिय शब्द में सुख··· मागन्दिय ! घ्राणेन्द्रिय गन्ध में सुख··· मागन्दिय ! जिह्वेन्द्रिय रस में सुख···धर्मोपदेश करता है। मागन्दिय ! क्या तुमने··· भ्रूणहा है ?"

"(हाँ) भो गौतम ! यही सोचकर···मेल खाती है।"

"मागन्दिय ! कायेन्द्रिय स्प्रष्टव्य में सुख···मागन्दिय ! मन इन्द्रिय धर्म (मनन, संकल्प, विकल्प) में सुख···धर्मोपदेश करता है। मागन्दिय ! क्या तुमने यही सोचकर···भ्रूणहा है ?"

"एतदेव खो पन मे भो गोतम, सन्धाय भासितं--'भूनहु समणो गोतमो' ति । तं किस्स हेतु ? एवं हि नो सुत्ते ओचरती" ति ।

२. अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो

[R. 504] ४. "तं किं मञ्ञसि, मागण्डिय--'इधेकच्चो चक्खुविञ्ञेय्येहि रूपेहि परिचारितपुब्बो अस्स इट्ठेहि कन्तेहि मनापेहि पियरूपेहि कामूपसंहितेहि रजनीयेहि, सो अपरेन समयेन रूपानं येव समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा रूपतण्हं पहाय रूपपरिळाहं पटिविनोदेत्वा विगतपिपासो अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो विहरेय्य । [N. 201] इमस्स पन ते, मागण्डिय, किमस्स वचनीयं' " ति ?

"न किञ्चि, भो गोतम" ।

"तं किं मञ्ञसि, मागण्डिय, इधेकच्चो सोतविञ्ञेय्येहि सद्देहि...पे०... घानविञ्ञेय्येहि गन्धेहि...जिव्हाविञ्ञेय्येहि रसेहि...कायविञ्ञेय्येहि फोट्ठब्बेहि परिचारितपुब्बो अस्स इट्ठेहि कन्तेहि मनापेहि पियरूपेहि कामूपसंहितेहि रजनीयेहि, सो अपरेन समयेन फोट्ठब्बानं येव समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा फोट्ठब्बतण्हं पहाय फोट्ठब्बपरिळाहं पटिविनोदेत्वा विगतपिपासो अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो विहरेय्य । इमस्स पन ते, मागण्डिय, किमस्स वचनीयं" ति ?

"न किञ्चि, भो गोतम" ।

"(हाँ) भो गौतम ! मैंने यही सोचकर...मेल खाती है ।"

२. आध्यात्मिक रूप से शान्तचित्त भिक्षु

४. "तो क्या मानते हो, मागन्दिय ! 'यहाँ कोई पहले चक्षुर्विज्ञेय इष्ट, कान्त, मनाप, प्रियरूप, कामयुक्त, रागमय रूपभोगों को भोग रहा हो, वह बाद में इन रूपभोगों के उत्पाद, नाश, आस्वाद, दोष, त्याग आदि को भलीभाँति जानकर, रूप की तृष्णा एवं रूप से होने वाले परिदाह (जलन) को छोड़कर सभी आसक्तियों से दूर रहता हुआ आध्यात्मिक भाव से शान्तचित्त हो विहरण करे । मागन्दिय ! ऐसे व्यक्ति के बारे में तुम्हारा क्या कहना है ?"

"भो गौतम ! (ऐसे व्यक्ति के बारे में) मुझे कुछ नहीं कहना ।"

"तो क्या मानते हो मागन्दिय ! 'यहाँ कोई पहले श्रोत्रविज्ञेय...शब्दों, घ्राणविज्ञेय...गन्धों, जिह्वाविज्ञेय...रसों, कायविज्ञेय...स्प्रष्टव्य धर्मों को भोग रहा हो; वह बाद में इन स्प्रष्टव्य धर्मों के उत्पाद...शान्तचित्त हो विहरण करे । मागन्दिय ! ऐसे व्यक्ति के बारे में तुम्हारा क्या कहना है ?"

-'भो गौतम ! मुझे कुछ नहीं कहना ।"

५. "अहं खो पन, मागण्डिय, पुब्बे अगारियभूतो समानो [B. 172] पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेसिं चक्खुविञ्ञेय्येहि रूपेहि इट्ठेहि कन्तेहि मनापेहि पियरूपेहि कामूपसंहितेहि रजनीयेहि, सोतविञ्ञेय्येहि सद्देहि…पे०…घानविञ्ञेय्येहि गन्धेहि…जिव्हाविञ्ञेय्येहि रसेहि…कायविञ्ञेय्येहि फोट्ठब्बेहि इट्ठेहि कन्तेहि मनापेहि पियरूपेहि कामूपसंहितेहि रजनीयेहि। तस्स मय्हं, मागण्डिय, तयो पासादा अहेसुं—एको वस्सिको, एको हेमन्तिको, एको गिम्हिको। सो खो अहं, मागण्डिय, वस्सिके पासादे वस्सिके चत्तारो मासे निप्पुरिसेहि तुरियेहि परिचारियमानो न हेट्ठापासादं ओरोहामि। सो अपरेन समयेन कामानं येव समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा कामतण्हं पहाय कामपरिळाहं पटिविनोदेत्वा विगतपिपासो अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो विहरामि। सो अञ्ञे सत्ते पस्सामि कामेसु अवीतरागे कामतण्हाहि खज्जमाने कामपरिळाहेन परिडय्हमाने कामे पटिसेवन्ते। सो तेसं न पिहेमि, न तत्थ अभिरमामि। तं किस्स हेतु? या हयं, मागण्डिय, रति, अञ्ञत्रेव कामेहि अञ्ञत्र अकुसलेहि धम्मेहि—अपि दिब्बं सुखं [N. 202, R. 505] समधिगय्ह तिट्ठति—ताय रतिया रममानो हीनस्स न पिहेमि, न तत्थ अभिरमामि।

---

५. "मागन्दिय! मैं भी पहले गृहस्थावस्था में घर-बार में फँसा, पञ्चविध कामभोगों से प्रतिबद्ध चक्षुर्विज्ञेय…रूपों से जकड़ा हुआ था, श्रोत्रविज्ञेय…शब्दों से…घ्राणविज्ञेय…गन्धों से…जिह्वाविज्ञेय…रसों से…कायविज्ञेय…स्प्रष्टव्य धर्मों से जकड़ा हुआ था। मागन्दिय! उस समय मेरे लिये तीन प्रासाद (महल) थे—एक वर्षा ऋतु के लिये, एक हेमन्त ऋतु के लिये और एक ग्रीष्म ऋतु के लिये। मागन्दिय! वह मैं वर्षाऋतु के चार महीनों तक उस वर्षाकालिक प्रासाद में पुरुषविहीन नानाविध सङ्गीतवाद्यों के साथ कामिनियों में रमण करता था, इस बीच मैंने उस महल से उतरने का कभी नाम ही नहीं लिया। बाद में वही मैं उन कामभोगों के उत्पाद, विनाश, रसास्वाद, दोष एवं त्याग को भलीभाँति जानकर कामतृष्णा एवं कामपरिदाह को छोड़कर, सभी कामासक्तियों से दूर रहता हुआ आध्यात्मिक भाव से शान्तचित्त हो विहरण करता था। वह मैं जब दूसरे प्राणियों को कामभोगों में लिपटे हुए कामतृष्णाओं से उपभुक्त (खाद्यमान), कामपरिदाह से जलते हुए, (फिर भी) उनका सेवन करते हुए देखता था। परन्तु मैं (अब) उन (कामभोगों) में न कोई स्पृहा (लगाव) रखता था, न उनमें अभिरमण की इच्छा रखता था। वह क्यों? वह इसलिये कि मागन्दिय! मैं यह जो कामभोगों में (लगाव का) सुख है

६. "सेय्यथापि, मागण्डिय, गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अड्ढो महद्धनो महाभोगो पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेय्य चक्खुविञ्ञेय्येहि रूपेहि···पे०···फोट्ठब्बेहि इट्ठेहि कन्तेहि मनापेहि पियरूपेहि कामूपसंहितेहि रजनीयेहि। सो कायेन सुचरितं चरित्वा वाचाय सुचरितं चरित्वा मनसा सुचरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। सो तत्थ नन्दने वने अच्छरासङ्घपरिवुतो दिब्बेहि पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेय्य। सो पस्सेय्य गहपतिं वा गहपतिपुत्तं वा पञ्चहि कामगुणेहि [B. 173] समप्पितं समङ्गीभूतं परिचारयमानं। तं किं मञ्ञसि, मागण्डिय, अपि नु सो देवपुत्तो नन्दने वने अच्छरासङ्घपरिवुतो दिब्बेहि पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारियमानो अमुस्स गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा पिहेय्य, मानुसकानं वा पञ्चन्नं कामगुणानं मानुसकेहि वा कामेहि आवट्टेय्या" ति ?

"नो हिदं, भो गोतम। तं किस्स हेतु ? मानुसकेहि, भो गोतम, कामेहि दिब्बकामा अभिक्कन्ततरा च पणीततरा चा" ति।

या अकुशल धर्मों में जो आसक्ति है, इनसे भी अच्छा दिव्य सुख प्राप्त कर ऊपर की भूमिका में पहुँच चुका था, अतः मैं उन कामभोगों में न कोई आसक्ति रखता था, न लगाव।

६. "मागन्दिय ! जैसे कोई आढय, धनवान गृहपति या गृहपतिपुत्र तरह-तरह के ऐशो-आराम (सुख) भोगता हुआ, पञ्चविध काममोगों में प्रतिबद्ध, उन्हीं में लिपटा हुआ चक्षुर्विज्ञेय रूपों से···पूर्ववत्·· स्प्रष्टव्य धर्मों से जकड़ा रहे। वह काय, वाक् एवं मन से सत्कर्म करता हुआ, इस देहपात के बाद, मरणानन्तर सद्गति प्राप्त करता हुआ त्रायस्त्रिंश देवताओं के साथ उन्हीं के लोक (स्वर्ग) में उत्पन्न हो। यहाँ वह नन्दनवन में, अप्सराओं से घिरा हुआ, दिव्य पञ्चविध कामभोगों में प्रतिबद्ध, उन्हीं में लिपटा एवं जकड़ा हुआ रहे। वह किसी गृहपति या गृहपतिपुत्र को पञ्चविध कामभोगों में प्रतिबद्ध···देखे। तो क्या मानते हो, मागन्दिय ! वह नन्दन वन में अप्सराओं से घिरा हुआ, पञ्चविध दिव्य कामभोगों में प्रतिबद्ध···देवपुत्र इस (पृथ्वीवासी) गृहपति या गृहपति पुत्र के इन पञ्चविध कामभोगों की लालसा करेगा या इन कामभोगों को पाने के लिये इनकी ओर मुँह घुमायेगा ?"

"भो गौतम ! ऐसा नहीं है। वह क्यों ? भो गौतम ! वह इसलिये कि मनुष्यों के कामभोगों की अपेक्षा दिव्य (स्वर्ग के) कामभोग अधिक उत्तम व सुखदायक होते हैं।"

"एवमेव खो अहं, मागण्डिय, पुब्बे अगारियभूतो समानो पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेसिं चक्खुविञ्ञेय्येहि रूपेहि इट्ठेहि कन्तेहि मनापेहि पियरूपेहि कामूपसंहितेहि रजनीयेहि, सोतविञ्ञेय्येहि सद्देहि···पे···घानविञ्ञेय्येहि गन्धेहि···जिव्हाविञ्ञेय्येहि रसेहि··· कायविञ्ञेय्येहि फोट्ठब्बेहि इट्ठेहि कन्तेहि मनापेहि पियरूपेहि कामूपसंहितेहि रजनीयेहि। सो अपरेन समयेन कामानं येव समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा कामतण्हं पहाय कामपरिळाहं पटिविनोदेत्वा विगतपिपासो अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो विहरामि। सो अञ्ञे सत्ते पस्सामि कामेसु अवीतरागे कामतण्हाहि [R. 506] खज्जमाने कामपरिळाहेन परिडय्हमाने कामे पटिसेवन्ते, सो तेसं न पिहेमि, न तत्थ अभिरमामि। तं किस्स हेतु? या हयं, मागण्डिय, रति अञ्ञत्रेव कामेहि अञ्ञत्र अकुसलेहि धम्मेहि—अपि दिब्बं सुखं [N. 203] समधिगय्य तिट्ठति—ताय रतिया रममानो हीनस्स न पिहेमि, न तत्थ अभिरमामि।

७. सेय्यथापि, मागण्डिय, कुट्ठी पुरिसो अरुगत्तो पक्कगत्तो किमीहि खज्जमानो नखेहि वणमुखानि विप्पतच्छमानो अङ्गारकासुया कायं परितापेय्य। तस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता भिसक्कं सल्लकत्तं उपट्ठापेय्युं। तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो भेसज्जं करेय्य। सो तं भेसज्जं आगम्म कुट्ठेहि परिमुच्चेय्य, अरोगो अस्स सुखी सेरी सयंवसी येनकामङ्गमो। सो अञ्ञं कुट्ठिं पुरिसं पस्सेय्य अरुगत्तं पक्कगत्तं किमीहि खज्ज-

---

"इसी तरह, मागन्दिय ! मैं पहले गृहस्थावस्था में घर-बार में फँसा···पूर्ववत्[1]··· अतः मैं उन कामभोगों में न कोई आसक्ति रखता हूँ, न लगाव।

७. "मागन्दिय ! जैसे कोई कुष्ठ रोगी जिसका शरीर कुष्ठ रोग से सड़ गया हो, गल गया हो, उसमें कीड़े किलबिला रहे हों, वह नाखूनों से अपने घावों को बार-बार कुरेद रहा हो, वह अग्नि स अपने शरीर को तपावे। उसके साथी-सहायक, या भाई-बंधु किसी शल्यचिकित्सक वैद्य को लावें। वह शल्यचिकित्सक वैद्य उसकी चिकित्सा शुरू करे। फिर वह चिकित्सा के सहारे कुष्ठरोगमुक्त हो जाय, पूर्ववत् स्वस्थ, सुखी नीरोग हो जाय या जैसा वह अपना शरीरसौन्दर्य चाहता हो वैसा हो जाय। (बाद में) वह (कुष्ठरोगमुक्त पुरुष) किसी अन्य कुष्ठरोगी को, जिसका

---

१. द्र०—पीछे पृ० ६४३।

मानं नखेहि वणमुखानि विप्पतच्छमानं अङ्गारकासुया कायं परितापेन्तं। तं किं मञ्ञसि, मागण्डिय, अपि नु सो पुरिसो अमुस्स कुट्ठिस्स पुरिसस्स पिहेय्य अङ्गारकासुया वा भेसज्जं पटिसेवनाय वा" ति ?

[B. 174] "नो हिदं, भो गोतम। तं किस्स हेतु ? रोगे हि, भो गोतम, सति भेसज्जेन करणीयं होति, रोगे असति न भेसज्जेन करणीयं होती" ति।

"एवमेव खो अहं, मागण्डिय, पुब्बे अगारियभूतो समानो पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेसिं, चक्खुविञ्ञेय्येहि रूपेहि इट्ठेहि कन्तेहि मनापेहि पियरूपेहि कामूपसंहितेहि रजनीयेहि, सोतविञ्ञेय्येहि सद्देहि…पे०…घानविञ्ञेय्येहि गन्धेहि…जिव्हाविञ्ञेय्येहि रसेहि…कायविञ्ञेय्येहि फोट्ठब्बेहि इट्ठेहि कन्तेहि मनापेहि पियरूपेहि कामूपसंहितेहि रजनीयेहि। सो अपरेन समयेन कामानं येव समुदयं च अत्थङ्गमं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा कामतण्हं पहाय कामपरिळाहं पटिविनोदेत्वा विगतपिपासो अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो विहरामि। सो अञ्ञे सत्ते पस्सामि कामेसु अवीतरागे कामतण्हाहि खज्जमाने कामपरिळाहेन परिडय्हमाने कामे पटिसेवन्ते। सो तेसं न पिहेमि, न तत्थ अभिरमामि। तं किस्स हेतु ? या हयं, मागण्डिय, रति, अञ्ञत्रेव कामेहि अञ्ञत्र अकुसलेहि धम्मेहि—अपि दिब्बं सुखं समधिगय्ह तिट्ठति—ताय रतिया रममानो हीनस्स न पिहेमि, न तत्थ अभिरमामि।

[N. 204, R. 507] ८. "सेय्यथापि, मागण्डिय, कुट्ठी पुरिसो अरुगत्तो पक्कगत्तो किमीहि खज्जमानो नखेहि वणमुखानि विप्पतच्छमानो अङ्गारकासुया कायं परितापेय्य। तस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता भिसक्कं

शरीर कुष्ठरोग से सड़ गया…देखे। तो क्या समझते हो, मागन्दिय! क्या वह (कुष्ठरोगमुक्त पुरुष) उस कुष्ठरोगी के रोग को पाने की लालसा करेगा या अग्नितापएव शल्यचिकित्सा की इच्छा करेगा ?"

"नहीं, भो गौतम! उसे ऐसी इच्छा नहीं होगी। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिये कि रोग होने पर ही चिकित्सा आवश्यक होती है, बिना रोग के चिकित्सा का क्या लाभ!"

"इसी तरह मागन्दिय! मैं पहले गृहस्थावस्था में घर-बार में फँसा…पूर्ववत्[1]… अतः मैं उन कामभोगों में न कोई आसक्ति रखता हूँ, न लगाव।

८. "मागन्दिय! जैसे कोई कुष्ठरोगी जैसा शरीरसौन्दर्य चाहता हो वैसा हो

---

१. द्र०—पीछे पृ० ९४३।

सल्लकत्तं उपट्ठापेय्युं। तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो भेसज्जं करेय्य। सोतं भेसज्जं आगम्म कुट्ठेहि परिमुच्चेय्य, अरोगो अस्स सुखी सेरी सयंवसी येनकामङ्गमो। तमेनं द्वे बलवन्तो पुरिसा नानाबाहासु गहेत्वा अङ्गारकासु उपकड्ढेय्युं। तं किं तं किं मञ्ञसि, मागण्डिय, अपि नु सो पुरिसो इति चिति चेव कायं सन्नामेय्या" ति?

"एवं, भो गोतम"।

"तं किस्स हेतु"?

"असु हि, भो गोतम, अग्गि दुक्खसम्फस्सो चेव महाभितापो च महापरिळाहो चा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, मागण्डिय, इदानेव नु खो सो अग्गि दुक्खसम्फस्सो चेव महाभितापो च महापरिळाहो च उदाहु पुब्बे पि सो अग्गि दुक्खसम्फस्सो चेव महाभितापो च महापरिळाहो चा" ति?

"इदानि चेव, भो गोतम, सो अग्गि दुक्खसम्फस्सो चेव महाभितापो च महापरिळाहो च, पुब्बे पि सो अग्गि दुक्खसम्फस्सो चेव [B. 175] महाभितापो च महापरिळाहो च। असु च, भो गोतम, कुट्ठी पुरिसो अरुगत्तो पक्कगत्तो किमीहि खज्जमानो नखेहि वणमुखानि विप्पतच्छमानो उपहतिन्द्रियो चेव अग्गिस्मिं सुखमिति विपरीतसञ्ञं पच्चलत्था" ति।

जाय। तब उसे दो बलवान् पुरुष बाँहों से पकड़कर अग्नि में तपाने का प्रयास करें। तो क्या मानते हो, मागन्दिय! वह (कुष्ठरोगमुक्त पुरुष) उन बलवानों से अपने शरीर को किसी न किसी तरह छुड़ाने की कोशिश नहीं करेगा?"

"अवश्य, भो गौतम!"

"वह क्यों?"

"भो गौतम! क्योंकि अग्नि का स्पर्श शरीर के लिये दुःखदायक होता है, अत्यधिक कष्ट एवं जलन (परिदाह) दायक होता है।"

"तो क्या मानते हो, मागन्दिय! उसके लिये यह अग्निस्पर्श अभी दुःख, कष्ट एव जलनदायक है या पहले वह अग्निस्पर्श दुःख, कष्ट एवं जलनदायक था?"

"भो गौतम! वह अग्निस्पर्श तो आज भी दुःख, कष्ट एवं जलनदायक है और पहले भी वह अग्निस्पर्श…जलनदायक था। परन्तु वह कुष्ठरोगी जिसका शरीर…नाखूनों से अपने घावों को बार-बार कुरेद रहा हो, वह विकलेन्द्रिय हो, सुख के प्रति विपरीतभावना रखता हुआ, अग्निताप में ही सुख समझने लगता है।"

"एवमेव खो, मागण्डिय, अतीतं पि अद्धानं कामा दुक्खसम्फस्सा चेव महाभितापा च महापरिळाहा च अनागतं पि अद्धानं कामा दुक्खसम्फस्सा चेव महाभितापा च महापरिळाहा च, एतरहि पि पच्चुप्पन्नं अद्धानं कामा दुक्खसम्फस्सा चेव महाभितापा च महापरिळाहा च। इमे च, मागण्डिय, सत्ता कामेसु अवीतरागा कामतण्हाहि खज्जमाना कामपरिळाहेन परिडय्हमाना उपहतिन्द्रिया दुक्खसम्फस्सेसु येव कामेसु सुखमिति विपरीतसञ्ञं पच्चलत्थुं।

[N. 205] ९. "सेय्यथापि, मागण्डिय, कुट्ठी पुरिसो अरुगत्तो पक्कगत्तो किमीहि खज्जमानो नखेहि वणमुखानि विप्पतच्छमानो अङ्गारकासुया कायं परितापेति। यथा यथा खो, मागण्डिय, असु कुट्ठी पुरिसो अरुगत्तो पक्कगत्तो किमीहि खज्जमानो नखेहि वणमुखानि विप्पतच्छमानो अङ्गारकासुया कायं परितापेति तथा तथास्स तानि वणमुखानि असुचित- [R. 408] रानि चेव होन्ति दुग्गन्धतरानि च पूतिकतरानि च, होति चेव काचि सातमत्ता अस्सादमत्ता—यदिदं वणमुखानं कण्डूवनहेतु; एवमेव खो, मागण्डिय, सत्ता कामेसु अवीतरागा कामतण्हाहि खज्जमाना कामपरिळाहेन च परिडय्हमाना कामे पटिसेवन्ति। यथा यथा खो, मागण्डिय, सत्ता कामेसु अवीतरागा कामतण्हाहि खज्जमाना कामपरिळाहेन च परिडय्ह-

---

"मागन्दिय ! इसी तरह ये कामभोग तो अतीतकाल में भी दुःखस्पर्शमय, दुःखज्वालामय एवं महापरितापदायक थे; भविष्यकाल में भी ये कामभोग ··· महापरितापदायक होंगे; एवं वर्तमानकाल में भी ये कामभोग···महापरितापदायक ही हैं। परन्तु मागन्दिय ! ये कामरागी, कामासक्त, कामतृष्णाविभूत, कामज्वालापरितप्त हो, यथातथ चिन्तन की सामर्थ्य को खोये हुए से (=उपहतइन्द्रिय) प्राणी दुःखस्पर्शमय कामभोगों में ही सुख की विपरीत धारणा वाले होकर, दुःखदायक कामभोगों को भी सुखकर समझने लगते हैं।

९. "मागन्दिय ! जैसे कोई कुष्ठ रोगी···अग्नि से अपने शरीर को तपावे। और मागन्दिय ! जैसे-जैसे वह कुष्ठरोगी रोग से क्षत-विक्षत शरीर को अपने नखों से से खुजलाता हुआ, अग्नि से तपाता हुआ उसमें सुख का अनुभव करे, वैसे-वैसे उसके वे घाव इस कारण और भी दुर्गन्धमय, सड़े-गले होते चले जाँय; फिर भी वह उन घावों को खुजलाने में ही सुख माने। इसी तरह मागन्दिय ! ये प्राणी कामरागी, कामासक्त, कामतृष्णाविभूत एवं कामज्वालापरितप्त हो, कामभोगों का सेवन करते हैं। और मागन्दिय ! जैसे-जैसे ये कामासक्त प्राणी उन कामभोगों का सेवन करते हैं, वैसे-वैसे वे उनमें सुख मानते चलते हैं और उनकी कामतृष्णा बढ़ती जाती

माना कामे पटिसेवन्ति तथा तथा तेसं सत्तानं कामतण्हा चेव पवड्ढति, कामपरिळाहेन च परिडय्हन्ति, होति चेव काचि सातमत्ता अस्सादमत्ता—यदिदं पञ्च कामगुणे पटिच्च।

"तं किं मञ्ञसि, मागण्डिय, अपि नु ते दिट्ठो वा सुतो वा राजा वा राजमहामत्तो वा पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारियमानो कामतण्हं अप्पहाय कामपरिळाहं अप्पटिविनोदेत्वा विगतपिपासो अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो विहासि वा विहरति वा विहरिस्सति वा" ति ? [B. 176]

"नो हिदं, भो गोतम"।

"साधु, मागण्डिय ! मया पि खो एतं, मागण्डिय, नेव दिट्ठं न सुतं राजा वा राजमहामत्तो वा पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारियमानो कामतण्हं अप्पहाय कामपरिळाहं अप्पटिविनोदेत्वा विगतपिपासो अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो विहासि वा विहरति वा विहरिस्सति वा। अथ खो, मागण्डिय, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा विगतपिपासा अज्झत्तं वूपसन्तचित्ता विहासुं वा विहरन्ति वा विहरिस्सन्ति वा सब्बे ते कामानं येव समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा कामतण्हं पहाय कामपरिळाहं पटिविनो- [N. 206] देत्वा विगतपिपासा अज्झत्तं वूपसन्तचित्ता विहासुं वा विहरन्ति वा विहरिस्सन्ति वा" ति। अथ खो भगवा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि--

---

है और वे कामज्वाला से परितप्त होते रहते हैं, उन्हें कामभोगों के इस सेवन से रसास्वाद सा मिलता है, उसे ही वे वास्तविक सुख मान बैठते हैं।

"तो क्या मानता है, मागन्दिय ! क्या तूने कभी देखा है या सुना है कि पञ्चविध कामभोगों में आसक्त, तन्मय, उन्हीं में (दिन-रात) लिपटा हुआ, राजा या राजा का महामन्त्री कामतृष्णा को बिना छोड़े, कामज्वाला से दूर न रह कर, वासना (पिपासा) रहित आध्यात्मिक शान्तचित्त से साधना कर सका था या कर रहा है या कर सकेगा ?"

"नहीं, भो गौतम !"

"मागन्दिय ! तुम्हारा कहना सर्वथा उचित है, मैंने भी मागन्दिय ! ऐसा कभी न देखा है, न सुना है कि पञ्चविध···राजा या राजा का महामन्त्री···कर सकेगा। अपितु मागन्दिय ! जो कोई श्रमण-ब्राह्मण वासना रहित आध्यात्मिक शान्तचित्त से साधना कर सके थे या कर रहे हैं या कर सकेंगे, वे सभी कामभोगों के उत्पाद, नाश, आस्वाद, दोष एवं त्याग आदि को भलीभाँति जानकर कामतृष्णा को छोड़, कामज्वाला से दूर रह, वासना रहित आध्यात्मिक शान्तचित्त से साधना कर रहे थे,

"आरोग्यपरमा लाभा, निब्बानं परमं सुखं।
अट्ठङ्गिको च मग्गानं, खेमं अमतगामिनं" ति॥

३. कतमं आरोग्यं कतमं निब्बानं

१०. एवं वुत्ते, मागण्डियो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! याव सुभासितं चिदं भोता गोतमेन—[R. 509] 'आरोग्यपरमा लाभा, निब्बानं परमं सुखं' ति। मया पि खो एतं, भो गोतम, सुतं पुब्बकानं परिब्बाजकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—'आरोग्यपरमा लाभा, निब्बानं परमं सुखं' ति; तयिदं, भो गोतम, समेती" ति।

"यं पन ते एतं, मागण्डिय, सुतं पुब्बकानं परिब्बाजकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—'आरोग्यपरमा लाभा, निब्बानं परमं सुखं' ति, कतमं तं आरोग्यं, कतमं तं निब्बानं" ति?

एवं वुत्ते, मागण्डियो परिब्बाजको सकानेव सुदं गत्तानि पाणिना अनोमज्जति—"इदं त, भो गोतम, आरोग्यं, इदं तं निब्बानं। अहं हि, भो गोतम, एतरहि अरोगो सुखी, न मं किञ्चि आबाधती" ति।

कर रहे हैं एवं करेंगे। तब भगवान् ने उस समय अपने ये उद्गार (उदान) प्रकट किये—

"नीरोग रहना (स्वास्थ्य) श्रेष्ठ लाभ है, निर्वाण सर्वोत्तम सुख है। अमृत (निर्वाण) की ओर ले जाने वाले मार्गों में अष्टांगिक मार्ग ही सर्वतोऽधिक क्षेमकर (मंगलमय) है।"

३. आरोग्य व निर्वाण किसे कहते हैं

१०. (भगवान् के) ऐसा कहने पर मागन्दिय परिव्राजक ने भगवान् से यों कहा—"आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! क्या ही अच्छा सुभाषित आप गौतम ने कहा—'नीरोग रहना श्रेष्ठ लाभ है, निर्वाण सर्वोत्तम सुख है'। भो गौतम! मैंने भी अपने पूर्वगामी आचार्य-प्राचार्य परिव्राजकों को (श्रीमुख से) कहते हुए सुना है—'नीरोग रहना श्रेष्ठ लाभ है, निर्वाण सर्वोत्तम सुख है'; भो गौतम! वह आपके कथन से मेल खा रहा है।"

"मागन्दिय! तुमने जो अपने पूर्वगामी...से सुना है—'नीरोग रहना...सुख है', इस कथन में 'आरोग्य' और 'निर्वाण' क्या है?"

ऐसा पूछे जाने पर, मागन्दिय परिव्राजक ने अपने शरीर को हाथ से छुआ और कहा—'भो गौतम! यह वह 'आरोग्य' है, यह वह 'निर्वाण' है। भो गौतम! इस समय मैं नीरोग एवं सुखी हूँ, मुझे कोई रोग नहीं है।"

११. "सेय्यथापि, मागण्डिय, जच्चन्धो पुरिसो; सो न पस्सेय्य कण्ह-सुक्कानि रूपानि, न पस्सेय्य नीलकानि रूपानि, न पस्सेय्य लोहितकानि रूपानि, न पस्सेय्य मञ्जिट्ठकानि रूपानि, न पस्सेय्य समविसमं, न पस्सेय्य तारकरूपानि, न पस्सेय्य चन्दिय-सुरिये। सो सुणेय्य चक्खुमतो भास-मानस्स—'छेकं वत, भो, ओदातं वत्थं अभिरूपं निम्मलं सुची'' [B. 177] ति! सो ओदातपरियेसनं चरेय्य। तमेनं अञ्ञतरो पुरिसो तेलमसिकतेन साहुळिचीरेन वञ्चेय्य—'इदं ते, अम्भो पुरिस, ओदातं वत्थं अभिरूपं निम्मलं सुची' ति। सो तं पटिग्गण्हेय्य, पटिग्गहेत्वा पारुपेय्य, [N. 207] पारुपेत्वा अत्तमनो अत्तमनवाचं निच्छारेय्य—'छेकं वत, भो, ओदातं वत्थं अभिरूपं निम्मलं सुची' ति!

"तं किं मञ्ञसि, मागण्डिय, अपि नु सो जच्चन्धो पुरिसो जानन्तो पस्सन्तो अमुं तेलमसिकतं साहुळिचीरं पटिग्गण्हेय्य, पटिग्गहेत्वा पारुपेय्य, पारुपेत्वा अत्तमनो अत्तमनवाचं निच्छारेय्य—'छेकं वत भो, ओदातं वत्थं अभिरूपं निम्मलं सुची' ति उदाहु चक्खुमतो सद्धाया" ति?

"अजानन्तो हि, भो गोतम, अपस्सन्तो सो जच्चन्धो पुरिसो अमुं तेल-मसिकतं साहुळिचीरं पटिग्गण्हेय्य, पटिग्गहेत्वा पारुपेय्य, पारुपेत्वा अत्तमनो अत्तमनवाचं निच्छारेय्य—'छेकं वत, भो, ओदातं वत्थं अभिरूपं निम्मलं सुची' ति, चक्खुमतो सद्धाया" ति।

---

११. "मागन्दिय! जैसे कोई जन्म से अन्धा पुरुष हो; वह न तो काला-सफेद रूप (रंग) देख सके, न नीला..., न लाल..., न मँजीठ रंग देख सके, न ऊबड़-खाबड़ (सम-विषम) देख सके, न तारे और न चाँद-सूरज देख सके। वह किसी आँख वाले को कहते हुए सुने—'श्वेतवस्त्र मनोहर होता है और सुन्दर तथा साफ-सुथरा भी।' वह श्वेत वस्त्र की खोज में निकले। तब उसे कोई धूर्त पुरुष धोखा देकर तेल से चिकटे, काले, गन्दे ऊनी वस्त्र को हाथ में देकर कहे—'अरे भाई! यह है वह साफ-सुथरा और निर्मल वस्त्र, जिसकी तुम्हें खोज थी'। वह (जन्मान्ध पुरुष) उस (वस्त्र) को ले ले, लेकर पहने, पहनकर प्रसन्न हो प्रसन्नतायुक्त वाणी बोले—'अहा! यह है वह श्वेत वस्त्र; जो साफ-सुथरा, निर्मल और मनोहर है'!

"तो क्या मानते हो, मागन्दिय! क्या वह जात्यन्ध पुरुष जानता-समझता इस तेल से चिकटे काले गन्दे ऊनी वस्त्र को ले लेगा...मनोहर है' कहेगा? या आँखवाले की कही बात मानकर ही?"

"भो गौतम! वह जन्मान्ध पुरुष उस आँख वाले की बात पर विश्वास कर,

"एवमेव खो, मागण्डेय, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजको अन्धा अचक्खुका अजानन्ता आरोग्यं, अपस्सन्ता निब्बानं, अथ च पनिमं गाथं भासन्ति—

'आरोग्यपरमा लाभा, निब्बानं परमं सुखं' ति।

"पुब्बकेहेसा, मागण्डिय, अरहन्तेहि सम्मासम्बुद्धेहि गाथा भासिता—

आरोग्यपरमा लाभा, निब्बानं परमं सुखं'।
अट्ठङ्गिको च मग्गानं, खेमं अमतगामिनं' ति॥

१२. "सा एतरहि अनुपुब्बेन पुथुज्जनगता। अयं खो पन, मागण्डिय, कायो रोगभूतो गण्डभूतो सल्लभूतो अघभूतो आबाधभूतो, सो त्वं इमं कायं रोगभूतं गण्डभूतं सल्लभूतं अघभूतं आबाधभूतं—'इदं तं, भो गोतम, आरोग्यं, इदं तं निब्बानं' ति वदेसि। तं हि ते, मागण्डिय, अरियं चक्खु नत्थि येन त्वं अरियेन चक्खुना आरोग्यं जानेय्यासि, निब्बानं पस्सेय्यासी" ति।

[N. 208] "एवं पसन्नो अहं भोतो गोतमस्स ! पहोति मे भवं गोतमो तथा धम्मं देसेतुं यथाहं आरोग्यं जानेय्यं, निब्बानं पस्सेय्यं" ति।

[B. 178] १३. "सेय्यथापि, मागण्डिय जच्चन्धो] पुरिसो; सो न

उसे मानकर बिना जाने बिना समझे उस तेल से चिकटे काले गन्दे ऊनी वस्त्र को ले'''मनोहर है'—ऐसा कहता है।"

"इसी तरह, मागन्दिय ! अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित परिव्राजक जो कि अन्धे, अचक्षुष्क (बुद्धिहीन), बेसमझ (विवेकरहित) हैं और आरोग्य एवं निर्वाण की वास्तविकता के बारे में कुछ नहीं जानते, और उनकी प्रशंसा में यह उपर्युक्त गाथा कहते रहते हैं'—'आरोग्य'''परम सुख है'।

"मागन्दिय ! पहले के ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्धों ने यह गाथा कही थी—

'आरोग्य रहना श्रेष्ठ लाभ'''क्षेमकर है।'

१२. उसी पारम्परिक प्राप्त गाथा को आज के साधारण जनों ने भी कहना शुरू कर दिया। (परन्तु) मागन्दिय ! यह काया तो नाना व्याधिग्रस्त है, नाना व्रणमय है, इसमें तरह-तरह के रोग, फोड़े-फुन्सी, पाप या स्थायी व्याधियाँ घर किये रहती हैं और इस ऐसी'''तू आरोग्य मन्दिर कह रहा है। मागन्दिय ! (इसमें तेरा दोष नहीं है) तेरे पास तो वह आर्यज्ञानचक्षु ही नहीं है, जिसके सहारे तू 'आरोग्य' को सही ढंग से जान सके और निर्वाण को देख सके।"

"भो गौतम ! मैं (आपकी कही बातें सुनकर) आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धावान् हो गया हूँ, भो गौतम ! क्या ही अच्छा हो कि आप मुझे इस तरह धर्मोपदेश करें कि मैं आरोग्य को यथातथ रूप (सही ढंग) से जान सकूँ एवं निर्वाण को भी पहचान सकूँ।"

पस्सेय्य कन्हसुक्कानि रूपानि, न पस्सेय्य नीलकानि रूपानि, न पस्सेय्य पीतकानि रूपानि, न पस्सेय्य लोहितकानि रूपानि, न परसेय्य मञ्जिट्ठकानि रूपानि, न पस्सेय्य समविसमं, न पस्सेय्य तारकरूपानि, न पस्सेय्य चन्दिम-सुरिये। तस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता भिसक्कं सल्लकत्तं उपट्ठापेय्युं। तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो भेसज्जं करेय्य। सो तं भेसज्जं आगम्म न चक्खूनि उप्पादेय्य, न चक्खूनि विसोधेय्य। तं किं मञ्ञसि, मागण्डिय, ननु सो वेज्जो यावदेव किलमथस्स विघातस्स भागी अस्सा" ति ?

"एवं भो गोतम"।

"एवमेव खो, मागण्डिय, अहं चेव ते धम्मं देसेय्यं—'इदं तं आरोग्यं, इदं तं निब्बानं' ति, सो त्वं आरोग्यं न जानेय्यासि, निब्बानं न पस्सेय्यासि। सो ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा" ति।

"एवं पसन्नो अहं भोतो गोतमस्स। पहोति मे भवं गोतमो [R. 511] तथा धम्मं देसेतुं यथाहं आरोग्यं जानेय्यं, निब्बानं पस्सेय्यं" ति।

१४. "सेय्यथापि, मागण्डिय, जच्चन्धो पुरिसो; सो न पस्सेय्य कण्हसुक्कानि रूपानि, न पस्सेय्य नीलकानि रूपानि, न पस्सेय्य पीतकानि रूपानि, न पस्सेय्य लोहितकानि रूपानि, न पस्सेय्य मञ्जिट्ठकानि रूपानि, न पस्सेय्य समविसमं, न पस्सेय्य तारकरूपानि, न पस्सेय्य चन्दिम-सुरिये। सो सुणेय्य चक्खुमतो भासमानस्स—'छेकं वत, भो, ओदातं वत्थं

---

१३. "मागन्दिय! जैसे कोई जन्मान्ध पुरुष हो; वह न तो काला-सफेद रूप देख सके…पूर्ववत्…न चाँद-सूरज देख सके। उसके साथी-सहायक या बन्धु-बान्धव शल्यचिकित्सक वैद्य को लावें। वह शल्यचिकित्सक वैद्य उसकी (आँखों की) चिकित्सा करे। (परन्तु) वह उस चिकित्सा से न तो उसकी आँखों में ज्योति ला सके, न उसकी आँखों का रोग ही मिटा सके। तो क्या मानते हो मागन्दिय! वह वैद्य केवल हैरानी, परेशानी का ही हिस्सेदार (भागी) होगा न?"

"हाँ, भो गौतम! ऐसा ही है।"

"इसी तरह, मागन्दिय! यदि मैं तुम्हें धर्मोपदेश करूँ कि 'यह वह आरोग्य है, यह वह निर्वाण है', परन्तु फिर भी तुम उस आरोग्य को न जान सको, निर्वाण को न देख सको; तो यह मेरी ही हैरानी, परेशानी (पीड़ा) होगी।"

"भो गौतम! मैं आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धावान्…निर्वाण को भी पहचान सकूँ।"

१४. "मागन्दिय! जैसे कोई जन्मान्ध पुरुष हो; वह न तो काला-सफेद रूप देख सके…पूर्ववत्…न चाँद-सूरज को देख सके। वह किसी आँखवाले को यह

अभिरूपं निम्मलं सुची' ति ! सो ओदातपरियेसनं चरेय्य। तमेनं अञ्ञतरो पुरिसो तेलमसिकतेन साहुळिचीरेन वञ्चेय्य—'इदं ते, अम्भो पुरिस, ओदातं वत्थं अभिरूपं निम्मलं सुची' ति। सो तं पटिग्गण्हेय्य, पटिग्गहेत्वा पारुपेय्य। तस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता भिसक्कं सल्लकत्तं उपट्ठापेय्युं। तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो भेसज्जं करेय्य—विरेचनं अधोविरे-
[N. 209] चनं अञ्जनं पच्चञ्जनं नत्थुकम्मं। सो तं भेसज्जं आगम्म चक्खूनि उप्पादेय्य, चक्खूनि विसोधेय्य। तस्स सह चक्खुप्पादा यो अमुस्मिं तेलमसिकते साहुळिचीरे छन्दरागो सो पहीयेथ। तं च नं पुरिसं अमित्ततो पि दहेय्य, पच्चत्थिकतो पि दहेय्य, अपि च जीविता वोरोपेतब्बं मञ्ञेय्य—'दीघरत्तं वत, भो, अहं इमिना पुरिसेन तेलमसिकतेन साहुलिचीरेन निकतो वञ्चितो पलुद्धो—इदं ते अम्भो पुरिस, ओदात वत्थं अभिरूपं निम्मलं सुची' ति। एवमेव खो, मागण्डिय, अहं चेव ते धम्मं देसेय्यं—'इदं तं आरोग्यं, इदं तं निब्बानं' ति। सो त्वं आरोग्यं जाने-
[B. 179] य्यासि, निब्बानं पस्सेय्यासि। तस्स ते सह चक्खुप्पादा यो

कहते हुए सुने…पूर्ववत्…वह उसको ले ले, लेकर पहन ले। तब उसके साथी-सहायक या बन्धु-बान्धव किसी शल्यचिकित्सक वैद्य को लावें। वह वैद्य उसकी चिकित्सा प्रारम्भ करे—(वह उसे) ऊर्ध्व निरेचन (वमन) करावे और अधो-विरेचन (जुलाब) भी, अंजन, प्रत्यंजन (सुरमा) उसकी आँख में डाले, नस्यकर्म भी करे। वह वैद्य, इन चिकित्साओं के सहारे, उस जन्मान्ध के नेत्रों में ज्योति उत्पन्न कर दे, और नेत्रविकार को समूल नष्ट कर दे। यों उस जन्मान्ध के नेत्रों में ज्योति उत्पन्न होते ही, वह उस तेल से चिकटे, मैले, गन्दे ऊनी वस्त्र के प्रति ममत्व (राग) प्रहीण कर लेता है। और वह उस वंचक (धोखा देने वाले) पुरुष को अपना अमित्र (विरोधी) और शत्रु (प्रत्यर्थिक) मानने लगे तथा उसके प्राण लेने की इच्छा करता हुआ यह कहे—'अरे ! इस वंचक पुरुष ने बहुत दिनों तक तेल से चिकटे मैले गन्दे ऊनी वस्त्र से वंचित किया है, धोखा दिया है कि अरे भाई ! यह साफ-सुथरा, सुन्दर, निर्मल, मनोहर श्वेत वस्त्र है'। इसी तरह, मागन्दिय ! मैं तुम्हें धर्मोपदेश करूँ कि 'यह वह आरोग्य है, यह वह निर्वाण है'। उससे तुम आरोग्य को भलीभाँति जान सकोगे निर्वाण को भलीभाँति देख सकोगे। तब उस ज्ञानचक्षु के उत्पन्न होते ही तेरा जो पाँच उपादानस्कन्धों में ममत्व, स्नेह (छन्दराग) है, वह नष्ट हो जाय; और तुझे यह भान होने लगे—'अरे ! बहुत समय से मैं इस अपने चित्त द्वारा धोखा-धड़ी में फँसाया जाता रहा हूँ। उससे मैं भी ग्रहण किये गये रूप को ही (सब कुछ समझता हुआ) अपना मान बैठा था,

पञ्चसुपादानक्खन्धेसु छन्दरागो सो पहीयेथ; अपि च ते एवमस्स--'दीघरत्तं वत, भो, अहं इमिना चित्तेन निकतो पलुद्धो। अहं हि रूपं येव उपादियमानो उपादियिं, वेदनं येव उपादियमानो उपादियिं, सञ्ञं येव उपादियमानो उपादियिं, सङ्खारे येव उपादियमानो उपादियिं, विञ्ञाणं येव उपादियमानो उपादियिं। तस्स मे उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपा- [R. 512] यासा सम्भवन्ति; एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होती'' ति।

''एवं पसन्नो अहं भोतो गोतमस्स! पहोति मे भवं गोतमो तथा धम्मं देसेतुं यथाहं इमम्हा आसना अनन्धो वुट्ठहेय्यं'' ति।

१५. ''तेन हि त्वं, मागण्डिय, सप्पुरिसे भजेय्यासि। यतो खो त्वं, मागण्डिय, सप्पुरिसे भजिस्ससि ततो त्वं, मागण्डिय, सद्धम्मं सोस्ससि; यतो खो त्वं, मागण्डिय, सद्धम्मं सोस्ससि ततो त्वं, मागण्डिय, धम्मानुधम्मं पटिपज्जिस्ससि; यतो खो त्वं, मागण्डिय, धम्मानुधम्मं पटिपज्जिस्ससि ततो त्वं, मागण्डिय, सामं येव ञस्ससि, सामं दक्खिस्ससि—इमे रोगा गण्डा सल्ला; इध रोगा गण्डा सल्ला अपरिसेसा निरुज्झन्ति। तस्स मे उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा

ग्रहण की जाती हुई वेदना को ही···ग्रहण की जाती हुई सञ्ज्ञा को ही···ग्रहण किये गये संस्कारों को ही·· ग्रहण किये गये विज्ञानों को ही अपना मान बैठा था। मेरे उस (उन सबको) अपना मान बैठने (उपादान) से भव (जन्म लेने की इच्छा), भव के कारण जाति (जन्म), जाति के कारण जरा-मरण, शोकपरिदेव, दुःखदौर्मनस्य, उपायास (परेशानी) उत्पन्न होता रहा; इस प्रकार इस केवल दुःखस्कन्ध की उत्पत्ति होती है।''

''भो गौतम! मैं आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धावान् हो गया हूँ, भो गौतम! अच्छा हो आप मुझे ऐसा धर्मोपदेश करें कि मैं इस आसन से ज्ञानचक्षु प्राप्त करके ही उठूँ।''

१५. ''तो तुम, मागन्दिय! सत्पुरुषों को सेवा करो, यदि तूँ, मागन्दिय! सत्पुरुषों की सेवा करेगा तो तूँ उनसे सदुपदेश प्राप्त करेगा; जब तूँ मागन्दिय! उस सदुपदेश के सहारे धर्म की गहराई तक पहुँच जायगा तो तदनुसार आचरण करेगा; मागन्दिय! धर्मानुसार आचरण करते-करते एक दिन स्वयं ही उस धर्म की सूक्ष्मता को जान लेगा, समझ लेगा—ये सभी रोग, व्रण, और शल्य (काँटा) के समान हैं; रोग, व्रण और शल्य सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं। तब तेरे उपादान न करने से भवनिरोध, भवनिरोध से जातिनिरोध, जातिनिरोध से जरा-मरण-शोक-

जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति; एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति" ति।

४. मागण्डियस्स पब्बज्जा

[N. 210] १६. एवं वुत्ते, मागण्डियो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेव भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं [B. 180] भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं" ति।

"यो खो, मागण्डिय, अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति पब्बज्जं, आकङ्खति उपसम्पदं, सो चत्तारो मासे परिवसति; चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय। अपि च मेत्थ पुग्गलवेमत्तता विदिता" ति।

"सचे, भन्ते, अञ्ञतित्थियपुब्बा इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खन्ता पब्बज्जं, आकङ्खन्ता उपसम्पदं चत्तारो मासे परिवसन्ति, चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय;

परिदेव-दुःख-दौर्मनस्य-उपायास भी निरुद्ध हो जाते हैं; इस तरह इस केवल दुःख-स्कन्ध का निरोध होता है।"

४. मागन्दिय को प्रव्रज्या

१६. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर मागन्दिय परिव्राजक भगवान् से यों बोला—"आश्चर्य है, भो गौतम! आश्चर्य है। भो गौतम! जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे, ढके को खोल दे, भटके हुए को रास्ता दिखा दे, अन्धकार में तेल का दीपक लेकर खड़ा हो जाय कि आँख वाले लोग रूप देख सकें; इसी तरह आप गौतम ने अनेक उदाहरणों से धर्म की गुत्थियाँ सुलझा दीं। यह मैं आप गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की और भिक्षुसङ्घ की भी। क्या ही अच्छा हो कि मैं आप गौतम से प्रव्रज्या पाऊँ, उपसम्पदा पाऊँ।"

"मागन्दिय! जो अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित परिव्राजक…पूर्ववत्[1]…।

"यदि, भन्ते! अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित परिव्राजक को इस धर्मविनय में… पूर्ववत्[1]…उपसम्पन्न करे।"

१-१. द्र०—पीछे पृ० ९२३–९२५।

अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि, चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु, उपसम्पा देन्तु भिक्खुभावाया" ति। [R. 513]

अलत्थ खो मागण्डि यो परिब्बाजको भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा मागण्डियो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव--यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा मागण्डियो अरहतं अहोसी ति॥

मागन्दिय परिव्राजक ने भगवान् से प्रव्रज्या, उपसम्पदा पा ली। उपसम्पन्न होने के बाद जल्दी ही आयुष्मान् मागन्दिय एकाकी, एकान्तवासी··· आत्मसंयमी हो विहरते शीघ्रही···अनुपम ब्रह्मचर्य का फल इसी जन्म में···प्राप्त कर विहरने लगे··· आयुष्मान् मागन्दिय अर्हतों में से एक हुए॥

मागण्डियसुत्त समाप्त॥

२६. सन्दकसुत्तं

[N. 211] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। तेन खो पन समयेन सन्दको परिब्बाजको पिलक्खगुहायं पटिवसति महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं पञ्चमत्तेहि परिब्बाजकसतेहि। अथ खो आयस्मा आनन्दो सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो भिक्खू आमन्तेसि--"आयामावुसो, येन देवकतसोब्भो तेनुपसङ्कमिस्साम गुहादस्सनाया" ति। "एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसुं। अथ खो आयस्मा आनन्दो सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं येन देवकतसोब्भो तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन सन्दको परिब्बाजको [B. 181] महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं निसिन्नो होति उन्नादिनिया उच्चासद्दमहासद्दाय अनेकविहितं तिरच्छानकथं कथेन्तिया, सेय्यथीदं--राजकथं चोरकथं महामत्तकथं सेनाकथं भयकथं युद्धकथं अन्नकथं पानकथं वत्थकथं सयनकथं मालाकथं गन्धकथं ञातिकथं यानकथं गामकथं निगमकथं नगरकथं जनपदकथं इत्थिकथं सूरकथं विसिखाकथं कुम्भट्ठानकथं पुब्बपेतकथं [R. 514] नानत्तकथं लोकक्खायिकं समुद्दक्खायिकं इतिभवाभवकथं इति

---

२६. सन्दकसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय सन्दक परिव्राजक पाँच सौ परिव्राजकों की विशाल संख्या के साथ (कौशाम्बी नगरी के पास ही) प्लक्षगुफा में निवास करता था। तब आयुष्मान् आनन्द ने सायंकाल, ध्यानभावना से उठ, भिक्षुओं से कहा—"आओ, आयुष्मानो! जहाँ 'देवकृत (प्राकृतिक) जलकुण्ड' है, वहाँ (प्लक्ष) गुफा देखने के लिये चलें।" "ठीक है, आयुष्मन्"—कहकर भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया। इसके बाद आयुष्मान् आनन्द बहुत से भिक्षुओं के साथ जहाँ 'देवकृत जलकुण्ड' था, वहाँ पहुँचे। उस समय सन्दक परिव्राजक विशाल परिव्राजक-सभा में घिरा बैठा था, वहाँ परिव्राजकों की निरर्थक बातों से बहुत अधिक शोरगुल, हल्ला-गुल्ला व कोलाहल हो रहा था, उनमें से कोई राजा की, कोई चोरों की, कोई शराबियों की, कोई सेना की, कोई भयोत्पाद की, कोई युद्ध की, कोई खाने की, कोई पीने की, कोई कपड़ों की, कोई शय्या की, कोई माला की, कोई गन्ध (इत्र-फुलेल) की, कोई अपने सम्बन्धियों की, कोई यान (सवारी) की, कोई गाँव की, कोई कस्बे की, कोई नगर की, कोई जनपद की, कोई स्त्रियों की, कोई अपनी शूर-वीरता की, कोई चौराहे की, कोई पनघट की, कोई पुराने भूत-प्रेतों की, कोई पूर्वजन्म की, कोई देशाटन की, कोई समुद्रयात्रा की या कोई हुई-अनहुई, निरर्थक

वा। अद्दसा खो सन्दको परिब्बाजको आयस्मन्तं आनन्दं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान सकं परिसं सण्ठपेसि--"अप्पसद्दा भोन्तो होन्तु, मा भोन्तो सद्दमकत्थ; अयं समणस्स गोतमस्स सावको आगच्छति समणो आनन्दो। यावता खो पन समणस्स गोतमस्स सावका कोसम्बियं पटिवसन्ति, अयं तेसं अञ्ञतरो समणो आनन्दो। अप्पसद्दकामा खो पन ते आयस्मन्तो अप्पसद्दविनीता अप्पसद्दस्स वण्णवादिनो, अप्पेव नाम अप्पसद्दं परिसं विदित्वा उपसङ्कमितब्बं मञ्ञेय्या" ति। अथ खो ते परिब्बाजका तुण्ही अहेसुं।

२. अथ खो आयस्मा आनन्दो येन सन्दको परिब्बाजको [N. 212] तेनुपसङ्कमि। अथ खो सन्दको परिब्बाजको आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच--"एतु खो भवं, आनन्द, स्वागतं भोतो आनन्दस्स। चिरस्सं खो भवं आनन्दो इमं परियायमकासि यदिदं इधागमनाय। निसीदतु भवं आनन्दो, इदमासनं पञ्ञत्तं" ति। निसीदि खो आयस्मा आनन्दो पञ्ञत्ते आसने। सन्दको पि खो परिब्बाजको अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो सन्दकं परिब्बाजकं आयस्मा आनन्दो एतदवोच—"कायनुत्थ, सन्दक, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना, का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता" ति?

बातें (जिनका आध्यात्मचिन्तन से कोई सम्बन्ध नहीं था) कर रहे थे। (इसी बीच) सन्दक परिव्राजक ने आयुष्मान् आनन्द को दूर से ही आते देखा। देखकर अपनी परिषद् को सावधान किया—"आप लोग थोड़ा धीरे-धीरे बात करें, इतना जोर से न बोलें; (देख नहीं रहे हो) यह श्रमण गौतम का शिष्य श्रमण आनन्द आ रहा है। कौशाम्बी में श्रमण गौतम के जितने भी शिष्य रहते हैं, उनमें से यह श्रमण आनन्द एक (विशेष) है। ये आयुष्मान् हल्ला-गुल्ला पसन्द नहीं करते, ये स्वयं दूसरों से थोड़े शब्दों में बात करते हैं और उनसे भी थोड़े ही शब्दों में बात सुनना चाहते हैं; हो सकता है, ये हमारी परिषद् को अल्पशब्द (शान्त) समझकर यहाँ आना उचित समझें।" तब वे परिव्राजक चुप (शान्त) हो गये।

२. इसके बाद आयुष्मान् आनन्द जहाँ सन्दक परिव्राजक था, वहाँ पहुँचे। तब सन्दक परिव्राजक ने आयुष्मान् आनन्द से यों कहा—"आप आनन्द! पधारें, आप आनन्द का स्वागत है। आप आनन्द ने बहुत दिनों के बाद इधर आने का मौका निकाला। आप आनन्द! विराजें, यह आसन बिछा है।" आयुष्मान् आनन्द बिछे आसन पर बैठ गये। सन्दक परिव्राजक भी (आयुष्मान् आनन्द से) नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सन्दक परिव्राजक से आयुष्मान् आनन्द यों बोले—"सन्दक! इस समय आप लोगों में क्या चर्चा चल रही थी, और कौन बात करते-करते बीच में ही रोक दी?"

"तिट्ठतेसा भो आनन्द, कथा याय मयं एतरहि कथाय सन्निसिन्ना। नेसा भोतो आनन्दस्स दुल्लभा भविस्सति पच्छा पि सवनाय। साधु वत भवन्तं येव आनन्दं पटिभातु सके आचरियके धम्मिकथा" ति।

"तेन हि, सन्दक, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति।

"एवं भो" ति खो सन्दको परिब्बाजको आयस्मतो आनन्दस्स पच्च-[B. 182] स्सोसि। आयस्मा आनन्दो एतदवोच--

१. चत्तारो अब्रह्मचरियवासा

"चत्तारोमे, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अहरता सम्मासम्बुद्धेन अब्रह्मचरियवासा अक्खाता, चत्तारि च अनस्सासिकानि ब्रह्मचरियानि अक्खातानि, यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं" ति।

"कतमे पन ते, भो आनन्द, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो अब्रह्मचरियवासा अक्खाता, यत्थ विञ्ञू पुरिसो [R. 515] ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं" ति।

३. "इध, सन्दक, एकच्चो सत्था एवंवादी होति एवंदिट्ठि—'नत्थि

"भो आनन्द! उस चर्चा की बात छोड़िये, जिसमें हम अभी लगे हुए थे। आप आनन्द के लिये इसका सुनना तो बाद में भी दुर्लभ (मुश्किल) नहीं होगा। अच्छा हो, आप आनन्द अपने आचार्य द्वारा अनुमोदित धर्मचर्चा प्रारम्भ करें।"

"तो सन्दक! सुनो, अपने चित्त में ठीक से बैठा लो; मैं कहता हूँ।"

"ठीक है, श्रीमन्!"—कहकर सन्दक परिव्राजक ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया। आयुष्मान् यों बोले—

१. चार प्रकार के अब्रह्मचर्यवास (मिथ्यासाधना)

"सन्दक! उन ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध ने चार प्रकार के अब्रह्मचर्यवास (मिथ्यासाधना) कहे हैं और उसी तरह चार प्रकार के ब्रह्मचर्य भी बताये हैं जो कि जिज्ञासु को निर्वाण तक पहुँचाने के लिये किसी भी तरह का आश्वासन नहीं देते, अतः समझदार आदमी को इनका आचरण नहीं करना चाहिये; क्योंकि इनके आचरण से उनका निर्वाण व कुशल धर्मों तक पहुँच पाना असम्भव है।"

"भो आनन्द! उन ज्ञानी भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध ने कौन से चार अब्रह्मचर्यवास कहे हैं⋯असम्भव है?"

२. "सन्दक! यहाँ कोई शास्ता[1] (आचार्य) (तत्त्वचिन्तन के विषय में)

---

१. अजित केशकम्बली।

दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकटदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना [N. 213] ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ति। चातुम्महाभूतिको अयं पुरिसो यदा कालं करोति, पठवी पठवीकायं अनुपेति अनुपगच्छति, आपो आपोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, तेजो तेजोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, वायो वायोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, आकासं इन्द्रियानि सङ्कमन्ति। आसन्दिपञ्चमा पुरिसा मतं आदाय गच्छन्ति, यावाळाहना पदानि पञ्ञायन्ति, कापोतकानि अट्ठीनि भवन्ति, भस्सन्ताहुतियो दत्तुपञ्ञत्तं यदिदं दानं, तेसं तुच्छा मुसा विलापो ये केचि अत्थिकवादं वदन्ति, बाले च पण्डिते च कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति, न होन्ति परं मरणा' " ति।

"तत्र, सन्दक, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति--'अयं खो भवं

ऐसे मत या धारणा वाला होता है--'न दिये हुए (दान) का, न किये यज्ञ का, न किये हवन का और न सुकृत दुष्कृत कर्मों का कोई फल (परिणाम) है, (उसके मत में) न यह लोक है, न परलोक है, न माता है, न पिता है, न ऐसे कोई प्राणी हैं, जो अयोनिज (देवयोनि) में उत्पन्न होते हों, न लोक में ऐसे सम्यक्दृष्टि या सम्यक्कर्मा श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो इस लोक या परलोक को स्वयं जान व साक्षात् कर (दूसरों को उसके बारे में) बता सकें। (सचाई तो यह है कि) चार महाभूतों से बने इस मानव शरीर का जब पात (मरण) होता है, तब इसका पृथ्वी तत्व पृथ्वी में, जल तत्त्व जल में, तेज (अग्नि) तत्त्व तेज में, वायु तत्त्व वायु में मिल जाता है, पहुँच जाता है, (और इसकी) इन्द्रियाँ आकाश में चली जाती हैं। चार आदमी उस मृत (शरीर) को बाँस से बनी अर्थी पर (लिटाकर श्मशान) ले जाते हैं, (तब उसके) जलने तक तो कुछ मानवचिन्ह दिखाई देते हैं, जलने पर उसकी हड्डियाँ कबूतर के रंग (धूसर वर्ण) की तरह हो जाती हैं, तब उसके लिये सम्बन्धियों द्वारा दी गयी आहुतियाँ भस्म बनकर रह जाती हैं, दिया हुआ दान लेने वाले तक पहुँच कर रह जाता है, (उनका कहना है कि) जो लोग इस देहपात के बाद भी आस्तिकवाद (प्राणी के अस्तित्व) की बात करते हैं, उनका यह कथन तुच्छ, निःसार एवं मिथ्याप्रलाप मात्र है, इस देहपात के बाद मूर्खों और पण्डितों के शारीरिक भेद समाप्त हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं, मृत्यु के बाद उनका कोई अस्तित्त्व नहीं रहता'।"

"सन्दक! वहाँ कोई समझदार आदमी यों सोचता है—'(हमारा) यह

सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि--नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकट-दुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ति। चातुम्महाभूतिको अयं पुरिसो यदा कालं करोति, [B. 183] पठवी पठवीकायं अनुपेति अनुपगच्छति, आपो आपोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, तेजो तेजोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, वायो वायोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, आकासं इन्द्रियानि सङ्कमन्ति। आसन्दिपञ्चमा पुरिसा मतं आदाय गच्छन्ति, यावाळाहना पदानि पञ्ञायन्ति, कापोतकानि अट्ठीनि भवन्ति, भस्सन्ताहुतियो, दत्तुपञ्ञत्तं यदिदं दानं, तेसं तुच्छा मुसा विलापो ये केचि अत्थिकवादं वदन्ति, बाले च पण्डिते च कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति न होन्ति परं मरणा' ति। सचे इमस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अकतेन मे एत्थ कतं, अवुसितेन मे एत्थ वुसितं। उभो पि मयं एत्थ समसमा सामञ्ञं पत्ता, यो चाहं न वदामि उभो कायस्स भेदा उच्छिज्जिस्साम, विनसिस्साम, न भविस्साम परं मरणा ति। अतिरेकं खो पनिमस्स भोतो सत्थुनो नग्गियं मुण्डियं उक्कुटिकप्पधानं केसमस्सु-[N. 214] लोचनं योहं पुत्तसम्बाधसयनं अज्झावसन्तो कासिकचन्दनं

शास्ता ऐसे मत या धारणा वाला है--'न दिये हुए (दान) का, न किये यज्ञ... मृत्यु के बाद उनका कोई अस्तित्त्व नहीं रहता'। यदि इन माननीय शास्ता का यह मत सही है तो बिना कुछ किये ही मैंने समग्र (पुण्य) कर्म कर लिया, बिना साधना किये ही अपना ब्रह्मचर्यवास पूर्ण कर लिया। हम दोनों ही (गुरु-शिष्य) समानरूप से श्रामण्यभाव (मोक्ष) प्राप्त कर चुके, जबकि मैं यह नहीं कहता कि हम दोनों ही इस देहपात के बाद समाप्त हो जायेंगे, विनष्ट हो जायेंगे, मरणान्तर हम दोनों का कोई अस्तित्त्व नहीं रहेगा। और (इस मत के मानने पर) मेरे लिये अतिरिक्त बात यह होगी कि आप नग्न, मुंडित, केष-श्मश्रु रहित, निरन्तर उकडूं (उक्कुटिक) बैठे रहने वाले शास्ता के समान ही मुझे भी मरणानन्तर समान गति मिल जायगी, जबकि मैं (आपकी साधना के विपरीत) दिन-रात बाल-बच्चों से घिरा हुआ, कोमल शय्याओं का उपयोग करता, काशी के चन्दन का लेप करता, माला-गन्ध धारण करता, सोना-चाँदी का यथेच्छ उपभोग करता हुआ जीवनयापन कर रहा हूँ। अतः मैं क्या लाभ समझकर, क्या फायदा देखकर, इन (नास्तिकवादी) शास्ता के पास ब्रह्मचर्य पालन करूँ, अतः 'इन शास्ता का बताया यह मार्ग तो अब्रह्मचर्यवास ही है'--यह जानकर, उस (शास्ता द्वारा) उपदिष्ट ब्रह्मचर्य (के पालन) से

पच्चनुभोन्तो मालागन्धविलेपनं धारेन्तो जातरूपरजतं सादियन्तो इमिना भोता सत्थारा समसमगतिको भविस्सामि। अभिसम्परायं सोहं किं जानन्तो किं पस्सन्तो इमस्मिं सत्थरि ब्रह्मचरियं चरिस्सामि, 'सो अब्रह्मचरियवासो अयं' ति—इति विदित्वा तस्मा ब्रह्मचरिया निब्बिज्ज पक्कमति। अयं खो, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन पठमो अब्रह्मचरियवासो अक्खातो, यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं [R. 516] न वसेय्य, वसन्त चो नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

४. "पुन च परं, सन्दक, इधेकच्चो सत्था एवंवादी होति एवंदिट्ठि—'करोतो कारयतो छिन्दतो छेदापयतो पचतो पाचापयतो सोचयतो सोचापयतो किलमतो किलमापयतो फन्दतो फन्दापयतो पाणमतिपातयतो अदिन्नं आदियतो सन्धिं छिन्दतो निल्लोपं हरतो एकागारिकं करोतो परिपन्थे तिट्ठतो परदारं गच्छतो मुसा भणतो करोतो न करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा पठविया पाणे एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं करेय्य, नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमो। दक्खिणं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य हनन्तो घातेन्तो छिन्दन्तो छिन्दापेन्तो पचन्तो पचापेन्तो नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमो। उत्तरं चे [B. 184]

दूर चला जाता है। सन्दक! उन ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध ने यह प्रथम अब्रह्मचर्यवास बताया है, जहाँ समझदार आदमी सामर्थ्य रहते इस ब्रह्मचर्य का पालन न करे, (यदि किसी विवशता में वह ऐसे शास्ता के सम्प्रदाय में पहुँच ही जाय तो तदनुसार किसी प्रकार की आराधना न करे) क्योंकि ऐसी साधना से वह निर्वाण या कुशल धर्मों को नहीं पा सकता। (१)

४. "सन्दक! और फिर यहाँ कोई अन्य शास्ता[1] यह मत या धारणा रखने वाला होता है--'कर्म करते-कराते, काटते-कटवाते, (मांस) पकाते-पकवाते, शोक करते-कराते, दूसरों को परेशान करते-कराते, जाल में फँसते-फंसाते, प्राणि हिंसा करते, चोरी करते, सेंध लगाते, लूट-पाट करते, घर लूटते, रहजनी करते, परायी स्त्री से व्यभिचार करते, झूठ बोलते हुए भी पाप नहीं किया जाता। भले ही छुरे की तरह तेज धार वाले चक्र से जो इस पृथ्वी के सभी प्राणियों को मारकर, एक मांसराशि या एक मांसपुंज बना दे तो भी उस कारण पाप नहीं होगा, न किसी पाप का उदय होगा। कोई वधक गङ्गा के दक्षिण तीर पर (एक सिरे से दूसरे सिरे तक) मारता-मरवाता, छेदता-छिदवाता, पकाता-पकवाता हुआ जाय तो उस कारण वह पाप का भागी नहीं होगा, न उसे किसी पाप का उदय होगा। (या फिर) कोई गङ्गा के उत्तर तीर पर,

---

१. पूरण काश्यप।

पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य ददन्तो दापेन्तो यजन्तो यजापेन्तो नत्थि ततो-निदानं पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो। दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन नत्थि पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो' ति।

"तत्र, सन्दक, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति—अयं खो भवं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—करोतो कारयतो...पे०...सचे इमस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अकतेन मे एत्थ कतं, अवुसितेन मे एत्थ वुसितं। उभो पि मयं एत्थ समसमा सामञ्ञं पत्ता, यो चाहं न वदामि उभिन्नं कुरुतं न करीयति पापं ति। अतिरेकं खो पनिमस्स भोतो सत्थुनो नग्गियं मुण्डियं [N. 215] उक्कुटिकप्पधानं केसमस्सुलोचनं योहं पुत्तसम्बाधसयनं अज्झावसन्तो कासिकचन्दनं पच्चनुभोन्तो मालागन्धविलेपनं धारेन्तो जात-रूपरजतं सादियन्तो इमिना भोता सत्थारा समसमगतिको भविस्सामि। अभिसम्परायं सोहं किं जानन्तो किं पस्सन्तो इमस्मिं सत्थरि ब्रह्मचरियं चरिस्सामि। 'सो अब्रह्मचरियवासो अयं' ति इति विदित्वा तस्मा ब्रह्म-चरिया निब्बिज्ज पक्कमति। अयं खो, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन दुतियो अब्रह्मचरियवासो अक्खातो यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

५. "पुन च परं, सन्दक, इधेकच्चो सत्था एवंवादी होति एवंदिट्ठि—'नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय; अहेतू अप्पच्चया सत्ता

(जगह-जगह) दान देता-दिलाता, यज्ञ करता-कराता हुआ जाय तो उस कारण उसे कोई पुण्य नहीं मिलेगा, न उसके लिये कोई पुण्योदय ही होगा। दान इन्द्रियसंयम, तप और सत्य आचरण से कोई पुण्य नहीं होता, न कोई पुण्योदय ही होता है।'

"सन्दक! वहाँ समझदार आदमी यह सोचता है--'हमारा यह शास्ता ऐसे मत या ऐसी धारणा वाला है—कर्म करते-कराते...पूर्ववत्...यदि इन माननीय शास्ता का यह मत सही है तो...हम दोनों ही समान रूप से श्रामण्यभाव प्राप्त कर कर चुके, जबकि मैं यह नहीं कहता कि हम दोनों पापकर्म करने पर भी पाप नहीं करते। और (इस मत के मानने पर) मेरे लिये अतिरिक्त बात यह होगी...पूर्ववत्... ब्रह्मचर्य से दूर चला जाता है। सन्दक! उन...भगवान् ने यह द्वितीय अब्रह्मचर्य-वास बताया है...कुशल धर्मों को नहीं पा सकता। (२)

५. "सन्दक! और फिर यहाँ कोई अन्य शास्ता[1] ऐसे मत या ऐसी धारणा वाला होता है--'प्राणियों के चित्तविकारोत्पाद में न कोई हेतु है, न कोई प्रत्यय

१. मक्खलिगोसाल।

सङ्किलिस्सन्ति; नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; [B. 185] अहेतू अप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ति; नत्थि बलं, नत्थि विरियं, नत्थि पुरिसथामो, नत्थि पुरिसपरक्कमो ; सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे [R. 517] भूता सब्बे जीवा अवसा अबला अविरिया नियतिसङ्गतिभावपरिणता छस्वेवाभिजातीसु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती' ति।

"तत्र, सन्दक, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति—'अयं खो भवं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय… पे०…सचे इमस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अकतेन मे एत्थ कतं, अवुसितेन मे एत्थ वुसितं। उभो पि मयं एत्थ समसमा सामञ्ञं पत्ता, यो चाहं न वदामि उभो अहेतू अप्पच्चया विसुज्झिस्सामा ति। अतिरेकं खो पनिमस्स भोतो सत्थुनो नग्गियं मुंण्डियं उक्कुटिकप्पधानं केसमस्सुलोचनं योहं पुत्तसम्बाधसयनं अज्झावसन्तो पच्चनुभोन्तो मालागन्धविलेपनं धारेन्तो जातरूपरजतं सादियन्तो इमिना भोता सत्थारा समसमगतिको भविस्सामि। अभिसम्परायं सोहं किं जानन्तो किं पस्सन्तो इमस्मिं सत्थरि ब्रह्मचरियं चरिस्सामि। 'सो अब्रह्मचरियवासो अयं' ति—इति विदित्वा तस्मा ब्रह्म- [N. 216] चरिया निब्बिज्ज पक्कमति। अयं खो, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन ततियो अब्रह्मचरियवासो अक्खातो यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

(निमित्त); वह तो बिना किसी हेतु या प्रत्यय के ही चित्तविकार (सुख-दुःख) का अनुभव करते रहते हैं; (इसी तरह) प्राणियों की चित्तविशुद्धि में न कोई हेतु होता है, न प्रत्यय; उनकी यह चित्तविशुद्धि बिना हेतु या प्रत्यय के होती है; (इसमें) न बल की, न वीर्य की, न किसी प्रकार की दृढ़ता की और न पुरुषपराक्रम की कोई आवश्यकता है; सभी सत्त्व, सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव बिना किसी बल, वीर्य या दृढ़ता के प्रारब्ध (नियति) के वश में हो, छहों (६) योनियों (=अभिजातियों) में उत्पन्न हो, सुख-दुःख का अनुभव करते रहते हैं।'

"सन्दक! वहाँ कोई समझदार आदमी यों सोचता है—'हमारा यह शास्ता ऐसे मत या ऐसी धारणा वाला है--प्राणियों के चित्तविकारोत्पाद में न कोई हेतु… पूर्ववत्…यदि इन माननीय शास्ता का यह मत सही है तो…हम दोनों समानरूप से श्रामण्यभाव प्राप्त कर चुके, जबकि मैं यह नहीं कहता कि हम दोनों बिना हेतु बिना प्रत्यय के ही चित्तविशुद्धि प्राप्त कर लेंगे। और (इस मत के मानने पर) मेरे लिये अतिरिक्त बात यह होगी…पूर्ववत्…ब्रह्मचर्य से दूर चला जाता है। सन्दक! उन…भगवान् ने यह तृतीय अब्रह्मचर्यवास बताया है…कुशल धर्मों को नहीं पा सकता। (३)

६. "पुन च परं, सन्दक, इधेकच्चो सत्था एवंवादी होति एवंदिट्ठि—'सत्तिमे काया अकटा अकटविधा अनिम्मिता अनिम्माता वञ्झा कूटट्ठा एसिकट्ठायिट्ठिता, ते न इञ्जन्ति न विपरिणामेन्ति न अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ति नालं अञ्ञमञ्ञस्स सुखाय वा दुक्खाय वा सुखदुक्खाय वा। कतमे सत्त? पठवीकायो, आपोकायो, तेजोकायो, वायोकायो, सुखे, दुक्खे, जीवे सत्तमे—इमे सत्तकाया अकटा अकटविधा अनिम्मिता अनिम्माता वञ्झा [B. 186] कूटट्ठा एसिकट्ठायिट्ठिता, ते न इञ्जन्ति न विपरिणामेन्ति न अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ति नालं अञ्ञमञ्ञस्स सुखाय वा दुक्खाय वा सुखदुक्खाय वा। तत्थ नत्थि हन्ता वा घातेता वा सोता वा सावेता वा वा विञ्ञाता वा विञ्ञापेता वा। यो पि तिण्हेन सत्थेन सीसं छिन्दति, न न कोचि कञ्चि जीविता वोरोपेति, सत्तन्नं त्वेव कायानमन्तरेन सत्थं विवरमनुपतति। चुद्दस खो पनिमानि योनिपमुखसतसहस्सानि, सट्ठि च सतानि, छ च सतानि, पञ्च च कम्मुनो सतानि, पञ्च च कम्मानि, तीणि च कम्मानि, कम्मे च अड्ढकम्मे च, द्वट्ठिपटिपदा, द्वट्ठन्तरकप्पा, छळभिजातियो, अट्ठ पुरिसभूमियो, एकूनपञ्ञास आजीवकसते, एकूनपञ्ञास परिब्बाजकसते,

---

६. "सन्दक! और फिर यहाँ कोई अन्य शास्ता ऐसे मत या ऐसी धारणा वाला होता है—'ये सात प्रकार के काय (शरीर) न किसी के द्वारा किये जाते हैं, न इनके करने की प्रक्रिया है, न किसी के द्वारा इनका निर्माण होता है, न इनका कोई निर्माता है, ये अवध्य हैं, कूटस्थ (अचल) हैं, स्तम्भ (=इषीका) की तरह स्थिर हैं, न इनमें कोई (चलनादि) कर्म होता है, न इनमें कोई विपरिणाम (उतार-चढ़ाव) होता है, न ये एक-दूसरे को कोई बाधा (हानि) पहुँचाते हैं, ये एक-दूसरे को सुख-दुःख पहुँचाने या छीनने में समर्थ हैं। ये सात काय कौन से हैं? (१) पृथ्वीकाय, (२) जलकाय, (३) तेजकाय, (४) वायुकाय, (५) सुखकाय, (६) दुःखकाय और (७) जीव—ये सातों (काय) ही न किसी के द्वारा किये जाते हैं···पहुँचाने या छीनने में समर्थ हैं। वहाँ न मारनेवाला है, न मारने की प्रेरणा देने वाला, न कोई सुनने वाला, न सुनाने वाला, न कोई ज्ञानी है, न ज्ञान देने वाला है। जो कोई तीक्ष्ण शास्त्र से किसी का शिर काटता है, (वहाँ भी वस्तुतः कोई किसी के प्राण नहीं लेता, अपितु होता यह है कि) वह शस्त्र इन सात कायों से अलग, शून्य स्थान में गिरता है। इस लोक में मुख्य योनियाँ चौदह सौ हजार हैं, या (किसी के मत में) साठ सौ या छह सौ हैं; कर्म पाँच सौ बताये गये हैं, या फिर पाँच बताये गये हैं, कोई-कोई तीन भी मानते हैं, कोई एक या आधा ही कर्म मानते हैं, बासठ प्रतिपद, बासठ अन्तर्कल्प, छह अभिजातियाँ,

[R. 518] एकूनपञ्ञास नागावाससते, वीसे इन्द्रियसते, तिंसे निरयसते, छत्तिंस रजोधातुयो, सत्त सञ्ञीगब्भा, सत्त असञ्ञीगब्भा, सत्त निगण्ठिगब्भा, सत्त देवा, सत्त मानुसा, सत्त पिसाचा, सत्त सरा, सत्त पवुटा, सत्त पपाता, सत्त पपातसतानि, सत्त सुपिना, सत्त सुपिनसतानि, चुल्लासीति महाकप्पिनो सतसहस्सानि, यानि बाले च पण्डिते च सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति। तत्थ नत्थि इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन [N. 217] वा ब्रह्मचरियेन वा अपरिपक्कं वा कम्मं परिपाचेस्सामि, परिपक्कं वा कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तिं करिस्सामी ति। हेवं नत्थि दोणमिते सुखदुक्खे परियन्तकते संसारे, नत्थि हायनवड्ढने, नत्थि उक्कंसावकंसे। सेय्यथापि नाम सुत्तगुळे खित्ते निब्बेठियमानमेव पलेति, एवमेव बाले च पण्डिते च सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ती" ति।

"तत्र, सन्दक, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति—'अयं खो भवं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठी—सत्तिमे काया अकटा अकटविधा···पे०···सचे पन इमस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अकतेन मे एत्थ कतं, [B. 187] अवुसितेन मे एत्थ वुसितं। उभो पि मयं एत्थ समसमा सामञ्ञं पत्ता, यो चाहं न वदामि। उभो सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सामा' ति। अतिरेकं खो पनिमस्स भोतो सत्थुनो नग्गियं मुण्डियं उक्कुटिकप्पधानं

आठ पुरुष की भूमियाँ, उन्चास सौ आजीवक, उन्चास सौ परिव्राजक, उन्चास नागों के आवास, बीस सौ इन्द्रिय, तीस सौ नरक, छत्तीस रजोधातु, सात संज्ञावान गर्भ, सात असंज्ञावान् गर्भ, सात निर्ग्रन्थी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात सरोवर, सात गाँठ, सात प्रताप, सात सौ प्रताप, सात स्वप्न, सात सौ स्वप्न, चौरासी हजार महाकल्पों तक दौड़ते हुए, आवागमन में पड़, मूर्ख और पण्डित दोनों ही (अन्त में) दुःखदाय (निर्वाणप्राप्ति) कर लेंगे। वहाँ यह नहीं होगा कि मैं इस शील, व्रत, तप, धर्मसाधना द्वारा अपरिपक्व पचाऊँ या परिपक्व कर्म को भोग-भोगकर क्षीण करूँ। इस संसार में सुख या दुःख किसी एक विशेष माप से नपे-तुले ही प्राप्त होते हैं, इनका न क्षय होता है, न वर्धन और न उतार होता है न चढ़ाव। जैसे सूत का गोला फेंके जाने पर उधड़ता चलता है, वैसे ही मूर्ख और पण्डित—दोनों ही संसार के आवागमन में दौड़ते-धूपते अन्त में अपने दुःखों का क्षय कर ही लेंगे।"

"सन्दक! वहाँ समझदार आदमी यों सोचता है—'हमारा यह शास्ता ऐसे मत या ऐसी धारणा वाला है—ये सात प्रकार के काय न किसी के द्वारा किये··· पूर्ववत् ··· यदि इन माननीय शास्ता का यह मत सही है तो···हम दोनों ही समान

केसमस्सुलोचनं योहं पुत्तसम्बाधसयनं अज्झावसन्तो कासिकचन्दनं पच्चनुभोन्तो मालागन्धविलेपनं धारेन्तो जातरूपरजतं सादियन्तो इमिना भोता सत्थारा समसमगतिको भविस्सामि। अभिसम्परायं सोहं किं जानन्तो किं पस्सन्तो इमस्मिं सत्थरि ब्रह्मचरियं चरिस्सामि ? 'सो अब्रह्मचरियवासो अयं' ति—इति विदित्वा तस्मा ब्रह्मचरिया निब्बिज्ज पक्कमति। अयं खो, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चतुत्थो अब्रह्मचरियवासो अक्खातो, यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

[B. 188] "इमे खो ते, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता [R. 519] सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो अब्रह्मचरियवासा अक्खाता, यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं" ति।

२. चत्तारि अनस्सासिकानि ब्रह्मचरियानि

७. "अच्छरियं, भो आनन्द, अब्भुतं, भो आनन्द ! यावञ्चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो अब्रह्मचरियवासा [N. 218] व समाना 'अब्रह्मचरियवासा' ति अक्खाता यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं

रूप से श्रामण्यभाव प्राप्त कर चुके, जबकि मैं यह नहीं कहता कि दोनों ही अन्त में दौड़ते हुए, आवागमन में पड़कर, दुःखक्षय कर लेंगे और (इस मत के मानने पर) मेरे लिये अतिरिक्त बात यह होगी...पूर्ववत्... ब्रह्मचर्य से दूर चला जाता है। सन्दक ! उन...भगवान् ने यह चतुर्थ अब्रह्मचर्यवास बताया है...कुशल धर्मों को नहीं पा सकता। (४)

"सन्दक ! उन ज्ञानी सर्वज्ञ सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् ने ये चार प्रकार के अब्रह्मचर्यवास बताये हैं, जहाँ समझदार आदमी सामर्थ्य रहते इस ब्रह्मचर्य का पालन न करे, क्योंकि ऐसी साधना करने पर वह निर्वाण या कुशल धर्मों को नहीं पा सकता।"

२. आश्वासन न देने वाले चतुर्विध ब्रह्मचर्य

७. "आश्चर्य है, भो आनन्द ! आश्चर्य है ! जो उन ज्ञानी सर्वज्ञ सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् ने इन चार अब्रह्मचर्यवासों को वैसा ही मानते हुए, 'अब्रह्मचर्यवास' बताया, जहाँ समझदार आदमी सामर्थ्य रहते इस ब्रह्मचर्य का पालन न करे, क्योंकि ऐसी साधना करने पर वह निर्वाण या कुशल धर्मों को नहीं पा सकता। और भो आनन्द ! उन...भगवान् ने कौन से चार अनाश्वासक ब्रह्मचर्यवास बताये हैं,

ति। कतमानि पन तानि, भो आनन्द, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारि अनस्सासिकानि ब्रह्मचरियानि अक्खातानि यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं" ति ?

८. "इध, सन्दक, एकच्चो सत्था सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानाति—'चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं' ति। सो सुञ्ञं पि अगारं पविसति, पिण्डं पि न लभति, कुक्कुरो पि डसति, चण्डेन पि हत्थिना समागच्छति, चण्डेन पि अस्सेन समागच्छति, चण्डेन पि गोणेन समागच्छति, इत्थिया पि पुरिसस्स पि नामं पि गोत्तं पि पुच्छति, गामस्स पि निगमस्स पि नामं पि मग्गं पि पुच्छति। सो 'किमिदं' ति पुट्ठो समानो 'सुञ्ञं मे अगारं पविसितब्बं अहोसि', तेन पाविसिं ; 'पिण्डं मे अलद्धब्बं अहोसि', तेन नालत्थं ; कुक्कुरेन डंसितब्बं अहोसि, तेनम्हि दट्ठो ; चण्डेन हत्थिना समागन्तब्बं अहोसि, तेन समागमिं ; चण्डेन अस्सेन समागन्तब्बं अहोसि, तेन समागमिं ; चण्डेन गोणेन समागन्तब्बं अहोसि, तेन समागमिं ; इत्थिया पि पुरिसस्स पि नामं पि गोत्तं पि पुच्छितब्बं अहोसि, तेन पुच्छिं ; गामस्स पि निगमस्स

जहाँ समझदार आदमी सामर्थ्य रहते इस ब्रह्मचर्य का पालन न करे, क्योंकि ऐसी साधना करने पर वह निर्वाण या कुशल धर्मों को नहीं पा सकता !"

८. "सन्दक ! यहाँ कोई सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा शास्ता समग्र ज्ञानदर्शन को यों जानता है—'चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते मुझे समग्र ज्ञानदर्शन निरन्तर प्रत्युपस्थित रहता है'। (तो भी) वह शून्यगृहों में भी जाता है, वहाँ उसे भिक्षा भी नहीं मिलती, रास्ता चलते कभी उसे कुत्ता भी काट लेता है, कभी उसका उन्मत्त हाथी से, उद्धत घोड़े या साँड से सामना हो जाता है, जगह-जगह उसे आदमी या औरत का नाम-गोत्र पूछना पड़ता है और वह ग्राम-कस्बे आदि का नाम या मार्ग भी पूछता चलता है। ऐसा करने पर कोई समझदार आदमी उस शास्ता से पूछता है—'आप यह सब क्या पूछते चल रहे हैं और आपके साथ यह क्या हो रहा है'—ऐसा पूछे जाने पर वह उत्तर देता है—'(अरे भाई ! यह सब तो प्रारब्ध की बात है, इसीलिये) 'शून्यगृह में जाना प्रारब्ध में लिखा था' अतः चला गया; 'वहाँ भिक्षा नहीं मिलनी थी', नहीं मिली; 'कुत्ते से काटना लिखा था', सो उसने काट लिया; 'उन्मत्त हाथी, उद्धत घोड़े या साँड़ से सामना लिखा था', सो सामना हो गया; 'आदमी या औरत से नाम-गोत्र पूछना प्रारब्ध में लिखा था', सो पूछना पड़ गया; 'ग्राम-कस्बे आदि का नाम या मार्ग पूछना लिखा था', सो पूछना पड़ गया !

पि नामं पि मग्गं पि पुच्छितब्बं अहोसि, तेन पुच्छि ति। तत्र, सन्दक, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति--'अयं खो भवं सत्था सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानाति...पे०...गामस्स पि निगमस्स पि नामं पि मग्गं पि पुच्छितब्बं अहोसि, तेन पुच्छि ति। सो 'अनस्सा-[B. 189] सिकं इदं ब्रह्मचरियं' ति—इति विदित्वा तस्मा ब्रह्मचरिया निब्बिज्ज पक्कमति। इदं खो, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन पठमं अनस्सासिकं ब्रह्मचरियं अक्खातं यत्थ विञ्ञू [R. 520] पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

९. "पुन च परं, सन्दक, इधेकच्चो सत्था अनुस्सविको होति अनुस्सव-[N. 219] सच्चो। सो अनुस्सवेन इतिहितिहपरम्पराय पिटकसम्पदाय धम्मं देसेति। अनुस्सविकस्स खो पन, सन्दक, सत्थुनो अनुस्सवसच्चस्स सुस्सुतं पि होति, दुस्सुतं पि होति, तथा पि होति, अञ्ञथा पि होति। तत्र, सन्दक, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति--अयं खो भवं सत्था अनुस्सविको अनुस्सवसच्चो...पे०...सो 'अनस्सासिकं इदं ब्रह्मचरियं' ति—इति विदित्वा तस्मा ब्रह्मचरिया निब्बिज्ज पक्कमति। इदं खो, सन्दक, तेन

सन्दक ! वहाँ कोई समझदार आदमी यों सोचता है--'यह माननीय सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा शास्ता समग्र ज्ञानदर्शन को यों जानता है...पूर्ववत्...ग्राम-कस्बे आदि का नाम या मार्ग पूछना लिखा था, सो पूछना पड़ गया। वह (समझदार आदमी) 'इस शास्ता का यह मत निर्वाण के प्रति आश्वासन देने वाला नहीं है'--यह जान, उस ब्रह्मचर्य से उपेक्षा कर, दूर हट जाता है। सन्दक ! उन...भगवान् ने यह पहला अनाश्वासक ब्रह्मचर्यवास बताया, जहाँ समझदार आदमी...कुशल धर्मों को नहीं पा सकता। (१)

६. और फिर सन्दक ! यहाँ कोई अन्य शास्ता आनुश्रविक (श्रुति परम्परा से सुने गये धर्म को मानने वाला) या श्रुति परम्परा को सत्य मानता हो। वह (दूसरों को भी) उसी श्रुतपरम्परा के आधार पर, उन पिटकों (धर्मग्रन्थों, के सहारे धर्मोपदेश करता है। सन्दक ! ऐसे आनुश्रविक या आनुश्रविक को सत्य मानने वाले शास्ता का उपदेश सही ढंग से सुना हुआ (सुश्रुत) हो सकता है, गलत ढंग से सुना हुआ (दुःश्रुत) भी हो सकता है, तब उसका वह उपदेश (सुश्रुत होने के कारण) यथार्थ भी हो सकता है या फिर (दुःश्रुत होने के कारण) अयथार्थ भी हो सकता है। सन्दक ! वहाँ कोई समझदार आदमी यों सोचता है—'यह माननीय शास्ता तो आनुश्रविक एवं श्रुतिपरम्परा को ही सत्य मानने वाला है...पूर्ववत्...वह

भगवता जानता पस्सता अरहता सम्बासम्बुद्धेन दुतियं अनस्सासिकं ब्रह्मचरियं अक्खातं यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

१०. "पुन च परं, सन्दक, इधेकच्चो सत्था तक्की होति वीमंसी। सो तक्कपरियाहतं वीमंसानुचरितं सयंपटिभानं धम्मं देसेति। तक्किस्स खो पन, सन्दक, सत्थुनो वीमंसिस्स सुतक्कितं पि होति, दुत्तक्कितं पि होति, तथा पि होति, अञ्ञथा पि होति। तत्र, सन्दक, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति—'अयं खो भवं सत्था तक्की वीमंसी। सो तक्कपरियाहतं वीमंसानुचरितं सयंपटिभानं धम्मं देसेति। तक्किस्स खो पन सत्थुनो वीमंसिस्स सुतक्कितं पि होति, दुत्तक्कितं पि होति, तथा पि होति, अञ्ञथा पि होति। सो 'अनस्सासिकं इदं ब्रह्मचरियं' ति—इति विदित्वा तस्मा ब्रह्मचरिया निब्बिज्ज पक्कमति। इदं खो, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन ततियं अनस्सासिकं ब्रह्मचरियं अक्खातं यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

११. "पुन च परं, सन्दक, इधेकच्चो सत्था मन्दो होति [B. 190] मोमूहो। सो मन्दत्ता मोमूहत्ता तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठो समानो [R. 521] वाचाविक्खेपं आपज्जति अमराविक्खेपं—'एवं ति पि मे नो, तथा ति पि

'यह ब्रह्मचर्य वास अनाश्वासक है'—यह जान, उस ब्रह्मचर्य से उपेक्षा कर, दूर हट जाता है। सन्दक! उन···भगवान् ने यह दूसरा अनाश्वासक ब्रह्मचर्यवास बताया है, जहाँ समझदार आदमी···कुशल धर्मों को नहीं पा सकता।

१०. "और फिर सन्दक! यहाँ कोई शास्ता तर्क कुशल एवं विमर्श (ऊहापोह) कारी होता है। वह तर्क पर सही उतरे, मीमांसा (विमर्श) पर चढ़े, स्वप्रतिभा से ज्ञात ज्ञान का धर्मोपदेश करता है। सन्दक! उस तर्ककुशल एवं मीमांसक शास्ता के तर्क या विमर्श सही हों या न हों, यथार्थ हों या अयथार्थ। सन्दक! यहाँ कोई समझदार आदमी यों सोचता है—'यह माननीय शास्ता तो तर्ककुशल एवं विमर्शकारी है···यथार्थ हों या अयथार्थ।' वह 'यह अनाश्वासिक ब्रह्मचर्यवास है'—यह जान, उस ब्रह्मचर्य से उपेक्षा कर, दूर हट जाता है। सन्दक! उन···भगवान् ने यह तीसरा अनाश्वासक ब्रह्मचर्य बताया है, जहाँ समझदार आदमी···कुशल धर्मों को नहीं पा सकता। (३)

११. "और फिर सन्दक! यहाँ कोई शास्ता मन्दबुद्धि एवं अतिशय मुग्ध (अतिमूढ़) होता है। वह अपनी इस मन्द गति एवं मूढ़ता के कारण, (धर्मचर्चा

मे नो, अञ्ञथा ति पि मे नो, नो ति पि मे नो, नो नो ति पि मे नो' ति। तत्र, सन्दक, विञ्ञू पुरिसो इति पटिसञ्चिक्खति---'अयं खो भव सत्था मन्दो मोमूहो। सो मन्दत्ता मोमूहत्ता तत्थ पञ्हं पुट्ठो समानो वाचाविक्खेपं आपज्जति अमराविक्खेपं—एवं ति पि मे नो, तथा ति पि मे नो, अञ्ञथा [N. 220] ति पि मे नो, नो ति पि मे नो, नो नो ति पि मे नो' ति। सो 'अनस्सासिकं इदं ब्रह्मचरियं' ति--इति विदित्वा तस्मा ब्रह्मचरिया निब्बिज्ज पक्कमति। इदं खो, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चतुत्थं अनस्सासिकं ब्रह्मचरियं अक्खातं यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

"इमानि खो, सन्दक, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारि अनस्सासिकानि ब्रह्मचरियानि अक्खातानि यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्क ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं" ति।

"अच्छरियं, भो आनन्द, अब्भुतं, भो आनन्द! यावञ्चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारि अनस्सासिकानेव ब्रह्मचरियानि अनस्सासिकानि ब्रह्मचरियानी ति अक्खातानि यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं न वसेय्य, वसन्तो च नाराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

में) वैसे-वैसे प्रश्न पूछे जाने पर उलटा-पुलटा उत्तर देने लगता है, बहकी बहकी बातें करने लगता है—'यह भी मेरा मत नहीं, वह भी मेरा मत नहीं, अन्यथा भी मेरा मत नहीं, नहीं (निषेध) भी मेरा मत नहीं, न नहीं भी मेरा मत नहीं।' सन्दक! वहाँ कोई समझदार आदमी यों सोचता है—'यह माननीय शास्ता मन्दबुद्धि एवं अतिशय मुग्ध है। यह अपनी इस मन्द मति···न-नहीं भी मेरा मत नहीं।' वह 'यह अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य है'—यह जान, उस ब्रह्मचर्य से उपेक्षा कर, दूर हट जाता है। सन्दक! उन···भगवान् ने यह चतुर्थ अनाश्वासक ब्रह्मचर्य बताया है, जहाँ समझदार आदमी···कुशल धर्मों को नहीं पा सकता। (४)

"सन्दक! उन ज्ञानी सर्वज्ञ अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् ने ये चार प्रकार के अनाश्वासक ब्रह्मचर्यवास बताये हैं, जहाँ समझदार आदमी सामर्थ्य रहते इस ब्रह्मचर्य का पालन न करे, क्योंकि ऐसी साधना करने पर वह निर्वाण या कुशल धर्मों को नहीं पा सकेगा।"

"आश्चर्य है, भो आनन्द! अद्भुत है, भो आनन्द! जो यह उन ज्ञानी सर्वज्ञ अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् ने चार अनाश्वासक ब्रह्मचर्यवासों को अनाश्वासक ब्रह्मचर्यवास ही बताया, जहाँ समझदार आदमी···कुशल धर्मों को नहीं पा सकता।

३. तथागतो किंवादी

"सो पन, भो आनन्द, सत्था किंवादी किमक्खायी यत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं वसेय्य, वसन्तो च आराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं" ति ?

१२. "इध, सन्दक, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा...पे०...सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं [B. 191] उपसम्पज्ज विहरति। यस्मिं खो, सन्दक, सत्थरि सावको एवरूपं उळारविसेसं अधिगच्छति तत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं वसेय्य, वसन्तो च आराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

"पुन च परं, सन्दक, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा...पे०...दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। यस्मिं खो, सन्दक, सत्थरि सावको एवरूपं उळारविसेसं अधिगच्छति तत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं वसेय्य, वसन्तो च आराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

---

३. इस विषय में तथागत का मत

भो आनन्द ! आपके ये शास्ता (इस विषय में) क्या मत या धारणा रखते हैं, जिससे समझदार आदमी (उनके बताये) ब्रह्मचर्यवास का यथाशक्य पालन करे और उसका पालन करने से वह निर्वाण या कुशल धर्मों को पा सके !"

१२. "सन्दक ! यहाँ तथागत, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध, विद्या और आचरण से युक्त, सुगत, श्रेष्ठ, लोकव्यवहारज्ञ, अनुत्तर, विनेय जनों के धर्मानुशासन में सारथि-तुल्य, देव-मनुष्यों के शास्ता बुद्ध भगवान् लोक में अवतरित (उत्पन्न) होते हैं...पूर्ववत्[1]...वह (श्रावक) इन पाँच (व्यापादादि) नीवरणों को चित्त से हटाकर, (अवशिष्ट चित्त के) उपक्लेशों को जानकर, उन्हें दुर्बल करने के लिये, कामभोगों और अकुशल धर्मों से...पूर्ववत्[1]...प्रथमध्यान की साधना करता है। सन्दक ! जिस शास्ता में ऐसे अत्युदार धर्म (गुण) पावे, वहाँ समझदार आदमी ब्रह्मचर्यवास का पालन करे कुशल धर्मों को पा सके।

"सन्दक ! और फिर वह भिक्षु वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने से...पूर्ववत्[1]... द्वितीय ध्यान की साधना करता है। सन्दक ! जिस शास्ता में ऐसे अत्युदार धर्म (गुण) पावे, वहाँ समझदार आदमी ब्रह्मचर्यवास करे...कुशल धर्मों को पा सके।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३५४ से ३६० (२७. चूळहत्थिपदोपमसुत्त)।

[N. 221] "पुन च परं, सन्दक, भिक्खु पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति···पे०···ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। यस्मिं खो, सन्दक, [R. 522] सत्थरि सावको एवरूपं उळारविसेसं अधिगच्छति तत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं वसेय्य, वसन्तो च आराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

"पुन च परं, सन्दक, भिक्खु सुखस्स च पहाना···पे०···चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। यस्मि खो, सन्दक, सत्थरि सावको एवरूपं उळारविसेसं अधिगच्छति तत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं वसेय्य, वसन्तो च आराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो···पे०···इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। यस्मिं खो, सन्दक, सत्थरि सावको एवरूपं उळारविसेसं अधिगच्छति तत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं वसेय्य, वसन्तो च आराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति

"सन्दक! और फिर वह भिक्षु प्रीति से भी वैराग्य होने के कारण···पूर्ववत्[1]··· तृतीय ध्यान की साधना करता है। सन्दक! जिस शास्ता में ऐसे अत्युदार धर्म (गुण) पावे, वहाँ समझदार आदमी ब्रह्मचर्य का पालन करे···कुशल धर्मों को पा सके।

"सन्दक! और फिर वह भिक्षु सुख-दुःख के प्रहाण से···पूर्ववत्[1]···चतुर्थध्यान की साधना करता है। सन्दक! जिस शास्ता में ऐसे अत्युदार धर्म (गुण) पावे, वहाँ समझदार आदमी ब्रह्मचर्यवास करे···कुशल धर्मों को पा सके।

"यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध पर्यवदात्, मलरहित, विकार रहित, मृदु, हल्का, स्थिर होने और अचल व समाहित हो जाने पर···पूर्ववत्[1]···पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है। सन्दक! जिस शास्ता में ऐसे अत्युदार धर्म (गुण) मिलें, वहाँ समझदार आदमी ब्रह्मचर्य का पालन करे···कुशल धर्मों को पा सके।

"यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध···समाहित हो जाने पर···पूर्ववत्[1]···स्वकर्म

१-१-१-१. द्र०—पीछे पृ० ३६०-३६१। (चूळहत्थिदोपमसुत्त)।

चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। यस्मिं खो, सन्दक, सत्थरि सावको एवरूपं उळारविसेसं अधिगच्छति तत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं वसेय्य, [B. 192] वसन्तो च आराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' [N. 222] ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। यस्मिं खो, सन्दक, सत्थरि सावको एवरूपं उळारविसेसं अधिगच्छति तत्थ विञ्ञू पुरिसो ससक्कं ब्रह्मचरियं वसेय्य, वसन्तो च आराधेय्य ञायं धम्मं कुसलं" ति।

१३. "यो पन सो, भो आनन्द, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञा विमुत्तो परिभुञ्जेय्य सो कामे" ति? [R. 523]

प्रारब्ध वशीभूत प्राणियों के विषय में जानकारी पा लेता है। सन्दक! जिस शास्ता में ऐसे अत्युदार धर्म (गुण) मिलें, वहाँ समझदार ब्रह्मचर्यवास करे...कुशल धर्मों को पा सके।

"यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध...समाहित हो जाने पर रागादिचित्त मलों के क्षय-ज्ञानहेतु स्वचित्त को झुकाता है। तब वह 'यह दुःख है',...पूर्ववत्[1]...'यह आस्रव निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है'—इन बातों को यथातथ रूप से जान लेता है। वह ऐसा जानते हुए, ऐसा समझते हुए...पूर्ववत्[1]...अब मेरे लिये कुछ भी करणीय नहीं रह गया—यह जान लेता है। सन्दक! जिस शास्ता में ऐसे अत्युदार धर्म (गुण) मिलें, वहाँ समझदार आदमी ब्रह्मचर्यसाधना का पालन करे और उसका पालन करने से वह निर्वाण व कुशल धर्मों को पा सकेगा।"

"१३. "भो आनन्द! जो भिक्षु ज्ञानी, क्षीणास्रव, पूर्ण साधनासम्पन्न, कृतकृत्य,

---

१-१. द्र०—पीछे पृ० ३६२ (चूळहत्थिपदोपमसुत्त)।

"यो सो, सन्दक, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञा विमुत्तो, अभब्बो सो पञ्चट्ठानानि अज्झाचरितुं । अभब्बो खीणासवो भिक्खु सञ्चिच्च पाणं जीविता वोरोपेतुं, अभब्बो खीणासवो भिक्खु अदिन्नं थेय्यसङ्खातं आदातुं, अभब्बो खीणासवो भिक्खु मेथुनं धम्मं पटिसेवेतुं, अभब्बो खीणासवो भिक्खु सम्पजानमुसा भासितुं, अभब्बो खीणासवो भिक्खु सन्निधिकारकं कामे परिभुञ्जितुं, सेय्यथापि पुब्बे अगारियभूतो । यो सो, सन्दक, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञा विमुत्तो अभब्बो सो इमानि पञ्चट्ठानानि अज्झाचरितुं" ति ।

[B. 193] १४. "यो पन सो, भो आनन्द, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञा विमुत्तो तस्स चरतो चेव तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं—'खीणा मे आसवा' " ति ?

'तेन हि, सन्दक, उपमं ते करिस्सामि; उपमायपिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति । सेय्यथापि, सन्दक, पुरिसस्स हत्थपादा छिन्ना ; तस्स चरतो चेव तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं

सांसारिक भारमुक्त, सदर्थ (निर्वाण) प्राप्त, भवसंयोजनरहित, सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर चुका है, क्या वह (तब भी) सांसारिक कामभोगों का सेवन करेगा ?"

"सन्दक ! जो भिक्षु ज्ञानी…सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर चुका है, वह पाँच प्रकार के कामभोगों में आसक्त हो, यह सम्भव नहीं है । ऐसे क्षीणास्रव भिक्षु के लिये जीवित प्राणियों को जान-बूझकर मारना, न दिये हुए को जबर्दस्ती लेना, परस्त्री से मैथुन करना, जानते-बूझते झूठ बोलना और परिग्रह द्वारा कामभोगों का सेवन करना सम्भव नहीं है; जैसे कि वह गृहस्थ रहते हुए करता था । सन्दक ! जो भिक्षु ज्ञानी…सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर चुका है, वह…सम्भव नहीं है ।"

१४. "भो आनन्द ! और जो भिक्षु ज्ञानी…सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर चुका है, क्या उसको चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते निरन्तर प्रतिक्षण यह ज्ञानदर्शन प्रत्युपस्थित रहता है—'मेरे आस्रव क्षीण हो गये हैं' ?"

"तो सन्दक ! मैं तुझे (इस बात पर) एक दृष्टान्त देता हूँ; क्योंकि दृष्टान्त के सहारे से समझदार पुरुष बात का निष्कर्ष समझ लेते हैं । सन्दक ! जैसे किसी आदमी के हाथ-पैर कट जाँय; क्या उसको चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, निरन्तर प्रतिक्षण यह जानकारी बनी रहती है—'मेरे हाथ-पैर कट चुके हैं', या जब

जानाति—'छिन्ना मे हत्थपादा' ति, उदाहु पच्चवेक्खमानो [N. 223] जानाति—'छिन्ना मे हत्थपादा' " ति ?

"न खो, भो आनन्द, सो पुरिसो सततं समितं जानाति—'छिन्ना मे हत्थपादा' ति, अपि च खो पन नं पच्चवेक्खमानो जानाति—'छिन्ना मे हत्थपादा' " ति !

"एवमेव खो, सन्दक, यो सो भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञा विमुत्तो, तस्स चरतो चेव तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं न पच्चुपट्ठितं—'खीणा मे आसवा' ति; अपि च खो पन नं पच्चवेक्खमानो जानाति—'खीणा मे आसवा' " ति।

१५. "कीवबहुका पन, भो आनन्द, इमस्मिं धम्मविनये निय्यातारो" ति ?

"न खो, सन्दक, एकं येव सतं न द्वे सतानि न तीणि सतानि न चत्तारि सतानि न पञ्च सतानि, अथ खो भिय्यो व ये इमस्मि धम्मविनये निय्यातारो" ति।

"अच्छरियं, भो आनन्द, अब्भुतं, भो आनन्द ! न च नाम सधम्मोक्कंसना भविस्सति, न परधम्मवम्भना, आयतने च धम्मदेसना ताव बहुका च निय्यातारो पञ्ञायिस्सन्ति। इमे पनाजीवका पुत्तमताय [R. 524]

कभी प्रत्यवेक्षण (चिन्तन) करने पर यह जानकारी होती है—'मेरे हाथ पैर कट चुके हैं' !"

"भो आनन्द! उस (कटे हाथ-पैर वाले) व्यक्ति को निरन्तर, प्रतिक्षण यह जानकारी नहीं होती—'मेरे हाथ-पैर कट चुके हैं', अपितु उसे जब कभी प्रत्यवेक्षण करने पर ही यह जानकारी होती है—'मेरे हाथ-पैर कट चुके हैं' ।"

"सन्दक ! उसी तरह जो वह भिक्षु ज्ञानी···सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर चुका है, उसको उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते, निरन्तर, प्रतिक्षण वह जानकारी नहीं होती है—'मेरे आस्रव क्षीण हो चुके हैं; अपितु उसे जब कभी प्रत्यवेक्षण करने पर ही यह जानकारी होती है—'मेरे आस्रव क्षीण हो चुके हैं' ।"

१५. "भो आनन्द ! इस धर्मविनय में कितने मार्ग निर्याता (पथ प्रदर्शक) हैं ?"

"सन्दक ! हमारे इस धर्मविनय में एक सौ, दो सौ, तीन सौ, चार सौ या पाँच सौ ही नहीं, अपितु इनसे भी अधिक मार्ग निर्याता हैं ।"

"आश्चर्य है, भो आनन्द, अद्भुत है, भो आनन्द ! (आपके इस धर्मविनय में) न तो अपने धर्म को मिथ्या प्रशंसा है, न परधर्मों की व्यर्थ निन्दा, यथासमय यथास्थान धर्म का उपदेश करना और इसके इतने अधिक मार्ग निर्याता दिखाई

पुत्ता अत्तानं चेव उक्कंसेन्ति, परे च वम्भेन्ति तयो चेव निय्यातारो पञ्ञा-पेन्ति, सेय्यथीदं—नन्दं वच्छं, किसं सङ्किच्चं, मक्खलिं गोसालं" ति ।

अथ खो सन्दको परिब्बाजको सकं परिसं आमन्तेसि—"चरन्तु भोन्तो समणे गोतमे ब्रह्मचरियवासं । न दानि सुकरं अम्हेहि लाभसक्कारसिलोके परिच्चजितुं" ति । इति हिदं सन्दको परिब्बाजको सकं परिसं उय्योजेसि भगवति ब्रह्मचरिये ति ॥

●

पड़ते हैं । (इसके विपरीत) ये मृतपुत्रा के पुत्र आजीवक अपनी मिथ्या प्रशंसा करते हैं, परधर्मों की निन्दा करते हैं और तीन को ही मार्ग निर्याता बतलाते हैं, जैसे—नन्द वात्स्य, कृश सांकृत्य और मस्करि गोशाल ।"

इसके बाद सन्दक परिव्राजक ने अपनी परिषद् से कहा—"आप लोग श्रमण गौतम का ब्रह्मचर्यवास (धर्म) स्वीकार कर लें । हमारे लिये तो अब यह सम्भव नहीं रह गया कि हम समाज से मिलने वाले लाभ-सत्कार, प्रशंसा को छोड़ सकें ।" इस प्रकार सन्दक परिव्राजक ने अपनी परिषद् को भगवान् (बुद्ध) का ब्रह्मचर्यवास (धर्म) स्वीकार करने के लिये प्रेरित किया ॥

सन्दकसुत्त समाप्त ॥

●

२७. महासकुलुदायिसुत्तं

१. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा राजगहे [B. 194, R. II 1, N. 224] विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन सम्बहुला अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता परिब्बाजका मोरनिवापे परिब्बाजकारामे पटिवसन्ति, सेय्यथीदं—अन्नभारो वरधरो सकुलुदायी च परिब्बाजको अञ्ञे च अभिञ्जाता अभिञ्ञाता परिब्बाजका। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसि। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"अतिप्पगो खो ताव राजगहे पिण्डाय चरितुं। यन्नूनाहं येन मोरनिवापो परिब्बाजकारामो येन सकुलुदायी परिब्बाजको तेनुपसङ्कमेय्यं" ति। अथ खो भगवा येन मोरनिवापो परिब्बाजकारामो तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन सकुलुदायी परिब्बाजको महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं निसिन्नो होति उन्नादिनिया उच्चासद्दमहासद्दाय अनेकविहितं तिरच्छानकथं कथेन्तिया, सेय्यथीदं—राजकथं चोरकथं महामत्तकथं सेनाकथं भयकथं युद्धकथं अन्नकथं पानकथं वत्थकथं सयनकथं मालाकथं गन्धकथं ञातिकथं यानकथं गामकथं निगमकथं नगरकथं जनपदकथं इत्थिकथं सूरकथं विसिखाकथं कुम्भट्ठानकथं पुब्बपेतकथं नानत्तकथं लोकक्खायिकं समुद्द- [R. 2] क्खायिकं इतिभवाभवकथं इति वा। अद्दसा खो सकुलुदायी परिब्बाजको भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान सकं परिसं सण्ठपेसि—"अप्पसद्दा

---

२७. महासकुलुदायिसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह स्थित वेणुवन के कलन्दक निवाप में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय मोरनिवाप नामक परिव्राजकाराम में बहुत से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध परिव्राजक निवास कर रहे थे, जैसे—अन्नभार (या अनुभार), वरधर (या वरचर) और सकुलउदायी परिव्राजक तथा इसी तरह के अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध परिव्राजक। तब (किसी दिन) भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर, पात्र-चीवर ले, भिक्षा के लिये राजगृह में प्रविष्ट हुए। (प्रविष्ट होते समय) भगवान् को यह विचार आया—"अभी तो राजगृह में भिक्षा हेतु जाने के लिये बहुत सबेरा है। क्यों न मैं (उतनी देर) मयूरनिवाप परिव्राजकाराम में, जहाँ सकुलउदायी परिव्राजक (रहता) है, वहाँ चला चलूँ।" इसके बाद भगवान् मयूरनिवाप परिव्राजकाराम की ओर लौट पड़े। उस समय सकुलउदायी परिव्राजक अपनी विशाल परिव्राजक-परिषद से घिरा बैठा था…पूर्ववत्[1]… निरर्थक बातें कर रहे थे। (इसी समय) सकुलउदायी परिव्राजक ने भगवान्

---

१. द्र०—पीछे पृ० ९५८। (सन्दकसुत्त)

भोन्तो होन्तु; मा भोन्तो सद्दमकत्थ। अयं समणो गोतमो आगच्छति; अप्पसद्दकामो खो पन सो आयस्मा अप्पसद्दस्स वण्णवादी। अप्पेव नाम अप्पसद्दं परिसं विदित्वा उपसङ्कमितब्बं मञ्ञेय्या" ति। अथ खो परिब्बाजका तुण्ही अहेसुं।

अथ खो भगवा येन सकुलुदायी परिब्बाजको तेनुपसङ्कमि। अथ खो [N. 225] सकुलुदायी परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"एतु खो, भन्ते, भगवा। स्वागतं, भन्ते, भगवतो। चिरस्सं खो, भन्ते, भगवा इमं परियायमकासि यदिदं इधागमनाय। निसीदतु, भन्ते, भगवा; इदमासनं पञ्ञत्तं" ति। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। सकुलुदायी पि खो परिब्बाजको अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो सकुलुदायिं परिब्बाजकं भगवा एतदवोच--

१. गणाचरियेसु को सावकसक्कतो

[B. 195] २. "कायनुत्थ, उदायि, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना, का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता" ति ?

"तिट्ठतेसा, भन्ते, कथा याय मयं एतरहि कथाय सन्निसिन्ना। नेसा, भन्ते, कथा भगवतो दुल्लभा भविस्सति पच्छा पि सवनाय। पुरिमानि, भन्ते, दिवसानि पुरिमतरानि नानातित्थियानं समणब्राह्मणानं कुतूहल-

---

को दूर से ही आते देखा। देखकर अपनी परिषद को सावधान किया—"आप लोग थोड़ा धीरे-धीरे बात करें···पूर्ववत्[1]···अल्पशब्द समझकर यहाँ आना उचित समझें।" तब वे परिव्राजक चुप हो गये।

इसके बाद भगवान्, जहाँ सकुल उदायी परिव्राजक था, वहाँ पहुँचे। तब सकुल उदायी परिव्राजक ने भगवान् से यह कहा--"भन्ते भगवन्! पधारें। भन्ते भगवान् का स्वागत है। भन्ते भगवान् ने बहुत दिनों बाद इधर आने का समय निकाला। भन्ते भगवन्! विराजिये; यह आसन बिछा है।" भगवान् बिछे आसन पर बैठे। सकुल उदायी परिव्राजक भी (उससे) नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सकुल उदायी परिव्राजक से भगवान् यों बोले--

१. गणाचार्यों में कौन उपासकों द्वारा सम्मानित हैं

२. "उदायि! इस समय आप लोगों में क्या चर्चा चल रही थी और कौन सी बात करते-करते बीच में ही रोक दी ?"

"भन्ते! उस बात की चर्चा छोड़िये, जिसमें हम अभी लगे हुए थे। भन्ते! भगवान् के लिए इसका सुनना तो बाद में भी दुर्लभ (मुश्किल) नहीं होगा।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ९५९ (सन्दकसुत्त)।

सालायं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—'लाभा वत, भो, अङ्गमगधानं, सुलद्धलाभा वत, भो, अङ्गमगधानं ! तत्रिमे समण-ब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स राजगहं वस्सावासं ओसटा। अयं पि खो पूरणो कस्सपो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स; सो पि राजगहं वस्सावासं ओसटो। अयं पि खो मक्खलि गोसालो…पे०…अजितो केसकम्बलो…पकुधो कच्चायनो…सञ्जयो वेलट्ठिपुत्तो…निगण्ठो नातपुत्तो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो [R. 3] यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स; सो पि राजगहं वस्सावासं ओसटो। अयं पि खो समणो गोतमो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स; सो पि राजगहं वस्सावासं ओसटो। को नु खो इमेसं भवतं समणब्राह्मणानं सङ्घीनं गणीनं गणाचरियानं ञातानं यसस्सीनं तित्थकरानं साधुसम्मतानं बहुजनस्स सावकानं सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो, कं च पन सावका सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ती' ति ?

३. "तत्रेकच्चे एवमाहंसु—'अयं खो पूरणो कस्सपो सङ्घी [N. 226] चेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स;

भन्ते ! पिछले दिनों कुतूहल शाला में एकत्र हुए, साथ बैठे, अनेक सम्प्रदायों के श्रमण-ब्राह्मणों में यह चर्चा चली—'अङ्ग व मगध देशवासी बहुत भाग्यशाली हैं, उन्हें अपने शुभकर्मों का बहुत लाभ मिल रहा है। जब कि इस समय राजगृह में सङ्घपति, (अनेक सम्प्रदायों के) श्रमण-ब्राह्मण मण्डलेश्वर (गणी), गणाचार्य (सङ्घशास्ता), जो कि ज्ञानी, यशस्वी, धर्मोपदेशक (सम्प्रदाय-प्रवर्तक) एवं बहुजन सम्मानित हैं, वर्षावास (चातुर्मासव्रत) के लिए एकत्र हुए हैं। ये पूर्ण काश्यप एक अच्छे सङ्घपति, गणी, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, सम्प्रदायप्रवर्तक एवं बहुजन सम्मानित हैं, वे भी राजगृह में वर्षावास के लिए आये हुए हैं। ये मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बली, प्रक्रुध कात्यायन, संजय बेलट्ठिपुत्र, निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र सङ्घपति, गणी…हैं, वे भी राजगृह में वर्षावास के लिए आये हुए हैं। ये श्रमण गौतम भी सङ्घपति, गणी…हैं, वे भी राजगृह में वर्षावास के लिये आये हुए हैं। इन उपर्युक्त सङ्घपति, गणी…धर्माचारी श्रमण-ब्राह्मणों में कौन श्रावक किसका लाभ-सत्कार, मान-सम्मान पूजा करते हैं और ऐसा करते हुए, किसकी आज्ञा में साधना करते हैं" ?

३. "वहाँ उनमें से कुछ यों कह रहे थे—'यह पूरण काश्यप सङ्घी, गणी…

सो च खो सावकानं न सक्कतो न गरुकतो न मानितो न पूजितो, न च पन पूरणं कस्सपं सावका सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। भूतपुब्बं पूरणो कस्सपो अनेकसताय परिसाय धम्मं देसेति। तत्रञ्ञतरो पूरणस्स कस्सपस्स सावको सद्दमकासि--मा भोन्तो पूरणं कस्सपं एतमत्थं पुच्छित्थ, नेसो एतं जानाति ; मयमेतं जानाम, अम्हे एतमत्थं पुच्छथ ; मयमेतं भवन्तानं ब्याकरिस्सामा ति। भूतपुब्बं पूरणो कस्सपो बाहा पग्गय्ह [B. 196] कन्दन्तो न लभति--अप्पसद्दा भोन्तो होन्तु, मा भोन्तो सद्दम-कत्थ। नेते, भवन्ते, पुच्छन्ति, अम्हे एते पुच्छन्ति ; मयमेतेसं ब्याकरिस्सामा ति। बहु खो पन पूरणस्स कस्सपस्स सावका वादं आरोपेत्वा अपक्कन्ता—न त्वं इमं धम्मविनयं आजानासि, अहं इमं धम्मविनयं आजानामि, किं त्वं इमं धम्मविनयं आजानिस्ससि, मिच्छा पटिपन्नो त्वमसि, अहमस्मि सम्मापटिपन्नो, सहितं मे, असहितं ते, पुरेवचनीयं पच्छा अवच, पच्छा-वचनीयं पुरे अवच, अधिचिण्णं ते विपरावत्तं, आरोपितो ते वादो, निग्ग-हितोसि, चर वादप्पमोक्खाय, निब्बेठेहि वा सचे पहोसी ति। इति पूरणो कस्सपो सावकानं न सक्कतो न गरुकतो न मानितो न पूजितो, न च पन

बहुजन सम्मानित है, परन्तु उसके अपने ही श्रावक न इसका लाभ-सत्कार करते हैं, न मान-सम्मान करते हैं, न पूजा करते हैं और न ही ऐसा करते हुए उसके पास साधना करते हैं। एक बार यह पूरण काश्यप अपने सैकड़ों शिष्यों से धर्मचर्चा कर रहा था। इसी बीच पूरण काश्यप का कोई शिष्य चिल्लाया--आप लोग पूरण काश्यप से यह बात न पूछें, (क्योंकि) इसे यह नहीं जानता हम इसे जानते हैं, अतः हमसे यह बात पूछें, हम आपको इसका वास्तविक अर्थ बतायेंगे। उस समय पूरण काश्यप अपने दोनों हाथ मलते हुए, चिल्लाने लगा--तुम लोग चुप रहो, तुम लोग चिल्लाओ मत। यह तुमसे नहीं पूछ रहे हैं, यह हमसे पूछ रहे हैं, हम ही इन्हें इस बात का स्पष्टीकरण देंगे--परन्तु पूरण काश्यप उसे शान्त न कर सका। (अपितु हुआ यह) पूरण काश्यप के बहुत से श्रावक उससे यों मतभेद प्रकट करते हुए, उसे छोड़कर चल दिये--तूँ इस धर्म के रहस्य को नहीं जानता, मैं इस धर्म-रहस्य को जानता हूँ, तूँ क्या इस धर्म-रहस्य को जानेगा, तूँ तो मिथ्या (भ्रान्त) साधक है, मैंने इसकी भलीभाँति साधना की है, मेरा ही कहा सार्थक है, तेरा नहीं, तूँ तो पहले कही जाने वाली बात को बाद में कहता है और बाद में कही जाने वाली बात को पहले कह बैठता है, तूने सही बात को भी उलट दिया है, मैं तुझ पर यह बाद (प्रश्न) आरोपित करता हूँ, तूँ इससे बँध चुका है, इस वाद से छूटने का प्रयत्न कर, यदि तेरे में सामर्थ्य है, तो इसे सुलझा ले--यों पूरण काश्यप के अपने

पूरणं कस्सपं सावका सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। अक्कुट्ठो च पन पूरणो कस्सपो धम्मक्कोसेना' ति।

"एकच्चे एवमाहंसु—'अयं पि खो मक्खलि गोसालो…पे० [R. 4] …अजितो केसकम्बलो…पकुधो कच्चायनो…सञ्जयो बेलट्ठिपुत्तो…निगण्ठो नातपुत्तो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स ; सो च खो सावकानं न सक्कतो न गरुकतो न मानितो न पूजितो, न च पन निगण्ठं नातपुत्तं सावका सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। भूतपुब्बं निगण्ठो नातपुत्तो अनेकसताय परिसाय धम्मं देसेति। तत्रञ्ञतरो निगण्ठस्स नातपुत्तस्स सावको सद्दमकासि—मा भोन्तो निगण्ठं नातपुत्तं एतमत्थं पुच्छित्थ, नेसो एतं जानाति ; मय- [N. 227] मेतं जानाम, अम्हे एतमत्थं पुच्छथ ; मयमेतं भवन्तानं ब्याकरिस्सामा ति। भूतपुब्बं निगण्ठो नातपुत्तो बाहा पग्गय्ह कन्दन्तो न लभति—अप्पसद्दा भोन्तो होन्तु, मा भोन्तो सद्दमकत्थ। नेते भवन्ते पुच्छन्ति, अम्हे एते पुच्छन्ति ; मयमेतेसं ब्याकरिस्सामा ति। बहु खो पन निगण्ठस्स नातपुत्तस्स सावका वादं आरोपेत्वा अपक्कन्ता…पे०…इति निगण्ठो नात- [B. 197] पुत्तो सावकानं न सक्कतो न गरुकतो न मानितो न पूजितो, न च पन निगण्ठं नातपुत्तं सावका सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। अक्कुट्ठो च पन निगण्ठो नातपुत्तो धम्मक्कोसेना' ति।

४. "एकच्चे एवमाहंसु—'अयं पि खो समणो गोतमो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स, सो च खो सावकानं सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो, समणं च पन गोतमं सावका सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। भूतपुब्बं समणो गोतमो

ही शिष्य न उसका लाभ…पूजा करते हैं, और न उसके श्रावक ऐसा करते हुए उसके पास साधना करते हैं। अपितु पूरण काश्यप को अपने शिष्यों द्वारा ही धर्म-धिक्कार मिला है।'

"और कुछ लोग यों कह रहे थे—'यह मस्करि गोशाल…पूर्ववत्…अजित केशकम्बली…प्रक्रुध कात्यायन…संजय बेलट्ठिपुत्त (बिल्वास्थिपुत्र ?)…निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र संघी गणी…बहुजनसम्मानित है, परन्तु उसके अपने श्रावक न उसका लाभ-सत्कार करते हैं, न…साधना करते हैं। एक बार निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र अपने सैकड़ों शिष्यों से…पूर्ववत्…धर्मधिक्कार मिला है।'

४. "और कुछ यों कह रहे थे—'ये श्रमण गौतम संघी, गणी…बहुजन-सम्मानित हैं, वे अपने श्रावकों द्वारा सत्कृत' गुरुकृत, मानित एवं पूजित हैं और श्रमण

अनेकसताय परिसाय धम्मं देसेति। तत्र ञ्ञतरो समणस्स गोतमस्स सावको [R. 5] उक्कासि। तमेनाञ्ञतरो ब्रह्मचारी जन्नुकेन घट्टेसि—अप्पसद्दो आयस्मा होतु, मायस्मा सद्दमकासि, सत्था नो भगवा धम्मं देसेती ति। यस्मिं समये समणो गोतमो अनेकसताय परिसाय धम्मं देसेति, नेव तस्मिं समये समणस्स गोतमस्स सावकानं खिपितसद्दो वा होति उक्कासितसद्दो वा। तमेनं महाजनकायो पच्चासीसमानरूपो पच्चुपट्ठितो होति—यं नो भगवा धम्मं भासिस्सति तं नो सोस्सामा ति। सेय्यथापि नाम पुरिसो चातुम्महापथे खुद्दमधुं अनेलकं पीळेय्य। तमेनं महाजनकायो पच्चासीसमानरूपो पच्चुपट्ठितो अस्स। एवमेव यस्मिं समये समणो गोतमो अनेकसताय परिसाय धम्मं देसेति, नेव तस्मिं समये समणस्स गोतमस्स सावकानं खिपितसद्दो वा होति उक्कासितसद्दो वा। तमेनं महाजनकायो पच्चासीसमानरूपो पच्चुपट्ठितो होति—यं नो भगवा धम्मं भासिस्सति तं नो सोस्सामा ति। ये पि समणस्स गोतमस्स सावका सब्रह्मचारीहि सम्पयोजेत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तन्ति ते पि सत्थु चेव वण्णवादिनो होन्ति, धम्मस्स [N. 228] च वण्णवादिनो होन्ति, सङ्घस्स च वण्णवादिनो होन्ति, अत्तगरहिनो येव होन्ति अनञ्ञगरहिनो, मयमेवम्हा अलक्खिका मयं

गौतम के श्रावक लाभ-सत्कार कर, गौरव मान, उनके पास साधना करते हैं। पहले कभी एक बार श्रमण गौतम अपने सैकड़ों शिष्यों की सभा को धर्मोपदेश कर रहे थे। वहाँ श्रमण गौतम के किसी शिष्य को खाँसी आ गयी। तब पास बैठे अन्य किसी साथी ने उसके घुटने पर हाथ रख कर कहा—आयुष्मन्! चुप रहें, आयुष्मन्! किसी प्रकार का शब्द न करें, (देख नहीं रहे हैं कि) शास्ता हमें धर्मोपदेश कर रहे हैं। (स्थिति यह थी कि) जिस समय श्रमण गौतम अपने सैकड़ों शिष्यों की सभा में धर्मोपदेश कर रहे होते हैं, उस समय श्रमण गौतम के शिष्यों में कोई सुई गिरने जैसी सूक्ष्म ध्वनि भी नहीं करता फिर छींकने-खाँसने की तो बात ही क्या! उनकी सभा में बड़े-बड़े लोग पूरे समय सिर झुका, सम्मान देते हुए, बैठे रहते हैं कि भगवान् जो भी हमें धर्मोपदेश करेंगे, उसे हम सुनेंगे। जैसे कोई चौराहे पर मधुमक्खी के छत्ते से मधु निकाले। उस समय पास खड़ी लोगों की भीड़ उसे श्रद्धा-सम्मान के साथ घेरे खड़ी रहे। उसी तरह जिस समय श्रमण गौतम अपने सैकड़ों शिष्यों की सभा में धर्मोपदेश कर रहे होते हैं...उसे हम सुनेंगे। श्रमण गौतम के जो श्रावक अपने साथी भिक्षुओं के साथ विवाद कर, बुद्धोपदिष्ट नियमों को छोड़कर पतन (हीन=गृहस्थ) या अन्य सम्प्रदाय की ओर लौट जाते हैं, वे भी शास्ता और उनके धर्म व संघ की प्रशंसा ही करते हैं तथा उन्हें अपने बारे में ही पश्चात्ताप

अप्पपुञ्ञा ते मयं एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजित्वा [B. 198] नासक्खिम्हा यावजीवं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरितुं ति। ते आरामिकभूता वा उपासकभूता वा पञ्चसिक्खापदे समादाय वत्तन्ति। इति समणो गोतमो सावकानं सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो, समणं च पन गोतमं सावका सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ती' " ति।

२. उदायिमतं निराकतं

५. "कति पन त्वं, उदायि, मयि धम्मे समनुपस्ससि येहि ममं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ती" ति ?

६. "पञ्च खो अहं, भन्ते, भगवति धम्मे समनुपस्सामि येहि भगवन्तं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। कतमे पञ्च ? भगवा हि, भन्ते, अप्पाहारो, अप्पाहारताय च वण्णवादी। यं पि, भन्ते, भगवा अप्पाहारो, अप्पाहारताय च वण्णवादी इमं खो अहं, भन्ते, भगवति पठमं धम्मं समनुपस्सामि येन भगवन्तं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। (१)

(गर्हा) होता है, दूसरों के बारे में नहीं कि हम ही मन्द-भाग्य एवं अल्पपुण्य थे कि ऐसे श्रेष्ठ, स्वाख्यात धर्मविनय में प्रव्रजित हो, परिपूर्ण एव परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का जीवन भर पालन नहीं कर सके। फिर वे विहार में भिक्षुओं की सेवा (चाकरी) करते हुए या उपासक बनकर पञ्चशील की आराधना करते रहते हैं। इस प्रकार श्रमण गौतम अपने श्रावकों से सत्कृत, गुरुकृत, मानित एवं पूजित हैं और श्रमण गौतम का उनके श्रावक लाभ-सत्कार कर, गौरव मानते हुए, उनके पास साधना करते हैं।"

२. उदायि की मान्यताओं का खण्डन

५. "उदायि ! तुम मुझमें कितने धर्म (गुण) देखते हो, जिनके कारण श्रावक मेरा लाभ-सत्कार करते हैं, मुझमें गौरव मानते हैं, मुझे मान-सम्मान देते हैं व पूजते हैं, लाभ सत्कार कर गौरव मान, मान-सम्मान देते एवं पूजते हुए, मेरे पास साधना करते हैं ?"

६. "भन्ते ! मैं भगवान् में ऐसे पाँच धर्म देखता हूँ, जिनके कारण भगवान् के श्रावक लाभ...पूजते हैं...साधना करते हैं। कौन से पाँच ? भन्ते ! भगवान् (आप) स्वल्प भोजन करते हैं, साथ ही दूसरों को स्वल्प भोजन की अच्छाइयाँ भी बताते हैं। भन्ते ! भगवान् स्वल्पाहारी है, स्वल्पाहार की प्रशंसा करते हैं,

[R. 6] "पुन च परं, भन्ते, भगवा सन्तुट्ठो इतरीतरेन चीवरेन, इतरीतरचीवरसन्तुट्ठिया च वण्णवादी। यं पि, भन्ते, भगवा सन्तुट्ठो इतरीतरेन चीवरेन, इतरीतरचीवरसन्तुट्ठिया च वण्णवादी इमं खो अहं, भन्ते, भगवति दुतियं धम्मं समनुपस्सामि येन भगवन्तं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। (२)

"पुन च परं, भन्ते, भगवा सन्तुट्ठो इतरीतरेन पिण्डपातेन इतरीतरपिण्डपातसन्तुट्ठिया च वण्णवादी। यं पि, भन्ते, भगवा सन्तुट्ठो इतरीतरेन [N. 229] पिण्डपातेन, इतरीतरपिण्डपातसन्तुट्ठिया च वण्णवादी इमं खो अहं, भन्ते, भगवति ततियं धम्मं समनुपस्सामि येन भगवन्तं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। (३)

"पुन च परं, भन्ते, भगवा सन्तुट्ठो इतरीतरेन सेनासनेन, इतरीतरसेनासनसन्तुट्ठिया च वण्णवादी। यं पि, भन्ते, भगवा सन्तुट्ठो इतरीतरेन [B. 199] सेनासनेन, इतरीतरसेनासनसन्तुट्ठिया च वण्णवादी इमं खो अहं, भन्ते, भगवति चतुत्थं धम्मं समनुपस्सामि येन भगवन्तं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। (४)

भन्ते! यह मैं भगवान् में पहला धर्म देखता हूँ, जिसके कारण भगवान् के श्रावक··· पूजते हैं···साधना करते हैं। (१)

"भन्ते! और फिर भगवान् जिस-किसी वस्त्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं और जिस-किसी वस्त्र से सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करते हैं। भन्ते! भगवान् का जिस-किसी वस्त्र से सन्तुष्ट होना और जिस-किसी वस्त्र से सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करना, भन्ते! यह मैं भगवान् में दूसरा धर्म देखता हूँ, जिसके कारण भगवान् के श्रावक पूजते हैं··· साधना करते हैं। (२)

"भन्ते! और फिर भगवान् जिस किसी भिक्षा को लेकर सन्तुष्ट रहते हैं और जिस-किसी भिक्षा को लेकर सन्तुष्ट रहने की दूसरों से प्रशंसा करते हैं। भन्ते! भगवान् का जिस-किसी भिक्षा से सन्तुष्ट रहना और जिस-किसी भिक्षा से सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करना, भन्ते! यह मैं भगवान् में तीसरा धर्म देखता हूँ, जिसके कारण भगवान् के श्रावक···पूजते हैं···साधना करते हैं। (३)

"और फिर भन्ते! भगवान् जैसा-तैसा शयनासन पाकर ही सन्तुष्ट रहते हैं और जैसा-तैसा शयनासन पाकर सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करते हैं। भन्ते! भगवान् का जिस-किसी शयनासन से सन्तुष्ट रहना और जिस-किसी शयनासन से सन्तुष्ट रहने की

"पुन च परं, भन्ते, भगवा पविवित्तो, पविवेकस्स च वण्णवादी। यं पि, भन्ते, भगवा पविवित्तो, पविवेकस्स च वण्णवादी इमं खो अहं, भन्ते, भगवति पञ्चमं धम्मं समनुपस्सामि येन भगवन्तं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। (५)

"इमे खो अहं, भन्ते, भगवति पञ्च धम्मे समनुपस्सामि येहि भगवन्तं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ती" ति।

७. "'अप्पाहारो समणो गोतमो, अप्पाहारताय च वण्णवादी' ति, इति चे मं, उदायि, सावका सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं, सन्ति खो पन मे, उदायि, सावका कोसकाहारा पि अड्ढकोसकाहारा पि बेलुवाहारा पि अड्ढबेलुवाहारा पि। [R. 7] अहं खो पन, उदायि, अप्पेकदा इमिना पत्तेन समतित्तिकं पि भुञ्जामि भिय्यो पि भुञ्जामि। 'अप्पाहारो समणो गोतमो, अप्पाहारताय च वण्णवादी' ति, इति चे मं, उदायि, सावका सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं, ये ते, उदायि, मम सावका

प्रशंसा करना, भन्ते! यह मैं भगवान् में चौथा धर्म देखता हूँ, जिसके कारण भगवान् के श्रावक···पूजते हैं···साधना करते हैं। (४)

"और फिर, भन्ते! भगवान् एकान्तसेवी एवं एकान्तसेवन के प्रशंसक है। भन्ते! भगवान् का यह एकान्तसेवन एवं एकान्तसेवन की प्रशंसा करना, भन्ते! भगवान् में मैं यह पाँचवा गुण देखता हूँ, जिसके कारण भगवान् के श्रावक···पूजते हैं···साधना करते हैं। (५)

"भन्ते! मैं भगवान् में ये पाँच गुण देखता हूँ, जिनके कारण भगवान् के श्रावक···पूजते हैं···साधना करते हैं।"

७. "उदायि! 'श्रमण गौतम स्वल्पाहारी हैं, स्वल्पाहार के प्रशंसक हैं'—यदि इसी कारण श्रावक मुझे लाभ-सत्कार···पूजते···साधना करते हों, तब तो उदायि! मेरे (सङ्घ में) ऐसे श्रावक भी हैं, जो (दिनभर में केवल) एक पुरवा (मिट्टी का एक छोटा बर्तन) या आधा पुरवा ही आहार करने वाले हैं और कुछ ऐसे भी हैं, जो बाँस की बनी एक ढरकी (नाली) या आधी ढरकी भर ही आहार करने वाले हैं। जबकि उदायि! मैं कभी-कभी पूरे पात्र भर भोजन करता हूँ या कभी इससे भी अधिक कर लेता हूँ। उदायि! यदि मेरे श्रावक, 'श्रमण गौतम स्वल्पाहारी हैं, स्वल्पाहार के प्रशंसक हैं'—इसी कारण मुझे लाभ-सत्कार···पूजते···साधना करते तो उदायि! (मेरे सङ्घ में) जो श्रावक एक पुरवा या आधा पुरवा, बाँस की बनी

कोसकाहारा पि अड्ढकोसकाहारा पि बेलुवाहारा पि अड्ढबेलुवाहारा पि न मं ते इमिना धम्मेन सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं।

[N. 230] " 'सन्तुट्ठो समणो गोतमो इतरीतरेन चीवरेन, इतरीतर-चीवरसन्तुट्ठिया च वण्णवादी' ति, इति चे मं, उदायि, सावका सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं, सन्ति खो पन मे, उदायि, सावका पंसुकूलिका लूखचीवरधरा ते सुसाना वा सङ्कारकूटा वा पापणिका वा नन्तकानि उच्चिनित्वा सङ्घाटिं करित्वा धारेन्ति। अहं खो पनुदायि, अप्पेकदा गहपति चीवरानि धारेमि दळ्हानि [B. 200] सत्थलूखानि अलाबुलोमसानि। 'सन्तुट्ठो समणो गोतमो इतरीतरेन चीवरेन, इतरीतरचीवरसन्तुट्ठिया च वण्णवादी' ति, इति चे मं, उदायि, सावका सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं, ये ते, उदायि, मम सावका पंसुकूलिका लूखचीवरधरा ते सुसाना वा सङ्कारकूटा वा पापणिका वा नन्तकानि उच्चिनित्वा सङ्घाटिं करित्वा धारेन्ति, न मं ते इमिना धम्मेन सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं।

" 'सन्तुट्ठो समणो गोतमो इतरीतरेन पिण्डपातेन, इतरीतरपिण्डपात-सन्तुट्ठिया च वण्णवादी' ति, इति चे मं, उदायि, सावका सक्करेय्युं गरुं

एक नाली या आधी नाली ही आहार करते हैं, वे लोग मुझे इस स्वल्पाहार गुण के कारण ही क्यों लाभ-सत्कार...पूजेंगे...साधना करेंगे (जबकि वे मुझसे अधिक तितिक्षु हैं !)।

"उदायि ! 'श्रमण गौतम जैसे-तैसे वस्त्र से सन्तुष्ट रहते हैं और जैसे-तैसे वस्त्र से सन्तुष्ट रहने के प्रशंसक हैं'—यदि इसी कारण श्रावक मुझे लाभ-सत्कार...पूजते...साधना करते हों, तब तो उदायि ! मेरे कुछ श्रावक ऐसे भी हैं, जो पांशुकूलिक एवं रूक्षचीवरधारी हैं, वे श्मशान या कूड़ाखाने या गलियों से फटे-पुराने, नाना प्रकार के चिथड़े बटोर उनसे संघाटि बनाकर धारण करते हैं। जब कि उदायि ! मैं तो कभी-कभी उपासक गृहस्थों द्वारा दिये मजबूत, चमकदार, लौकी के रेशे (तन्तु) से बने मखमली वस्त्र भी धारण कर लेता हूँ। उदायि ! 'श्रमण गौतम जैसे-तैसे वस्त्रों से सन्तुष्ट रहते हैं और जैसे-तैसे वस्त्रों से सन्तुष्ट रहने के प्रशंसक हैं'—यदि इसी कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार...पूजते...साधना करते, तो उदायि ! (मेरे से भी अधिक तितिक्षु) वे जो पांशुकलिक...संघाटि धारण करते हैं, वे मुझे गुण के कारण क्यों लाभ-सत्कार...पूजेंगे...साधना करेंगे।

"उदायि ! 'श्रमण गौतम जैसे-तैसे पिण्डपात से सन्तुष्ट रहते हैं और जैसे-तैसे

करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं; सन्ति खो पन मे, उदायि, सावका पिण्डपातिका सपदानचारिनो उञ्छासके वते रता, ते अन्तरघरं पविट्ठा समाना आसनेन पि निमन्तियमाना न सादियन्ति। अहं खो पनुदायि, अप्पेकदा निमन्तने पि भुञ्जामि सालीनं [R. 8] ओदनं विचितकाळकं अनेकसूपं अनेकब्यञ्जनं। 'सन्तुट्ठो समणो गोतमो इतरीतरेन पिण्डपातेन, इतरीतरपिण्डपातसन्तुट्ठिया च वण्णवादी' ति, इति चे मं, उदायि, सावका सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं, ये ते, उदायि, मम सावका पिण्डपातिका सपदानचारिनो उञ्छासके वते रता ते अन्तरघरं पविट्ठा समाना आसनेन पि निमन्तियमाना न सादियन्ति, न मं ते इमिना धम्मेन सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय [N. 231] विहरेय्युं।

" 'सन्तुट्ठो समणो गोतमो इतरीतरेन सेनासनेन, इतरीतरसेनासनसन्तुट्ठिया च वण्णवादी' ति, इति चे मं, उदायि, सावका सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं; सन्ति खो पन मे, उदायि, सावका रुक्खमूलिका अब्भोकासिका, ते अट्ठमासे छन्नं

पिण्डपात से सन्तुष्ट रहने के प्रशंसक हैं'—यदि इसी कारण श्रावक मुझे लाभ-सत्कार... पूजते...साधना करते हों, तब तो उदायि ! मेरे कुछ श्रावक ऐसे भी हैं, जो पिण्डपातिक (मधुकरी भिक्षा करने वाले) निरन्तर चलते रहकर भिक्षा करने वाले या उञ्छ (खेतों में गिरे अन्न को खाने) के व्रती भी हैं, वे किसी के घर जाकर, आसन पर बैठकर भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते । जबकि उदायि ! मैं तो कभी-कभी गृहस्थों द्वारा निमन्त्रण पाने पर बासमती चावल, काले छिलके उतरी, नाना प्रकार की दालों या सूप (पेय) तथा अनेकविध व्यञ्जनों का उपयोग कर लेता हूँ । उदायि ! 'श्रमण गौतम जैसे-तैसे पिण्डपात से सन्तुष्ट रहते हैं...प्रशंसक हैं' यदि इस कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार...पूजते...साधना करते, तो उदायि ! (मेरे से भी अधिक कठोर सहनशील) वे जो पिण्डपातिक...स्वीकार नहीं करते, वे मुझे इस गुण के कारण क्यों लाभ-सत्कार...पूजेंगे...साधना करेंगे !

"उदायि ! 'श्रमण गौतम जैसे-तैसे शयनासन से सन्तुष्ट रहते हैं और जैसे-तैसे शयनासन से सन्तुष्ट रहने के प्रशंसक हैं'—यदि इसी कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार...पूजते...साधना करते हैं, तब तो उदायि ! मेरे कुछ श्रावक ऐसे भी हैं, जो वृक्षमूलिक (सदा वृक्ष के नीचे रहने वाले), अभ्यवकाशिक (आकाश के नीचे खुले मैदान में रहने वाले) भी हैं, वे आठ मास (वर्षा ऋतु के चार मास छोड़)

न उपेन्ति। अहं खो पनुदायि, अप्पेकदा कूटागारेसु पि विहरामि उल्लित्ता-वलित्तेसु निवातेसु फुसितग्गळेसु पिहितवातपानेसु। 'सन्तुट्ठो समणो गोतमो [B. 201] इतरीतरेन सेनासनेन, इतरीतरसेनासनसन्तुट्ठिया च वण्णवादी' ति, इति चे मं, उदायि, सावका सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं, ये ते, उदायि सावका रुक्खमूलिका अब्भोकासिका ते अट्ठमासे छन्नं न उपेन्ति, न मं ते इमिना धम्मेन सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं।

"'पविवित्तो समणो गोतमो, पविवेकस्स च वण्णवादी' ति, इति चे मं उदायि, सावका सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं, सन्ति खो पन मे, उदायि, सावका आरञ्ञिका पन्तसेनासना अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि अज्झोगाहेत्वा विहरन्ति, ते अन्वद्धमासं सङ्घमज्झे ओसरन्ति पातिमोक्खुद्देसाय। अहं खो पनुदायि, अप्पेकदा आकिण्णो विहरामि भिक्खूहि भिक्खुनीहि उपासकेहि उपासिकाहि रञ्ञा राजमहामत्तेहि तित्थियेहि तित्थियसावकेहि। 'पविवित्तो समणो गोतमो, पविवेकस्स च वण्णवादी' ति, इति चे मं, उदायि, [R. 9] सावका सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं, ये ते, उदायि, मम सावका आरञ्ञका पन्त-

---

छत के नीचे नहीं जाते। जबकि उदायि! मैं तो कभी-कभी (गृहस्थों के कहने पर) लिपे-पुते, खिड़की बन्द, आगड़ लगे किवाड़ों वाले, झरोखेबन्द महलों में भी रह लेता हूँ। उदायि! 'श्रमण गौतम जैसे-तैसे शयनासन से सन्तुष्ट रहते हैं और जैसे-तैसे शयनासन से सन्तुष्ट रहने के प्रशंसक है'—यदि इसी कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार...पूजते...साधना करते, तो उदायि! (मेरे से भी अधिक तितिक्षु) जो वृक्षमूलिक...छत के नीचे नहीं जाते हैं, वे मुझे इस गुण के कारण क्यों लाभ-सत्कार...पूजेंगे...साधना करेंगे!

"उदायि! 'श्रमण गौतम एकान्तसेवी एवं एकान्तसेवन के प्रशंसक हैं'—यदि इसी कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार...पूजते...साधना करते हैं, तब तो उदायि! मेरे कुछ श्रावक ऐसे भी हैं, जो निरन्तर अरण्य में ही रहने वाले हैं, ग्राम-बस्तियों से दूर रहने वाले हैं, घोर जंगलों में वास करते हैं, वहाँ एकान्त में शयनासन लगा-कर साधना करते हैं, वे प्रत्येक पक्ष में एक दिन केवल प्रातिमोक्ष-पाठ भर के लिये सङ्घ में आते हैं। जबकि उदायि! मैं तो कभी-कभी भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों उपासिकाओं, राजा राज-महामात्यों (मन्त्रियों), अन्य सम्प्रदाय वाले भिक्षुओं या अन्य सम्प्रदाय के श्रावकों से आकीर्ण हो साधना करता हूँ। उदायि! 'श्रमण गौतम एकान्त-

सेनासना अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि अज्झोगाहेत्वा विहरन्ति ते अन्वद्धमासं सङ्घमज्झे ओसरन्ति पातिमोक्खुद्देसाय, न [N. 232] मं ते इमिना धम्मेन सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं।

"इति खो, उदायि, न ममं सावका इमेहि पञ्चहि धम्मेहि सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति।

३. भगवति बुद्धे पञ्च धम्मा

८. "अत्थि खो, उदायि, अञ्ञे व पञ्च धम्मा येहि पञ्चहि धम्मेहि ममं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति। कतमे पञ्च?

(१) परमेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो

९. "इधुदायि, ममं सावका अधिसीले सम्भावेन्ति—'सीलवा समणो गोतमो परमेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो' ति। यम्पुदायि, ममं सावका अधिसीले सम्भावेन्ति—'सीलवा समणो गोतमो परमेन सीलक्ख- [B. 202] न्धेन समन्नागतो' ति—अयं खो, उदायि, पठमो धम्मो येन ममं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति।

सेवी एवं एकान्तसेवन के प्रशंसक हैं'—यदि इसी कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार···पूजते···साधना करते, तो उदायि! (मेरे से भी अधिक तितिक्षु) जो निरन्तर अरण्य में ही···सङ्घ में आते हैं, वे मुझे इस गुण के कारण क्यों लाभ-सत्कार···पूजेंगे···साधना करेंगे!

"उदायि! इस प्रकार मेरे श्रावक मुझे इन पाँच धर्मों से नहीं लाभ-सत्कार··· पूजते···साधना करते हैं।

३. भगवान् बुद्ध में पाँच विशेष गुण (धर्म)

८. "उदायि वे पाँच धर्म दूसरे ही हैं, जिनके कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार···पूजते हैं···साधना करते हैं। कौन से पाँच?

(१) उत्तम शीलस्कन्ध से युक्तता

९. "उदायि! यहाँ मेरे श्रावक शीलाचार में अत्युच्च होने के कारण मेरा सम्मान करते हैं—'श्रमण गौतम शीलवान् हैं, उत्तम शीलस्कन्ध से युक्त हैं'। उदायि! यह जो मेरे श्रावक शीलाचार में अत्युच्च होने के कारण मेरा सम्मान करते हैं—'श्रमण गौतम···युक्त हैं'—उदायि! यह (शीलवत्ता) प्रथम विशेष गुण है, जिसके कारण श्रावक मुझे लाभ-सत्कार···पूजते हैं···साधना करते हैं।

(२) अभिञ्ञाय धम्मं देसेति

१०. "पुन च परं, उदायि, ममं सावका अभिक्कन्ते ञाणदस्सने सम्भावेन्ति--'जानं येवाह समणो गोतमो—जानामी ति, पस्सं येवाह समणो गोतमो—पस्सामी ति; अभिञ्ञाय समणो गोतमो धम्मं देसेति नो अनभिञ्ञाय; सनिदानं समणो गोतमो धम्मं देसेति नो अनिदानं; सप्पाटिहारियं समणो गोतमो धम्मं देसेति नो अप्पाटिहारियं' ति। यम्पुदायि, ममं सावका अभिक्कन्ते ञाणदस्सने सम्भावेन्ति—'जानं येवाह समणो गोतमो—जानामी ति, पस्सं येवाह समणो गोतमो--पस्सामी ति; अभिञ्ञाय समणो गोतमो धम्मं देसेति नो अनभिञ्ञाय; सनिदानं समणो गोतमो धम्मं देसेति नो अनिदानं; सप्पाटिहारियं समणो गोतमो धम्मं देसेति नो अप्पाटिहारियं' [N. 233, R. 10] ति—अयं खो, उदायि, दुतियो धम्मो येन ममं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति।

(३) परमेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो

११. "पुन च परं, उदायि, ममं सावका अधिपञ्ञाय सम्भावेन्ति--'पञ्ञवा समणो गोतमो परमेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो; तं वत अनागतं वादपथं न दक्खति, उप्पन्नं वा परप्पवादं न सहधम्मेन सुनिग्गहितं

---

(२) स्वयं साक्षात्कृत धर्मों का उपदेश

१०. "उदायि! और फिर मेरे श्रावक, विशिष्ट ज्ञानदर्शन के कारण मेरा सम्मान करते हैं—'श्रमण गौतम पहले (किसी धर्म को) जान समझकर, जानताहूँ—ऐसा कहते हैं, उसको साक्षात् करने के बाद ही, मैं इसे समझ चुका हूँ—ऐसा कहते हैं; श्रमण गौतम किसी धर्म को पहले स्वयं जानकर ही दूसरों को उपदेश करते हैं, बिना जाने नहीं; श्रमण गौतम किसी भी धर्म का कारण सहित ही उपदेश करते हैं, अकारण नहीं; श्रमण गौतम किसी धर्म की विशेषता (आश्चर्यजनक लाभ) बताकर ही उपदेश करते हैं, बिना विशेषता बताये नहीं'। उदायि! यह जो मेरे श्रावक विशिष्ट ज्ञानदर्शन के कारण मेरा सम्मान करते हैं—'श्रमण गौतम...बिना विशेषता बताये नहीं'—उदायि! यह द्वितीय विशेष गुण है, जिसके कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार...पूजते हैं...साधना करते हैं।

(३) उत्तम प्रज्ञास्कन्ध-युक्तता

११. और फिर उदायि! मेरे श्रावक मुझमें अधिक प्रज्ञा होने के कारण सम्मान करते हैं—'श्रमण गौतम प्रज्ञावान् हैं, उत्तम प्रज्ञास्कन्ध से सम्पन्न हैं; उनके लिये यह सम्भव नहीं है कि वे दूसरों द्वारा उपस्थित किये वाद (प्रश्न) को प्रबल

निग्गण्हिस्सती ति--नेतं ठानं विज्जति'। तं किं मञ्ञसि, उदायि, अपि नु मे सावका एवं जानन्ता एवं पस्सन्ता अन्तरन्तरा कथं ओपातेय्युं" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"न खो पनाहं, उदायि, सावकेसु अनुसासनिं पच्चासीसामि, अञ्ञदत्थु ममं येव सावका अनुसासनिं पच्चासीसन्ति। यम्पुदायि, ममं सावका अधिपञ्ञाय सम्भावेन्ति—'पञ्ञवा समणो गोतमो परमेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो; तं वत अनागतं वादपथं न दक्खति, उप्पन्नं वा परप्पवादं न सहधम्मेन निग्गहितं निग्गण्हिस्सती ति--नेतं ठानं विज्जति'। अयं खो, उदायि, ततियो धम्मो येन ममं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति।

(४) अरियसच्चदेसना

१२. "पुन च परं, उदायि, मम सावका येन दुक्खेन दुक्खो- [B. 203] तिण्णा दुक्खपरेता ते मं उपसङ्कमित्वा दुक्खं अरियसच्चं पुच्छन्ति, तेसाहं दुक्खं अरियसच्चं पुट्ठो ब्याकरोमि, तेसाहं चित्तं आराधेमि पञ्हस्स वेय्याकरणेन; ते मं दुक्खसमुदयं···दुक्खनिरोधं···दुक्खनिरोधगामिनिं पटिपदं अरियसच्चं पुच्छन्ति, तेसाहं दुक्खनिरोधगामिनिं पटिपदं अरियसच्चं पुट्ठो ब्याकरोमि, तेसाहं चित्तं आराधेमि पञ्हस्स वेय्याकरणेन। यम्पुदायि, मम

युक्ति तथा तर्क के सहारे परास्त न कर दें'। तो क्या मानते हो उदायि ! मेरे बारे में ऐसा जानते हुए, समझते हुए मेरे श्रावक वाद के बीच-बीच में नयी-नयी बात उठाते (टोकते) रहेंगे ?"

"नहीं, भन्ते !"

"उदायि ! मैं श्रावकों के अनुशासन की आकांक्षा नहीं रखता, बल्कि श्रावक ही मेरे शासन को दोहराते हैं। उदायि ! यह जो मेरे श्रावक मुझमें अधिक प्रज्ञा होने के कारण सम्मान करते हैं—'श्रमण गौतम···परास्त न कर दें'—उदायि ! यह तृतीय विशेष गुण है, जिसके कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार···पूजते हैं··· साधना करते हैं।

(४) आर्यसत्य देशना

१२. "और फिर उदायि ! मेरे श्रावक जो कि दुःखसमूह को पार कर चुके हैं, उससे दूर हट चुके हैं, वे आकार 'दुःख आर्यसत्य' के विषय में मुझसे प्रश्न पूछते हैं, उनके इस प्रश्न का मैं बहुत ही सरल और सही ढंग से उत्तर देता हूँ, इस उत्तर के द्वारा मैं उनके चित्त को सन्तुष्ट कर देता हूँ, (फिर बाद में) वे मुझसे दुःख समुदय··· दुःख निरोध···दुःख निरोधगामी प्रतिपदा के विषय में प्रश्न करते हैं···चित्त को सन्तुष्ट कर देता हूँ। उदायि ! यह जो 'मेरे श्रावक दुःख आर्यसत्य के विषय में प्रश्न करते

सावका येन दुक्खेन दुक्खोतिण्णा दुक्खपरेता ते मं उपसङ्कमित्वा दुक्खं [N. 234] अरियसच्चं पुच्छन्ति; तेसाहं दुक्खं अरियसच्चं पुट्ठो ब्याकरोमि, तेसाहं चित्तं आराधेमि पञ्हस्स वेय्याकरणेन। अयं खो, उदायि, चतुत्थो [R. 11] धम्मो येन ममं सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति।

(५) सावका अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता

१३. "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका चत्तारो सतिपट्ठाने भावेन्ति। इधुदायि, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति…चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति…धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

"पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका चत्तारो सम्मप्पधाने भावेन्ति। इधुदायि, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति, वायमति, विरियं

हैं, उस प्रश्न को बहुत ही सरलता से उत्तर देकर, समझा देता हूँ, इस उत्तर द्वारा मैं उनके चित्त को सन्तुष्ट कर देता हूँ। उदायि! यह चौथा गुण है, जिसके कारण मेरे श्रावक मुझे लाभ-सत्कार… पूजते हैं…साधना करते हैं।

(५) श्रावक अभिज्ञापारमिता प्राप्त

१३. "और फिर उदायि! मैंने जो अपने श्रावकों को साधना का उपर्युक्त मार्ग (प्रतिपद) बताया है, उसके सहारे वे (सर्वप्रथम) चार स्मृतिप्रस्थानों[1] की भावना करते हैं। उदायि! यहाँ भिक्षु उद्योगसम्पन्न, सावधान, स्मृतिमान रहकर लोक में अभिध्या-दौर्मनस्य का परित्याग करता हुआ, काय में कायानुपश्यना की साधना करता है; वेदना में वेदनानुपश्यना की साधना…चित्त में चित्तानुपश्यना की साधना…धर्मों में धर्मानुपश्यना की साधना करता है। और वहाँ मेरे बहुत से श्रावक अभिज्ञापारमिता (अर्हत् पद) तक पहुँचकर साधना करते हैं।

"और फिर, उदायि! मैंने अपने श्रावकों को जो मार्गोपदेश किया उसके सहारे वे चार सम्यक्प्रधानों की भावना करते हैं। उदायि! यहाँ (इस भावना में) भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये कामना करता है, (तदर्थ) उद्योग करता है, अपने में उत्साह लाता है, चित्त को निगृहीत करता है,

---

१. विशेष ज्ञान के लिये द्र०—सतिपट्ठानसुत्त (मू० प०)।

आरभति, चित्तं पग्गण्हाति, पदहति; उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय छन्दं जनेति, वायमति, विरियं आरभति, चित्तं पग्गण्हाति, पदहति; अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति, वायमति, विरियं आरभति, चित्तं पग्गण्हाति, पदहति; उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति, वायमति, विरियं आरभति, चित्तं पग्गण्हाति, पदहति। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

"पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, [B. 204] यथापटिपन्ना मे सावका चत्तारो इद्धिपादे भावेन्ति। इधुदायि, भिक्खु छन्दसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति, विरियसमाधिपधान-सङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति, चित्तसमाधिपधानसङ्खार- [N. 235] समन्नागतं इद्धिपादं भावेति, वीमंसासमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

"पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका पञ्चिन्द्रियानि भावेन्ति। इधुदायि, भिक्खु सद्धि- [R. 12] न्द्रियं भावेति उपसमगामिं सम्बोधगामिं; विरियिन्द्रियं भावेति···पे०···

(वासना दमन हेतु) समाधि की ओर बढ़ता है; और उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण की कामना करता है···समाधि की ओर बढ़ता है; अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद की कामना करता है···समाधि की ओर बढ़ता है; उत्पन्न कुशल धर्मों के स्थिति, असम्मोष (कम न होना) पुनर्वृद्धि, आधिक्य एवं साधना की पूर्ति के लिये कामना करता है···समाधि की ओर बढ़ता है। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक अभिज्ञापारमिता तक पहुँचकर साधना करते हैं।

"और फिर उदायि! मैंने अपने श्रावकों को जो धर्मोपदेश किया है, उसके सहारे वे चार ऋद्धिपादों की भावना करते हैं। उदायि! यहाँ (इस भावना में) भिक्षु छन्दसमाधि प्रधान संस्कारयुक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है, वीर्यसमाधि-प्रधान संस्कारयुक्त···चित्तसमाधि प्रधान संस्कारयुक्त···मीमांसासमाधि प्रधान संस्कार-युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक अभिज्ञापारमिता तक पहुँचकर साधना करते हैं।

"और फिर, उदायि! मैंने अपने श्रावकों को जो धर्मोपदेश किया है, उसके सहारे वे (श्रद्धाइन्द्रिय आदि) पाँच इन्द्रियों की भावना करते हैं। उदायि! यहाँ भिक्षु इन्द्रियशमन एवं ज्ञान की ओर ले जाने वाली श्रद्धेन्द्रिय की भावना करता है···

सतिन्द्रियं भावेन्ति···पे०···समाधिन्द्रियं भावेति···पे०···पञ्ञिन्द्रियं भावेति उपसमगामिं सम्बोधगामिं। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसान-पारमिप्पत्ता विहरन्ति।

"पुन, च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका पञ्च बलानि भावेन्ति। इधुदायि, भिक्खु सद्धाबलं भावेति उपसमगामिं सम्बोधगामिं; विरियबलं भावेति···पे०···सतिबलं भावेति··· समाधिबलं भावेति···पञ्ञाबलं भावेति उपसमगामिं सम्बोधगामिं। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

"पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका सत्त बोज्झङ्गे भावेन्ति। इधुदायि, भिक्खु सतिसम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं; धम्म-विचयसम्बोज्झङ्गं भावेति···पे०···विरियसम्बोज्झङ्गं भावेति···पीतिसम्बो-ज्झङ्गं भावेति···पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेति···समाधिसम्बोज्झङ्गं भावेति··· उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपार-मिप्पत्ता विहरन्ति।

"पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना

वीर्येन्द्रिय की···स्मृतीन्द्रिय की···समाधीन्द्रिय की···प्रज्ञेन्द्रिय की भावना करता है। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक···साधना करते हैं।

"और फिर उदायि! मैंने अपने श्रावकों को जो धर्मोपदेश किया है, उसके सहारे वे (श्रद्धा आदि) पाँच बलों की भावना करते हैं। उदायि! यहाँ भिक्षु इन्द्रियोपशमन एवं ज्ञान की ओर ले जाने वाले श्रद्धाबल की भावना करता है···वीर्यबल की···स्मृतिबल की···समाधिबल की···प्रज्ञाबल की भावना करता है। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक···साधना करते हैं।

"और फिर उदायि! मैंने अपने श्रावकों को जो धर्मोपदेश किया है, उसके सहारे वे सात बोध्यङ्गों की भावना करते हैं। उदायि! यहाँ कोई भिक्षु विवेक, वैराग्य एवं निरोध से निश्रित तथा व्यवसर्ग (दान) फलदायी स्मृतिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है···धर्मविचय (धर्मविचार) सम्बोध्यङ्ग की···वीर्यसम्बोध्यङ्ग की···प्रीति-सम्बोध्यङ्ग की···प्रश्रब्धि (शान्ति) सम्बोध्यङ्ग की···समाधिसम्बोध्यङ्ग की··· उपेक्षा सम्बोध्यङ्ग की भावना करता है। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक···साधना करते हैं।

"और फिर उदायि! मैंने अपने श्रावकों को जो धर्मोपदेश किया है, उसके

मे सावका अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं भावेन्ति। इधुदायि, भिक्खु सम्मादिट्ठिं भावेति, सम्मासङ्कप्पं भावेति, सम्मावाचं भावेति, सम्माकम्मन्तं भावेति, सम्माआजीवं भावेति, सम्मावायामं भावेति, सम्मासतिं भावेति, सम्मासमाधिं भावेति। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञा- [B. 205] वोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

१४. "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटि- [N. 236] पदा, यथापटिपन्ना मे सावका अट्ठ विमोक्खे भावेन्ति। रूपी रूपानि पस्सति, अयं पठमो विमोक्खो; अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति, अयं दुतियो विमोक्खो; सुभन्तेव अधिमुत्तो होति, अयं ततियो विमोक्खो; सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं [R. 13] अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं चतुत्थो विमोक्खो; सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं पञ्चमो विमोक्खो; सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं छट्ठो विमोक्खो ; सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञा-

---

सहारे वे आर्य अष्टाङ्गिक (अष्टविध) मार्गों की भावना करते हैं। उदायि ! यहाँ भिक्षु सम्यग्दृष्टि की भावना करता है; सम्यक्सङ्कल्प की''' सम्यग्वाक् की''' सम्यक्कर्म की''' सम्यगाजीव की''' सम्यग्व्यायाम की''' सम्यक्स्मृति की''' सम्यक्समाधि की भावना करता है। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक साधना करते हैं।

१४. "और फिर उदायि ! मैंने अपने श्रावकों को जो धर्मोपदेश किया है, उसके सहारे वे आठ विमोक्षों (विमुक्तियों) की भावना करते हैं। 'रूपवान (रूपी पुद्गल) रूपों को देखता है'—यह प्रथम विमोक्ष है; 'आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी (पुद्गल) बाह्य रूपों को देखता है'—यह द्वितीय विमोक्ष है; 'शुभ ही अधिमुक्त होता है'—यह तृतीय विमोक्ष है; (कोई भिक्षु) रूप संज्ञाओं का सब तरफ से प्रहाण कर, प्रतिघ (द्वेष) संज्ञाओं के शमन हो जाने से, नानात्व संज्ञाओं के अचिन्तन से 'आकाश अनन्त है'—इस आकाशानन्त्यायतन का सहारा लेकर साधना करता है, यह चतुर्थ विमोक्ष है; (आगे चलकर वह) सब तरफ से आकाशानन्त्यायतन को भी अतिक्रान्त कर 'विज्ञान अनन्त है'—इस विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त कर साधना करता है, यह पाँचवा विमोक्ष है; (आगे चलकर) सब तरफ से विज्ञानानन्त्यायतन को अतिक्रान्त कर 'कुछ भी नहीं है'—इस आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त कर साधना करता है, यह छठा विमोक्ष है; (आगे चलकर) सब तरफ से आकिञ्च-

नासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति, अयं सत्तमो विमोक्खो; सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति, अयं अट्ठमो विमोक्खो। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

१५. "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथा पटिपन्ना मे सावका अट्ठ अभिभायतनानि भावेन्ति। अज्झत्तं रूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि, पस्सामी' ति एवं सञ्ञी होति। इदं पठमं अभिभायतनं।

"अज्झत्तं रूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्णदुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि, पस्सामी' ति एवं सञ्ञी होति। इदं दुतियं अभिभायतनं।

"अज्झत्तं रूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्णदुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि, पस्सामी' ति एवं सञ्ञी होति। इदं ततियं अभिभायतनं।

"अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्ण-
[N. 237] दुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि, पस्सामी' ति एवं सञ्ञी होति। इदं चतुत्थं अभिभायतनं।

न्यायतन को अतिक्रान्त कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्तकर साधना करता है, यह सातवाँ विमोक्ष है; (अन्त में) वह भिक्षु सब तरफ से नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को भी अतिक्रान्त कर संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त कर साधना करता है, यह आठवाँ विमोक्ष है। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक···साधना करते हैं।

१५. "और फिर उदायि! मैंने उसके सहारे वे आठ अभिभू-आयतनों की भावना करते हैं। (कैसे?) कोई आध्यात्मिक रूपसंज्ञी साधक बाहर सुवर्ण या दुर्वर्ण छोटे से छोटे रूपों को देखता है। 'मैं उन रूपों को अभिभूत (पराजित) कर साधना करना जानता हूँ, समझता हूँ'—यह मानता है। यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (१)

"कोई आध्यात्मिक रूपसंज्ञी बाहर सुवर्ण या दुर्वर्ण, बड़े से बड़े रूपों को देखता है। 'मैं···समझता हूँ'—यह मानने वाला होता है। यह दूसरा अभिभ्वायतन है। (२)

"कोई आध्यात्मिक! अरूपसंज्ञी बाह्य सुवर्ण या दुर्वर्ण छोटे से छोटे रूपों को देखता है। 'मैं···समझता हूँ'—यह मानने वाला होता है। यह तीसरा अभिभ्वायतन है। (३)

"कोई आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी बाह्य सुवर्ण या दुर्वर्ण बड़े से बड़े रूपों को देखता

"अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि [B. 206] नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि। सेय्यथापि नाम उमापुप्फं नीलं नीलवण्णं नीलनिदस्सनं नीलनिभासं, सेय्यथापि वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं नीलं नीलवण्णं नीलनिदस्सनं नीलनिभासं; एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि, पस्सामी' ति एवं सञ्ञी होति। इदं पञ्चमं अभिभायतनं। [R. 14]

"अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि पीतनिदस्सनानि पीतनिभासानि। सेय्यथापि नाम कणिकारपुप्फं पीतं पीतवण्णं पीतनिदस्सनं पीतनिभासं, सेय्यथापि वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं पीतं पीतवण्णं पीतनिदस्सनं पीतनिभासं; एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि पीतनिदस्सनानि पीतनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि, पस्सामी' ति एवं सञ्ञी होति। इदं छट्ठं अभिभायतनं।

"अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितकवण्णानि लोहितकनिदस्सनानि लोहितकनिभासानि। सेय्यथापि नाम बन्धुजीवकपुप्फं लोहितकं लोहितकवण्णं लोहितकनिदस्सनं लोहितक-

---

है। 'मैं…समझता हूँ'—यह मानने वाला होता है। यह चौथा अभिभ्वायतन है। (४)

"कोई आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी साधक बाह्य (जगत् में) नीले, नीलवर्ण वाले, नीली चमक वाले, नीली आभा वाले रूपों को देखता है। जैसे उमा (अलसी) का फूल नीला, नीले वर्ण वाला, नीली चमक व आभा वाला होता है या फिर जैसे दोनों तरफ से चिकना, नीला, नीलवर्ण, नीलकान्ति, नील आभा वाला बनारसी वस्त्र (सिल्क) होता है; इसी तरह कोई आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी बाह्य…नीली आभा वाले रूपों को देखता है। 'मैं…समझता हूँ'—यह मानने वाला होता है। यह पाँचवाँ अभिभ्वायतन है। (५)

"कोई आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी बाह्य पीले…पीली आभा वाले रूपों को देखता है। जैसे कर्णिकार (कनेर या कनैल) का फूल पीला…होता है या फिर जैसे दोनों ओर से चिकना बनारसी वस्त्र पीला…होता है; उसी तरह कोई आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी बाह्य पीले…रूपों को देखता है। 'मैं…समझता हूँ'—यह मानने वाला होता है। यह छठा अभिभ्वायतन है। (६)

"कोई आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी बाह्य लाल (लोहित)…लाल आभा वाले रूपों को देखता है। जैसे बन्धुजीवक (अड़हुल) का फूल लाल…होता है या फिर जैसे

निभासं, सेय्यथापि वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं लोहितकं लोहितकवण्णं लोहितकनिदस्सनं लोहितकनिभासं; एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितकवण्णानि लोहितकनिदस्सनानि लोहितकनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि, पस्सामी' ति एवं सञ्ञी होति। इदं सत्तमं अभिभायतनं।

"अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदात-[N. 238] वण्णानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि। सेय्यथापि नाम ओसधितारका ओदाता ओदातवण्णा ओदातनिदस्सना ओदातनिभासा, सेय्यथापि वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं ओदातं ओदातवण्णं ओदातनिदस्सनं ओदातनिभासं; एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिदस्सनानि [B. 207] ओदातनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि, पस्सामी' ति एवं सञ्ञी होति। इदं अट्ठमं अभिभायतनं। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

१६. "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका दस कसिणायतनानि भावेन्ति। पठवीकसिणमेको सञ्जानाति उद्धमधो तिरियं अद्वयं अप्पमाणं; आपोकसिणमेको सञ्जानाति ··पे०···तेजोकसिणमेको सञ्जानाति···वायोकसिणमेको सञ्जानाति··· नीलकसिणमेको सञ्जानाति···पीतकसिणमेको सञ्जानाति···लोहितकसिण-

---

दोनों ओर से चिकना बनारसी वस्त्र लाल···होता है; इसी तरह कोई आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी बाह्य लाल···रूपों को देखता है। 'मैं···समझता हूँ'—यह मानने वाला होता है। यह सातवाँ अभिभ्वायतन है। (७)

"कोई आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी बाह्य श्वेत (=अवदात)···श्वेत आभा वाले रूपों को देखता है। जैसे ओषधियों को रस देने वाला शुक्र तारा श्वेत···होता है या फिर जैसे दोनों ओर से चिकना बनारसी वस्त्र श्वेत···होता है; उसी तरह कोई आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी बाह्य श्वेत···रूपों को देखता है। 'मैं···समझता हूँ'—यह मानने वाला होता है। यह आठवाँ अभिभ्वायन है। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक साधना करते हैं। (८)

१६. "और फिर उदायि! मैंने···उसके सहारे वे दश कृत्स्न-आयतनों (=कसिणायतनों) की भावना करते हैं। कोई साधक ऊपर-नीचे, आड़े-तिरछे, अद्वितीय, अप्रमाण पृथ्वीकृत्स्न (पृथ्वी ही सब कछ है) जानता है, कोई ··अपकृत्स्न (आपोकसिण)··· तेजकृत्स्न ··· वायुकृत्स्न ··· नील-कृत्स्न···पीत-कृत्स्न···लोहित-

मेको सञ्जानाति···ओदातकसिणमेको सञ्जानाति···आकासकसिणमेको सञ्जानाति···विञ्ञाणकसिणमेको सञ्जानाति उद्धमधो [R. 15] तिरियं अद्वयं अप्पमाणं। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

१७. "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका चत्तारि झानानि भावेन्ति। इधुदायि, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, उदायि, दक्खो न्हापको वा न्हापकन्तेवासी वा कंसथाले न्हानीयचुण्णानि आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं सन्नेय्य, सास्स न्हानीयपिण्डि स्नेहानुगता स्नेहपरेता सन्तरबाहिरा फुटा स्नेहेन न च पग्घरिणी; एवमेव खो, [N. 239] उदायि, भिक्खु इममेव कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति।

कृत्स्न···अवदात-कृत्स्न···आकाश-कृत्स्न कोई ऊपर-नीचे, आड़े-तिरछे, अद्वितीय, अप्रमाण विज्ञान-कृत्स्न को जानता है। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक···साधना करते हैं।

१७. "और फिर उदायि! मैंने···उसके सहारे मेरे श्रावक चार ध्यानों की भावना करते हैं। उदायि! यहाँ भिक्षु कामभोगों एवं कुशल धर्मों से दूर रहता हुआ···पूर्ववत्[1]···प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। वह इसी काया को विवेकजन्य प्रीतिसुख से आप्लावित, परिप्लावित करता है, परिपूर्ण एवं परिस्फरित करता है; (यहाँ तक कि) इस काया का कोई भी अंश उस विवेकजन्य प्रीतिसुख से अस्पृष्ट (अछूता) नहीं रहता। उदायि! जैसे कोई चतुर स्नापक (नहलाने वाला) या उसका सहायक स्नानीयचूर्ण को कांसे की थाली में डाल पानी में घोल कर, फिर उस पानी मिले चूर्ण को हाथ से दबाता हुआ, धीरे-धीरे सुखाकर उस चूर्ण की एक पिण्डी बना ले, फिर उस पानी मिली पिण्डी को शरीर पर रगड़े, उस समय उस पानी मिली पिण्डी से निकला झाग पूरे शरीर को आप्लावित कर ले, शरीर का कोई भी भाग ऐसा न बचे जहाँ से वह स्नानीय चूर्ण का झाग न पिघल गया हो; इसी तरह, उदायि! वह (प्रथम ध्यान का साधक भिक्षु) इसी काया को विवेकजन्य प्रीतिसुख से आप्लावित···अस्पृष्ट नहीं रहता।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ४५ (भयभेरवसुत्त)।

"पुन च परं, उदायि, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं···पे०···दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं समाधिजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। [B. 208] सेय्यथापि, उदायि, उदकरहदो गम्भीरो उब्भिदोदको; तस्स नेवस्स पुरत्थिमाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न पच्छिमाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न उत्तराय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न दक्खिणाय [R. 16] दिसाय उदकस्स आयमुखं, देवो च न कालेन कालं सम्मा धारं अनुप्पवेच्छेय्य; अथ खो तम्हा व उदकरहदा सीता वारिधारा उब्भिज्जित्वा तमेव उदकरहदं सीतेन वारिना अभिसन्देय्य परिसन्देय्य परिपूरेय्य परिप्फरेय्य, नास्स किञ्चि सब्बावतो उदकरहदस्स सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स। एवमेव खो, उदायि, भिक्खु इममेव कायं समाधिजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति।

"पुन च परं, उदायि, भिक्खु पीतिया च विरागा···पे०···ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स

"और फिर, उदायि! भिक्षु वितर्क विचारों के शान्त हो जाने से, आध्यात्मिक प्रसन्नता द्वारा···पूर्ववत्[1]···द्वितीयध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। वह इसी काया को समाधि से उत्पन्न प्रीतिसुख द्वारा आप्लावित परिप्लावित करता है, परिपूर्ण एवं परिस्फरित करता है, इस काया का कोई भी अंश उस समाधिजन्य प्रीतिसुख से अस्पृष्ट नहीं रहता। उदायि! जैसे कोई तालाब गहरा एवं पानी से लबालब भरा हो; उसमें न तो कोई पूर्व दिशा से पानी आने का स्रोत हो, न पश्चिम दिशा से···न उत्तर दिशा से···न दक्षिण दिशा से पानी आने का स्रोत हो, उसमें न मेघ ही समय-समय पर जलधारा बरसावें; तो भी उस पानी के तालाब से छोटे-छोटे शीतल जलकण उठकर, उस तालाब को शीतल जल से आप्लावित, परिप्लावित करें, परिपूर्ण एवं परिस्फरित करे, उस तालाब का कोई भी अंश शीतल जल से अस्पृष्ट न रहे। उसी तरह, उदायि! भिक्षु इसी काया को समाधिजन्य प्रीतिसुख से आप्लावित··· अस्पृष्ट नहीं रहता।

"और फिर उदायि! भिक्षु प्रीति से भी वैराग्य होने से कारण···पूर्ववत्[1]··· तृतीयध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। वह इसी काया को प्रीतिरहित सुख से आप्लावित परिप्लावित करता है, परिपूर्ण एवं परिस्फरित करता है, इस काया का

१-१. द्र०—पीछे पृ० ४६ (भयभेरवसुत्त)।

निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, उदायि, उप्पलिनियं वा पदुमिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि अन्तो निमुग्गपोसीनि, तानि याव चग्गा याव च मूला सीतेन वारिना [N. 240] अभिसन्नानि परिसन्नानि परिपूरानि परिप्फुटानि, नास्स किञ्चि सब्बावतं, उप्पलानं वा पदुमानं वा पुण्डरीकानं वा सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स; एवमेव खो, उदायि भिक्खु इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं होति।

"पुन च परं, उदायि, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, उदायि, पुरिसो ओदातेन वत्थेन ससीसं पारुपित्वा निसिन्नो अस्स, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स ओदातेन वत्थेन अप्फुटं अस्स; एवमेव खो, उदायि, [B. 209] भिक्खु इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा [R. 17] परियोदातेन अप्फुटं होति। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।...

कोई भी अंश उस प्रीतिरहित सुख से अस्पृष्ट नहीं रहता। उदायि! जैसे किसी उत्पल, पद्म या पुण्डरीकलता में कोई नील, श्वेत या रक्त कमल के फूल जल में ही पैदा हुए, उसी में बढ़े, तथा ऊपर से नीचे तक डूबे हुए हों, वे मूल से शिखा तक शीतल जल से आप्लावित, परिप्लावित, परिपूर्ण एव परिस्फरित हों, उनसे उत्पल, पद्म या पुण्डरीकलता का कोई भी अवयव अस्पृष्ट नहीं रहता; उसी तरह उदायि! भिक्षु इसी काया को प्रीतिरहित सुख से आप्लावित...अस्पृष्ट नहीं रहता।

"और फिर, उदायि! भिक्षु सुख-दुःख के प्रहाण से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हो जाने से, अदुःख-असुखमय उपेक्षायुक्त स्मृतिपारिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है। वह इसी काया को परिशुद्ध एवं पर्यवदात् चित्त से आप्लावित कर बैठा होता (साधना करता) है, उसके शरीर का कोई भी अंश परिशुद्ध एवं पर्यवदात् चित्त से अस्पृष्ट नहीं रहता। उदायि! जैसे कोई पुरुष श्वेत वस्त्र से शिर से पैर तक ओढ़कर बैठा हो, उसके शरीर का सारा अंश श्वेत

१८. "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका एवं पजानन्ति—'अयं खो मे कायो रूपी चातुम्महाभूतिको मातापेत्तिकसम्भवो ओदनकुम्मासूपचयो अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मो ; इदं च पन मे विञ्ञाणं एत्थ सितं एत्थ पटिबद्धं'। सेय्यथापि, उदायि, मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो सब्बाकारसम्पन्नो; तत्रस्स सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा। तमेनं चक्खुमा पुरिसो हत्थे करित्वा पच्चवेक्खेय्य—'अयं खो मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो सब्बाकारसम्पन्नो ; तत्रिदं सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा' ति। एवमेव खो, [N. 241] उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका एवं पजानन्ति—'अयं खो मे कायो रूपी चातुम्महाभूतिको मातापेत्तिकसम्भवो ओदनकुम्मासूपचयो अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मो ; इदं च पन मे विञ्ञाणं एत्थ सितं एत्थ पटिबद्धं' ति। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

१९. "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका इमम्हा काया अञ्ञं कायं अभिनिम्मिनन्ति रूपिं मनोमयं

वस्त्र से आवृत हो; उसी तरह, उदायि ! भिक्षु इसी काया को परिशुद्ध एवं पर्यवदात् चित्त से...अस्पृष्ट नहीं रहता। वहाँ भी मेरे श्रावक...साधना करते हैं।

१८. "और फिर उदायि ! मैंने...उसके सहारे मेरे श्रावक ऐसा मानते हैं—'यह मेरा शरीर रूपवान्, चातुर्महाभूतिक, माता-पिता से उत्पन्न, भात-दाल से पुष्ट, अनित्य-उच्छेदन-परिमर्दन-भेदन-विध्वंसन धर्म वाला है; और यह मेरा 'विज्ञान' इसी में प्रतिबद्ध एवं व्यामुग्ध है। उदायि ! जैसे कोई वैदूर्यमणि शुभ्र (स्वच्छ), उत्तम जाति की अष्टकोण, अच्छी तरह गढ़ी हुई, साफ-सुथरी, निर्मल, सर्वगुण एवं सर्वाकार सम्पन्न हो; वहाँ उसमें कोई नीला, पीला, लाल, श्वेत या पाण्डु सूत पिरोया हो। उसको आँखवाला पुरुष हाथ में लेकर देखे (और कहे)—'यह वैदूर्य मणि शुभ्र, उत्तम...सर्वाकार सम्पन्न है; इसमें नीला...पाण्डु सूत पिरोया है!' उदायि ! उसी तरह मैंने...उसके सहारे मेरे श्रावक ऐसा मानते हैं—यह मेरा शरीर...विध्वंसन धर्म वाला है; और यह मेरा 'विज्ञान' इसी में प्रतिबद्ध एवं व्यामुग्ध है।' वहाँ भी मेरे श्रावक...साधना करते हैं।

१६. "और फिर उदायि ! मैंने...उसके सहारे मेरे श्रावक इस (पाञ्चभौतिक) काया से अन्य (एक) रूपवान्, मनोमय (सूक्ष्म), सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों से युक्त

सब्बङ्गपच्चङ्गिं अहीनिन्द्रियं। सेय्यथापि, उदायि, पुरिसो मुञ्जम्हा ईसिकं पब्बाहेय्य; तस्स एवमस्स—'अयं मुञ्जो, अयं ईसिका; अञ्ञो मुञ्जो, अञ्ञा ईसिका; मुञ्जम्हात्वेव ईसिका पब्बाळ्हा' ति। सेय्यथा वा पनुदायि, पुरिसो असिं कोसिया पब्बाहेय्य; तस्स एवमस्स—'अयं असि, अयं कोसि; अञ्ञो असि, अञ्ञा कोसि; कोसियात्वेव असि पब्बाळ्हो' ति। सेय्यथा वा, पनुदायि, पुरिसो अहिं करण्डा उद्धरेय्य; तस्स एवमस्स--[R. 18] 'अयं अहि, अयं करण्डो; अञ्ञो अहि, अञ्ञो करण्डो; करण्डा- [B. 210] त्वेव अहि उब्भतो' ति। एवमेव खो, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका इमम्हा काया अञ्ञं कायं अभिनिम्मिनन्ति रूपिं मनोमयं सब्बङ्गपच्चङ्गिं अहीनिन्द्रियं। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

२०. "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोन्ति—एको पि हुत्वा बहुधा होन्ति, बहुधा पि हुत्वा एको होन्ति; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुट्टं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमाना गच्छन्ति, सेय्यथापि आकासे; पठविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोन्ति, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छन्ति, सेय्यथापि पठवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमन्ति, सेय्यथापि

काया की कल्पना (अनुमान) करते हैं। उदायि! जैसे कोई पुरुष मूँज से सींक (इषीका) निकाले; उसको यह हो--'यह मूँज है, यह सींक है; (इनमें) मूँज अलग है, सींक अलग है; मूँज से ही सींक बढ़ी (निकली) है'। अथवा उदायि! जैसे कोई पुरुष तलवार को म्यान (कोश) से बाहर निकाले; उसको यह हो--'यह तलवार है, यह कोश है; तलवार अलग है, कोश अलग; कोश से ही तलवार निकली है'। अथवा उदायि! जैसे कोई पुरुष सर्प को पिटारी से निकाले; उसको यह हो—'यह सर्प है, यह करण्डक (पिटारी) है; सर्प अन्य है, पिटारी अन्य है; पिटारी से ही सर्प निकला है'। उसी तरह, उदायि! मैंने...उसके सहारे मेरे श्रावक इस काया से अन्य...काया की कल्पना करते हैं। यहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक...साधना करते हैं।

२०. "और फिर उदायि! मैंने...उसके सहारे मेरे श्रावक अनेक प्रकार के ऋद्धिविधों (चमत्कारों) का अनुभव करते हैं--(जैसे) एक होकर बहुत हो जाते हैं, (या फिर) अनेक होकर (पुनः) एक हो जाते हैं; आविर्भाव, तिराभाव का अनुभव करते हैं; आकाशगमन के समान बिना किसी बाधा के दीवाल, परकोटा या पर्वत आदि के रहते हुए भी निर्विघ्न पार चले जाते हैं, (वे) जल के समान

पक्खी सकुणो ; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना [N. 242] परिमसन्ति परिमज्जन्ति, या ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेन्ति। सेय्यथापि, उदायि, दक्खो कुम्भकारो वा कुम्भकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकताय मत्तिकाय यं यदेव भाजनविकतिं आकङ्खेय्य तं तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य; सेय्यथा वा पनुदायि, दक्खो दन्तकारो वा दन्तकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकतस्मिं दन्तस्मिं यं यदेव दन्तविकतिं आकङ्खेय्य तं तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य ; सेय्यथा वा पनुदायि, दक्खो सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकतस्मिं सुवण्णस्मिं यं यदेव सुवण्णविकतिं आकङ्खेय्य तं तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य। एवमेव खो, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोन्ति—एको पि हुत्वा बहुधा होन्ति, बहुधा पि हुत्वा एको होन्ति ; आविभावं, तिरोभावं ; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमाना गच्छन्ति, सेय्यथापि आकासे ; पठविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोन्ति, सेय्यथापि उदके ; उदके पि अभिज्जमाने गच्छन्ति, सेय्यथापि पठवियं ; [R. 19] आकासे पि पल्लङ्केन कमन्ति, सेय्यथापि पक्खी सकुणो ; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परिमसन्ति परि- [B. 211] मज्जन्ति याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेन्ति। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

२१. पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथा-

पृथ्वी में भी डूबते-उतराते हैं; पृथ्वी के समान जल पर भी बिना भींगे चलते-फिरते हैं; आकाश में भी पद्मासन लगा पक्षी के समान चलते रहते हैं; इन इतने बड़े, इतने तेजस्वी चन्द्रमा और सूर्य को भी हाथ से पकड़ सकते हैं, मुट्ठी में बाँध सकते हैं, इस ब्रह्मलोक को भी इसी शरीर से वश में रखने का सामर्थ्य रखते हैं। जैसे कोई चतुर कुम्हार या कुम्हार का सहायक सुमथित, सुमर्दित मृत्तिका (मिट्टी) से जिस किसी पात्र को बनाना चाहे, उस-उस को बना सकता है, ढाल सकता है; या फिर जैसे चतुर हाथी दाँत का कारीगर या उसका सहायक अच्छी तरह चिकनाये हाथी दाँत की जिस-जिस तरह की भी दाँत की चीज बनाना चाहे, उस-उस चीज को बना सकता है; ढाल सकता है; या फिर जैसे कोई दक्ष सुवर्णकार या सुवर्णकार का सहायक अच्छी तरह शुद्ध किये सोने से जो-जो अलंकरण चाहे, उस-उस को बना सकता है, ढाल सकता है। उसी तरह उदायि ! मैंने···उसके सहारे मेरे श्रावक अनेक प्रकार के ऋद्धि-विधों का अनुभव करते हैं—एक होकर बहुत हो···इस ब्रह्मलोक को भी इसी शरीर से वश में रखने का सामर्थ्य रखते हैं। वहाँ भी मेरे श्रावक···साधना करते हैं।

२१. "और फिर उदायि ! मैंने···उसके सहारे मेरे श्रावक दिव्य विशुद्ध

पटिपन्ना मे सावका दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणन्ति—दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च। सेय्यथापि, उदायि, बलवा सङ्खधमो अप्पकसिरेनेव चतुद्दिसा विञ्ञापेय्य; एवमेव खो, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणन्ति—दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

२२. "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानन्ति—सरागं वा चित्तं 'सरागं चित्तं' ति पजानन्ति, वीतरागं वा चित्तं [N. 243] 'वीतरागं चित्तं' ति पजानन्ति, सदोसं वा चित्तं 'सदोसं चित्तं' ति पजानन्ति, वीतदोसं वा चित्तं 'वीतदोसं चित्तं' ति पजानन्ति; समोहं वा चित्तं 'समोहं चित्तं' ति पजानन्ति, वीतमोहं वा चित्तं 'वीतमोहं चित्तं' ति पजानन्ति; सङ्खित्तं वा चित्तं 'सङ्खित्तं चित्तं' ति पजानन्ति, विक्खित्तं वा चित्तं 'विक्खित्तं चित्तं' ति पजानन्ति; महग्गतं वा चित्तं 'महग्गतं चित्तं' ति पजानन्ति, अमहग्गतं वा चित्तं 'अमहग्गतं चित्तं' ति पजानन्ति; सउत्तरं वा चित्तं 'सउत्तरं चित्तं' ति पजानन्ति, अनुत्तरं वा चित्तं 'अनुत्तरं चित्तं' ति पजानन्ति; समाहितं वा चित्तं 'समाहितं चित्तं' ति पजानन्ति, असमाहितं वा चित्तं 'असमाहितं चित्तं' ति पजानन्ति; विमुत्तं वा चित्तं 'विमुत्तं चित्तं' ति पजानन्ति, अविमुत्तं वा चित्तं 'अविमुत्तं चित्तं'

श्रोत्रधातु से, जो कि साधारणतः मनुष्यों में नहीं मिलती, दोनों ही प्रकार के शब्द सुनते हैं—वे भले ही दिव्य हो या मानुष, दूरवर्ती हो या समीपवर्ती। उदायि! जैसे तेज शङ्ख बजाने वाला थोड़े ही प्रयास से चारों दिशाओं को गुंजा देता है; उसी तरह, उदायि! मैंने...उसके सहारे मेरे श्रावक दिव्य, विशुद्ध श्रोत्रधातु...या समीपवर्ती। वहाँ भी मेरे श्रावक...साधना करते हैं।

२२. "और फिर, उदायि! मैंने...उसके सहारे श्रावक दूसरे प्राणियों के दूसरे पुद्गलों के चित्त को स्वचित्त से जानते हैं—सरागचित्त को 'सरागचित्त है' ऐसा जानते हैं; वीतराग चित्त को 'वीतराग चित्त है' ऐसा जानते हैं; सद्वेष चित्त 'सद्वेष चित्त है' ऐसा जानते हैं; वीतद्वेष चित्त को...मोहयुक्त चित्त को...वीतमोह चित्त को...संक्षिप्त चित्त को...विक्षिप्त चित्त को...महद्गत चित्त को...अमहद्गत चित्त को...सउत्तर (अपेक्षाकृत छोटा) चित्त को...अनुत्तर (सर्वतोमहान्) चित्त को...समाहित चित्त को...असमाहित चित्त को...विमुक्त चित्त को...अविमुक्त चित्त को 'अविमुक्त चित्त है' ऐसा जानते हैं। उदायि! जैसे कोई सुन्दर सुरूप

ति पजानन्ति। सेय्यथापि, उदायि, इत्थी वा पुरिसो वा दहरो युवा मण्डनकजातिको आदासे वा परिसुद्धे परियोदाते अच्छे वा उदकपत्ते सकं [R. 20] मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो सकणिकं वा 'सकणिकं' ति जानेय्य, अकणिकं वा 'अकणिकं' ति जानेय्य; एवमेव खो, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा [B. 212] चेतो परिच्च पजानन्ति—सरागं वा चित्तं 'सरागं चित्तं' ति पजानन्ति, वीतरागं वा चित्तं…पे०…सदोसं वा चित्तं…वीतदोसं वा चित्तं…समोहं वा चित्तं…वीतमोहं वा चित्तं…सङ्खित्तं वा चित्तं…विक्खित्तं वा चित्तं…महग्गतं वा चित्तं…अमहग्गतं वा चित्तं…सउत्तरं वा चित्तं… अनुत्तरं वा चित्तं…समाहितं वा चित्तं…असमाहितं वा चित्तं…विमुत्तं वा चित्तं…अविमुत्तं वा चित्तं 'अविमुत्तं चित्तं' ति पजानन्ति। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

"पुन च परं उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरन्ति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि [N. 244] जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि, अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी

नयनाभिराम मुखाकृतिवाली स्त्री या पुरुष, बालक या युवा साफ-सुथरे दर्पण (=आदर्श) में या परिशुद्ध, स्वच्छ, साफ-सुथरे जलपात्र में अपना चेहरा देखता हुआ, (चेहरे की) खराबी को खराबी के रूप में जान ले और अच्छाई को अच्छाई के रूप में जान ले; इसी तरह, उदायि ! मैंने…उसके सहारे दूसरे प्राणियों के, दूसरों पुद्‌गलों के चित्त को स्वचित्त से जानते हैं—सराग चित्त को 'सराग चित्त है'—ऐसा जानते हैं; वीतराग चित्त…पूर्ववत्…अविमुक्त चित्त को 'अविमुक्त चित्त है'—ऐसा जानते हैं। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक…साधना करते हैं।

"और फिर, उदायि ! मैंने…उसके सहारे मेरे श्रावक अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों का स्मरण करते हैं, जैसे—एक जन्म का भी, दो जन्मों का भी, तीन जन्मों का भी, चार जन्मों का भी, पाँच जन्मों का भी, दश जन्मों का भी, बीस जन्मों का भी, तीस जन्मों का भी, चालीस जन्मों का भी, पचास जन्मों का भी, सौ जन्मों का भी, हजारों, लाखों जन्मों का भी, अनेक संवर्त्त कल्पों, अनेक विवर्त्त कल्पों, अनेक संवर्त्त-बिवर्त्त कल्पों का भी—'मैं वहाँ इस नाम से, इस गोत्र से, इस वर्ण से, ऐसे आहार से, ऐसे सुख-दुःखों का अनुभव करने वाला एवं इतनी आयुवाला था; वह मैं वहाँ

एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति । इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरन्ति । सेय्यथापि, उदायि, पुरिसो सकम्हा गामा अञ्ञं गामं गच्छेय्य, तम्हा पि गामा अञ्ञं गामं गच्छेय्य; सो तम्हा गामा सकं येव गामं पच्चागच्छेय्य; तस्स एवमस्स—'अहं खो सकम्हा गामा अञ्ञं गामं अगच्छिं, तत्र एवं अट्ठासिं एवं निसीदिं एवं अभासिं एवं तुण्ही अहोसिं; तम्हा पि गामा अमुं गामं अगच्छिं, तत्रा पि एवं अट्ठासिं एवं [R. 21] निसीदिं एवं अभासिं एवं तुण्ही अहोसिं; सोम्हि तम्हा गामा सकं येव गामं पच्चागतो' ति । एवमेव खो, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरन्ति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं…पे०…इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरन्ति । तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति ।

"पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सन्ति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते [B. 213] यथाकम्मूपगे सत्ते पजानन्ति—'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन

से च्युत होकर वहाँ पैदा हुआ; वहाँ भी मैं इस नाम से, इस गोत्र से, ऐसे वर्ण वाला, ऐसे आहार वाला, ऐसे सुख-दुःख का अनुभव करने वाला, इतनी आयु वाला था; वह मैं वहाँ से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुआ' । यों आकार एवं उद्देश सहित अनेकविध पूर्वजन्मों को स्मरण करते हैं । उदायि ! जैसे कोई पुरुष अपने ग्राम से दूसरे ग्राम जाय, उस ग्राम से (फिर) दूसरे ग्राम जाय, वह उस ग्राम से पुनः अपने ग्राम वापस लौट आये; उसको यह हो—'मैं अपने ग्राम से दूसरे ग्राम गया था, वहाँ मैं यों ठहरा, यों बैठा, यों बोला, यों चुप रहा; (फिर) उस ग्राम से दूसरे ग्राम गया, वहाँ भी मैं यों ठहरा…यों चुप रहा; वही मैं उस ग्राम से पुनः अपने ग्राम वापस लौट आया' । उसी तरह, उदायि ! मैंने…उसके सहारे मेरे श्रावक अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का स्मरण करते हैं, जैसे—एक जन्म…पूर्ववत्… आकार एवं उद्देश सहित अनेकविध पूर्वजन्मों को स्मरण करते हैं । वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक…साधना करते हैं ।

"और फिर, उदायि ! मैंने…उसके सहारे मेरे श्रावक साधारण मनुष्यों से ऊपर उठकर, दिव्य, निर्मल चक्षुरिन्द्रिय से इस संसार में सुवर्ण-दुर्वर्ण, छोटे-बड़े, सुगति-दुर्गतिमय (सुखी-दुःखी) प्राणियों को मरते-जन्मते देखते हैं । वे प्राणियों

समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना ; इमे वा पन भोन्तो सत्ता [N. 245] कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सन्ति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानन्ति। सेय्यथापि, उदायि, द्वे अगारा सद्वारा, तत्र चक्खुमा पुरिसो मज्झे ठितो पस्सेय्य मनुस्से गेहं पविसन्ते पि निक्खमन्ते पि अनुचङ्कमन्ते पि अनुविचरन्ते पि; एवमेव खो, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सन्ति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानन्ति···पे०···तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता विहरन्ति।

[R. 22] "पुन च परं, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति। सेय्यथापि,

---

को स्व-स्वकर्मानुसार च्युत व उत्पन्न हुआ जानते हैं—'इनमें से कुछ प्राणी अपने कायिक-वाचिक-मानसिक दुष्कर्मों से युक्त, आर्यजनों के निन्दक, मिथ्यादृष्टि एवं मिथ्या कर्मों को स्वीकार किये हुए थे, वे इस देहपात के बाद कष्टमय, दुर्गतिमय, हीन नरक में उत्पन्न हुए हैं और इनमें से कुछ प्राणी अपने कायिक-वाचिक-मानसिक सत्कर्मों से युक्त, आर्यजनों के प्रशंसक, सम्यक्दृष्टि एवं सम्यक्कर्मों को स्वीकार करने वाले थे, वे इस देहपात के बाद, सुखमय, उच्च सुगतिमय स्वर्ग में उत्पन्न हुए हैं। यों साधारण मनुष्यों से ऊपर उठकर दिव्य···उत्पन्न हुआ जानते हैं। उदायि ! जैसे कोई दो द्वार वाला घर हो वहाँ कोई आँखों वाला पुरुष बीच में खड़ा, उन द्वारों में मनुष्यों को घुसते-निकलते, घूमते-फिरते देखे; उसी तरह, उदायि ! मैंने··· उसके सहारे मेरे श्रावक साधारण मनुष्यों से ऊपर उठकर, दिव्य, निर्मल चक्षुरिन्द्रिय से···पूर्ववत्···उत्पन्न हुआ जानते हैं। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक···साधना करते हैं।

"और फिर, उदायि ! मैंने श्रावकों को जो उपर्युक्त मार्ग बताया है, उसके सहारे मेरे श्रावक आस्रवों के क्षय से अनास्रव हो चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् कर व प्राप्त कर साधना करते हैं। उदायि !

उदायि, पब्बतसङ्खेपे उदकरहदो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो, तत्थ चक्खुमा पुरिसो तीरे ठितो पस्सेय्य सिप्पिसम्बुकं पि सक्खरकठलं पि मच्छगुम्बं पि चरन्तं पि तिट्ठन्तं पि ; तस्स एवमस्स--'अयं खो उदकरहदो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो, तत्रिमे सिप्पिसम्बुका पि सक्खरकठला पि मच्छगुम्बा पि चरन्ति पि तिट्ठन्ति पी' ति। एवमेव खो, उदायि, अक्खाता मया सावकानं पटिपदा, यथापटिपन्ना मे सावका आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति। तत्र च पन मे सावका बहू अभिञ्ञावोसानपार- [B. 214] मिप्पत्ता विहरन्ति। अयं खो, उदायि, पञ्चमो धम्मो येन मम सावका सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ति।

"इमे खो, उदायि, पञ्च धम्मा येहि ममं सावका सक्क- [N. 246] रोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरन्ती" ति।

२३. इदमवोच भगवा। अत्तमनो सकुलुदायी परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

जैसे पर्वतों से घिरे स्थान में कोई स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल पानी का तालाब हो, वहाँ कोई आँखवाला आदमी किनारे पर बैठा, उस तालाब में पड़े शुक्तिसमूह, बालुकाकणराशि या चलती-फिरती मछलियों को देखे; (उन्हें देखकर) उसे यह हो--'यह पानी का तालाब स्वच्छ, शुद्ध व निर्मल है, इसमें शुक्तिसमूह, बालुकाकणराशि और चलती-फिरती मछलियाँ भी हैं।' उसी तरह, उदायि ! मैंने श्रावकों को जो उपर्युक्त मार्ग बताया है, उसके सहारे मेरे श्रावक आस्रवों के क्षय से अनास्रव हो, चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात् कर व प्राप्त कर साधना करते हैं। वहाँ भी मेरे बहुत से श्रावक अभिज्ञापारमिता (अर्हत् पद) तक पहुँचकर साधना करते हैं। उदायि ! यह मुझमें पाँचवाँ धर्म है, जिसके कारण श्रावक मेरा लाभ-सत्कार...साधना करते हैं।

"उदायि ! मुझमें ये पाँच धर्म हैं, जिनके कारण श्रावक मेरा लाभ-सत्कार करते हैं, मुझमें गौरव मानते हैं, मुझे मान-सम्मान देते हैं व पूजते हैं, लाभ-सत्कार कर, गौरव मान, मान-सम्मान देते एवं पूजते हुए, मेरे अधीन साधना करते हैं।"

२३. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमन सकुल उदायी परिव्राजक ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

महासकुलुदायिसुत्त समाप्त॥

२८. समणमुण्डिकसुत्तं

[N. 247] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन उग्गाहमानो परिब्बा-[R. 23] जको समणमुण्डिकापुत्तो समयप्पवादके तिन्दुकाचीरे एकसालके मल्लिकाय आरामे पटिवसति महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं पञ्चमत्तेहि परिब्बाजकसतेहि। अथ खो पञ्चकङ्गो थपति सावत्थिया निक्खमि दिवा दिवस्स भगवन्तं दस्सनाय। अथ खो पञ्चकङ्गस्स थपतिस्स एतदहोसि— "अकालो खो ताव भगवन्तं दस्सनाय; पटिसल्लीनो भगवा। मनोभावनियानं पि भिक्खूनं असमयो दस्सनाय; पटिसल्लीना मनोभावनिया भिक्खू। यन्नूनाहं येन समयप्पवादको तिन्दुकाचीरो एकसालको मल्लिकाय आरामो येन उग्गाहमानो परिब्बाजको समणमुण्डिकापुत्तो तेनुपसङ्कमेय्यं" ति। अथ खो पञ्चकङ्गो थपति येन समयप्पवादको तिन्दुकाचीरो एकसालको मल्लिकाय आरामो येन उग्गाहमानो परिब्बाजको समणमुण्डिकापुत्तो तेनुपसङ्कमि।

तेन खो पन समयेन उग्गाहमानो परिब्बाजको समणमुण्डिकापुत्तो महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं निसिन्नो होति उन्नादिनिया उच्चा-

---

२८. श्रमणमुण्डिकसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाये जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय श्रमणमुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण नामक परिव्राजक समयप्रवादक ग्राम के तिन्दुकाचीर मोहल्ले में मल्लिका देवी द्वारा निर्मापित एकशालक (एक ही बड़े कमरे वाले) आराम में, पाँच सौ परिव्राजकों के विशाल परिव्राजक समूह के साथ रहता था। तब एक दिन पञ्चकाङ्ग नामक स्थपति, कुछ दिन चढ़े, भगवान् के दर्शनहेतु श्रावस्ती से निकला। तब पञ्चकाङ्ग स्थपति के मन में यह हुआ—"भगवान् के दर्शन का यह समय नहीं है, भगवान् अभी समाधिरत होंगे; मनन-चिन्तन करने वाले भिक्षुओं के दर्शन का भी यह समय नहीं है; वे भी ध्यानमग्न ही होंगे। तो क्यों न मैं समय प्रवादक के तिन्दुकाचीर स्थित एकशालक मल्लिकाराम में चलूँ, जहाँ श्रमणमुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण परिव्राजक है।" इसके बाद पञ्चकाङ्ग स्थपति समयप्रवादक के तिन्दुकाचीर स्थित…उद्ग्राहमाण परिव्राजक था, वहाँ पहुँचा।

उस समय श्रमणमुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण परिव्राजक विशाल परिव्राजक समूह से घिरा बैठा था…पूर्ववत्[1]…निरर्थक बातें कर रहे थे। (उसी समय) श्रमण-

---

१. द्र०—पीछे पृ० ९५८ (२६. सन्दकसुत्त)।

सद्दमहासद्दाय अनेकविहितं तिरच्छानकथं कथेन्तिया, सेय्यथीदं—राजकथं चोरकथं महामत्तकथं सेनाकथं भयकथं युद्धकथं अन्नकथं [B. 215] पानकथं वत्थकथं सयनकथं मालाकथं गन्धकथं ञातिकथं यानकथं गामकथं निगमकथं नगरकथं जनपदकथं इत्थिकथं सूरकथं विसिखाकथं कुम्भट्ठानकथं पुब्बपेतकथं नानत्तकथं लोकक्खायिकं समुद्दक्खायिकं इतिभवाभवकथं इति वा। अद्दसा खो उग्गाहमानो परिब्बाजको समणमुण्डिकापुत्तो पञ्च- [N. 248] कङ्गं थपतिं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान सकं परिसं सण्ठापेसि—"अप्पसद्दा भोन्तो होन्तु, मा भोन्तो सद्दमकत्थ ; अयं समणस्स गोतमस्स सावको आगच्छति पञ्चकङ्गो थपति। यावता खो पन समणस्स गोतमस्स सावका गिही ओदातवसना सावत्थियं पटिवसन्ति अयं तेसं अञ्ञतरो पञ्चङ्गो थपति। अप्पसद्दकामा खो पन ते आयस्मन्तो अप्पसद्दविनीता अप्पसद्दस्स वण्णवादिनो ; अप्पेव नाम अप्पसद्दं परिसं विदित्वा उपसङ्कमितब्बं मञ्ञेय्या" ति। अथ खो ते परिब्बाजका तुण्ही अहेसुं।

१. उग्गाहमानस्स परिब्बाजकस्स वादो

अथ खो पञ्चकङ्गो थपति येन उग्गाहमानो परिब्बाजको समणमुण्डिकापुत्तो तेनुपसङ्कमि ; उपसङ्कमित्वा उग्गाहमानेन परिब्बाजकेन समणमुण्डिकापुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं [R. 24] वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो पञ्चकङ्गं थपतिं

मुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण परिव्राजक ने पञ्चकाङ्ग स्थपति को दूर से ही आते देखा। देखकर अपनी परिषद् को सावधान किया—"आप लोग थोड़ा धीरे-धीरे बात कीजिये, इतना जोर से न बोलिये; (देख नहीं रहे हैं) यह श्रमण गौतम का शिष्य पञ्चकाङ्ग स्थपति आ रहा है ! श्रमण गौतम के जितने भी गृहस्थ सफेदपोश (रईस) शिष्य श्रावस्ती में रहते हैं, उनमें से यह पञ्चकाङ्ग स्थपति एक (प्रमुख) है। ये आयुष्मान् हल्ला-गुल्ला पसन्द नहीं करते, ये स्वयं दूसरों से थोड़े शब्दों में बात करते हैं तथा उससे भी कम शब्दों में दूसरे से बात सुनना चाहते हैं; हो सकता है, ये हमारी परिषद् को अल्पशब्द (शान्त) समझकर यहाँ आना उचित समझें।" तब वे परिव्राजक चुप हो गये।

१. उद्ग्राहमाण परिव्राजक का मत

२. इसके बाद पञ्चकाङ्ग स्थपति जहाँ श्रमणमुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण परिव्राजक था, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर, श्रमणमुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण परिव्राजक से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशल-मंगल पूछ, सामयिक बातें पूरी कर, एक तरफ बैठ गया। एक ओर बैठे पञ्चकाङ्ग स्थपति से श्रमणमुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण परिव्राजक ने यह कहा—

उग्गाहमानो परिब्बाजको समणमुण्डिकापुत्तो एतदवोच—"चतूहि खो अहं, गहपति, धम्मेहि समन्नागतं पुरिसपुग्गलं पञ्ञापेमि सम्पन्नकुसलं परमकुसलं उत्तमपत्तिपत्तं समणं अयोज्झं। कतमेहि चतूहि ? इध, गहपति, न कायेन पापकम्मं करोति, न पापकं वाचं भासति, न पापकं सङ्कप्पं सङ्कप्पेति, न पापकं आजीवं आजीवति—इमेहि खो अहं, गहपति, चतूहि धम्मेहि समन्नागतं पुरिसपुग्गलं पञ्ञापेमि सम्पन्नकुसलं उत्तमपत्तिपत्तं समणं अयोज्झं" ति।

अथ खो पञ्चकङ्गो थपति उग्गाहमानस्स परिब्बाजकस्स समणमुण्डिकापुत्तस्स भासितं नेव अभिनन्दि नप्पटिक्कोसि। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा उट्ठायासना पक्कामि—"भगवतो सन्तिके एतस्स भासितस्स अत्थं आजानिस्सामी" ति। अथ खो पञ्चकङ्गो थपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पञ्चकङ्गो थपति यावतको अहोसि उग्गाहमानेन [N. 249, B. 216] परिब्बाजकेन समणमुण्डिकापुत्तेन सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि।

३. एवं वुत्ते, भगवा पञ्चकङ्गं थपतिं एतदवोच—"एवं सन्ते खो, थपति, दहरो कुमारो मन्दो उत्तानसेय्यको सम्पन्नकुसलो भविस्सति परम-

---

"गृहपति ! मैं चार गुणों से युक्त पुरुष-पुद्गल को सम्पन्न-कुशल (सत्कर्मयुक्त), परमकुशल (सर्वश्रेष्ठ), उत्तम गतिप्राप्त, श्रमण एवं अयोध्य (जिससे बराबरी न की जा सके) मानता हूँ। कौन से चार (गुणों से) ? गृहपति ! यहाँ कोई (१) न शरीर से कोई पापकर्म करता है, (२) न पापमयी वाणी बोलता है, (३) न मन से पापमय सङ्कल्प करता है, और (४) न पापमयी आजीविका से जीवनयापन करता है—गृहपति ! मैं इन चार गुणों से युक्त पुरुष-पुद्गल को··· अयोध्य मानता हूँ।"

तब (परन्तु) पञ्चकाङ्ग स्थपति ने श्रमणमुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण परिव्राजक के कथन का न अभिनन्दन किया, न विरोध ही किया। बिना अभिनन्दन या विरोध किये, आसन से उठ—"भगवान् के पास इसके कथन की सच्चाई पूछूँगा"—(यह सोच) चल दिया। इसके बाद पञ्चकाङ्ग स्थपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचा; पहुँचकर, भगवान् को प्रणामकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पञ्चकाङ्ग स्थपति ने श्रमणमुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण परिव्राजक के साथ जो कुछ भी बात-चीत हुई थी, वह सब भगवान् से कह सुनायी।

३. ऐसा कहने पर, भगवान् पञ्चकाङ्ग स्थपति से यों बोले—"स्थपति ! यदि श्रमणमुण्डिकापुत्र उद्ग्राहमाण परिव्राजक की बात मान ली जाय तो वह पालने में

कुसलो उत्तमपत्तिपत्तो समणो अयोज्झो, यथा उग्गाहमानस्स परिब्बाजकस्स समणमुण्डिकापुत्तस्स वचनं। दहरस्स हि, थपति, कुमारस्स मन्दस्स उत्तानसेय्यकस्स कायो ति पि न होति, कुतो पन कायेन पापकम्मं करिस्सति अञ्ञत्र फन्दितमत्ता! दहरस्स हि, थपति, कुमारस्स मन्दस्स उत्तानसेय्यकस्स वाचा ति पि न होति, कुतो पन पापकं वाचं भासिस्सति, अञ्ञत्र रोदितमत्ता! दहरस्स हि थपति, कुमारस्स मन्दस्स उत्तानसेय्यकस्स सङ्कप्पो ति पि न होति, कुतो पन पापकं सङ्कप्पं सङ्कप्पिस्सति, अञ्ञत्र विकूजितमत्ता! दहरस्स हि, थपति, कुमारस्स मन्दस्स उत्तानसेय्यकस्स आजीवो ति पि न होति, कुतो पन पापकं आजीवं [R. 25] आजीविस्सति, अञ्ञत्र मातुथञ्ञा! एवं सन्ते खो, थपति, दहरो कुमारो मन्दो उत्तानसेय्यको सम्पन्नकुसलो भविस्सति परमकुसलो उत्तमपत्तिपत्तो समणो अयोज्झो, यथा उग्गाहमानस्स परिब्बाजकस्स समणमुण्डिकापुत्तस्स वचनं।

४. "चतूहि खो अहं, थपति, धम्मेहि समन्नागतं पुरिसपुग्गलं पञ्ञापेमि न चेव सम्पन्नकुसलं न परमकुसलं न उत्तमपत्तिपत्तं समणं अयोज्झं, अपि चिमं दहरं कुमारं मन्दं उत्तानसेय्यकं समधिगय्ह तिट्ठति। कतमेहि चतूहि? इध, थपति, न कायेन पापकम्मं करोति, न पापकं वाचं भासति, न पापकं

पैर ऊपर किये सोये रहने वाला अबोध बच्चा भी सम्पन्नकुशल, परमकुशल, उत्तम गतिप्राप्त, श्रमण एवं अयोध्य होगा। स्थपति! उस···अबोध बच्चे को अपनी काया का भी ज्ञान नहीं है तो वह इस काया से, हाथ-पैर चलाने के अतिरिक्त, पापकर्म क्या करेगा! स्थपति! (इसी तरह) उस···अबोध बच्चे को बोलने की शक्ति ही नहीं होती तो वह रोने के अतिरिक्त, पापमय वाणी क्या बोलेगा! वह··· अबोध बच्चा सङ्कल्प (विचार) करना ही नहीं जानता तो वह (अपनी प्रसन्नता द्योतित करने के लिये) 'क्याँ-क्याँ' करने के अतिरिक्त क्या पापमय सङ्कल्प ले सकता है! स्थपति! वह···अबोध बच्चा अपने जीवनयापन के विषय में कुछ जानता ही नहीं तो वह माता का दूध पीने के अतिरिक्त क्या पापमय जीवनयापन करेगा! स्थपति! ऐसा होने पर, श्रमणमुण्डिकापुत्र परिव्राजक की बात मान ली जाय तो वह···अबोध बालक भी सम्पन्नकुशल···अयोध्य होगा।

४. स्थपति! मैं उन चार अङ्गों से युक्त पुरुष को सम्पन्नकुशल, परमकुशल, उत्तम गतिप्राप्त या अयोध्य नहीं मानता, अपितु मैं उस अबोध बालक को ही उससे विशिष्ट मानता हूँ! कौन से चार? स्थपति! जो न काया से पापकर्म करता है, न पापमयी वाणी बोलता है, न मन से पापमय सङ्कल्प करता है और न पापमयी

सङ्कप्पं सङ्कप्पेति, न पापकं आजीवं आजीवति—इमेहि खो अहं, थपति, चतूहि धम्मेहि समन्नागतं पुरिसपुग्गलं पञ्ञापेमि न चेव सम्पन्नकुसलं न परमकुसलं न उत्तमपत्तिपत्तं समणं अयोज्झं, अपि चिमं दहरं कुमारं मन्दं उत्तानसेय्यकं समधिगय्ह तिट्ठति।

२. सम्पन्नकुसलस्स पुरिसपुग्गलस्स दस धम्मा

५. "दसहि खो अहं, थपति, धम्मेहि समन्नागतं पुरिसपुग्गलं पञ्ञापेमि [N. 250] सम्पन्नकुसलं परमकुसलं उत्तमपत्तिपत्तं समणं अयोज्झं। इमे अकुसला सीला; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। इतो समुट्ठाना [B. 217] अकुसला सीला; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। इध अकुसला सीला अपरिसेसा निरुज्झन्ति; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। एवं पटिपन्नो अकुसलानं सीलानं निरोधाय पटिपन्नो होति; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि।

"इमे कुसला सीला; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। इतोसमुट्ठाना कुसला सीला; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। इध कुसला सीला अपरिसेसा निरुज्झन्ति; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। एवं पटिपन्नो कुसलानं सीलानं निरोधाय पटिपन्नो होति; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि।

"इमे अकुसला सङ्कप्पा; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। इतो-

आजीविका से जीवनयापन करता है--गृहपति! मैं इन चार गुणों से युक्त पुरुषपुद्गल को सम्पन्नकुशल... नहीं मानता, अपितु मैं उस अबोध बालक को ही उससे विशिष्ट मानता हूँ।

२. सम्पन्नकुशल पुरुष के दश गुण

५. "स्थपति! मैं तो इन दस अङ्गों से युक्त पुरुष को सम्पन्न कुशल... अयोध्य मानता हूँ। स्थपति! 'ये आचार (शील) अकुशल हैं'; इन्हें हमें जानना चाहिये--ऐसा मैं कहता हूँ। 'ये अकुशल शील यहाँ से उत्पन्न होते हैं'; स्थपति! इन्हें हमें जानना चाहिये--ऐसा मैं कहता हूँ। 'यहाँ समग्र अकुशल शील निरुद्ध हो जाते हैं'; स्थपति! इन्हें हमें जानना चाहिये। 'इस प्रकार मार्गारूढ़ साधक अकुशल शीलों के निरोध हेतु तत्पर होता है'; स्थपति! यह जानना चाहिये—ऐसा मैं कहता हूँ।

'ये कुशल आचार हैं'...। 'ये कुशलशील यहाँ से उत्पन्न होते हैं'...। 'यहाँ समग्र कुशलशील निरुद्ध हो जाते हैं'...। 'इस प्रकार मार्गारूढ़ साधक अकुशल शीलों के निरोध हेतु तत्पर होता है'...।

समुट्ठाना अकुसला सङ्कप्पा; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। इध अकुसला सङ्कप्पा अपरिसेसा निरुज्झन्ति; तमहं, थपति, वेदितब्बं [R. 26] ति वदामि। एवं पटिपन्नो अकुसलानं सङ्कप्पानं निरोधाय पटिपन्नो होति; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि।

"इमे कुसला सङ्कप्पा ; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। इतोसमुट्ठाना कुसला सङ्कप्पा ; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। इध कुसला सङ्कप्पा अपरिसेसा निरुज्झन्ति; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि। एवं पटिपन्नो कुसलानं सङ्कप्पानं निरोधाय पटिपन्नो होति ; तमहं, थपति, वेदितब्बं ति वदामि।

६. "कतमे च, थपति, अकुसला सीला ? अकुसलं कायकम्मं, अकुसलं वचीकम्मं, पापको आजीवो—इमे वुच्चन्ति, थपति, अकुसला सीला।

"इमे च, थपति, अकुसला सीला किंसमुट्ठाना ? समुट्ठानं पि नेसं वुत्तं। 'चित्तसमुट्ठाना' तिस्स वचनीयं। कतमं चित्तं ? चित्तं पि हि बहुं अनेकविधं नानप्पकारकं। यं चित्तं सरागं सदोसं समोहं, इतोसमुट्ठाना अकुसला सीला।

"इमे च, थपति अकुसला सीला कुहिं अपरिसेसा निरुज्झन्ति ? [N. 251] निरोधो पि नेसं वुत्तो। इध, थपति, भिक्खु कायदुच्चरितं पहाय कायसुचरितं

'ये अकुशल सङ्कल्प हैं'...। 'यह अकुशल सङ्कल्प यहाँ से उत्पन्न होते हैं'...। 'यहाँ समग्र कुशल सङ्कल्प निरुद्ध हो जाते हैं'...। 'इस प्रकार मार्गारुढ़ साधक अकुशल सङ्कल्पों के निरोध हेतु तत्पर होता है'... ।

'ये कुशल सङ्कल्प हैं'... । 'यह कुशल सङ्कल्प यहाँ से उत्पन्न होते हैं'... । 'यहाँ समग्र कुशल सङ्कल्प निरुद्ध हो जाते हैं'... । इस प्रकार मार्गारुढ़ साधक अकुशल सङ्कल्पों के निरोध हेतु तत्पर होता है'... ।

६. "स्थपति ! 'अकुशल शील' किसे कहते हैं ? अकुशल कायकर्म, अकुशलवाक्कर्म तथा पापमय आजीविका—स्थपति! इन्हें अकुशल शील कहते हैं।

"और स्थपति ! ये 'अकुशल शील' किससे उत्पन्न होते हैं ? इनका उत्पत्तिकारण बताया जा चुका है। (संक्षेप में) 'चित्त इनकी उत्पत्ति का कारण है'—यह समझना चाहिये। चित्त क्या है ? स्थपति ! चित्त भी नाना भेद से अनेक है। जो चित्त राग-द्वेष-मोह से युक्त है, वही इन अकुशल शीलों का उत्पत्तिकारक है।

"और स्थपति ! ये समग्र अकुशलशील कहाँ निरुद्ध हो जाते हैं ? इनका निरोध भी बताया जा चुका है। स्थपति ! यहाँ भिक्षु कायिक दुष्कर्म छोड़कर, कायिक सत्कर्म करता है, वाचिक दुष्कर्म छोड़कर, वाचिक सत्कर्म करता है, मानसिक

[B. 218] भावेति, वचीदुच्चरितं पहाय वचीसुचरितं भावेति, मनोदुच्चरितं पहाय मनोसुचरितं भावेति, मिच्छाजीवं पहाय सम्माजीवेन जीविकं कप्पेति—एत्थेते अकुसला सीला अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

"कथं पटिपन्नो, थपति, अकुसलानं सीलानं निरोधाय पटिपन्नो होति ? इध, थपति, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति ; उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति ; अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति [R. 27] पदहति। एवं पटिपन्नो खो, थपति, अकुसलानं सीलानं निरोधाय पटिपन्नो होति।

७. "कतमे च, थपति, कुसला सीला ? कुसलं कायकम्मं कुसलं वचीकम्मं, आजीवपरिसुद्धं पि खो अहं, थपति, सीलस्मिं वदामि। इमे वुच्चन्ति, थपति, कुसला सीला।

"इमे च, थपति, कुसला सीला किंसमुट्ठाना ? समुट्ठानं पि नेसं वुत्तं।

दुष्कर्म छोड़कर, मानसिक सत्कर्म करता है, गलत आजीविका (रोजगार) छोड़कर सही आजीविका से जीवनयापन करता है—यहाँ समग्र अकुशलशील निरुद्ध हो जाते हैं।

"स्थपति ! किस मार्ग पर आरुढ़ होता हुआ साधक अकुशल शीलों के निरोध हेतु तत्पर होता है ? स्थपति ! यहाँ कोई भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये मन बनाता है, प्रयास करता है, श्रम करता है, चित्त को वश में करता है, दबाता है; उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये मन बनाता...दबाता है; अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये मन बनाता... दबाता है; उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, अविनाश, वृद्धि, विपुलता, साधना की पूर्ति के लिये मन बनाता...दबाता है। स्थपति ! इस प्रकार मार्गारूढ़ साधक अकुशल शीलों के निरोध हेतु तत्पर होता है।

७. "स्थपति ! 'कुशल आचार' किसे कहते हैं ? कुशल कायकर्म, कुशल वाक्कर्म तथा शुद्ध आजीविका को भी मैं स्थपति ! शील ही कहता हूँ। स्थपति ! इन्हें कुशल आचार (शील) कहते हैं।

"और स्थपति ! ये कुशल शील किससे उत्पन्न होते हैं ? इनका उत्पत्तिकारण...

'चित्तसमुट्ठाना' तिस्स वचनीयं। कतमं चित्तं ? चित्तं पि हि बहुं अनेकविधं नानप्पकारकं यं चित्तं वीतरागं वीतदोसं वीतमोहं, इतोसमुट्ठाना कुसला सीला।

'इमे च, थपति, कुसला सीला कुहिं अपरिसेसा निरुज्झन्ति ? निरोधो पि नेसं वुत्तो। इध, थपति, भिक्खु सीलवा होति नो च सीलमयो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति ; यत्थस्स ते कुसला सीला अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

"कथं पटिपन्नो च, थपति, कुसलानं सीलानं निरोधाय [N. 252] पटिपन्नो होति ? इध, थपति, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय [B. 219] ...पे० ...अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय...पे०...उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। एवं पटिपन्नो खो, थपति, कुसलानं सीलानं निरोधाय पटिपन्नो।

८. "कतमे च, थपति, अकुसला सङ्कप्पा ? कामसङ्कप्पो, ब्यापादसङ्कप्पो, विहिंसासङ्कप्पो—इमे वुच्चन्ति, थपति, अकुसला सङ्कप्पा।

अनेक है। जो चित्त राग-द्वेष-मोह से रहित है, वही इन कुशल शीलों का उत्पत्तिकारक है।

"और स्थपति ! ये समग्र कुशल शील कहाँ निरुद्ध हो जाते हैं ? इनका निरोध बताया जा चुका है। स्थपति ! यहाँ कोई भिक्षु शीलवान् होता है, परन्तु उसे अपने शील का अभिमान नहीं होता, और वह उस शान्त चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को भलीभाँति जानता है; यहाँ उसके वे समग्र कुशल शील निरुद्ध हो जाते हैं।

"स्थपति ! किस मार्ग पर आरूढ़ होता हुआ, साधक कुशल शीलों के निरोध हेतु तत्पर होता है ? स्थपति ! यहाँ कोई भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये...उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये...अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये...उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, अविनाश, वृद्धि विपुलता एवं साधना की पूर्ति के लिये मन बनाता है, प्रयास करता है, श्रम करता है, चित्त को वश में करता है, दबाता है। स्थपति ! इस प्रकार मार्गारूढ़ साधक कुशल शीलों के निरोध हेतु तत्पर होता है।

८. स्थपति ! 'अकुशल सङ्कल्प' किसे कहते हैं ? काम (भोग) सङ्कल्प, व्यापाद (परद्रोह) सङ्कल्प और विहिंसा (हिंसा) सङ्कल्प—स्थपति ! इन्हें अकुशल सङ्कल्प कहते हैं !

"इमे च थपति, अकुसला सङ्कप्पा किं समुट्ठाना ? समुट्ठानं पि नेसं वुत्तं। 'सञ्ञासमुट्ठाना' तिस्स वचनीयं। कतमा सञ्ञा? सञ्ञा पि हि बहू अनेकविधा नानप्पकारका। कामसञ्ञा, ब्यापादसञ्ञा, विहिंसासञ्ञा—इतोसमुट्ठाना अकुसला सङ्कप्पा।

"इमे च, थपति, अकुसला सङ्कप्पा कुहिं अपरिसेसा निरुज्झन्ति? निरोधो पि नेसं वुत्तो। इध, थपति, भिक्खु विविच्चेव कामेहि···पे०··· [R. 28] पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति; एत्थेते अकुसला सङ्कप्पा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

"कथं पटिपन्नो च, थपति, अकुसलानं सङ्कप्पानं निरोधाय पटिपन्नो होति? इध, थपति, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय···पे०···अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय···पे०···उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। एवं पटिपन्नो खो, थपति, अकुसलानं सङ्कप्पानं निरोधाय पटिपन्नो होति।

[N. 253] ९. "कतमे च, थपति, कुसला सङ्कप्पा ? नेक्खम्मसङ्कप्पो,

---

"और स्थपति ! ये अकुशल सङ्कल्प किससे उत्पन्न होते हैं ? इनका उत्पत्ति कारण बताया जा चुका है। (संक्षेप में) 'संज्ञा इनकी उत्पत्ति का कारण है'—यह समझना चाहिये। संज्ञा क्या है ? स्थपति ! संज्ञा भी नाना भेद से बहुत है। कामसंज्ञा, व्यापादसंज्ञा और विहिंसासंज्ञा—ये इन अकुशल सङ्कल्पों के उत्पत्तिकारक हैं।

"और स्थपति ! ये समग्र अकुशल सङ्कल्प कहाँ निरुद्ध हो जाते हैं ? इनका निरोध भी बताया जा कुका है। स्थपति ! यहाँ कामभोगों को छोड़कर···पूर्ववत्··· प्रथम ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है—यहाँ ये समग्र अकुशल सङ्कल्प निरुद्ध हो जाते हैं।

"स्थपति ! किस मार्ग पर आरूढ़ होता हुआ साधक अकुशल सङ्कल्पों के निरोध हेतु तत्पर होता है ? स्थपित ! यहाँ कोई भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों क अनुत्पाद के लिये···उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये···उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, अविनाश, वृद्धि, विपुलता एवं साधना की पूर्ति के लिये मन बनाता है, प्रयास करता है, श्रम करता है, चित्त को वश में करता है, दबाता है। स्थपति ! इस प्रकार मार्गारूढ़ साधक कुशल सङ्कल्पों के निरोध हेतु तत्पर होता है।

अब्यापादसङ्कप्पो, अविहिंसासङ्कप्पो—इमे वुच्चन्ति, थपति, कुसला सङ्कप्पा।

"इमे च, थपति, कुसला सङ्कप्पा किंसमुट्ठाना ? समुट्ठानं पि नेसं वुत्तं। 'सञ्ञासमुट्ठाना' तिस्स वचनीयं। कतमा सञ्ञा ? सञ्ञा पि हि बहू अनेकविधा नानप्पकारका। नेक्खम्मसञ्ञा, अब्यापादसञ्ञा, [B. 220] विहिंसासञ्ञा--इतोसमुट्ठाना कुसला सङ्कप्पा।

"इमे च, थपति, कुसला सङ्कप्पा कुहिं अपरिसेसा निरुज्झन्ति ? निरोधो पि नेसं वुत्तो। इध, थपति, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा…पे०… दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; एत्थेते कुसला सङ्कप्पा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

"कथं पटिपन्नो च, थपति, कुसलानं सङ्कप्पानं निरोधाय पटिपन्नो होति ? इध, थपति, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय…पे०…अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय…पे०…उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। एवं पटिपन्नो खो, थपति, कुसलानं सङ्कप्पानं निरोधाय पटिपन्नो होति।

---

६. "स्थपति ! 'कुशल सङ्कल्प' किसे कहते हैं ? नैष्कर्म्य सङ्कल्प, अव्यापाद सङ्कल्प एवं अविहिंसा सङ्कल्प—स्थपति ! इन्हें कुशल सङ्कल्प कहते हैं।

"और स्थपति ! ये कुशल सङ्कल्प किससे उत्पन्न होते हैं ? इनका उत्पत्ति-कारण…अनेक हैं। जो चित्त राग-द्वेष मोह से रहित है। वही इन कुशल शीलों का उत्पत्तिकारक है।

"और स्थपति ! ये समग्र कुशल सङ्कल्प कहाँ निरुद्ध हो जाते हैं ? इनका निरोध बताया जा चुका है। स्थपति ! यहाँ कोई भिक्षु वितर्क-विचारों के उपशमन से…द्वितीय ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है—यहाँ ये समग्र कुशल सङ्कल्प निरुद्ध हो जाते हैं।

"स्थपति ! किस मार्ग पर आरूढ़ होता हुआ साधक कुशल सङ्कल्पों के निरोध हेतु तत्पर होता है ? स्थपति ! यहाँ कोई भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये…उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये…अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये…उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, अविनाश, वृद्धि, विपुलता एवं साधना की पूर्ति के लिये मन बनाता है, प्रयास करता है, श्रम करता है,

१०. "कतमेहि चाहं, थपति, दसहि धम्मेहि समन्नागतं पुरिसपुग्गलं [R. 29] पञ्ञापेमि सम्पन्नकुसलं परमकुसलं उत्तमपत्तिपत्तं समणं अयोज्झं? इध, थपति, भिक्खु असेखायो सम्मादिट्ठिया समन्नागतो होति, असेखेन सम्मासङ्कप्पेन समन्नागतो होति, असेखाय सम्मावाचाय समन्नागतो होति, असेखेन सम्माकम्मन्तेन समन्नागतो होति, असेखेन सम्माआजीवेन समन्नागतो होति, असेखेन सम्मावायामेन समन्नागतो होति, असेखाय सम्मासतिया समन्नागतो होति, असेखेन सम्मासमाधिना समन्नागतो होति, असेखेन सम्माञाणेन समन्नागतो होति, असेखाय सम्माविमुत्तिया समन्ना-
[N. 254] गतो होति—इमेहि खो अहं, थपति, दसहि धम्मेहि समन्नागतं पुरिसपुग्गलं पञ्ञापेमि सम्पन्नकुसलं परमकुसलं उत्तमपत्तिपत्तं समणं अयोज्झं" ति।

११. इदमवोच भगवा। अत्तमनो पञ्चकङ्गो थपति भगवतो भासितं अभिनन्दी ति॥

●

चित्त को वश में करता है तथा उसे दबाता है। स्थपति! इस प्रकार मार्गारूढ़ साधक कुशल सङ्कल्पों के निरोध हेतु तत्पर होता है।

१०. "स्थपति! कौन से दश अङ्गों से युक्त पुरुष को मैं सम्पन्न कुशल, परम-कुशल, उत्तम गतिप्राप्त या अयोध्य मानता हूँ? स्थपति! यहाँ कोई भिक्षु अशैक्ष्य (अर्हत्सम्बन्धी) सम्यग्दृष्टि से युक्त होता है, अशैक्ष्य सम्यक्सङ्कल्प से युक्त होता है, अशैक्ष्य सम्यग्वाक् से युक्त होता है, अशैक्ष्य सम्यक्कर्मान्त से युक्त होता है, अशैक्ष्य सम्यगाजीव से युक्त होता है, अशैक्ष्य सम्यग्व्यायाम से युक्त होता है, अशैक्ष्य सम्यक्स्मृति से युक्त होता है, अशैक्ष्य सम्यक्समाधि से युक्त होता है, अशैक्ष्य सम्यग्ज्ञान से युक्त होता है तथा अशैक्ष्य सम्यग्विमुक्ति से युक्त होता है—स्थपति! इन दश अङ्गों से युक्त पुरुष को मैं सम्पन्नकुशल⋯अयोध्य मानता हूँ।"

११. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमन आयुष्मान् पञ्चकाङ्ग स्थपति ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

श्रमणमुण्डिकसुत्त समाप्त॥

●

२६. चूलसकुलुदायिसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे [N. 255, B. 221] विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन सकुलुदायी परिब्बाजको मोरनिवापे परिब्बाजकारामे पटिवसति महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसि। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"अतिप्पगो खो ताव राजगहे पिण्डाय चरितुं। यन्नूनाहं येन मोरनिवापो परिब्बाजकारामो येन सकुलुदायी परिब्बाजको तेनुपसङ्कमेय्यं" ति। अथ खो भगवा येन मोरनिवापो परिब्बाजकारामो तेनुपसङ्कमि।

तेन खो पन समयेन सकुलुदायी परिब्बाजको महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं निसिन्नो होति उन्नादिनिया उच्चासद्दमहासद्दाय [R. 30] अनेकविहितं तिरच्छानकथं कथेन्तिया, सेय्यथीदं--राजकथं चोरकथं महामत्तकथं सेनाकथं भयकथं युद्धकथं अन्नकथं पानकथं वत्थकथं सयनकथं मालाकथं गन्धकथं ञातिकथं यानकथं गामकथं निगमकथं नगरकथं जनपदकथं इत्थिकथं सूरकथं विसिखाकथं कुम्भट्ठानकथं पुब्बपेतकथं नानत्तकथं लोकक्खायिकं समुद्दक्खायिकं इतिभवाभवकथं इति वा। अद्दसा खो सकुलुदायी परिब्बाजको भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान सकं परिसं सण्ठापेसि—"अप्पसद्दा भोन्तो होन्तु, मा भोन्तो सद्दमकत्थ। अयं समणो

---

२६. क्षुद्रसकुलुदायिसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृहस्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में विराजमान थे। उस समय सकुलउदायी नामक परिव्राजक मयूरनिवाप (जहाँ मयूर पक्षी अधिक थे) नामक परिव्राजकाराम में विशाल परिव्राजक सङ्घ के साथ रहता था। तब (एक दिन) भगवान् प्रातःकाल पहनकर, पात्रचीवर ले, राजगृह में प्रविष्ट हुए। तब भगवान् को यह हुआ--'अभी तो राजगृह में भिक्षा हेतु जाने के लिये कुछ जल्दी है (अभी भिक्षा का समय नहीं हुआ)। क्यों न मैं तब तक मयूरनिवाप परिव्राजकाराम चलूँ, जहाँ सकुलउदायी परिव्राजक है।" इसके बाद भगवान् जहाँ मयूरनिवाप परिव्राजकाराम में···पहुँचे।

उस समय सकुलउदायी परिव्राजकसमूह से घिरा बैठा था···पूर्ववत्[1]···निरर्थक बातें कर रहे थे। (उसी समय) सकुलउदायी परिव्राजक ने भगवान् को दूर से ही आते हुए देखा। देखकर अपनी परिषद् को सावधान किया--"आप लोग थोड़ा धीरे बात कीजिये, इतना जोर से न बोलिये। (देख नहीं रहे हो) यह श्रमण

१. द्र०—पीछे पृ० ९५८ (सन्दकसुत्त)।

गोतमो आगच्छति; अप्पसद्दकामो खो पन सो आयस्मा अप्पसद्दस्स वण्णवादी। अप्पेव नाम अप्पसद्दं परिसं विदित्वा उपसङ्कमितब्बं मञ्ञेय्या" ति। अथ खो ते परिब्बाजका तुण्ही अहेसुं।

२. अथ खो भगवा येन सकुलुदायी परिब्बाजको तेनुपसङ्कमि। अथ खो सकुलुदायी परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"एतु खो, भन्ते, भगवा। [N. 256] स्वागतं, भन्ते, भगवतो। चिरस्सं खो, भन्ते, भगवा इमं परियायमकासि यदिदं इधागमनाय। निसीदतु, भन्ते, भगवा; इदमासनं पञ्ञत्तं" ति। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। सकुलुदायी पि खो परिब्बाजको अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो सकुलुदायिं परिब्बाजकं भगवा एतदवोच—"काय नुत्थ, उदायि, एतरहि [B. 222] कथाय सन्निसिन्ना, का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता"ति ?

"तिट्ठतेसा, भन्ते, कथा याय मयं एतरहि कथाय सन्निसिन्ना। नेसा, भन्ते, कथा भगवतो दुल्लभा भविस्सति पच्छा पि सवनाय। यदाहं, भन्ते, इमं परिसं अनुपसङ्कन्तो होमि अथायं परिसा अनेकविहितं तिरच्छानकथं कथेन्ती निसिन्ना होति; यदा च खो अहं, भन्ते, इमं परिसं उपसङ्कन्तो होमि अथायं परिसा ममञ्ञेव मुखं उल्लोकेन्ती निसिन्ना होति—'यं नो

गौतम आ रहे हैं; ये आयुष्मान् स्वयं दूसरों से थोड़े शब्दों में बात करते हैं तथा दूसरों से उससे भी कम शब्दों में बात सुनना चाहते हैं। हो सकता है, ये हमारी परिषद् को अल्पशब्द (शान्त) समझकर यहाँ आना उचित समझें।" तब वे परिव्राजक चुप हो गये।

२. इसके बाद भगवान्, जहाँ सकुलउदायी परिव्राजक था वहाँ पहुँचे। तब सकुल उदायी परिव्राजक ने भगवान् से यों कहा—"भन्ते! भगवान् पधारें। भन्ते! भगवान् का स्वागत है। भन्ते! भगवान् ने बहुत दिनों के बाद इधर आने का मौका निकाला। भन्ते! भगवान् विराजें; यह आसन बिछा है।" भगवान् बिछे आसन पर बैठ गये। सकुल उदायी परिव्राजक भी (भगवान् से कुछ) नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सकुल उदायी परिव्राजक से भगवान् यों बोले—"उदायि! इस समय आप लोगों में क्या चर्चा चल रही थी और कौन सी बात करते-करते बीच में ही रोक दी!"

"भन्ते! उस चर्चा की बात छोड़िये, जिसमें हम अभी लगे हुए थे। भन्ते! भगवान् के लिये इसका सुनना बाद में भी दुर्लभ नहीं होगा। भन्ते! जब मैं अपनी इस परिषद् में नहीं होता, तब यह परिषद् आपस में पशु-पक्षियों की (या टेढ़ी-मेढ़ी) बातें करती, बैठी रहती है; भन्ते! और जब मैं इस परिषद् के बीच रहता हूँ, तब यह

समणो उदायी धम्मं भासिस्सति तं सोस्सामा' ति; यदा पन, भन्ते, भगवा इमं परिसं उपसङ्कन्तो होति अथाहं चेव अयं च परिसा भगवतो [R. 31] मुखं उल्लोकेन्ता निसिन्ना होम--'यं नो भगवा धम्मं भासिस्सति तं सोस्सामा' " ति ।

१. सततं समितं सब्बञ्ञुता

३. "तेनहुदायि, तं येवेत्थ पटिभातु यथा मं पटिभासेय्यासि" ।

"पुरिमानि, भन्ते, दिवसानि पुरिमतरानि सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानमानो चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं ति । सो मया पुब्बन्तं आरब्भ पञ्हं पुट्ठो समानो अञ्ञेनञ्ञं पटिचरि, बहिद्धा कथं अपनामेसि, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पात्वाकासि । तस्स मय्हं, भन्ते, भगवन्तं येव आरब्भ सति उदपादि—'अहो नून भगवा, अहो नून सुगतो ! यो इमेसं धम्मानं सुकुसलो' " ति ।

"को पन सो, उदायि सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानमानो 'चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं' ति, यो तया पुब्बन्तं आरब्भ पञ्हं पुट्ठो [N. 257]

परिषद् मेरा मुँह ताकती रहती कि 'श्रमण उदायी जो भी हमें धर्मोपदेश करेंगे, उसे हम कान लगाकर सुनेंगे'; भन्ते ! अब आप भगवान् इस परिषद् के बीच विराजमान हैं, अब मैं और यह परिषद् आपके श्रीमुख पर टकटकी लगाये बैठे हैं कि 'भगवान् हमें जो भी धर्मोपदेश करेंगे, उसे हम सुनेंगे' ।"

१. ज्ञानदर्शन की सदैव उपस्थिति

३. "तो उदायि ! तुम्हें जो भी अच्छा लगे, वह मुझसे कहो ।"

"भन्ते ! कुछ दिन पहले (मैं एक आचार्य के पास धर्मचर्चा हेतु गया, वह अपने को) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं समग्र ज्ञानदर्शन को अपने में मानता हुआ (कह रहा था) कि मुझे यह ज्ञानदर्शन चलते-फिरते, सोते-जागते, हर समय प्रतिक्षण उपस्थित रहता है । वह मेरे द्वारा पूर्वजन्म विषयक अवान्तर प्रश्न पूछे जाने पर, वह उलटी-सीधी बात करने लगा, प्रसङ्ग से बाहर की बातें करने लगा, (और अन्त में) मुझ पर क्रुद्ध होते हुए, द्वेषभावना से अविश्वास (सन्देह) प्रकट किया । भन्ते ! तब मुझे भगवान् की याद आयी--'अरे अवश्य भगवान् ही, सुगत ही हैं, जो इन धर्मविषयक प्रश्नों के सम्यग्ज्ञाता हैं' ।"

"उदायि ! कौन था वह, जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी···पूर्ववत्···अविश्वास प्रकट करने लगा ?"

समानो अञ्ञेनञ्ञं पटिचरि, बहिद्धा कथं अपनामेसि, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पात्वाकासी'' ति ?

''निगण्ठो, भन्ते, नातपुत्तो'' ति।

२. पुब्बन्तापरन्तपञ्हविस्सज्जने समत्थो

४. ''यो खो, उदायि, अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्य, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो...पे०...इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्य, सो वा मं पुब्बन्तं आरब्भ पञ्हं पुच्छेय्य, तं वाहं पुब्बन्तं आरब्भ पञ्हं पुच्छेय्यं; सो वा मे पुब्बन्तं आरब्भ पञ्हस्स वेय्या-[B. 223] करणेन चित्तं आराधेय्य, तस्स वाहं पुब्बन्तं आरब्भ पञ्हस्स वेय्याकरणेन चित्तं आराधेय्यं।

''यो खो, उदायि, दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सेय्य चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानेय्य, सो वा मं अपरन्तं आरब्भ पञ्हं पुच्छेय्य, तं [R. 32] वाहं अपरन्तं आरब्भ पञ्हं पुच्छेय्यं; सो वा मे अपरन्तं आरब्भ पञ्हस्स वेय्याकरणेन चित्तं आराधेय्य, तस्स वाहं अपरन्तं आरब्भ पञ्हस्स वेय्याकरणेन चित्तं आराधेय्यं।

''अपि च, उदायि, तिट्ठतु पुब्बन्तो, तिट्ठतु अपरन्तो। धम्मं ते देसे-

---

''भन्ते! (वह था) निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र।''

२. पूर्वापरजन्मविषयक प्रश्नोत्तर में समर्थ

४. ''उदायि! जो अपने अनेक पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करे, जैसे—एक जन्म, दो जन्म...पूर्ववत्...इस प्रकार अपने आकार एवं उद्देश सहित अनेक पूर्व-जन्मों का स्मरण करे, वह मुझसे पूर्वजन्म के विषय में प्रश्न पूछे या मैं उससे पूर्व-जन्म के विषय में प्रश्न पूछूँ; वह मेरे पूर्वजन्मविषयक प्रश्न का उत्तर देकर, मेरे चित्त को प्रसन्न करे या मैं उसको पूर्वजन्मविषयक प्रश्न का उत्तर देकर उसके चित्त को प्रसन्न करूँ।

''उदायि! जो विशुद्ध, मानवदुर्लभ दिव्य चक्षु द्वारा बुरे-भले, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगत-दुर्गत, स्वप्रारब्धानुसार उन-उन योनियों में जन्म लेने वाले प्राणियों को देखे व जाने, वह मुझसे आगामी जन्म के अन्तिम छोर के विषय में प्रश्न पूछे, मैं उससे आगामी जन्म के अन्तिम छोर के विषय में प्रश्न पूछूँ; तब वह मेरे आगामी-जन्मविषयक प्रश्न का उत्तर देकर मेरे चित्त को प्रसन्न करे या मैं उसको आगामी-जन्मविषयक प्रश्न का उत्तर देकर उसके चित्त को प्रसन्न करूँ।

''उदायि! और रहने दे पूर्वजन्मविषयक प्रश्न, रहने दे आगामीजन्मविषयक

स्सामि—इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति; इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झती" ति।

"अहं हि, भन्ते, यावतकं पि मे इमिना अत्तभावेन पच्चनुभूतं तं पि नप्पहोमि इति साकारं सउद्देसं अनुस्सरितुं, कुतो पनाहं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरिस्सामि, सेय्यथीदं--एकं पि जातिं द्वे पि जातियो···पे०··· इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरिस्सामि, सेय्यथापि भगवा? अहं हि, भन्ते, एतरहि पंसुपिसाचकं पि न पस्सामि, कुतो पनाहं दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सिस्सामि चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बणे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानिस्सामि, सेय्यथापि भगवा? यं पन मं, भन्ते, भगवा [N. 258] एवमाह—'अपि च, उदायि, तिट्ठतु पुब्बन्तो, तिट्ठतु अपरन्तो; धम्मं ते देसेस्सामि--इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति; इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झती' ति तं च पन मे भिय्योसोमत्ताय न पक्खायति। अप्पेव नामाहं, भन्ते, सके आचरियके भगवतो चित्तं आराधेय्यं पञ्हस्स वेय्याकरणेना" ति।

३. अयं परमो वण्णो

५. "किन्ति पन ते, उदायि, सके आचरियके होती" ति?

प्रश्न। मैं तुझे धर्म (का निष्कर्ष) बताता हूँ (वह यह है) कि इस (कारण) के होने पर यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है, इसके न होने पर यह नहीं होता, इसका निरोध (नाश) होने पर यह निरुद्ध (नष्ट) होता है।"

"भन्ते! मैं तो अपने इस शरीर से जो कुछ अनुभव कर चुका हूँ, उसे भी आकार-उद्देश सहित स्मरण नहीं कर सकता, तो फिर मैं अपने अनेक पूर्वजन्मों को कहाँ से स्मरण कर सकूँगा, जैसे--एक जन्म, दो जन्म···पूर्ववत्···इस प्रकार अपने आकार एवं उद्देश सहित अनेक पूर्वजन्मों का कैसे स्मरण कर सकूँगा, जैसे कि भगवान्? भन्ते! मैं तो इस समय (सामने खड़े) वात्याचक्र के पिशाच (चुड़ैल या भभूलिया) को भी नहीं देख पाता। तो फिर मैं विशुद्ध मानवदुर्लभ दिव्य चक्षु द्वारा बुरे-भले, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगत-दुर्गत, स्वप्रारब्धानुसार उन-उन योनियों में जन्म लेने वाले प्राणियों को कहाँ से देख पाऊँगा, जैसे कि भगवान्? और भन्ते! भगवान् ने जो मुझसे यह कहा—'उदायि! रहने दे पूर्वजन्मविषयक प्रश्न···इसका निरोध होने पर यह निरुद्ध हो जाता है'—यह बात मेरे मन को अधिक रुचिकर नहीं लगती। भन्ते! यदि आप की आज्ञा हो तो अपने साम्प्रदायिक (आचार्यक) मत के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर देकर आपके चित्त को प्रसन्न करूँ।"

"अम्हाकं, भन्ते, सके आचरियके एवं होति--'अयं परमो वण्णो, अयं परमो वण्णो' " ति ।

[B. 224] "यं पन ते एतं, उदायि, सके आचरियके एवं होति--'अयं परमो वण्णो, अयं परमो वण्णो' ति, कतमो सो परमो वण्णो" ति ?

[R. 33] "यस्मा, भन्ते, वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थि, सो परमो वण्णो" ति ।

"कतमो पन सो परमो वण्णो यस्मा वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थी" ति ?

"यस्मा, भन्ते, वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थि, सो परमो वण्णो" ति ।

"दीघा पि खो ते एसा, उदायि, फरेय्य—'यस्मा, भन्ते, वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थि, सो परमो वण्णो' ति वदेसि, तं च वण्णं न पञ्ञापेसि। सेय्यथापि, उदायि, पुरिसो एवं वदेय्य—'अहं या इमस्मि जनपदे जनपदकल्याणी तं इच्छामि, तं कामेमी' ति । तमेनं एवं वदेय्युं—'अम्भो पुरिस, यं त्वं जनपदकल्याणिं इच्छसि कामेसि, जानासि तं जनपदकल्याणिं--खत्तियी वा ब्राह्मणी वा वेस्सी वा सुद्दी वा' ति ? इति

---

३. यह सर्वोत्तम वर्ण (रंग) है

५. "उदायि ! तुम्हारे अपने सम्प्रदाय के मत में क्या होता है ?"

"भन्ते ! हमारे साम्प्रदायिक मत में यह होता है--'यह सर्वोत्तम वर्ण है, यह सर्वोत्तम वर्ण है' ।"

"उदायि ! यह जो तुम्हारे साम्प्रदायिक मत में यह होता है--'यह सर्वोत्तम वर्ण है, यह सर्वोत्तम वर्ण है', वह कौन सा सर्वोत्तम वर्ण है ?"

"भन्ते ! जिस वर्ण से आगे (=उत्तरितर) श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है, वही सर्वोत्तम वर्ण है ।"

"उदायि ! वह कौन सा सर्वोत्तम वर्ण है, जिस वर्ण से आगे श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है ?"

"भन्ते ! जिस वर्ण से आगे श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है, वही सर्वोत्तम वर्ण है ।"

"उदायि ! तेरी यह बात दीर्घकाल तक चलती रहे, तो भी तूँ उस वर्ण के बारे में नहीं बता पायगा कि 'भन्ते ! जिस वर्ण से आगे श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है, वही सर्वोत्तम वर्ण है ।' उदायि ! जैसे कोई आदमी कहे--'मैं इस जनपद की श्रेष्ठसुन्दरी (=जनपदकल्याणी) को चाहता हूँ' । ऐसा कहने वाले से कोई यों

पुट्ठो 'नो' ति वदेय्य। तमेनं एवं वदेय्युं—'अम्भो पुरिस, यं त्वं जनपदकल्याणिं इच्छसि कामेसि, जानासि तं जनपदकल्याणिं--एवं- [N. 259] नामा एवंगोत्ता ति वा ति···पे०···दीघा वा रस्सा वा मज्झिमा वा काळी वा सामा वा मङ्गुरच्छवी वा ति, अमुकस्मिं गामे वा निगमे वा नगरे वा' ति ? इति पुट्ठो 'नो' ति वदेय्य। तमेनं एवं वदेय्युं—'अम्भो पुरिस, यं त्वं न जानासि न पस्ससि, तं त्वं इच्छसि कामेसी' ति ? इति पुट्ठो 'आमा' ति वदेय्य।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि--ननु एवं सन्ते, तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति ?

"अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति।

"एवमेव खो त्वं, उदायि, 'यस्मा, भन्ते, वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थि, सो परमो वण्णो' ति वदेसि, तं च वण्णं न पञ्ञापेसी" ति।

"सेय्यथापि, भन्ते, मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्म-

---

पूछे—'अरे भाई! तुम जिस जनपदकल्याणी को चाहते हो, क्या तुम उस जनपदकल्याणी के बारे में जानते हो कि वह क्षत्रिय है या ब्राह्मण, वैश्य है या शूद्र ?'--यह पूछे जाने पर वह 'नहीं जानता' कह दे। फिर उससे कोई यों पूछे--'अरे भाई! तुम जिस जनपदकल्याणी की इच्छा या कामना करते हो, क्या तुम उस जनपदकल्याणी के बारे में जानते हो कि वह इस नाम की है, इस गोत्र की है···पूर्ववत्··· लम्बी है, नाटी है या मध्यम आकार की है, काली है, गोरी है या साँवली है और वह किस ग्राम, नगर या कस्बे में रहती है ?' यह पूछे जाने पर भी वह 'नहीं जानता' कह दे। फिर उससे कोई यों पूछे--'अरे भले आदमी! जिसको तुम न जानते हो, न देखे हो, उसकी तुम इच्छा या कामना करते हो?' यह पूछे जाने पर वह 'हाँ' कह दे।

"तो क्या मानते हो, उदायि! क्या ऐसा होने पर, उस पुरुष का कथन अप्रामाणिक (अप्रातिहार्य) नहीं होगा?"

"अवश्य, भन्ते! ऐसा होने पर उस पुरुष का यह कथन अप्रामाणिक ही होगा।"

"इसी तरह, उदायि! तुम—'भन्ते जिस वर्ण से आगे श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है, वही सर्वोत्तम वर्ण है'--यह कहते हो, तो भी तुम उस वर्ण को नहीं बता पा रहे हो।"

"भन्ते! जैसे सुन्दर ऊँची जाति वाला अठकोणा, ठीक तरह से तराशा गया

कतो पण्डुकम्बले निक्खित्तो भासते च तपते च विरोचति च, एवंवण्णो अत्ता होति अरोगो परं मरणा" ति।

[B. 225] "तं किं मञ्ञसि, उदायि, यो वा मणि वेळुरियो सुभो [R. 34] जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो पण्डुकम्बले निक्खित्तो भासते च तपते च विरोचति च, यो वा रत्तन्धकारतिमिसाय किमि खज्जोपनको—इमेसं उभिन्नं वण्णानं कतमो वण्णो अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति ?

"य्वायं, भन्ते, रत्तन्धकारतिमिसाय किमि खज्जोपनको—अयं इमेसं उभिन्नं वण्णानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, यो वा रत्तन्धकारतिमिसाय किमि खज्जोपनको, यो वा रत्तन्धकारतिमिसाय तेलप्पदीपो—इमेसं उभिन्नं वण्णानं कतमो वण्णो अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति ?

[N. 260] "य्वायं, भन्ते, रत्तन्धकारतिमिसाय तेलप्पदीपो—अयं इमेसं उभिन्नं वण्णानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, यो वा रत्तन्धकारतिमिसाय तेलप्पदीपो, यो वा रत्तन्धकारतिमिसाय महाअग्गिक्खन्धो—इमेसं उभिन्नं वण्णानं कतमो वण्णो अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति ?

वैदूर्य मणि (हीरा) गुलाबी रंग के कोमल वस्त्र में लिपटा हुआ भासित होता हो, चमकता हो, सुन्दर लगता हो, इसी प्रकार हमारा आत्मा मरणानन्तर भी उत्तम वर्ण वाला व नीरोग होता है।"

"तो क्या मानते हो, उदायि ! यह जो उपर्युक्त सुन्दर... वैदूर्य मणि... सुन्दर लगती है, या फिर जो वह रात्रि के गहन अन्धकार में चमकने वाला खद्योत (जुगनू) कीट का चमकना है—इन दोनों वर्णों (रङ्गों) में से कौन वर्ण अधिक तेज व श्रेष्ठ है ?"

"भन्ते ! यह जो रात्रि के गहन अन्धकार में चमकने वाला जुगनू कीट है—यही इन दोनों वर्णों में अधिक तेज व श्रेष्ठ है।"

"तो क्या मानते हो, उदायि ! यह जो रात्रि के गहन अन्धकार में जुगनू (की चमक) है, या फिर वह जो रात्रि से गहन अन्धकार में तेल से भरे दीपक (का प्रकाश) है—इन दोनों वर्णों में से कौन वर्ण अधिक तेज व श्रेष्ठ है ?"

"भन्ते ! यह जो रात्रि के गहन अन्धकार में तेल से भरा दीपक (का प्रकाश) है—यही इन दोनों वर्णों में अधिक तेज व श्रेष्ठ है।"

"तो क्या मानते हो, उदायि ! यह जो रात्रि के गहन अन्धकार में तेल से भरा दीपक (का प्रकाश) है, या फिर यह जो रात्रि के गहन अन्धकार में बहुत बड़े अग्निस्कन्ध (का प्रकाश) है—इन दोनों वर्णों में से कौन...श्रेष्ठ है ?"

"स्वायं, भन्ते, रत्तन्धकारतिमिसाय महाअग्गिक्खन्धो—अयं इमेसं उभिन्नं वण्णानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, यो वा रत्तन्धकारतिमिसाय महाअग्गिक्खन्धो, या वा रत्तिया पच्चूससमयं विद्धे विगतवलाहके देवे ओसधितारका—इमेसं उभिन्नं वण्णानं कतमो वण्णो अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति?

"यायं, भन्ते, रत्तिया पच्चूससमयं विद्धे विगतवलाहके देवे ओसधितारका—अयं इमेसं उभिन्नं वण्णानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, या वा रत्तिया पच्चूससमयं विद्धे विगतवलाहके देवे ओसधितारका, यो वा तदहुपोसथे पन्नरसे विद्धे विगतवलाहके देवे अभिदो अड्ढरत्तसमयं चन्दो--इमेसं उभिन्नं वण्णानं कतमो वण्णो अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति?

"स्वायं, भन्ते तदहुपोसथे पन्नरसे विद्धे विगतवलाहके देवे अभिदो अड्ढरत्तसमयं चन्दो--अयं इमेसं उभिन्नं वण्णानं अभिक्कन्ततरो [B. 226] च पणीततरो चा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, यो वा तदहुपोसथे पन्नरसे [R. 35] विद्धे विगतवलाहके देवे अभिदो अड्ढरत्तसमयं चन्दो, यो वा वस्सानं पच्छिमे

"भन्ते! यह जो रात्रि के गहन गन्धकार में बहुत बड़े अग्निस्कन्ध (का प्रकाश) है--यही···श्रेष्ठ है।"

"तो क्या मानते हो, उदायि! वह जो रात्रि के गहन अन्धकार में बहुत बड़े अग्निस्कन्ध (का प्रकाश) है, या फिर रात्रि के समाप्त होने के समय (ब्राह्ममुहूर्त में) मेघरहित स्वच्छ आकाश में शुक्रतारा (ओषधितारा) (का प्रकाश) है--इन दोनों वर्णों में से कौन···श्रेष्ठ है?"

"भन्ते! यह जो रात्रि के समाप्त होने के समय···शुक्रतारा (का प्रकाश) है--यही···श्रेष्ठ है।"

"तो क्या मानते हो, उदायि! यह जो रात्रि के समाप्त होने के समय··· शुक्रतारा (का प्रकाश) है, या फिर वह जो आधी रात को मेघरहित स्वच्छ आकाश में उस दिन के उपवसथ की पूर्णिमा का चन्द्रमा (का प्रकाश) है--इन दोनों वर्णों में से कौन···श्रेष्ठ है?"

"भन्ते! यह आधीरात को···पूर्णिमा का चन्द्रमा (का प्रकाश) है--यही··· श्रेष्ठ है।"

"तो क्या मानते हो, उदायि! यह जो आधीरात को···पूर्णिमा का चन्द्रमा (का प्रकाश) है, या फिर वह जो वर्षाऋतु के अन्तिम मास में, शरदृतु के आगमन

मासे सरदसमये विद्धे विगतवलाहके देवे अभिदो मज्झन्हिकसमयं सुरियो—इमेसं उभिन्नं वण्णानं कतमो वण्णो अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति ?

"य्वायं, भन्ते, वस्सानं पच्छिमे मासे सरदसमये विद्धे विगतवलाहके [N. 261] देवे अभिदो मज्झन्हिकसमयं सुरियो—अयं इमेसं उभिन्नं वण्णानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति।

"अतो खो ते, उदायि, बहू हि बहुतरा देवा ये इमेसं चन्दिमसुरियानं आभा नानुभोन्ति, त्याहं पजानामि ; अथ च पनाहं न वदामि—'यस्मा वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थी' ति। अथ च पन त्वं, उदायि, 'य्वायं वण्णो किमिना खज्जोपनकेन निहीनतरो च पतिकिट्ठतरो च सो परमो वण्णो' ति वदेसि, तं वण्णं न पञ्ञापेसी" ति।

"अच्छिदं भगवा कथं, अच्छिदं सुगतो कथं" ति !

"किं पन त्वं, उदायि, एवं वदेसि—'अच्छिदं भगवा कथं, अच्छिदं सुगतो कथं' " ति ?

"अम्हाकं, भन्ते, सके आचरियके एवं होति—'अयं परमो वण्णो, अयं परमो वण्णो' ति। ते मयं, भन्ते, भगवता सके आचरियके समनुयुञ्जियमाना समनुग्गाहियमाना समनुभासियमाना रित्ता तुच्छा अपरद्धा" ति।

पर, मेघरहित स्वच्छ आकाश में मध्याह्न के समय सूर्य (का प्रकाश) है— इन दोनों वर्णों में से कौन···श्रेष्ठ है !"

'भन्ते ! यह जो वर्षाऋतु के अन्तिम मास में···सूर्य (का प्रकाश) है— यही···श्रेष्ठ है।"

"उदायि ! इससे भी आगे बहुत से प्रकाशमय देवलोक हैं, जो इन चन्द्रमा व सूर्य के प्रकाश की अपेक्षा नहीं रखते, उन्हें मैं जानता हूँ ; फिर भी मैं यह नहीं कह पाता —'इस वर्ण से अधिक श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है'। और उदायि ! तूँ तो 'जो यह क्षुद्र एवं निकृष्टतर खद्योत कीट का वर्ण है, यही परम वर्ण है'— ऐसा कहता है और फिर इस वर्ण की विशेषता भी नहीं बता पाता।"

"भन्ते ! आपका यह कथन बहुत अच्छा (स्वच्छ) है, सुगत ! आपका यह कथन बहुत अच्छा है।"

"उदायि ! ऐसा तुम क्यों कह रहे हो—'भन्ते ! आपका यह कथन···सुगत ! आपका यह कथन बहुत अच्छा है ?"

"भन्ते ! हमारे साम्प्रदायिक मत में यह होता है—'यही परमवर्ण है, यही परमवर्ण है'। भन्ते ! परन्तु हम अपने साम्प्रदायिक मत को भगवान् के साम्प्रदायिक मत के साथ तुलना कर बैठे, जबकि हम उसके बारे में कुछ नहीं जानते, उसके बारे में खाली से हैं; अतः यह हमारा कहना अपराध ही तो है।"

४. एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरिया

६. "किं पनुदायि, अत्थि एकन्तसुखो लोको, आकारवती पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया" ति ?

"अम्हाकं, भन्ते, सके आचरियके एवं होति—'अत्थि एकन्तसुखो लोको, अत्थि आकारवती पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया' " ति।

"कतमा पन सा, उदायि, आकारवती पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया" ति ?

"इध, भन्ते, एकच्चो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसु- [B. 227] मिच्छाचारं पहाय कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसा- [R. 36] वादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति, अञ्ञतरं वा पन तपोगुणं समादाय वत्तति। अयं खो सा, भन्ते, आकारवती पटिपदा एकन्त- [N. 262] सुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया" ति।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, यस्मिं समये पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति, एकन्तसुखी वा तस्मिं समये अत्ता होति सुखदुक्खी वा" ति ?

---

४. ऐकान्तिकसुखमय लोक का साक्षात्कार

६. "उदायि ! क्या कोई ऐकान्तिकसुखमय लोक है ? और क्या ऐकान्तिकसुखमय लोक का साक्षात्कार (जानने) के लिये कोई स्पष्ट, सरलतया समझ में आने वाला मार्ग है ?"

"भन्ते ! हमारे साम्प्रदायिक मत में यह होता है—'ऐकान्तिकसुखमय लोक है तथा ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार के लिये स्पष्ट मार्ग भी है ।"

"उदायि ! वह ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार के लिये स्पष्ट मार्ग कौन सा है ?"

"भन्ते ! यहाँ कोई (साधक) प्राणातिपात को छोड़ प्राणातिपात से विरत होता है, न दिये हुए को लेना छोड़ उससे विरत होता है, कामभोगों में मिथ्याचार (व्यभिचार) को छोड़ कामभोगों में मिथ्याचार से विरत होता है, असत्यभाषण को छोड़ असत्यभाषण से विरत होता है, और किसी एक तपः प्रधान कर्म को ग्रहण कर उसमें विशेषता प्राप्त करता है। भन्ते ! यह वह ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार का स्पष्ट मार्ग है ।"

"तो क्या मानते हो, उदायि ! जिस समय वह (साधक) प्राणातिपात को छोड़ प्राणातिपात से विरत होता है, उस समय उसकी आत्मा एकान्तसुख का अनुभव करती है या (मिले-जुले) सुख-दुःख का ?"

"सुखदुक्खी, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, यस्मिं समये अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो होति, एकन्तसुखी वा तस्मिं समये अत्ता होति सुखदुक्खी वा" ति ?

"सुखदुक्खी, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, यस्मिं समये कामेसुमिच्छाचारं पहाय कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, एकन्तसुखी वा तस्मिं समये अत्ता होति सुखदुक्खी वा" ति ?

"सुखदुक्खी, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, यस्मिं समये मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति, एकन्तसुखी वा तस्मिं समये अत्ता होति सुखदुक्खी वा" ति ?

"सुखदुक्खी, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, यस्मिं समये अञ्ञतरं तपोगुणं समादाय वत्तति, एकन्तसुखी वा तस्मिं समये अत्ता होति सुखदुक्खी वा" ति ?

"सुखदुक्खी, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, उदायि, अपि नु खो वोकिण्णसुखदुक्खं पटिपदं आगम्म एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरिया होती" ति ?

"भन्ते ! (मिले-जुले) सुख-दुःख का।"

"तो क्या मानते हो, उदायि ! जिस समय वह न दिये हुए को लेना…से विरत होता है, उस समय…सुख-दुःख का ?"

"भन्ते ! सुख-दुःख का।"

"तो क्या मानते हो, उदायि ! जिस समय वह कामभोगों में मिथ्याचार…से विरत होता है, उस समय…सुख-दुःख का ?"

"भन्ते ! सुख-दुःख का।"

"तो क्या मानते हो, उदायि ! जिस समय वह असत्यभाषण…से विरत होता है, उस समय…सुख-दुःख का ?"

"भन्ते ! सुख-दुःख का।"

"तो क्या मानते हो, उदायि ! जिस समय किसी एक तपःप्रधान कर्म को ग्रहण कर उसमें विशेषता प्राप्त करता है, उस समय उसकी आत्मा एकान्त सुख का अनुभव करती है या (मिले-जुले) सुख-दुःख का ?"

"भन्ते ! सुख-दुःख का।"

"तो क्या मानते हो, उदायि ! वह (साधक) उस व्यवकीर्ण (मिश्रित) सुख-दुःख को पाकर उस ऐकान्तिक सुखमय लोक का साक्षात्कार कर सकता है ?"

"अच्छिदं भगवा कथं, अच्छिदं सुगतो कथं" ति !

"किं पन त्वं, उदायि, एवं वदेसि—'अच्छिदं भगवा कथं, अच्छिदं सुगतो कथं' " ति ?

"अम्हाकं, भन्ते, सके आचरियके एवं होति—'अत्थि एकन्तसुखो लोको, अत्थि आकारवती पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छि- [N. 263] किरियाया' ति । ते मयं, भन्ते, भगवता सके आचरियके समनुयुञ्जियमाना समनुग्गाहियमाना समनुभासियमाना रित्ता तुच्छा अपरद्धा [B. 228] ति । किं पन, भन्ते, अत्थि एकन्तसुखो लोको, अत्थि आकारवती पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया" ति ?

"अत्थि खो, उदायि, एकन्तसुखो लोको, अत्थि आकारवती [R. 37] पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया" ति ।

"कतमा पन सा, भन्ते, आकारवती पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया" ति ?

"इधुदायि, भिक्खु विविच्चेव कामेहि···पे०···पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति । वितक्कविचारानं वूपसमा···पे०···दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति । पीतिया च विरागा···पे०···ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति । अयं खो सा, उदायि, आकारवती पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया" ति ।

"भगवन् ! आपने यह अच्छा कहा, सुगत ! आपने यह अच्छा कहा ।"

"उदायि ! तुम ऐसा क्यों कह रहे हो—'भगवन् ! आपने यह··सुगत ! आपने यह अच्छा कहा ?"

"भन्ते ! हमारे साम्प्रदायिक मत में यह होता है—'ऐकान्तिकसुखमय लोक है, ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार के लिये स्पष्ट मार्ग भी है' । भन्ते ! वैसे हम अपने साम्प्रदायिक मत को भगवान् के साम्प्रदायिक मत से···अपराध ही तो है । भन्ते ! (आप बताएँ) क्या ऐकान्तिकसुखमय लोक है तथा उस ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार के लिये स्पष्ट मार्ग क्या है ?"

"उदायि ! ऐकान्तिकसुखमय लोक है तथा ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार के लिये स्पष्ट मार्ग भी है ।"

"भन्ते ! ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार के लिये स्पष्ट मार्ग क्या है ?"

"उदायि ! यहाँ भिक्षु कामभोगों से दूर रहकर···प्रथम ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है । वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने पर···द्वितीय ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है । प्रीति से वैराग्य होने के कारण···तृतीय ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है । उदायि ! यह वह ऐकान्तिक···स्पष्ट मार्ग है ।"

"न खो सा, भन्ते, आकारवती पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाय, सच्छिकतो हिस्स, भन्ते, एत्तावता एकन्तसुखो लोको होती" ति ?

"न ख्वास्स, उदायि, एत्तावता एकन्तसुखो लोको सच्छिकतो होति; आकारवती त्वेव सा पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया" ति।

एवं वुत्ते, सकुलुदायिस्स परिब्बाजकस्स परिसा उन्नादिनी उच्चासद्दमहासद्दा अहोसि—"एत्थ मयं अनस्साम साचरियका, एत्थ मयं अनस्साम साचरियका ! न मयं इतो भिय्यो उत्तरितरं पजानामा" ति।

अथ खो सकुलुदायी परिब्बाजको ते परिब्बाजके अप्पसद्दे कत्वा भगवन्तं एतदवोच—"कित्तावता पनस्स, भन्ते, एकन्तसुखो लोको सच्छिकतो होती" ति ?

"इधुदायि, भिक्खु सुखस्स च पहाना...पे०...चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज [N. 264] विहरति। या ता देवता एकन्तसुखं लोकं उपपन्ना ताहि देवताहि सद्धिं सन्तिट्ठति सल्लपति साकच्छं समापज्जति। एत्तावता ख्वास्स उदायि, एकन्तसुखो लोको सच्छिकतो होती" ति।

७. "एतस्स नून, भन्ते, एकन्तस्स सुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू भगवति ब्रह्मचरियं चरन्ती" ति ?

"भन्ते ! ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार के लिये यही स्पष्ट मार्ग है ? इतने ही से, भन्ते ! उसको ऐकान्तिकसुखमय लोक का साक्षात्कार हो जाता है ?"

"नहीं, उदायि ! इतने से ही ऐकान्तिकसुखमय लोक का साक्षात्कार नहीं हो पाता है; अपितु यह ऐकान्तिक सुखमय लोक के साक्षात्कार हेतु एक सरल मार्ग है।"

"ऐसा कहने पर, उस सकुल उदायी परिव्राजक की परिषद् में यह कोलाहल मच गया—"यह हमारे साम्प्रदायिक मत के विरुद्ध है, इससे तो हमारा साम्प्रदायिक मत नष्ट ही हो गया ! इससे अधिक उत्तम (अच्छा) तो हम भी नहीं जानते।"

तब सकुल उदायी परिव्राजक ने अपने शिष्यों को शान्त रहने का संकेत कर भगवान् से यह पूछा—"तो भन्ते ! कैसे इस ऐकान्तिक सुखमय लोक का साक्षात्कार हो सकता है ?"

"उदायि ! यहाँ कोई भिक्षु सुख के प्रहाण से...चतुर्थ ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है। और उस ऐकान्तिक सुखमय लोक में उत्पन्न जो देवता हैं, उनके साथ वह साधक बैठता है, बात-चीत करता है, धार्मिक चर्चा करता है, साक्षात्कार करता है।" इतने से उदायि ! उस ऐकान्तिकसुखमय लोक का साक्षात्कार होता है।"

७. "भन्ते ! तो क्या आपके ये भिक्षु इसी ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार हेतु आपके सान्निध्य में ब्रह्मचर्यवास करते हैं ?"

"न खो, उदायि, एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति। अत्थि खो, उदायि, अञ्ञेव धम्मा उत्त- [B. 229] रितरा च पणीततरा च येसं सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ती" ति।

"कतमे पन ते, भन्ते, धम्मा उत्तरितरा च पणीततरा च [R. 38] येसं सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू भगवति ब्रह्मचरियं चरन्ती" ति ?

"इधुदायि, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरण-सम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा···पे०···सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पहाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि···पे०···पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं पि खो, उदायि, धम्मो उत्तरितरो च पणीततरो च यस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति।

"पुन च परं, उदायि, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा···पे०··· दुतियं झानं···ततियं झानं···चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं पि खो, उदायि, धम्मो उत्तरितरो च पणीततरो च यस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभि-

---

"नहीं, उदायि ! ये भिक्षु इस ऐकान्तिकसुखमय लोक के साक्षात्कार हेतु मेरे सान्निध्य में ब्रह्मचर्यवास नहीं करते। अपितु उदायि ! वे दूसरे ही उत्तम व श्रेष्ठ धर्म हैं, जिनके साक्षात्कार हेतु भिक्षु मेरे सान्निध्य में ब्रह्मचर्यवास करते हैं।"

"भन्ते ! वे कौन से दूसरे उत्तम व श्रेष्ठ धर्म हैं, जिनके साक्षात्कार हेतु भिक्षु आपके धर्मविनय में ब्रह्मचर्यवास करते हैं ?"

"उदायि ! यहाँ तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध, विद्या और आचरण से युक्त, सुगत होकर विनेयजनों के धर्मानुशासन में सारथितुल्य, देव-मनुष्यों के शास्ता बुद्ध भगवान् अवतरित होते हैं···पूर्ववत्[1]···वह इन पाँच नीवरणों को चित्त से हटाकर, अवशिष्ट चित्त के उपक्लेशों को जान, उन्हें दुर्बल करने के लिये कामभोगों को छोड़कर···प्रथम ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है। उदायि ! यह वह दूसरा उत्तम···ब्रह्मचर्यवास करते हैं।

"और फिर उदायि ! वह भिक्षु वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने पर···द्वितीय ध्यान···तृतीय ध्यान···चतुर्थ ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है। उदायि ! यह वह दूसरा उत्तम···ब्रह्मचर्यवास करते हैं।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३५४-३५९ (चूलहत्थिपदोपमसुत्त)।

निन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो···पे०···इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं [N. 265] अनुस्सरति। अयं पि खो, उदायि, धम्मो उत्तरितरो च पणीततरो च यस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। अयं पि खो, उदायि, धम्मो उत्तरितरो च पणीततरो च यस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे [B. 230] मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खसमुदयो' ति···पे०···अयं दुक्खनिरोधो ति···अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति···इमे आसवा ति···अयं आसवसमुदयो ति···अयं आसवनिरोधो ति···अयं [R. 39] आसवनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयं पि खो, उदायि, धम्मो उत्तरितरो च पणीततरो च यस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति। इमे खो, उदायि, धम्मा उत्तरितरा च पणीततरा च येसं सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ती" ति।

"यों वह चित्त के परिशुद्ध···समाहित हो जाने पर···पूर्ववत्[1]···अनेक पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है। उदायि! यह वह दूसरा उत्तम···ब्रह्मचर्यवास करते हैं।

"यों वह चित्त के परिशुद्ध···समाहित हो जाने पर···पूर्ववत्[2]··· सुगति-दुर्गति वाले, प्राणियों को पहचानता है। उदायि! यह वह दूसरा उत्तम···ब्रह्मचर्यवास करते हैं।

"यों वह चित्त के परिशुद्ध···समाहित हो जाने पर, आस्रवों के क्षय ज्ञान के लिये अपने चित्त को झुकाता है। तब वह 'यह दुःख है'···'यह आस्रवनिरोधगामी मार्ग है'—यह जान लेता है। इस प्रकार देखते-समझते उसका चित्त···पूर्ववत्[2]···

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३६१ (चूळहत्थिपदोपमसुत्त)।

२-२. द्र०—पीछे पृ० ४७-४८ (भयभैरवसुत्त)।

५. उदायिस्स पब्बज्जा

८. एवं वुत्ते सकुलुदायी परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते। सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेल-पज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति, एवमेव [N. 266] भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं" ति।

एवं वुत्ते, सकुलुदायिस्स परिब्बाजकस्स परिसा सकुलुदायिं परिब्बाजकं एतदवोच—"मा भवं, उदायि, समणे गोतमे ब्रह्मचरियं चरि; मा भवं, उदायि, आचरियो हुत्वा अन्तेवासीवासं वसि। सेय्यथापि नाम उदक-मणिको हुत्वा उदञ्चनिको अस्स, एवं सम्पदमिदं भोतो उदायिस्स भविस्सति। मा भवं, उदायि, समणे गोतमे ब्रह्मचरियं चरि; मा भवं, उदायि, आचरियो हुत्वा अन्तेवासीवासं वसी" ति। इति हिदं सकुलुदायिस्स परिब्बाजकस्स परिसा सकुलुदायिं परिब्बाजकं अन्तरायमकासि भगवतो ब्रह्मचरिये ति॥

कुछ शेष नहीं है'—यह जान लेता है। उदायि! यह वह दूसरा उत्तम···ब्रह्मचर्य-वास करते हैं। उदायि! ये वे दूसरे उत्तम व श्रेष्ठ धर्म हैं, जिनके साक्षात्कार हेतु भिक्षु मेरे सान्निध्य में ब्रह्मचर्यवास करते हैं।"

५. उदायी की प्रव्रज्या

८. ऐसा कहने पर, सकुल उदायी परिव्राजक ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे··· पूर्ववत्··· भन्ते! यह मैं आपकी शरण में जाता हूँ, धर्म और भिक्षुसङ्घ की भी। अच्छा हो, भन्ते! मैं भगवान् के सान्निध्य में प्रव्रज्या-उपसम्पदा पा लूँ।"

(सकुल उदायी द्वारा) ऐसा कहे जाने पर सकुल उदायी परिव्राजक की परिषद् ने सकुल उदायी परिव्राजक से यों कहा—'उदायि! आप श्रमण गौतम के सान्निध्य में ब्रह्मचर्यवास न करें; उदायि! आप आचार्य होकर किसी का शिष्य बनकर न रहें। जैसे कोई बड़ा घड़ा छोटा पुरवा हो जाय उसी तरह आप उदायि का भी यही हाल होगा। उदायि! आप श्रमण गौतम के सान्निध्य में···शिष्य बन कर न रहें"। इस तरह सकुलउदायी परिव्राजक की परिषद् ने सकुल उदायी परिव्राजक के लिये भगवान् के पास ब्रह्मचर्यवास करने में विघ्न डाला॥

चूळसकुलुदायिसुत्त समाप्त॥

३०. वेखनससुत्तं

[N. 267, B. 231, R. 40] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो वेखनसो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो वेखनसो परिब्बाजको भगवतो सन्तिके उदानं उदानेसि—

१. अयं परमो वण्णो

"अयं परमो वण्णो, अयं परमो वण्णो" ति।

"किं पन त्वं, कच्चान, एवं वदेसि—'अयं परमो वण्णो, अयं परमो वण्णो' ति? कतमो, कच्चान, सो परमो वण्णो" ति?

"यस्मा, भो गोतम, वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थि, सो परमो वण्णो" ति।

"कतमो पन सो, कच्चान, वण्णो यस्मा वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थी" ति?

"यस्मा, भो गोतम, वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थि, सो परमो वण्णो" ति।

"दीघा पि खो ते एसा, कच्चान, फरेय्य—'यस्मा, भो गोतम, वण्णा

---

३०. वैखानससूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित जेतवन में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा बनवाये आराम में साधना हेतु विराजमान थे। तब वैखानस परिव्राजक जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गया; जाकर भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। पूछकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े उस वैखानस परिव्राजक ने भगवान् के सामने अपने उद्गार (हृद्गतभाव) यों प्रकट किये—

१. यह उत्तमवर्ण है

"यह परम (श्रेष्ठ) वर्ण (रङ्ग) है, यह परमवर्ण है।"

"कात्यायन (गोत्रोत्पन्न) वैखानस! तुम यह क्या कह रहे हो—'यह परम-वर्ण है…'? कात्यायन! यह परमवर्ण क्या है?"

"भो गौतम! जिस वर्ण से आगे श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है, वही परमवर्ण है।"

"कात्यायन! वह कौन सा वर्ण है, जिस वर्ण से आगे श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है?"

"भो गौतम! जिस वर्ण के आगे श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है, वही परम वर्ण है।"

अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थि, सो परमो वण्णो' ति वदेसि; तं च वण्णं न पञ्ञपेसि। सेय्यथापि, कच्चान, पुरिसो एवं वदेय्य— अहं या इमस्मि जनपदे जनपदकल्याणी तं इच्छामि [R. 41, B. 232] तं कामेमी ति···पे०···।

"एवमेव खो त्वं, कच्चान, 'यस्मा, भो गोतम, वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो वा पणीततरो वा नत्थि, सो परमो वण्णो' ति वदेसि; तं च वण्णं न पञ्ञपेसी" ति।

२. मणिवेळुरियवण्णो अत्ता होति

२. "सेय्यथापि, भो गोतम, मणि वेळुरियो सुभो जातिमा [N. 268] अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो पण्डुकम्बले निक्खित्तो भासते च तपते च विरोचति च, एवंवण्णो अत्ता होति अरोगो परं मरणा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, कच्चान, यो वा मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो पण्डुकम्बले निक्खित्तो भासते च तपते च विरोचति च, यो वा रत्तन्धकारतिमिसाय किमि खज्जोपनको···पे०···य्वायं, भो गोतम, वस्सानं पच्छिमे मासे सरदसमये विद्धे विगतवलाहके [B. 233, R. 42] देवे अभिदो मज्झन्हिकसमयं सुरियो—अयं इमेसं उभिन्नं वण्णानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा ति।

"कात्यायन ! तुम्हारी यह बात दीर्घकाल तक चलती रहे, तो भी तू उस वर्ण को नहीं बता पायगा कि 'भो गौतम ! जिस वर्ण से आगे श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है, वही परमवर्ण है।' कात्यायन ! जैसे कोई आदमी कहे—'मैं इस जनपद की श्रेष्ठ सुन्दरी (जनपदकल्याणी) को चाहता हूँ···पूर्ववत्[१]···।

"इसी तरह, कात्यायन ! तुम—'भन्ते ! जिस वर्ण से आगे श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है, वही परमवर्ण है'—कहते हो तो भी तुम उस वर्ण को नहीं बता पा रहे हो।"

२. आत्मा वैदूर्यमणि सदृश वर्ण वाला

२. "भो गौतम ! जैसे सुन्दर, ऊँची जाति वाला, अठकोणा, ठीक तरह से तराशा गया हीरा (वैदूर्यमणि) गुलाबी रंग के कोमल वस्त्र में लिपटा हुआ भासित होता हो, चमकता हो, सुन्दर लगता हो, इसी प्रकार हमारा आत्मा मरणानन्तर भी उत्तम वर्ण वाला व नीरोग होता है।"

"तो क्या मानते हो, कात्यायन ! यह जो उपर्युक्त सुन्दर···वैदूर्य मणि···सुन्दर लगती है या फिर जो वह रात्रि के गहन अन्धकार में चमकने वाला खद्योत (जुगनू)

१. द्र०—पीछे पृ० १०२८-१०२९।

"अतो खो ते, कच्चान, बहू हि बहुतरा देवा ये इमेसं चन्दिमसुरियानं आभा नानुभोन्ति, त्याहं पजानामि। अथ च पनाहं न वदामि—'एतस्मा वण्णा अञ्ञो वण्णो उत्तरितरो च पणीततरो च नत्थी' ति। अथ च पन त्वं, कच्चान, 'य्वायं वण्णो किमिना खज्जोपनकेन निहीनतरो च पतिकिट्ठतरो च सो परमो वण्णो' ति वदेसि; तं च वण्णं न पञ्ञपेसि।

३. कामसुखा कामग्गसुखं अग्गं

३. "पञ्च खो इमे, कच्चान, कामगुणा। कतमे पञ्च? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया, सोतविञ्ञेय्या सद्दा···पे०···घानविञ्ञेय्या गन्धा···जिव्हाविञ्ञेय्या रसा···कायविञ्ञेय्या [R. 43] फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया—इमे खो, कच्चान, पञ्च कामगुणा। यं खो, कच्चान, इमे पञ्च कामगुणे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, इदं वुच्चति कामसुखं। इति कामेहि कामसुखं, कामसुखा कामग्गसुखं तत्थ अग्गमक्खायती'' ति।

एवं वुत्ते, वेखनसो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं, भो

(का चमकना) है···पूर्ववत्[1]···भो गौतम! यह जो वर्षाऋतु के अन्तिम मास में शरद्‌तु के आगमन पर, मेघरहित स्वच्छ आकाश में मध्याह्न के समय सूर्य (का प्रकाश) है—यही इन दोनों वर्णों में अधिक तेज व श्रेष्ठ है।"

"कात्यायन! इससे भी आगे बहुत से प्रकाशमय देवलोक हैं, जो इन चन्द्र-सूर्य के प्रकाश की अपेक्षा नहीं रखते, उन्हें मैं जानता हूँ; फिर भी मैं यह नहीं कह पाता—'इस वर्ण से अधिक श्रेष्ठ व सुन्दरतम कोई वर्ण नहीं है'। और कात्यायन! तू तो 'यह जो क्षुद्र व निकृष्टतर खद्योत कीट का वर्ण है, यही परमवर्ण है'—ऐसा कहता है और फिर भी उस वर्ण की विशेषता नहीं बता पाता।"

३. विषय से विषयसुख की श्रेष्ठता

६. "कात्यायन! ये पाँच कामगुण कहलाते हैं। कौन से पाँच? इष्ट, कान्त, मनाप, प्रियकर, कामयुक्त चक्षुविज्ञेय रूप···श्रोत्रविज्ञेय शब्द···घ्राणविज्ञेय गन्ध···जिह्वाविज्ञेय रस···कायविज्ञेय स्पर्श योग्य धर्म—कात्यायन! ये पाँच कामगुण हैं। कात्यायन! इन पाँच कामगुणों के सहारे (आलम्बन) से जो सुख सौमनस्य (मानसिक आह्लाद) उत्पन्न होता है, वह कामसुख कहलाता है। इस प्रकार कामगुणों से कामसुख और कामसुखों से अपेक्षाकृत उत्तम (अग्र) कामसुख ही श्रेष्ठ कहलाता है।"

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर वैखानस परिव्राजक यों बोला—"आश्चर्य

---

१. द्र०—पीछे पृ० १०२९-१०३२।

गोतम, अब्भुतं, भो गोतम ! याव सुभासितं चिदं भोता गोत- [N. 269] मेन--'कामेहि कामसुखं, कामसुखा कामग्गसुखं तत्थ अग्गमक्खायती' " ति।

" 'कामेहि, भो गोतम, कामसुखं, कामसुखा कामग्गसुखं तत्थ अग्गमक्खायतो' ति—दुज्जानं खो एतं, कच्चान, तया अञ्ञदिट्ठिकेन [B. 234] अञ्ञखन्तिकेन अञ्ञरुचिकेन अञ्ञत्रयोगेन अञ्ञत्राचरियकेन--कामा वा कामसुखं वा कामग्गसुखं वा। ये खो ते, कच्चान, भिक्खू अरहन्तो खीणासवा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीणभवसंयोजना सम्मदञ्ञा विमुत्ता ते खो एतं जानेय्युं--कामा वा कामसुखं वा कामग्गसुखं वा' ति।

४. एवं वुत्ते, वेखनसो परिब्बाजको कुपितो अनत्तमनो भगवन्तं येव खुंसेन्तो भगवन्तं येव वम्भेन्तो भगवन्तं येव वदमानो "समणो गोतमो पापितो भविस्सती" ति भगवन्तं एतदवोच—"एवमेव पनिधेकच्चे समणब्राह्मणा अजानन्ता पुब्बन्तं, अपस्सन्ता अपरन्तं अथ च पन 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति—पजानामा' ति--

---

है, भो गौतम ! अद्‌भुत है, भो गौतम ! आप गौतम ने क्या ही सुन्दर कहा है--'कामगुणों से कामसुख और कामसुखों से अपेक्षाकृत उत्तम (अग्र) कामसुख ही श्रेष्ठ कहलाता है।"

" 'भो गौतम ! कामगुणों से···कामसुख ही श्रेष्ठ कहलाता है'—कात्यायन ! तुझे यह जानना दुष्कर है; क्योंकि तूँ अन्य मत का मानने वाला, अन्य मत का समर्थन करने वाला, अन्य मत में रुचि रखने वाला, अन्य मत में आस्था रखने वाला एवं अन्य सम्प्रदाय में श्रद्धालु है। कात्यायन ! जो वह भिक्षु ज्ञानी, क्षीणास्रव, ब्रह्मचर्यवास पूरा कर चुके, स्वकर्तव्य पूर्णता तक पहुँचाने वाले, जगत् के भार को अपने कन्धों से उतार फेंकने वाले, लक्ष्य प्राप्त कर लेने वाले, भवबन्धनों को नष्ट कर चुकने वाले व सम्यग्ज्ञान द्वारा विमुक्त हो चुके हैं, वे ही इस भेद को जान सकते हैं कि काम क्या है, कामसुख क्या है तथा उसमें भी अपेक्षाकृत कौन कामसुख श्रेष्ठ है।"

४. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर कुपित एवं अप्रसन्न वैखानस परिव्राजक भगवान् से खुन्साते (अट-पट बोलते) हुए, भगवान् को धिक्कारते हुए, भगवान् की ओर "श्रमण गौतम पापी है"—यह संकेत करते हुए भगवान् से यों बोला--"इसी तरह यहाँ कुछ श्रमण-ब्राह्मण बात की पूर्वाकोटि या अपराकोटि को न जानते, न देखते हैं और तब भी 'हमारा जन्म-मरण क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य पालन पूर्ण हो गया, हमारे कर्तव्य भी पूरे हो चुके, अब हमारे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं

पटिजानन्ति। तेसमिदं भासितं हस्सकं येव सम्पज्जति, लामकं येव सम्पज्जति, रित्तकं येव सम्पज्जति, तुच्छकं येव सम्पज्जती" ति।

[R. 44] "ये खो ते, कच्चान, समणब्राह्मणा अजानन्ता पुब्बन्तं, अपस्सन्ता अपरन्तं, 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति—पजानामा' ति--पटिजानन्ति; तेसं सो येव सहधम्मिको निग्गहो होति। अपि च, कच्चान, तिट्ठतु पुब्बन्तो, तिट्ठतु अपरन्तो। एतु विञ्ञू पुरिसो असठो अमायावी उजुजातिको, अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमानो नचिरस्सेव सामञ्ञेव ञस्सति सामं दक्खिति—एवं किर सम्मा बन्धना विप्पमोक्खो होति, यदिदं अविज्जा बन्धना। सेय्यथापि, कच्चान, दहरो कुमारो मन्दो उत्तानसेय्यको कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बद्धो अस्स सुत्तबन्धनेहि; तस्स वुद्धिमन्वाय [N. 270] इन्द्रियानं परिपाकमन्वाय तानि बन्धनानि मुच्चेय्युं; सो मोक्खोम्ही ति खो जानेय्य नो च बन्धनं। एवमेव खो, कच्चान, एतु विञ्ञू पुरिसो असठो अमायावी उजुजातिको, अहमनुसासामि, अहं धम्मं [B. 235] देसेमि; यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमानो नचिरस्सेव सामञ्ञेव ञस्सति, सामं दक्खिति--'एवं किर सम्मा बन्धना विप्पमोक्खो होति, यदिदं अविज्जा बन्धना' " ति।

एवं वुत्ते, वेखनसो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच--"अभिक्कन्तं,

है--ऐसा जानते हैं'--यों कहते रहते हैं। उनका यह कथन परिहास योग्य (या लघु अर्थात् छोटा), हीन, रिक्त एवं तुच्छ होता है।

"कात्यायन ! ये जो श्रमण-ब्राह्मण बात की पूर्वाकोटि...यों कहते रहते हैं; वे इस धार्मिक निग्रह की पकड़ में आ जाते हैं। और फिर कात्यायन ! पूर्वाकोटि या अपराकोटि के ज्ञान की बात तो छोड़। कोई विनीत, धूर्ततारहित, सरल हृदय एवं बुद्धिमान पुरुष आवे, मैं उसे धर्मानुशासन, धर्मोपदेश करूँ। मेरे अनुशासन में वह स्वयं शीघ्र ही जान लेगा, स्वयं देख लेगा कि इस तरह अविद्यारूपी बन्धन से सम्यक्तया छुटकारा पाया जा सकता है। कात्यायन ! जैसे कोई पालने में ऊपर पैर किये सोने वाला, अबोध बच्चा हो, उसके किसी कारण से कण्ठ आदि पाँच स्थान सूत की रस्सी में उलझ (बँध) जाँय; उसके बड़ा होने या ज्ञान के परिपक्व होने के कारण वह उन बन्धनों से जैसे-तैसे छुटकारा पा ले; फिर वह 'मैं मुक्त हूँ' यह जान ले, परन्तु वह यह नहीं जाने कि मैं इस बन्धन में बँध कैसे गया था। इसी तरह कात्यायन ! वह विनीत, धूर्ततारहित, सरल हृदय एवं बुद्धिमान पुरुष...छुटकारा पाया जा सकता है'।"

भो गोतम···पे०···उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति ।

परिब्बाजकवग्गो निट्ठितो ।

तस्सुद्दानं

पुण्डरी अग्गिसह कथिनामो,
दीघनखो पुन भारद्वाजगोत्तो ।
सन्दक--उदायि—मुण्डिकपुत्तो,
मणिको तथाकच्चानो वरवग्गो ॥

●

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, वैखानस परिव्राजक ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य है, भो गोतम !···पूर्ववत्···आज से आप गौतम मुझे जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ॥

वेखनखसुत्त समाप्त ॥
परिव्राजकवर्ग समाप्त ॥

उदान

इस परिव्राजकवर्ग का यह सूत्रक्रम है—१. तेविज्जवच्छसुत्त, २. अग्गिवच्छगोत्तसुत्त, ३. महावच्छगोत्तसुत्त, ४. दीघनखसुत्त, ५. मागण्डियसुत्त, ६. सन्दकसुत्त, ७. महासकुलुदायिसुत्त, ८. समणमुण्डिकसुत्त, ९. चूलसकुलुदायिसुत्त एवं १०. वेखनससुत्त ।

●